रवीन्द्रनाथ टैगोर की 45 अनमोल कहानियाँ

बीसवीं सदी के महान
साहित्यकार का अनूठा संकलन

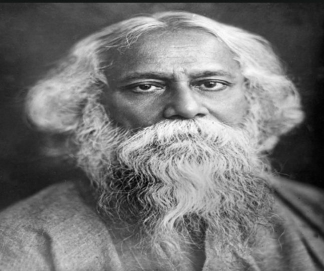

रवीन्द्रनाथ टैगोर की 45 अनमोल कहानियाँ

जीवन के खट्टे-मीठे, घुमावदार तथा उलझते-सुलझते अनुभवों की हृदयस्पर्शी प्रस्तुति

3577

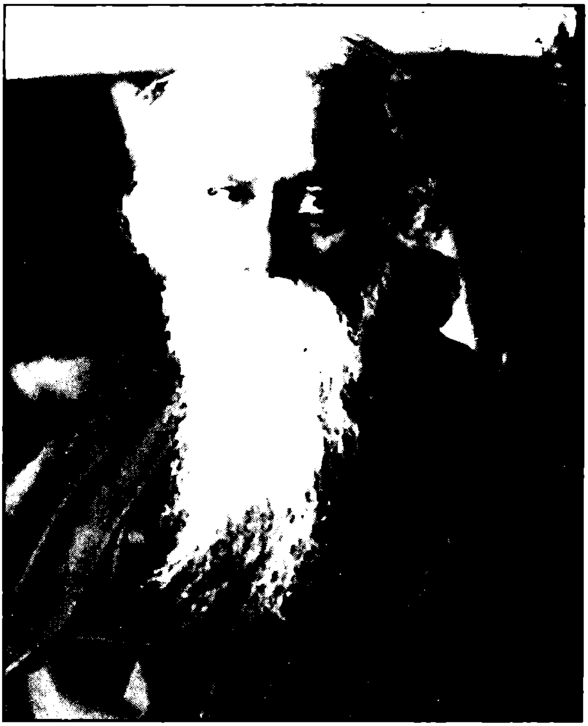

दो शब्द

गुरुदेव रवींद्रनाथ मूलतः कवि हैं। इसलिए वे प्रत्यक्ष की बात तो करते ही हैं, उपनिषद् के मनीषियों की तरह उस अस्तित्व की ओर भी संकेत करते हैं जिस ओर एक साधारण तो क्या बुद्धिजीवी की भी दृष्टि नहीं जाती। उनकी प्रसिद्ध रचना, जिन पर उन्हें 'नोबल पुरस्कार' मिला, 'गीतांजलि' से इस तथ्य की पुष्टि होती है। सौंदर्य और कल्याण की बात करते हुए वे जीवन के परम सत्य को कभी भी उपेक्षित नहीं करते। उनकी यह संवेदना ही शब्दों के माध्यम से ऐसी सुगंधि वातावरण में फैलाती है जिसमें प्रेम, भ्रातृत्व, सौहार्द, स्नेह, एकत्व जैसे सौम्य भाव सहज रूप से तन-मन को सराबोर करने लगते हैं। ऐसा उनकी प्रत्येक रचना में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्रत्येक को क्योंकि इन भावों की अपेक्षा है, इसलिए उनका लिखा जब भी पाठक पढ़ता है, तो वह उसे अपने साथ जोड़ लेता है।

कहानियों के क्षेत्र में, बंगला साहित्य में, जो शुरुआत टैगोर ने की वही वहां एक मानक के रूप में स्वीकृत हो गई। 'काबुली वाला', 'पोस्टमास्टर' और 'दृष्टिदान' जैसी कहानियों को पढ़ते समय हृदय और विचार बंध-से जाते हैं क्योंकि उनमें मानवीय रिश्तों की प्रस्तुति अतिमानवीय रूप से की गई है। मन, हृदय और आंतरिक चेतना का विस्तार है इनमें।

आशा है ये कहानियां आपकी वैयक्तिक और सामाजिक चेतना को जाग्रत करेंगी। आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

—**प्रकाशक**

3577

अनुक्रम

1.	चन्ना फूः	7
2.	जिंदा और मुरदा	16
3.	घाट की बात	31
4.	स्वर्णमृग	42
5.	प्राण मन	54
6.	प्यासा पत्थर	61
7.	एक बरसाती कहानी	77
8.	मुक्ति का उपाय	87
9.	दुलहिन	97
10.	तिनके का संकट	101
11.	अंतिम प्यार	104
12.	गूंगी	117
13.	खोया हुआ मोती	125
14.	पिंजर	141
15.	प्रेम का मूल्य	148
16.	भिखारिन	153
17.	कवि का हृदय	159
18.	समाज का शिकार	162
19.	[illegible] स्वतंत्रता	166
20.	विद्रोही	171

21.	नई रोशनी	179
22.	कवि और कविता	187
23.	सीमांत	192
24.	पाषाणी	209
25.	भाई-भाई	230
26.	विदा	241
27.	हालदार परिवार	256
28.	पात्र और पात्री	279
29.	व्यवधान	297
30.	दालिया	302
31.	दहेज	311
32.	मध्यवलतनी	318
33.	त्याग	332
34.	बला	339
35.	दुराशा	351
36.	दृष्टिदान	363
37.	पोस्टमास्टर	385
38.	काबुली वाला	391
39.	अनाथ की दीदी	401
40.	कंचन	413
41.	धन का मोह	424
42.	एक रात	436
43.	पत्नी का पत्र	444
44.	अपरिचिता	461
45.	रामकन्हाई की मूर्खता	475

छोट प्राण, छोट व्यथा
छोट-छोट दुख कथा
नितांतई सरस सरल
सहस्त्र विस्मृति राशि
प्रत्यह यतेछे भासि
तारि दुचारिटि अश्रुजल

1

चन्ना फूः

रायचरण जब पहले-पहल नौकरी पर बहाल हुआ—तब उसकी उमर थी कुल बारह साल की। जसोर जिले में उसका घर था। लंबे-लंबे बाल, बड़ी-बड़ी आंखें और काली-चिकनी छरहरी देह थी उसकी। वह जाति का कायस्थ था और उसके मालिक भी कायस्थ थे। मालिक के घर साल भर का एक बच्चा था, उसी को खिलाना, संभालना और घुमाना-फिराना—यही उसकी नौकरी थी। धीरे-धीरे उस बच्चे ने रायचरण की गोद छोड़कर स्कूल में, स्कूल छोड़कर कॉलेज में और आखिर में कॉलेज छोड़कर मुंसिफी में कदम रखा—पर रायचरण अब भी उनके यहां नौकर है।

उसका एक मालिक और बढ़ गया है। बहूजी आ गई हैं, इसलिए अनुकूल बाबू पर रायचरण का पहले जितना अधिकार था, उसका अधिकांश नई गृहिणी के हाथ लग गया है।

पर मालकिन ने जैसे रायचरण का पहले का हक कुछ घटा दिया है, वैसे ही एक नया हक देकर उसकी बहुत कुछ पूर्ति भी कर दी है। थोड़े ही दिन हुए अनुकूल के एक लड़का पैदा हुआ है और रायचरण ने उसे सिर्फ अपनी कोशिश और मेहनत से जरूरत से ज्यादा अपना लिया है—

बच्चे को वह ऐसे उत्साह के साथ झूला झुलाता है, ऐसी चतुराई के साथ उसके दोनों हाथ पकड़कर ऊपर को उछालता है, जवाब की कोई उम्मीद न रखकर उससे ऐसे-ऐसे बेमतलब के सवाल पूछता रहता है और उसके मुंह के पास अपना सिर ले जाकर ऐसा हिलाया करता है कि वह नन्हा-सा आनुकौलव रायचरण को देखते ही मारे खुशी के फूलकर कुप्पा हो जाता!

वह नन्हा-सा बच्चा जब पेट और घुटनों के बल चलकर चौखट पार होता

और कोई पकड़ने आता तो खिलखिलाकर हंसता हुआ जल्दी से खतरे से खाली जगह में दुबकने की कोशिश करता—तब रायचरण उसकी असाधारण चतुरता और विचार-बुद्धि को देखकर ताज्जुब में पड़ जाता। उसकी मां के पास जाकर वह बड़े गर्व और आश्चर्य से कहता, "बहूजी, तुम्हारा लड़का बड़ा होने पर 'जज' होगा, पांच हजार रुपये पाएगा!"

संसार में और भी कोई मानव संतान इस उमर में चौखट पार करना आदि ऐसी-ऐसी चतुराई का परिचय दे सकती है, यह बात रायचरण के कयास से बाहर थी। उसका खयाल था कि सिर्फ भावी जजों के लिए ही ऐसी बातें संभव हैं—औरों के लिए नहीं।

आखिर बच्चे ने जब डगमगाते हुए चलना शुरू किया तो वह भी बड़े आश्चर्य की बात हो गई और जब मां को 'मां', बुआ को 'उआ' और रायचरण को 'चन्ना' कहकर पुकारने लगा—तब तो रायचरण इस आश्चर्यजनक संवाद को बड़े उत्साह से चारों तरफ घोषित करने लगा।

सबसे बड़ी ताज्जुब की बात तो यह है कि मां को 'मां' कहता है, बुआ से 'उआ' कहता है, पर उसे कहता है, 'चन्ना!' वास्तव में बच्चे के दिमाग में यह बुद्धि आई कहां से, बतलाना कठिन है। अवश्य ही कोई ज्यादा उमर का आदमी ऐसी तेज बुद्धि का परिचय दे सकता था और देने पर भी उसके जज होने में सबको पूरा-पूरा संदेह ही रह जाता है।

कुछ दिन से रायचरण को मुंह में रस्सी दबाकर घोड़ा बनना पड़ता है। पहलवान बनकर बच्चे के साथ कुश्ती भी लड़नी पड़ती है और उसमें अगर हारकर वह जमीन पर गिर नहीं पड़ता तो बेचारे की शामत आ जाती है।

इसी समय अनुकूल बाबू का पद्मा नदी के किनारे किसी जिले में तबादला हो गया। वहां जाते वक्त वह अपने बच्चे के लिए कलकत्ता से एक छोटी-सी ठेलगाड़ी लेते गए। रायचरण सुबह-शाम दोनों वक्त नवकुमार को साटन का कुरता, सिर पर जरीदार टोपी, हाथ में सोने के कड़े और पैरों में लच्छे पहनाकर उस गाड़ी में बैठाकर हवा खिलाने ले जाता।

वर्षा ऋतु आई। भूखी पद्मा नदी खेत, बाग-बगीचे, गांव सबको एक-एक कौर में निगलने लगी। चर की रेती के पेड़-पौधे सब पानी में डूब गए। नदी के किनारे धसकने की डरावनी आवाज और पानी के गर्जन से दसों दिशाएं मुखरित हो उठीं। तेजी से दौड़ती हुई फेनराशि ने नदी की तेज गति को और भी भयानक कर दिया।

उस दिन तीसरे पहर बादल घिर आए थे। पर बरसने की कोई संभावना न थी। आज रायचरण का खामखयाली नन्हा-सा मालिक किसी भी तरह घर में नहीं रहना चाहता। गाड़ी पर सवार होकर हवाखोरी को जाने के लिए अड़ गया। रायचरण धीरे-धीरे गाड़ी को ठेलता हुआ खेतों के पास नदी के किनारे जा पहुंचा।

नदी में एक भी नाव न थी। खेत में भी कोई आदमी न था। बादलों में से दिखाई दिया कि उस पार सुनसान बालुकामय नदी किनारे शांत समारोह के साथ सूर्यास्त की तैयारियां हो रही हैं। उस शांति के बीच में बालक सहसा एक पेड़ की तरफ उंगली उठाकर बोल उठा, "चन्ना फूः!"

पास ही दलदल जमीन पर कदम का एक पेड़ खड़ा था, उसकी ऊंची शाखा पर कुछ फूल खिले हुए थे। उन्हीं पर बालक की ललचाई नजर थी। तीन-चार दिन हुए, रायचरण ने सींकों में गूंथ-गूंथकर उसे एक कदम के फूलों की गाड़ी बना दी थी। उसमें रस्सी बांधकर खिंचवाने में उसे ऐसा आनंद आया कि उस रोज रायचरण को मुंह में लगाम नहीं लगानी पड़ी; घोड़े से वह एकाएक सईस के पद पर चढ़ा दिया गया।

दलदल में से जाकर फूल लाने की रायचरण की इच्छा न हुई। उसने चट से दूसरी ओर उंगली दिखाकर कहा, "देखो-देखो, वोओ। देखो, चिरैया! देखो तो, उड़ गई आहा! अइयो री चिरैया, उल्लू को लड्डू दे जइयो!"

इस प्रकार लगातार विचित्र बातें करता हुआ वह जोरों से गाड़ी चलाने लगा।

पर,जो लड़का बड़ा होकर जज होगा, उसे इस तरह फुसलाने की कोशिश करना व्यर्थ है। खासकर उस वक्त, जब चारों तरफ दृष्टि आकर्षित करने वाली और कोई चीज ही न हो। लिहाजा रायचरण का काल्पनिक चिरैया का बहाना ज्यादा देर न टिक सका।

"तो तुम गाड़ी में बैठे रहना, अच्छा! मैं चट से फूल लिए आता हूं। खबरदार पानी के किनारे न जाना!" यह कहता हुआ वह धोती ऊपर चढ़ाकर कदम के पेड़ की ओर चल दिया।

पर, वह जो पानी के किनारे जाने को मना कर गया था, उससे बच्चे का मन कदम के फूल से हटकर उसी क्षण पानी की तरफ दौड़ गया। उसने देखा कि पानी 'कलकल-छलछल' करता हुआ दौड़ा जा रहा है। उसे ऐसा लगा जैसे

शरारत करके किसी एक बड़े रायचरण के हाथ से निकलकर एक लाख शिशु प्रवाह हंसता और कलकल गीत गाता हुआ मना किए हुए स्थान की ओर तेजी से भागा जा रहा हो।

उसके इस बुरे दृष्टांत से मानव शिशु का चित्त चंचल हो उठा। वह गाड़ी से उतरकर धीरे-धीरे पानी के पास पहुंचा। एक लंबे तिनके को उठाकर उसे मछली पकड़ने की बंसी बनाकर पानी में झुककर उससे मछली पकड़ने लगा। नदी का चंचल पानी अस्फुट 'कलकल' भाषा में बार-बार उसे अपने खेल में शामिल होने के लिए बुलाने लगा।

सहसा पानी में किसी चीज के गिरने की आवाज हुई, पर बरसात में पद्मा के किनारे ऐसे कितने ही शब्द हुआ करते हैं। रायचरण ने झोली भरकर कदम के फूल तोड़े और पेड़ से उतरकर मुस्कराता हुआ गाड़ी के पास पहुंचा। वहां जाकर देखा तो बच्चा नदारद! चारों तरफ अच्छी तरह निगाह दौड़ाकर देखा, पर कहीं किसी का कोई चिह्न तक न दिखाई दिया।

क्षण भर में रायचरण का खून बर्फ हो गया। सारी दुनिया उसे सूनी, उदास और धुआंधार दिखाई देने लगी। वह अपने टूटे हुए हृदय से चीख उठा, "लल्लू! लल्लू!!"

उसकी इस आवाज पर 'चन्ना' कहकर किसी ने जवाब ही नहीं दिया, शरारत करके किसी बच्चे का कंठ खिलखिला नहीं उठा! सिर्फ पद्मा ही पहले की तरह 'कलकल-छलछल' करके दौड़ती रही, मानो वह कुछ जानती ही नहीं—मानो उसे दुनिया की इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की फुरसत ही नहीं।

जब शाम हुई तो बच्चे की उत्कंठित मां ने चारों तरफ आदमी दौड़ाए। लालटेन हाथ में लिए लोग नदी के किनारे पहुंचे। वहां देखा तो रायचरण आंधी की हवा की तरह खेतों के चारों तरफ 'लल्लू, लल्लू' चिल्लाता हुआ भटक रहा है। उसका गला बैठ गया है। अंत में घर लौटकर रायचरण 'धड़ाम' से अपनी मांजी के पैरों पर गिर पड़ा।

उससे बार-बार पूछा गया, पर वह रो-रोकर यही कहता रहा, "कहां गया, कुछ भी पता नहीं लगा मां!"

यद्यपि सब समझ गए कि यह काम पद्मा का ही है, फिर भी गांव के बाहर जो बनजारे ठहरे हुए थे, उन पर संदेह रह ही गया। मां के मन में तो यह संदेह

पैदा हुआ कि कहीं रायचरण ने ही न चुरा लिया हो! यहां तक कि वह उसे बुलाकर कहने लगीं, "तू मेरे लल्ला को लौटा दे। तुझे जितने रुपये चाहिए, मैं दूंगी।"

यह सुनकर रायचरण सिर्फ माथे पर हाथ रखकर बैठ गया।

अंत में मालकिन ने उसे निकाल बाहर कर दिया।

2

रायचरण अपने गांव चला गया। अब तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था और होने की कोई उम्मीद भी नहीं थी। पर होनहार की बात कि इतनी उम्र बीत जाने के बाद इस बार उसे एक बच्चा हुआ।

बच्चा तो हुआ, पर रायचरण की नजरों में उसकी मृत्यु भी हो गई। उस बच्चे पर उसे बड़ा क्रोध आया, उसे वह बैरी-सा दिखने लगा। उसने सोचा, यह छल करके 'लल्ला' की जगह अपना हक जमाने आया है। उसके मस्तिष्क में यह विचार आने लगा कि मालिक के इकलौते बेटे को पानी में बहाकर खुद पुत्र सुख का उपभोग करना महापाप के सिवा और कुछ नहीं। यहां तक कि रायचरण की विधवा बहन अगर न होती तो शायद वह बच्चा इस दुनिया की हवा में ज्यादा दिन तक सांस भी न ले सकता था।

ताज्जुब की बात है कि उस लड़के ने भी कुछ दिन बाद लल्लू की तरह ही चौखट पार करना शुरू कर दिया और अपनी मनमानियों में भी ठीक वैसी ही चतुरता दिखाने लगा। और तो और...उसके गले का स्वर, हंसने और रोने की आवाज बहुत कुछ रायचरण को 'लल्ला' से मिलती-जुलती सी लगने लगी। किसी-किसी दिन रायचरण जब उसका रोना सुनता तो उसकी छाती सहसा धड़क उठती। उसे ऐसा लगता कि उसका 'लल्ला' ही कहीं भटक-भटककर रो रहा है।

रायचरण की बहन ने अपने भतीजे का नाम रखा था, 'फुलना।' फुलना भी बुआ को 'उआ' कहकर पुकारने लगा। इस परिचित संबोधन को सुनकर एक दिन सहसा रायचरण को खयाल आया कि जरूर लल्ला ही मेरे मोह को न छोड़ सकने की वजह से मेरे ही घर पैदा हुआ है।

इस विश्वास के अनुकूल कुछ अकाट्य युक्तियां भी थीं। पहले तो लल्ला की मृत्यु के तुरंत बाद इतनी जल्दी फुलना का जन्म होना। दूसरे, इतने वर्ष बाद

[illegible] [illegible]की पत्नी के गर्भ से लड़का पैदा होना—यह उसकी पत्नी के गुण से [illegible] नहीं हो सकता। तीसरे, यह भी उसी तरह घुटनों के बल चलता है, डगमगाता हुआ घूमता है और बुआ को 'उआ' कहता है! लल्ला के जिन लक्षणों से भविष्य में उसके जज होने की संभावना थी, उनमें से अधिकांश लक्षण इस फुलना में मौजूद थे।

ऐसा सोचते ही उसे मांजी के उस हृदय विदारक संदेह की बात सहसा याद आ गई। बड़े आश्चर्य में आकर वह मन-ही-मन कहने लगा, 'हां-हां, मां के मन ने ठीक जाना था कि किसी ने उसके बच्चे को चुरा लिया है। ठीक तो है, तभी तो वह मेरे आकर पैदा हुआ है।'

इतने दिन से उसने जिस बच्चे को लापरवाही से रखा था, उसके लिए उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। बच्चे को अब वह बहुत ज्यादा चाहने और प्यार करने लगा।

अब वह फुलना को इस तरह पालने लगा जैसे वह किसी बड़े घराने का बच्चा हो। उसके लिए उसने साटन का कोट, जरीदार टोपी तथा अपनी पत्नी के गहने तुड़वाकर कड़े और लच्छे भी बनवा दिए। महल्ले के किसी भी लड़के के साथ वह उसे खेलने नहीं देता। रात-दिन खुद ही उसका साथी बनकर उससे खेलता रहता। महल्ले के लड़के मौका पाते ही 'नवाब का नाती' कहकर उसे चिढ़ाते। गांव के लोग भी रायचरण के ऐसे पगलाए आचरण पर आश्चर्य करने लगे।

फुलना जब पढ़ने लायक हुआ, तब रायचरण अपनी जमीन वगैरह सब बेचकर उसे कलकत्ता ले गया। वहां बड़ी मुश्किल से एक नौकरी तलाश करके फुलना को उसने स्कूल में भरती कर दिया। खुद तो वह जैसे-तैसे गुजर कर लेता था, पर फुलना को अच्छा खाना, बढ़िया पोशाक और अच्छी शिक्षा देने में कोई कसर न रखता। वह मन-ही-मन कहता, 'लल्लू जी, तुम मेरे मोह से मेरे घर आए हो, इसलिए तुम्हारा निरादार मैं नहीं कर सकता।'

इसी तरह बारह साल बीत गए। फुलना पढ़ने-लिखने में तेज और देखने में भी अच्छा मोटा-ताजा सांवले रंग का है। वह मिजाज से कुछ आरामतलबी और शौकीन है। केश-वेश की सजावट की तरफ पूरा ध्यान रखता है। बाप को अपने बाप जैसा नहीं समझता—कारण, रायचरण स्नेह करने में बाप और सेवा करने में नौकर जैसा बरताव करता है। इसके सिवा रायचरण ने यह बात भी सभी से छिपा रखी थी कि वह फुलना का बाप है।

जिस छात्रावास में फुलना रहता है, वहां के सब लड़के रायचरण को गंवार समझकर उसकी हंसी उड़ाया करते हैं। कभी-कभी रायचरण की गैरहाजिरी में फुलना भी उनकी हंसी में शामिल हो जाया करता है। इसके बावजूद भोले-भाले रायचरण को सभी लड़के बहुत प्यार करते हैं। फुलना भी प्यार करता है, पर उसमें पितृ स्नेह की जगह अनुग्रह ही ज्यादा रहता है।

रायचरण अब बूढ़ा हो चला। उसका मालिक अब हर वक्त उसके काम-काज में दोष निकालता रहता है। वास्तव में उसका शरीर भी अब शिथिल हो चला है। काम में वह उतना ध्यान नहीं रख पाता, बार-बार भूल जाता है—लेकिन जो पूरी तनख्वाह देता है, वह बुढ़ापे का उज्र नहीं सुन सकता। वह जो खेत-जोत बेचकर रुपये लाया था, इधर वे भी खत्म हो गए हैं। इसी वजह से फुलना भी आजकल अपने को कपड़े-लत्तों से कुछ तंग महसूस करने लगा है।

सहसा एक दिन रायचरण ने काम से छुट्टी ले ली और फुलना को कुछ रुपये देकर कहा, ''मुझे कुछ जरूरी काम है, कुछ दिन के लिए गांव जा रहा हूं।''

इतना कहकर वह वहां से चल पड़ा। वहां से वह गांव न जाकर सीधे बारासत पहुंचा। अनुकूल बाबू उस समय बारासत में मुंसिफ थे। अनुकूल बाबू को और कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था। उनकी पत्नी अब भी उस बच्चे के शोक में आंसू बहाया करती हैं।

एक शाम अनुकूल बाबू कचहरी से लौटकर आराम कर रहे थे और उनकी गृहिणी द्वार पर आए किसी साधु-महात्मा से संतान की कामना से काफी कीमत देकर कोई जड़ी और आशीर्वाद खरीद रही थीं कि इतने में आंगन से आवाज आई, ''जय हो मांजी की!''

अनुकूल बाबू बोले, ''कौन है?''

रायचरण ने आकर नमस्कार किया। बोला, ''मैं हूं, रायचरण।''

बूढ़े को देखकर अनुकूल का हृदय पसीज गया। उन्होंने उसकी मौजूदा हालत के बारे में हजारों सवाल पूछ डाले। इन सवालों के बाद उन्होंने फिर उसे काम पर बहाल करने की इच्छा प्रकट की।

इस पर रायचरण सूखी हंसी हंसकर बोला, ''मैं तो सिर्फ मांजी का असीस लेने आया हूं।''

अनुकूल बाबू तो उसे अपने साथ भीतर ले गए, पर उसकी मांजी ने उसके

आने पर कोई प्रसन्नता व्यक्त नहीं की। उनके इस व्यवहार पर ध्यान न देते हुए रायचरण हाथ जोड़कर उनसे बोला, "मांजी, मैंने ही आपका लड़का चुराया था। पद्मा तथा और किसी ने नहीं, वरन उसको चुराने वाला मैं ही हूं, नीच पापी...!"

अनुकूल बाबू कह उठे, "क्या कह रहा है तू! कहां है वह?"

"मेरे पास ही है। मैं परसों उसे यहां पहुंचा दूंगा।"

उस दिन रविवार था। कचहरी की छुट्टी थी। सवेरे से पति-पत्नी बड़ी उत्सुकता से रायचरण की राह देख रहे थे।

दस बजे फुलना को साथ लेकर रायचरण हाजिर हुआ। अनुकूल की पत्नी ने लड़के से कुछ भी पूछताछ नहीं की और न कुछ सोचा-विचारा ही, वह चट से उसे गोद में बैठाकर, छाती से चिपटाकर, मुंह चूमकर, अतृप्त नयनों से उसका मुखड़ा देखकर, कभी रोती और कभी हंसती हुई व्याकुल हो उठीं। दरसअल लड़का देखने में बहुत अच्छा था। पहनावे में, रहन-सहन में गरीबी का उस बच्चे में कोई लक्षण ही महसूस नहीं हो रहा था।

मुंह पर अत्यंत प्रियदर्शन, विनीत—सलज्ज भाव देखकर अनुकूल के हृदय में भी सहसा स्नेह उमड़ आया। फिर भी उन्होंने दृढ़ता के साथ पूछा, "कोई सबूत है?"

रायचरण ने कहा, "ऐसे काम का सबूत क्या होगा, बाबू साहब? मैंने आपका लड़का चुराया था, इस बात को या तो मैं जानता हूं या फिर भगवान—संसार में तीसरा कोई इसे नहीं जानता।"

अनुकूल ने सोच-समझकर निश्चय किया कि लड़के को पाते ही उनकी पत्नी ने जिस ममता के साथ उसे अपना लिया है, उसे देखते हुए सबूत कोई मायने नहीं रखता। जैसे भी हो, विश्वास करना ही अच्छा होगा। इसके अलावा एक और भी बात है, जिसका उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि रायचरण को ऐसा लड़का मिल भी कहां सकता है? और फिर इतना पुराना नौकर बिना वजह उन्हें धोखा देगा ही क्यों?

लड़के से भी बातचीत करने पर मालूम हुआ कि बचपन से ही वह रायचरण के साथ है और अब तक उसे ही वह पिता समझता था, पर रायचरण ने कभी भी उसके साथ पिता के समान व्यवहार नहीं किया। उसके साथ रायचरण का बरताव नौकर जैसा ही रहा है।

अनुकूल बाबू अपने मन से सभी प्रकार के संदेह को दूर करके रायचरण से बोले, "लेकिन रायचरण, अब तू हम लोगों की परछाईं भी न छू सकेगा।"

रायचरण ने हाथ जोड़कर कहा, "मालिक साहब, इस बुढ़ापे में अब मैं कहां जाऊंगा?"

मालकिन ने वापस आए बेटे के मुंह की ओर देखते हुए अपने पति से कहा, "नहीं-नहीं इसे रहने दो। लल्लू मेरा खुश रहे। इसे मैं माफ करती हूं।"

न्यायपरायण अनुकूल ने कहा, "इसने ऐसा जबरदस्त कसूर किया है कि इसे माफ नहीं किया जा सकता।"

रायचरण ने अनुकूल के पैर पकड़कर कहा, "मैंने नहीं, यह तो भगवान ने किया है।"

अपना पाप ईश्वर के सिर मढ़ने की कोशिश करते देख अनुकूल बाबू और भी ज्यादा नाराज हो गए। बोले, "जिसने ऐसा विश्वासघात का काम किया है, उस पर अब फिर विश्वास करना ठीक नहीं।"

रायचरण ने मालिक के पैर छोड़कर कहा, "मैं ऐसा नहीं हूं मालिक!"

"तो कौन है?"

"मेरी तकदीर!"

पर इस तरह की कैफियत से किसी शिक्षित आदमी को संतोष नहीं हो सकता।

रायचरण ने रोते हुए कहा, "मालिक...संसार में मेरा और कोई भी नहीं है!"

इधर फुलना ने जब देखा कि वह एक मुंसिफ का लड़का है, रायचरण उसे चुराकर ले गया था। रायचरण अब तक अपना लड़का बताकर उसका अपमान करता रहा है। मन में ऐसा विचार आते ही फुलना को भी कुछ गुस्सा आया, फिर भी उसने उदारता के साथ अनुकूल बाबू से कहा, "पिताजी, इसे माफ कर दो। घर में अगर नहीं रखना चाहते तो इसके लिए कुछ माहवारी बांध दो।"

अपने इकलौते पुत्र के मुंह से यह शब्द सुनकर रायचरण निःशब्द हो गया! फिर उसने अपने बेटे का मुंह अच्छी तरह देखा और बिना कुछ बोले सबको प्रणाम कर दरवाजे से बाहर निकल गया। कुछ ही देर में वह संसार के असंख्य आदमियों की भीड़ में खो गया।

महीने के अंत में अनुकूल बाबू ने जब उसके गांव के पते से कुछ रुपये भेजे तो मनीऑर्डर वापस आ गया। वहां रायचरण था ही नहीं!

❑❑

2

जिंदा और मुरदा

रानीहाट के जमींदार बाबू शारदा शंकर के घर की बेचारी विधवा छोटी बहू के मायके में कोई न था। एक-एक करके सभी मर चुके थे। ससुराल में भी अपना कहने को कोई नहीं है। न पति है, न पुत्र। एक जेठौत है, शारदा शंकर का छोटा लड़का। वही उसकी आंखों का तारा है।

उस बच्चे के पैदा होने के बाद उसकी मां को बड़ी गंभीर बीमारी ने घेर लिया था। उस बीमारी की वजह से वह बहुत दिनों तक तकलीफ में रही थी। अत: उस लड़के को उसकी विधवा चाची कादंबिनी ने ही पाल-पोसकर बड़ा किया है।

कोई पराए लड़के को पाल-पोसकर बड़ा करे तो उस पर हृदय का खिंचाव और स्नेह मानो और भी बढ़ जाता है, क्योंकि उस पर उसका कोई कानूनी हक नहीं रहता। जहां सामाजिक अधिकार बिलकुल न हो, सिर्फ स्नेह का ही हक हो, वहां बेचारा अकेला स्नेह समाज के सामने अपने हक को किसी दलील के बूते पर साबित नहीं कर सकता, करना भी नहीं चाहता, बल्कि वह तो अपने उस अनिश्चित हृदय के धन को दूने आवेग और उससे भी ज्यादा व्याकुलता के साथ सिर्फ चाहने ही लगता है।

विधवा कादंबिनी ने अपने सारे रुके हुए स्नेह को इस छोटे से बच्चे पर सींचकर एक दिन सावन की रात को एकाएक इस लोक से कूच कर दिया। अचानक न जाने कैसे उसके हृदय की धुकधुकी बंद हो गई। दुनिया में और सब जगह तो समय ज्यों का त्यों चल ही रहा था, सिर्फ उस स्नेहपूर्ण छोटे से कोमल हृदय के भीतर ही समय की घड़ी के पुरजे हमेशा के लिए बंद हो गए थे।

पीछे कहीं पुलिस का अड़ंगा न लग जाए, इस डर से बिना आडंबर

जमींदार के चार ब्राह्मण कर्मचारी अर्थी को जल्दी से श्मशान लेकर चल दिए। रानीहाट का मसान गांव से बहुत दूर था। तालाब के किनारे एक झोंपड़ी है और उसके पास ही एक बड़ा भारी बड़ का पेड़। चारों तरफ मैदान ही मैदान नजर आता है और कुछ नहीं। पहले यहां नदी बहती थी, अब वह बिलकुल सूख गई है। उस सूखी नदी का ही कुछ हिस्सा खोदकर मसान का तालाब बना दिया गया है। नदी की जगह उस तालाब को ही यहां के लोग मानते हैं।

अरथी को झोंपड़ी के भीतर रखकर चारों जने चिता के लिए आने वाली लकड़ियों का इंतजार करने लगे। बहुत देर तक बैठे-बैठे जब बिलकुल उकता गए, तो उनमें से निताई और गुरुचरण यह देखने के लिए चल दिए कि लकड़ी आने में इतनी देर क्यों हो रही है? बाकी के दो विधू और वनमाली अरथी के पास बैठे रहे।

सावन की अंधेरी रात थी। आकाश में चारों ओर बादल ही बादल मंडरा रहे हैं, कहीं एक तारा तक नहीं दिखाई देता। अंधेरी झोंपड़ी में दोनों जने चुपचाप बैठे हुए हैं। एक के दुपट्टे में दियासलाई और मोमबत्ती बंधी हुई थी। बरसात से सर्द हो जाने के कारण दियासलाई बहुत जलाई, पर जली नहीं। उस पर साथ में जो लालटेन थी, वह भी बुझ गई।

बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद एक ने कहा, "भइया, एक चिलम तंबाकू कहीं से मिल जाती तो बड़ा अच्छा होता। जल्दी में कुछ ला भी तो नहीं सके।"

दूसरे ने कहा, "मैं चट से जाकर एक दौड़ में सब ला सकता हूं।"

वनमाली के भागने के इरादे को ताड़कर विधू ने कहा, "जरा सूरत तो देखूं! तुम जाओ मौज उड़ाने और मैं यहां अकेला बैठा रहूं, क्यों?"

इसके बाद बातचीत बंद हो गई। पांच मिनट एक घंटे के बराबर मालूम होने लगे। जो लकड़ी लाने गए थे, उन्हें वे मन-ही-मन गालियां देने लगे। इनके मन का यह संदेह कि वे दोनों जरूर कहीं आराम से बैठे मजे में तंबाकू पीते और गप्पें मारते होंगे, बढ़ता ही गया।

आस-पास कहीं भी कोई आहट नहीं, सिर्फ तालाब के किनारे से लगातार झींगुरों की झनकार और मेढकों की 'टर्र-टर्र' सुनाई दे रही है। इतने में कुछ ऐसा लगा कि जैसे खाट जरा कुछ हिली हो, मुरदे ने मानो करवट बदली हो।

विधू और वनमाली दोनों कांप उठे और राम नाम जपने लगे। इतने में

झोंपड़ी में एकाएक एक गहरी उसांस सी सुनाई पड़ी। विधू और वनमाली उसी दम उछलकर झोंपड़ी से बाहर निकल आए और सीधे गांव की तरफ भाग खड़े हुए।

करीब डेढ़ कोस रास्ता तय करने के बाद उन्होंने देखा कि उनके बाकी दोनों साथी लालटेन हाथ में लिए वापस आ रहे हैं। दरअसल वे तंबाकू ही पी रहे थे। लकड़ी के बारे में उन्हें कुछ भी पता नहीं था, फिर भी आकर समाचार दिया, "पेड़ काटकर लकड़ी चिरवाई जा रही है। बस, अब आने ही वाली समझो!"

जवाब में विधू और वनमाली ने झोंपड़ी का सारा किस्सा कह सुनाया। निताई और गुरुचरण को इस पर विश्वास न हुआ। उन दोनों ने बात जड़ से उड़ा दी और अरथी को अकेली पड़ी छोड़ आने की बेवकूफी पर दोनों को खूब फटकारा भी।

फिर देर न करके चारों जने जल्द ही मसान की उसी झोंपड़ी में पहुंचे। भीतर जाकर देखा तो मुरदे का पता नहीं, खाली खटिया पड़ी हुई है।

चारों के चारों एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। संदेह हुआ, कहीं सियार न ले गया हो ? पर वहां तो ऊपर का कपड़ा तक नहीं है। पता लगाते-लगाते बाहर निकलकर देखा तो झोंपड़ी के दरवाजे के पास जो थोड़ी-सी कीच जम गई थी, उस पर स्त्री के छोटे-छोटे पांवों के ताजे निशान बने हुए हैं।

सोचने लगे कि शारदा शंकर बाबू कोई मामूली आदमी नहीं हैं, उन्हें इस तरह का भूत का किस्सा सुनाकर सहसा उनसे किसी अच्छे नतीजे की उम्मीद करना बिलकुल असंभव है। अत: चारों आदमियों ने खूब सोच-विचारकर अंत में यही तय किया कि उनसे कह दिया जाए कि 'दाह कर्म' हो गया। बस, इसी में खैर है, वरना सबकी जान के लिए मुसीबत हो जाएगी।

सवेरे जो लकड़ियां लेकर आए, उन्हें समाचार मिला कि 'देर होती देख रात ही में सब काम खत्म कर दिया गया। झोंपड़ी में लकड़ियां मौजूद थीं।'

इस विषय में जल्दी किसी को संदेह भी नहीं हो सकता था, क्योंकि मुरदा कोई ऐसी कीमती चीज नहीं कि जिसे कोई धोखा देकर उड़ा ले जाएगा।

2

सभी जानते हैं कि कभी-कभी बीमार शरीर में जीवन का जब कोई लक्षण

ही नहीं पाया जाता, तब भी बहुधा उसमें प्राण मौजूद रहते हैं, फिर यथा-समय उस मुरदा जैसे शरीर में सांस चलने लगती है। कादंबिनी भी असल में मरी नहीं थी, अचानक किसी वजह से उसके दिल की धड़कन बंद हो गई थी।

जब वह सचेतन हो उठी, तो देखा कि उसके चारों तरफ घोर अंधकार ही अंधकार है। हमेशा जहां वह सोती थी, उसे मालूम हुआ कि यह वह जगत नहीं है। एक बार उसने पुकारा, 'जीजी!' पर अंधेरे घर में किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया। डरते-डरते वह उठकर बैठ गई और कुछ देर पहले की अपने मरने की बात याद आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गए।

उफ! अचानक छाती के भीतर कैसा जबरदस्त दर्द उठा था, दम घुटने लगा था। उसकी जेठानी घर के एक कोने में बैठी अंगीठी पर बच्चे के लिए दूध गरम कर रही थी। कादंबिनी से मारे दर्द के खड़ा न रहा गया, वह पछाड़ खाकर बिछौने पर गिर पड़ी थी।

उसने रुंधे हुए स्वर से कहा था, 'जीजी, जरा लल्ला को ला दो मेरे पास। मेरा जी घबरा रहा है।' उसके बाद उसकी आंखों के आगे सब काला स्याह हो गया था, मानो किसी लिखी हुई कॉपी पर स्याही भरी दवात उलट पड़ी हो। कादंबिनी की सारी स्मृति और चेतना, विश्व ग्रंथ की सारी लिखावट पल भर में एकाकार हो गई। बेचारी विधवा को इतनी भी सुध नहीं कि उसके प्यारे लल्ला ने उसे एक बार...आखिरी वक्त...स्नेह और ममता से भरे अपने मीठे गले से 'चाची' कहकर पुकारा था या नहीं। उसे इतना भी याद नहीं कि वह अपने इस अनंत और अज्ञात मरण के सफर के लिए अपनी चिर-परिचित पृथ्वी से उस अंतिम स्नेह के तोशे 'चाची' को साथ लाई है या नहीं।

पहले तो उसे ऐसा लगा कि यमपुरी शायद ऐसी ही सुनसान और चिर अंधकारमय होती होगी। वहां कुछ भी देखने को नहीं, सुनने को नहीं, काम नहीं, काज नहीं—सिर्फ हमेशा इसी तरह उठकर जागकर अंधेरे में बैठे रहना पड़ता है।

उसके बाद जब खुले हुए दरवाजे से अचानक बरसाती ठंडी हवा का एक झोंका आया और मेढकों की 'टर्र-टर्र' कानों में पड़ी, तो उसके मन में अपने छोटे से जीवन की—बचपन से लेकर अब तक की सारी की सारी वर्षा ऋतुओं की याद जाग उठी। फिर उसे अपने नीचे जमीन का अनुभव हुआ।

इतने में एक बार बिजली चमक उठी। इस क्षणिक उजाले में सामने

तालाब, बरगद का पेड़, दूर तक फैला हुआ मैदान और पेड़ ही पेड़ नजर आए। उसे याद आ गई, कभी-कभी पुण्य तिथि के दिन इस तालाब के किनारे आकर उसने स्नान किया है। उस वक्त इसी मसान में मुरदा देखकर मृत्यु उसे कैसी भयानक जान पड़ती थी!

पहले तो उसके मन में आई कि घर लौट चले। फिर सोचने लगी कि 'मैं जिंदा नहीं हूं, मुझे घर में कोई घुसने नहीं देगा! वहां जाने से घर वालों का अमंगल जो होगा। जीव राज्य से मुझे तो देश निकाला मिल चुका है, मैं तो अब अपनी प्रेतात्मा हूं!

अगर ऐसा नहीं है तो वह इस अंधेरी रात में शारदा शंकर के सुरक्षित अंत:पुर से इस दुर्गम श्मशान में आई कैसे? अगर दाह-कर्म खत्म नहीं हुआ तो फिर उसे आग देने वाले आदमी गए कहां?

उसे शारदा शंकर के प्रकाशमय मकान में अपने मरने की आखिरी घड़ियों की याद आ गई। इसके बाद गांव से बहुत दूर इस सुनसान अंधकारमय श्मशान में अपने को अकेली देखकर उसने समझ लिया कि वह अब इस दुनिया के जिंदा आदमियों में से नहीं है।

वह मन-ही-मन सोचने लगी कि मैं अब प्रेतात्मा हूं, सबसे लिए खौफनाक हूं, अकल्याणकारिणी हूं। अब मुझसे किसी का हित नहीं हो सकता, सबका अहित ही होगा।

मन में इन सब बातों का खयाल आते ही उसे मालूम हुआ कि उसके चारों ओर से सांसारिक कायदे-कानून के सारे बंधन मानो टूटकर गिर पड़े हैं। मानो अब उसमें अद्भुत शक्ति तथा असीम स्वाधीनता आ गई है। अब वह जहां चाहे जा सकती है, जो चाहे कर सकती है।

इस तरह के अभूतपूर्व और विचित्र भाव मन में आते ही वह उन्मत्त-सी हो उठी, फिर सहसा आंधी की तरह झोंपड़ी से बाहर निकलकर अंधकारमय श्मशान के ऊपर से दौड़ती हुई चल दी। उसके मन में लज्जा, भय, चिंता का लेशमात्र भी न रहा।

बहुत देर तक चलते-चलते उसके पैर थक गए। शरीर में भी थकावट आने लगी। मैदान पर मैदान पार करती गई, पर उनका छोर न आया। बीच-बीच में धान के खेत थे, कहीं-कहीं घुटुअन पानी भी जमा था। जब पौ फटी, कुछ कुछ सवेरे का उजाला दिखाई दिया, तब एक गांव के किनारे की बस्ती में पेड़ों पर चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी।

तब उसे डर-सा मालूम होने लगा। दुनिया के साथ, जिंदा आदमियों के साथ उसका अब यह नया संबंध कैसे हो गया, इसकी उसे कोई खबर तक नहीं। जब तक वह मैदान में थी, श्मशान में थी, सावन की रात के अंधेरे में थी—तब तक मानो वह निर्भय थी और अपने राज्य में थी। दिन के उजाले में आदमियों की बस्ती उसे बहुत ही डरावनी जगह मालूम होने लगी। आदमी भूत से डरता है और भूत आदमी से। मृत्यु-नदी के दोनों किनारों पर इन दोनों का निवास है।

3

कादंबिनी के कपड़े कीच से सन रहे थे। अद्‌भुत भेष था उसका और रात भर जागने से वह पागल-सी हो रही थी। चेहरा उसका ऐसा लग रहा था कि आदमी उसे देखकर डर सकते थे। लड़के तो शायद दूर भागकर उस पर ढेले भी फेंकते।

गनीमत हुई कि राह चलते एक भले आदमी ने उसे सबसे पहले इस दशा में देख लिया। उसने पास आकर पूछा, "बेटी, तुम किसी भले घर की कुलवधू जान पड़ती हो, तो इस वेश में अकेली कहां जा रही हो?"

कादंबिनी ने पहले तो कुछ जवाब नहीं दिया और एकटक उसके मुंह की तरफ ताकती रही। एकाएक उसे कुछ जवाब नहीं सूझ पड़ा। वह संसार में मौजूद है, किसी भले घर की कुलवधू-सी जान पड़ती है...राह चलता पथिक उससे कुछ पूछ रहा है—ये सब बातें उसे अनहोनी-सी जान पड़ने लगीं।

पथिक ने उससे फिर पूछा, "चलो बेटी, मैं तुम्हें घर पहुंचा दूं। तुम्हारा घर कहां है, मुझे बताओ?"

कादंबिनी सोचने लगी—ससुराल लौटना तो अब फजूल है, वहां स्थान कहां? और मायके में है ही कौन? तब उसे अपनी बचपन की एक सहेली योगमाया की याद आई। योगमाया के साथ यद्यपि उसका छुटपन में ही बिछोह हो गया था, फिर भी बीच-बीच में उससे चिट्ठी-पत्री चलती रहती थी। चिट्ठी के द्वारा ही कभी-कभी उन दोनों में प्यार भरी बातों की लड़ाई भी चलती थी।

कादंबिनी दिखाना चाहती कि उसका प्रेम जोरदार है, वह उसे बहुत चाहती है। उधर, योगमाया भी जताना चाहती कि जितना वह चाहती है, उतना सखी की तरफ से उसे प्रेम नहीं मिलता। दोनों ही इस बात का दावा करती थीं कि किसी मौके पर एक बार दोनों का मिलन हो जाए, तो दोनों में से कोई भी किसी को घड़ी भर के लिए आंख से ओझल न होने दे।

कादंबिनी ने उस भले आदमी से कहा, "निशिंदापुर में मुझे श्रीपति बाबू के घर पहुंचा दीजिए।"

वह पथिक कलकत्ता जा रहा था। निशिंदापुर यद्यपि पास न था, फिर भी उसके रास्ते में ही पड़ता था। उसने खुद इंतजाम करके कादंबिनी को श्रीपति बाबू के घर पहुंचा दिया।

दोनों सखियों में मिलाप हुआ। पहले पहचानने में कुछ देर लगी, फिर बाद में बचपन का सादृश्य दोनों की आंखों में क्रमशः उठा।

योगमाया ने कहा, "आज मेरे बड़े भाग्य हैं! सचमुच, किसी तरह तुम्हें मैं इतनी जल्दी, इतनी आसानी से देख सकूंगी, इसकी मुझे सपने में भी आशा नहीं थी। पर बहन, ऐसे कैसे चली आईं, सो तो बताओ? ससुराल वालों ने तुम्हें यहां आने कैसे दिया?"

कादंबिनी पहले तो चुप रही, फिर अंत में बोली, "बहन, ससुराल की बात मुझसे न पूछो। मुझे तो तुम अपने यहां की दासी की तरह एक कोने में पड़ी रहने देना, मैं तुम्हारा सब काम कर दिया करूंगी।"

योगमाया ने कहा, "बहन, तुम कैसी बातें कर रही हो! दासी की तरह क्यों रहोगी तुम? तुम तो मेरी सबसे ज्यादा प्यारी सहेली हो, तुम मेरी..."

इतने में श्रीपति भीतर आ गए। कादंबिनी कुछ देर तो उनके मुंह की ओर देखती रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई। उसने न तो घूंघट खींचा और न किसी तरह का संकोच या शरम का भाव ही दिखाया।

कहीं उसकी सहेली के विरुद्ध श्रीपति कुछ खयाल न कर बैठें, इसलिए योगमाया ने बड़ी फुरती से पति को उसके बारे में तरह-तरह से समझाना शुरू किया, पर इतना कम समझाना पड़ा और श्रीपति ने इतनी जल्दी योगमाया की सब बातें मान लीं कि योगमाया अपने मन में विशेष संतुष्ट न हो सकी।

कादंबिनी सहेली के घर आई तो सही, पर सहेली से ज्यादा हिल-मिल न सकी। उसके अपने खयाल से बीच में मौत की एक दीवार-सी खड़ी रही। जिसके मन में अपने संबंध में हमेशा एक तरह का संदेह और सजग भाव-सा बना रहे, उसके लिए दूसरों से हिलना-मिलना कठिन हो जाता है। कादंबिनी योगमाया के मुंह की ओर देखती और न जाने क्या-क्या सोचती रहती।

उसे ऐसा लगने लगा मानो उसकी सहेली अपने पति और घर-गृहस्थी के साथ उससे बहुत दूर किसी और ही दुनिया में रहती है। मानो उस दुनिया के

लोग स्नेह, ममता और कर्तव्यों से घिरे हुए हैं और वह है शून्य छाया! उसकी सखी मानो अस्तित्व के देश में रहती है और वह लटक रही है अनंत के बीच।

योगमाया का जी भी न जाने कैसा हो गया। कादंबिनी का जीवन रहस्य उसकी समझ में नहीं आया। स्त्रियों को रहस्य नहीं सुहाता—कारण, अनिश्चय को लेकर कविता की जा सकती है, वीरता दिखाई जा सकती है, पांडित्य प्रकट किया जा सकता है और सबकुछ किया जा सकता है, लेकिन घर-गृहस्थी नहीं की जा सकती।

इसीलिए स्त्रियां जिसे समझ नहीं पातीं, उसके अस्तित्व को नष्ट करके या तो उससे सब तरह का संबंध ही तोड़ लेती हैं या फिर उसे अपने हाथ से नया रूप देकर अपने काम आने लायक चीज बना लेती हैं और अगर इन दोनों में से एक भी बात न हो सकी, तो फिर उस पर खूब खीझती और झुंझलाती रहती हैं।

हुआ भी यही। कादंबिनी ज्यों-ज्यों पहले की तरह दुर्बोध्य होने लगी, त्यों-त्यों योगमाया मन-ही-मन उससे खीझने लगी। वह सोचने लगी कि यह कौन-सी बला सिर पर आ पड़ी? इसके सिवा दूसरी एक और आफत है, वह यह कि कादंबिनी खुद अपने से डरती है! क्या करे, यहां से अपने आप तो वह किसी तरह भाग नहीं सकती।

जो भूत से डरते हैं, उन्हें अपने पीछे डर जान पड़ता है। जहां दृष्टि नहीं पहुंचती, वहीं डर है। कादंबिनी को अपने में ही सबसे ज्यादा डर है, बाहर नहीं। यही वजह है कि किसी-किसी दिन दोपहर को वह सूनी कोठरी में एकाएक चिल्ला उठती है। रात को दिए के उजाले में अपनी परछाईं देखकर उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

उसकी यह हालत देखकर घर भर के लोगों के मन में एक तरह का डर पैदा हो गया। नौकर-नौकरानी और योगमाया तक को जहां-तहां जब-तब भूत दिखाई देने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि कादंबिनी आधी रात को अपनी कोठरी में से निकालकर रोती हुई सीधी योगमाया के कमरे के दरवाजे के पास आ खड़ी हुई और बोली, "जीजी-जीजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे अकेली मत छोड़ा करो।"

योगमाया जैसे डरी, वैसे गुस्सा भी उसे खूब आया। उसके मन में आया कि उसी घड़ी कादंबिनी को निकाल बाहर करे, पर श्रीपति को दया आ गई।

उन्होंने बड़ी मुश्किल से उसे शांत करके बाहर की कोठरी में उसके रहने का इंतजाम कर दिया।

दूसरे दिन बेवक्त अंत:पुर में श्रीपति तलब किए गए। योगमाया ने उन्हें एकाएक डांटना शुरू कर दिया, "क्यों जी, तुम हो कैसे आदमी? एक औरत अपनी ससुराल छोड़कर महीने भर से तुम्हारे घर पर रह रही है, जाने का नाम तक नहीं लेती और तुम्हारे मुंह से ऊंह तक नहीं निकली! आखिर बात क्या है? तुम क्या चाहते हो, कम से कम मालूम तो पड़े। छि:-छि:! तुम मरदों की जात ही ऐसी है!"

वास्तव में साधारण स्त्री पर पुरुषों का एक प्रकार का बिना विचार का पक्षपात होता है और उसके लिए स्त्रियां ही उन्हें अधिक अपराधी साबित करती हैं। असहाय किंतु सुंदर कादंबिनी पर श्रीपति की करुणा उचित मात्रा से कुछ ज्यादा थी और इस बात के विरुद्ध वह योगमाया की देह छूकर कसम खाने को भी तैयार रहते, मगर फिर भी उनके आचरणों से योगमाया की धारण पुष्ट होती थी। वह मन-ही-मन सोचा करते कि 'ससुराल वाले इस पुत्रहीन विधवा के साथ जरूर निर्दय व्यवहार करते होंगे, इसी से बेचारी ने वहां बहुत दुख पाने के बाद हमारे घर में आकर आश्रय लिया है। जबकि इसके मां-बाप कोई भी नहीं हैं, फिर मैं इसे कैसे निकाल दूं?'

यही समझकर अब तक उन्होंने कादंबिनी के विषय में कुछ जांच-पड़ताल नहीं की और कादंबिनी से भी ऐसी बातें पूछकर उसका जी दुखाना उचित नहीं समझा।

मगर उनकी वहां सुनता कौन है? उनकी पत्नी ने उनकी निश्चेष्ट कर्तव्य बुद्धि पर तरह-तरह से चोट करना शुरू कर दिया। तब, इस बात को वह अच्छी तरह समझ गए कि कम-से-कम अपने घर में शांति बनाए रखने के लिए कादंबिनी की ससुराल में खबर पहुंचाना जरूरी है। अंत में निश्चय किया कि अचानक चिट्ठी पहुंचने से इसका असर शायद अच्छा न हो, इसलिए बेहतर है कि खुद ही रानीहाट जाकर मामले को समझ आएं।

श्रीपति तो चले गए रानीहाट और इधर योगमाया ने आकर कादंबिनी से कहा, "बहन, अब यहां तुम्हारा रहना अच्छा नहीं मालूम देता। लोग क्या कहेंगे!"

कादंबिनी ने गंभीर दृष्टि से योगमाया के मुंह की ओर देखते हुए कहा, "लोगों के साथ मेरा ताल्लुक ही क्या है?"

जवाब सुनकर योगमाया दंग रह गई। उसने गुस्से में आकर कहा, "तुम्हारा न सही, मेरा तो है! हम पराए घर की बहू-बेटी को कैसे, क्या कहकर अपने यहां रोक रखें?"

कादंबिनी ने कहा, "मेरी ससुराल है कहां?"

योगमाया ने मन में कहा, 'मर कलमुंही, कहती क्या है?'

कादंबिनी ने धीरे-धीरे कहा, "मैं क्या तुम लोगों की कोई हूं? मैं क्या इस दुनिया की हूं? तुम लोग हंसते हो, खेलते हो, प्यार करते हो, सब कोई अपने-अपने के साथ आनंद से रहते हो—मैं तो सिर्फ देखती भर हूं। तुम लोग आदमी हो, मैं हूं छाया! समझ में नहीं आता, भगवान ने मुझे तुम लोगों की गृहस्थी के बीच क्यों डाल रखा है? तुम लोग भी डरते हो, कहीं तुम्हारे हंसी-खेल में अमंगल न ला दूं। मैं भी समझ नहीं पाती कि तुम लोगों से मेरा क्या संबंध है? भगवान ने ही जब हम लोगों के लिए कोई अलहदा जगह मुकर्रर नहीं की, तो क्या किए जाए? इसी से बंधन टूट जाने पर भी तुम्हीं लोगों के आस-पास घूम-फिर रही हूं।"

ये बातें उसने योगमाया के मुंह की तरफ देखते हुए इस ढंग से कहीं कि योगमाया न जाने क्या-क्या समझ गई। असल बात को शायद वह समझ ही न सकी और न कुछ उत्तर ही दे सकी। आगे वह कुछ पूछ भी न सकी। बहुत ही गंभीर होकर वह वहां से चली गई।

4

रात के करीब दस बजे होंगे। श्रीपति रानीहाट से अभी-अभी लौटे हैं। खूब मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उसके लगातार 'झर-झर' शब्द से मालूम होता है कि न आज वर्षा खत्म होगी, न रात।

योगमाया ने पूछा, "क्या हुआ?"

"बहुत सी बातें हैं, बाद में बताऊंगा।" यह कहते हुए उन्होंने कपड़े उतारे, हाथ-मुंह धोए, खाया-पिया और फिर तंबाकू पीकर सोने चले गए। वे बड़े चिंतित से मालूम हो रहे थे।

योगमाया बहुत देर से अपने कौतूहल को दबाए बैठी थी। पलंग पर पहुंचते ही पूछने लगी, "हां, बताओ अब, क्या हुआ?"

श्रीपति ने कहा, "जरूर तुमने गलती की है।"

सुनते ही योगमाया को जरा गुस्सा-सा आ गया। गलती तो स्त्रियों से कभी

हो ही नहीं सकती। अगर हो भी जाए तो किसी बुद्धिमान पुरुष को उसका जिक्र नहीं करना चाहिए, उसे अपने ऊपर ले लेना ही ठीक है।

योगमाया ने कुछ गरम होकर कहा, "कैसे, जरा मैं भी तो सुनूं?"

श्रीपति ने कहा, "जिस स्त्री को तुमने अपने घर में रखा है, वह तुम्हारी कादंबिनी नहीं है।"

यह सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है और खासकर अपने पति के मुंह से सुनने पर तो कहना ही क्या! योगमाया ने कहा, "अपनी सहेली को मैं नहीं पहचानती, तुम्हारे पहचानवाने पर पहचानूंगी, क्यों? तुम्हारी बात सुनकर हंसी भी आती है और गुस्सा भी। बात करने का ढंग तो देखो।"

श्रीपति ने समझाया कि यहां बात कहने के ढंग पर बहस नहीं हो रही, सबूत देखना चाहिए। योगमाया की सहेली जो कादंबिनी थी, वह तो कभी की मर चुकी। इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं।

योगमाया ने कहा, "जरा इनकी बातें तो सुनो! जरूर तुम कुछ-न-कुछ गलती कर आए हो। न जाने कहां के मारे कहां पहुंचे होओगे। और फिर सुनने को क्या था सुना क्या होगा—कोई ठीक है तुम्हारा। तुम्हें खुद जाने के लिए किसने कहा था? एक चिट्ठी लिखकर पूछ लेते तो सब मामला ही साफ हो जाता।"

अपनी कार्य कुशलता पर पत्नी का विश्वास न जमते देख श्रीपति बड़े दुखी हुए। वे विस्तृत रूप से तमाम प्रमाणों का प्रयास करने लगे, पर नतीजा कुछ न निकला। दोनों ओर से 'हां-ना' करते-करते रात के बारह बज गए।

यद्यपि कादंबिनी को घर से निकाल बाहर करने में पति-पत्नी में कोई भी मतभेद न था। कारण, श्रीपति समझते थे कि उनके अतिथि ने झूठा परिचय देकर उनकी पत्नी को धोखा दिया है और योगमाया को विश्वास था कि वह कुल में दाग लगाकर निकल आई है। फिर भी मौजूदा बहस में दोनों में से कोई भी हार मानने के लिए तैयार नहीं था। धीरे-धीरे दोनों का स्वर ऊंचा हो चला। दोनों ही इस बात को भूल गए कि बगल की कोठरी में कादंबिनी सो रही है।

एक कहता, "अच्छी आफत में जान फंसी! मैं अपने कानों से सुन आया हूं, तो भी तुम नहीं मानतीं।"

दूसरा दृढ़ता के साथ कहता, "मान कैसे लूं? मैं अपनी आंखों से देख रही हूं।"

अंत में योगमाया ने पूछा, "अच्छा, कादंबिनी कब मरी है, बताओ?"

उसने मन-ही-मन सोचा कि वह कादंबिनी की किसी एक चिट्ठी की तारीख के साथ उसके मरने की तारीख में फर्क दिखाकर पति की गलती साबित कर देगी।

पर श्रीपति ने जो तारीख बताई, उससे दोनों ने हिसाब लगाकर देखा कि जिस दिन शाम को कादंबिनी उनके घर आई थी, उस दिन तो तारीख ठीक उससे एक दिन पहले की पड़ती है। सुनते ही एकाएक योगमाया की छाती कांप उठी और श्रीपति के मन में भी दहशत बैठ गई।

इतने में कमरे का दरवाजा खुल गया और बरसाती हवा के पहले ही झोंके से चिराग भी बुझ गया। बाहर के अंधेरे ने घर में घुसकर कमरे भर में अंधेरा कर दिया। इसके साथ ही कादंबिनी भी एकदम से घर के भीतर आ खड़ी हुई। उस समय करीब ढाई पहर रात बीत चुकी थी। बाहर जोरों से पानी पड़ रहा था।

कादंबिनी ने कहा, "सखी, मैं तुम्हारी वही कादंबिनी हूं, पर अब मैं जिंदा नहीं, मरी हुई हूं!"

योगमाया मारे डर के चिल्ला उठी और श्रीपति के मुंह से कोई आवाज ही नहीं निकली।

"पर मरने के सिवा मैंने तुम लोगों का और क्या बिगाड़ा है? अब मेरे लिए अगर इस लोक तथा परलोक में, कहीं भी कोई जगह नहीं है, तो फिर कहां जाऊं?" इतना कहकर मूर्च्छित दंपती को अंधेरे घर में छोड़कर कादंबिनी उसी वक्त वहां से निकलकर विश्व संसार में अपने लिए जगह ढूंढ़ने चल दी।

5

कादंबिनी किस तरह रानीहाट पहुंची, यह बतलाना कठिन है। वहां पहुंचकर पहले तो अपने को किसी की निगाह में नहीं पड़ने दिया। तमाम दिन भूखी-प्यासी एक टूटे-फूटे पुराने मंदिर के खंडहर में पड़ी रही। वर्षा की अकाल संध्या जब अत्यंत घनी हो आई और शीघ्र ही भारी आंधी-मेह आने की आशंका से गांव के लोग जब जल्दी-जल्दी अपने-अपने घर पहुंचकर निश्चिंत होने लगे, तब वह खंडहर में से निकलकर सड़क पर आई।

ससुराल के द्वार पर पहुंचते ही एक बार उसका हृदय कांप उठा, फिर भी साहस करके लंबा घूंघट खींचकर जब वह भीतर घुसी, तो दासी समझकर

दरबानों ने उसे रोका नहीं। इतने में पानी भी खूब जोरों से पड़ने लगा और हवा भी खूब तेज चलने लगी।

उस समय घर की मालकिन, शारदा शंकर की पत्नी अपनी विधवा ननद के साथ ताश खेल रही थीं। महरी रसोईघर में थी। बच्चा, जो कि बीमार था, बुखार कम हो जाने से बिस्तर पर पड़ा सो रहा था। कादंबिनी सबकी आंख बचाकर सीधी उसी कमरे में पहुंची, जहां उसकी 'आंखों का तारा' था।

मालूम नहीं, वह क्या सोचकर ससुराल आई थी। शायद वह खुद भी न जानती होगी। वह तो सिर्फ इतना ही जानती है कि एक बार अपने प्यारे बच्चे को आंखों से देख आए। उसके बाद कहां जाएगी, क्या होगा—ये बातें उसने नहीं सोची थीं।

कादंबिनी ने दीए के उजाले में देखा कि रोग से पीड़ित-मुरझाया हुआ कमजोर उसका लाड़ला लाल हाथों की मुट्ठी बांधे सो रहा है। देखते ही विधवा का हृदय मानो प्यार से व्याकुल हो उठा। उसकी सारी बलाओं को टालकर उसे एक बार उठाकर छाती से लगाए बिना वह कैसे जी सकती है!

फिर वह सोचने लगी, "मैं नहीं हूं तो इसको देखने वाला कौन है? इसकी मां को तो सोहबत अच्छी लगती है। दिन भर गप्पें करा लो, ताश खिलवा लो। इतने दिन तो मेरे हाथ में सौंपकर वह निश्चिंत थी, कभी उसे लड़के पालने की दिक्कत नहीं उठानी पड़ी।·अब इसकी इतनी देखभाल कौन करता होगा?'

उसी समय बच्चे ने सहसा करवट बदली और अर्धनिद्रित अवस्था में बोल उठा, "चाची, पानी!"

"हाय भगवान! सोने का सूआ मेरा, तू अपनी चाची को अभी तक नहीं भूला!" कादंबिनी ने जल्दी से सुराही से गिलास में पानी लिया और बच्चे को अपनी छाती से लगाकर बड़े प्यार से धीरे-धीरे पिला दिया।

जब तक नींद की खुमारी थी, हमेशा के अभ्यास के अनुसार चाची के हाथ से पानी पीने में बच्चे को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, लेकिन कादंबिनी ने जब बहुत दिनों की अपनी आकांक्षा मिटाने के लिए उसका मुंह चूमकर उसे फिर से सुलाना चाहा तो उसकी नींद उचट गई। अपनी चाची से लिपटकर वह पूछने लगा, "चाची, तू मल गई थी?"

चाची ने कहा, "हां, बेटा!"

"फिर तू मेले पास लौट आई है? अब तू मलेगी तो नहीं?"

कादंबिनी अभी उसकी बात का कोई जवाब देती इससे पहले एक और बात हो गई। महरी कटोरे में दूध लिए भीतर आ रही थी कि कादंबिनी को देखते ही कटोरा पटककर 'अम्मा री' चिल्लाती हुई जमीन पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

चिल्लाहट सुनते ही ताश फेंककर मालकिन दौड़ी आई और कमरे में पैर रखते ही वह भी काठ के ठूंठ की तरह खड़ी की खड़ी रह गई। न भाग ही सकी, न मुंह से कुछ कह सकी।

यह सब देखकर लड़के के मन में भी डर-सा बैठ गया। वह भी रोने लगा, बोला, "चाची, तू जा!"

कादंबिनी को बहुत दिन बाद आज अनुभव हुआ कि वह मरी नहीं है। वह पुराना घर-द्वार, वही सब कुछ, वही लल्ला, वही स्नेह, सभी कुछ उसके लिए समान जीवित दशा में ही है। बीच में कोई रुकावट नहीं, कोई व्यवधान नहीं। सहेली के घर जाकर उसने अनुभव किया था कि उसकी बाल्यकाल की वह सहेली मर गई है, पर आज अपने लल्ला के पास आकर उसे मालूम हुआ कि 'लल्ला की चाची' तो रत्ती भर भी नहीं मरी।

व्याकुल होकर वह बोल उठी, "जीजी, तुम लोग मुझे देखकर डर क्यों रही हो? यह देखो, मैं तुम्हारी वही छोटी बहू...वही...वैसी ही तो हूं!"

मालकिन से खड़ा न रहा गया, वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

बहन के जरिए खबर पाकर शारदा शंकर बाबू स्वयं अंत:पुर में आ पहुंचे। उन्होंने हाथ जोड़कर कादंबिनी से कहा, "छोटी बहू, क्या तुम्हें यही चाहिए था? बस, सतीश ही तो हमारे वंश का एक लड़का है। उस पर तुम क्यों दृष्टि डाल रही हो? हम लोग क्या तुम्हारे गैर हैं? तुम्हारे मरने के बाद से बच्चा दिन पर दिन सूखता ही जा रहा है, इसकी बीमारी इसे छोड़ती ही नहीं। दिन-रात यह 'चाची-चाची' पुकारा करता है। जब तुम संसार से विदा ही ले चुकी हो, तो फिर यह व्यर्थ की माया-ममता क्यों? इसे भी छोड़ दो, हम लोग तुम्हारा यथोचित सत्कार कर देंगे।"

कादंबिनी से अब सहा न गया और वह तेज स्वर से बोल उठी, "हाय-हाय! मैं मरी नहीं हूं। हाय, मैं तुम लोगों को कैसे समझाऊं कि मैं मरी नहीं हूं! यह देखो, मैं जिंदा हूं।"

शारदा शंकर कठपुतली की तरह खड़े रहे। बच्चा भी डर के मारे घबरा गया। वह 'बापू-बापू' पुकारने लगा। दोनों मूर्च्छित स्त्रियां जमीन पर पड़ी रहीं।

और कादंबिनी, "हाय, मैं मरी नहीं हूं। मरी नहीं हूं, मरी नहीं हूं!" चिल्लाती हुई घर से बाहर निकली और सीढ़ियों से उतरकर अंत:पुर के तालाब में कूद पड़ी। शारदा शंकर को ऊपर के कमरे में खड़े-खड़े ही किसी के तालाब के गहरे पानी में कूदने का धमाका सुनाई दिया।

सारी रात पानी बरसता रहा, उसके दूसरे दिन सवेरे भी वर्षा बंद नहीं हुई और दोपहर को भी पानी बरसता रहा। इस तरह कादंबिनी ने मरकर साबित किया कि वह मरी नहीं थी!

❑❑

3

घाट की बात

पत्थर पर अगर वे घटनाएं लिखी रहतीं, तो कितनी ही बातें तुम मेरी हर सीढ़ी पर पढ़ सकते थे। पुरानी बातें अगर सुनना चाहते हो तो इन सीढ़ियों पर बैठो। मन लगाकर पानी की लहरों की ओर कान लगाए रहो। गुजरे जमाने की कितनी ही भूली हुई बातें सुनाई देंगी।

मुझे और एक दिन की बात याद आ रही है। वह भी ठीक आज जैसा दिन था। कुआर के आने में दो-चार दिन ही बाकी थे। सवेरे के समय शीत ऋतु की धीमी-धीमी हवा सोकर उठे हुए लोगों के शरीर में नई फुरती भर रही थी। पेड़ों के पत्तों को जरा-जरा सुरसुरी-सी आ रही थी।

गंगा ऊपर तक भरी हुई है। मेरी सिर्फ चार सीढ़ियां पानी के ऊपर जाग रही हैं। जल के साथ स्थल की गलबहियां हो रही हैं। किनारे पर आम के बाग के नीचे जहां अरुई का जंगल जम गया है, वहां तक गंगा का पानी आ पहुंचा है। धीवरों की जो नावें किनारे पर बबूल के पेड़ों से बंधी थीं, वे सवेरे की ज्वार के पानी पर तैरती हुई डगमग-डगमग कर रही हैं। चपल यौवन ज्वार का पानी इतरा-इतरा कर उनके दोनों तरफ 'छप-छप' आघात कर रहा है। मधुर परिहास से मानो उनके कान पकड़कर हिला-हिला जाता है।

भरी गंगा के ऊपर शरद की सुबह की जो धूप पड़ी है, उसका रंग है कच्चे सोने जैसा, चंपा के फूल के समान। धूप का ऐसा रंग और किसी भी समय नहीं दिखाई देता। बीच की रेती पर उगी हुई लंबे-लंबे कांस पर धूप पड़ रही है। अभी तक कांस के फूल खिले नहीं हैं, खिलने शुरू ही हुए हैं।

'राम-राम' कहते हुए मल्लाहों ने नावें खोल दीं। चिड़ियां जैसे उजाले में पैर फैलाकर आनंद से नीले आसमान में उड़ रही हैं। छोटी-छोटी नावें भी वैसे

ही छोटे-छोटे पाल चढ़ाकर सूर्य की किरणों में निकल पड़ी हैं। वे चिड़ियों जैसी ही मालूम पड़ती हैं, मानो राजहंसों की तरह पानी में तैर रही हों और आनंद में आकर दोनों पर आकाश में फैला दिए हों।

भट्टाचार्य जी नियमित समय पर पंचपात्र हाथ में लिए स्नान करने आए। स्त्रियां भी एक-एक दो-दो करके पानी भरने आईं।

यह बहुत ज्यादा दिनों की बात नहीं है हां, तुम लोगों को बहुत पुरानी जरूर मालूम हो सकती है, पर मुझे तो ऐसा लगता है कि यह कल की बात है। मेरे दिन तो गंगाजल के साथ खेलते-खेलते बह जाते हैं। बहुत दिनों से एक जगह पड़ा-पड़ा मैं ऐसा ही देख रहा हूं, इसीलिए समय मुझे बहुत लंबा नहीं मालूम पड़ता।

दिन की धूप और रात की छाया रोज गंगा पर पड़ती हैं और रोज उस पर से पुछ कर मिट जाती हैं। कहीं भी उनकी छवि नहीं दिखाई देती। इसीलिए यद्यपि मैं देखने में वृद्ध जैसा लगता हूं, पर हृदय मेरा हमेशा नया और हरा-भरा रहता है। बरसों की पुरानी यादों की काई के भार से दबकर मेरी सूर्य किरणें मारी नहीं जातीं। हां, कभी-कभी काई का एक-आध टुकड़ा बहकर आता और देह से लगकर फिर जल में बह जाता है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह काई कुछ है ही नहीं।

जहां गंगा का जल नहीं पहुंचता, वहां मेरे छेदों-दरारों में जो लता, घास या शैवाल अथवा पौधे उत्पन्न हुए हैं, वे ही मेरे पुराने होने के गवाह हैं। उन्हीं ने पुराने काल को स्नेहपाश में बांधकर उसे हमेशा के लिए श्यामल, मधुर और नवीन बना रखा है। गंगा प्रतिदिन मेरे पास से एक-एक सीढ़ी उतरती जा रही है और मैं भी एक-एक सीढ़ी करके पुराना होता जा रहा हूं।

चक्रवर्ती घराने के वह जो वृद्ध पुरुष स्नान करके रामनामी ओढ़े कांपते हुए माला जपते-जपते घर को लौट रहे हैं, उनकी नानी तब इतनी सी थी। मुझे याद है, उसका एक खेल था—वह रोज घीकुवांर का एक पत्ता गंगा में बहा जाती थी। मेरी दाहिनी बांह के पास एक भंवर-सा था, वहीं पर उसका पत्ता लगातार घूमा करता था और वह गागर रखकर खड़ी-खड़ी उसी को देखा करती थी। कुछ समय बाद देखा कि वह लड़की बड़ी हो गई और अपनी एक लड़की को साथ लेकर पानी भरने आई। उसके बाद वह लड़की भी फिर बड़ी हो गई। वह अपने साथ की लड़कियों के पानी उछालकर ऊधम मचाने पर उन्हें डांटती-

डपटती और भले मानसों जैसा आचरण करने की शिक्षा देती। तब मुझे वही घीकुवांर की नाव बहाने की बात याद आती और बड़ा कुतूहल होता।

जो बात कहना चाहता हूं, वह आती ही नहीं। एक बात उठाता हूं, तब तक जल से दूसरी बात बह आती है। बातें आती हैं, चली जाती हैं—उन्हें थामकर नहीं रखा सकता। एक-एक कहानी उस घीकुवांर की नाव की तरह भंवर में पड़कर बिना आराम किए लौट-लौट आती है।

इसी तरह आज एक कहानी अपना बोझ लेकर मेरे आस-पास घूम-फिर रही है। अब डूबी कि अब डूबी! उस पत्ते की तरह ही वह छोटी-सी है। उसमें ज्यादा कुछ नहीं है, खेल के दो फूल हैं। उसे डूबे देखकर कोमल हृदय बालिका सिर्फ एक लंबी सांस खींचकर घर लौट जाएगी।

मंदिर के पास, जहां वह गुसाइयों की गोशाला का बांस का घेरा देख रहे हो, वहां एक बबूल का पेड़ था। उसके नीचे हफ्ते में एक रोज पेंठ लगती थी। तब गुसाइयों का वहां घर-द्वार नहीं बना था। जहां अभी उनका चंडी मंडप है, वहां सिर्फ एक फूस की झोंपड़ी थी।

वह बरगद का पेड़, जो आज मेरी पसलियों में हाथ फैलाकर, विकट और लंबी कठोर उंगलियों जैसी अपनी जड़ों से मेरे पत्थर दिल को मुट्ठी में दबाए हुए है, तब इतना-सा छोटा पौधा था। अपनी हरी-हरी पत्तियों के लिए सिर उठाकर खड़ा हो रहा था। धूप पड़ने पर उसकी उन पत्तियों की छांह मेरे ऊपर सारे दिन खेला करती। उसकी नई जड़ें बच्चों की उंगलियों की तरह मेरी छाती के पास कुलबुलाया करतीं। कोई इसकी एक पत्ती भी तोड़ता तो मुझे पीड़ा होती।

मेरी उमर यद्यपि काफी हो चुकी थी, फिर भी मैं सीधा था। आज मैं पीठ की रीढ़ टूट जाने से अष्टावक्र की तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूं और गहरी त्रिवलि रेखाओं की तरह मेरे शरीर पर हजारों जगह दरारें भी पड़ गई हैं। मेरे भीतर दुनिया भर के मेढक जाड़े के दिनों में लंबी नींद सोने की तैयारियां कर रहे हैं, पर उन दिनों मेरी ऐसी दशा न थी। सिर्फ मेरी बाईं भुजा में बाहर की तरफ दो ईंटों की कमी थी।

उस खोह में एक चिड़िया ने घोंसला बना लिया था। तड़के ही जब वह करवट बदलकर जागती और मछली की पूंछ की तरह अपनी डबल पूंछ को दो-चार बार जल्दी-जल्दी नचाकर, सीटी देकर आसमान में उड़ जाती, तब मैं समझ लेता कि कुसुम के घाट पर आने का समय हो गया।

जिस लड़की की बात कह रहा हूं, घाट की अन्य लड़कियां उसे कुसुम कहा करती थीं। शायद कुसुम ही उसका नाम था। पानी पर जब कुसुम की छोटी-सी छाया पड़ती, तो मेरे मन में आता कि किसी तरह उस छाया को पकड़ लूं। उसमें कुछ ऐसी ही मिठास थी। वह जब मेरे ऊपर पैर रखती और उसके दोनों पैरों के छड़े बजने लगते, तब मेरी दरारों के घास-पौधे मानो पुलकित हो उठते।

कुसुम बहुत ज्यादा खेलती-बतराती हो या हंसी-मसखरी करती हो, सो बात नहीं—फिर भी ताज्जुब की बात यह थी कि उसकी जितनी भी सखी-सहेलियां थीं, उनमें से उस जैसी कोई भी न थी। चंचल लड़कियों का उसके बिना काम ही न चलता था। कोई उसे कुसी कहती, तो कोई खुसी और कोई राक्षसी! उसकी मां उसे कुसुमी कहतीं। जब देखो तब कुसुम पानी के किनारे ही बैठी मिलती। पानी के साथ उसके हृदय का मानो कोई गहरा नाता हो। पानी उसे बड़ा अच्छा लगता।

कुछ दिन बाद कुसुम को फिर घाट पर नहीं देखा। भुवना और स्वर्णा घाट पर रोतीं। एक दिन सुनने में आया कि उनकी कुसी-खुशी-राक्षसी को कोई ससुराल ले गया है। वहां सब नए आदमी हैं, नया घर-द्वार है और नया ही रास्ता और घाट है। पानी के कमल को मानो कोई जमीन पर बोने ले गया हो।

धीरे-धीरे कुसुम की बात एक तरह से भूल रहा था। साल भर बीत गया। घाट की लड़कियां कुसुम की बात भी ऐसी कुछ नहीं छेड़तीं। एक दिन शाम के वक्त बहुत दिनों के परिचित पैरों के स्पर्श से सहसा मैं चौंक उठा। मालूम हुआ, शायद कुसुम के पैर हैं ये। वे ही तो हैं, पर उन पैरों में अब छड़े नहीं बजते। उन पैरों में वह संगीत नहीं है। कुसुम के पैरों का स्पर्श और छड़ों की आवाज हमेशा से दोनों को एक साथ अनुभव करता आया हूं। आज अचानक उन छड़ों की आवाज न सुनकर संध्या का जल-कल्लोल उदास-सा सुनाई पड़ने लगा। आम के बाग में पत्तों की खड़खड़ाती हुई हवा हाहाकार-सा करने लगी।

कुसुम विधवा हो गई है। सुना है, उसका पति परदेश में नौकरी करता था। दो-एक दिन के सिवा पति से उसकी अच्छी तरह भेंट भी न हो पाई थी। चिट्ठी से वैधव्य का समाचार पाकर आठ बरस की उमर में माथे का सिंदूर पोंछकर, शरीर के गहने उतारकर कुसुम फिर अपने गांव में इसी गंगा के किनारे लौट आई। पर उसकी संगिनियों में से अब यहां कोई भी नहीं रह गई। भुवना, स्वर्णा,

अमला सब सास का घर संभालने चली गई हैं। सिर्फ शारदा है, पर सुनता हूं अगहन में उसका भी ब्याह हो जाएगा, फिर कुसुम बिलकुल अकेली ही रह जाएगी।

जब वह घुटनों पर सिर रखकर मेरी सीढ़ियों पर चुपचाप बैठी रहती, तब मुझे ऐसा मालूम पड़ता, मानो नदी की लहरें मिलकर हाथ उठकर उसे 'कुसी-खुशी-राक्षसी' कहकर पुकार रही हों।

बरसात शुरू होते ही गंगा जैसे देखते-देखते भर उठती है, कुसुम भी वैसे ही देखते-देखते प्रतिदिन सौंदर्य से, यौवन से भरने लगी। मगर उसके शांत स्वभाव, करुण चेहरे और मैले-मोटे कपड़ों ने उसके यौवन पर छाया का एक परदा डाल दिया है कि उसका वह खिला हुआ रूप सबके देखने में नहीं आता। इस पर किसी की दृष्टि ही नहीं जाती कि कुसुम अब बड़ी हो गई है। कम-से-कम मेरी तो नहीं जाती।

मैंने कुसुम को उस बालिका से बड़ी कभी नहीं देखा, जिसे शुरू से देखता आया हूं। उसके छड़े तो पांवों में न थे, पर जब वह चलती तो मुझे छड़ों की आवाज जरूर सुनाई देती। इसी तरह दस साल बीत गए, गांव के लोगों को कुछ मालूम ही न पड़ा।

अपने चारों तरफ आज जैसा दिन देख रहा हूं, उस साल भी भादों के अंत में ऐसा ही एक दिन आया था। तुम्हारी परदादियों ने भी उस दिन सवेरे उठकर आज की तरह ही मधुर सूर्य का मीठा उजाला देखा था। वे जब इतना लंबा घूंघट खींचकर गागर उठाकर मेरे ऊपर सवेरे के सूर्य प्रकाश को और भी प्रकाशमय करने के लिए पेड़ों में होकर ऊंची-नीची सड़कों पर से बातें करती हुई चली आती थीं, तब तुम्हारे आज के दिन की संभावना भी उनके मन के एक कोने में न उठती थी।

आज तुम जैसे उनके बारे में नहीं सोच सकतीं कि तुम्हारी दादियां भी सचमुच एक दिन खेलती-फिरती थीं। आज का दिन जैसा सत्य है, जैसा जीता-जागता है, वह दिन भी ऐसा ही सत्य था। तुम्हारी तरह करुण हृदय लेकर सुख में, दुख में वे भी तुम्हारी ही तरह डगमगाती हुई झूली हैं। वैसे ही आज के शरद का यह दिन उनके रहित, उनके सुख-दुख की स्मृति लेशमात्र से रहित आज का यह शरद ऋतु के सूर्य किरणों का आनंदपूर्ण सौंदर्य उनकी कल्पना के सामने उससे भी अधिक अगोचर था।

उस दिन भोर से ही उत्तर की पहली हवा मंद-मंद बहती हुई खिले हुए बबूल के फूलों में से एकआध उड़ाकर मेरे ऊपर फेंक रही थी। मेरे पत्थर पर थोड़ी-थोड़ी ओस की बूंदें पड़ी हुई थीं। उस दिन सवेरे न जाने कहां से सौम्य और उज्ज्वल चेहरे वाला, गोरे बदन और लंबे कद का एक नया संन्यासी आया और मेरे सामने वाले उस शिव मंदिर में ठहर गया। संन्यासी के आने की बात गांव भर मैं फैल गई। स्त्रियां अपनी-अपनी गागर रखकर बाबाजी को प्रणाम करने के लिए मंदिर में जमा हो गईं।

मंदिर में भीड़ दिनोदिन बढ़ने लगी। एक तो संन्यासी, दूसरे उनका अनुपम रूप और उस पर वह किसी की अवहेलना नहीं करते। बच्चों को गोद में बैठा लेते और माताओं से घर के काम-धंधों की बातें पूछते। स्त्री समाज में थोड़े ही दिनों में उनकी बहुत ज्यादा प्रतिष्ठा हो गई। उनमें वे पुजने लगे।

उनके पास पुरुष भी बहुत आते। किसी दिन वे भागवत पढ़ते, किसी दिन भगवद्गीता की व्याख्या करते, किसी दिन मंदिर में बैठकर तरह-तरह की शास्त्र चर्चा करते। उनके पास कोई उपदेश सुनने आता तो कोई मंत्र लेने और कोई रोग की दवा पूछने। उनके रूप का क्या पूछना! जान पड़ता, मानो साक्षात महादेव ही मनुष्य का शरीर धरकर अपने मंदिर में आ विराजे हों!

संन्यासी प्रतिदिन तड़के ही सूर्योदय से पहले शुक तारा को सामने रखकर गंगा के पानी में गले तक डूबकर धीर-गंभीर स्वर में संध्या वदन करते और तब मुझे पानी की तरंगों का 'कलकल' शब्द न सुनाई देता। उनके उस स्वर को सुनते-सुनते प्रतिदिन गंगा के पूरबी किनारे का आकाश गुलाबी हो उठता। बादलों के किनारे-किनारे लाल रंग की रेखाएं पड़ जातीं। अंधकार मानो खिलने वाली कली के ऊपर की पपड़ी की तरह फटकर चारों तरफ झुक जाता और आकाश सरोवर पर उषा की लाल आमी थोड़ी-थोड़ी करके निकल आती।

मुझे ऐसा लगता, मानो यह महापुरुष गंगा के पानी में खड़ा होकर पूरब की ओर दृष्टि किए जिस महामंत्र को पढ़ता जाता, उसके एक-एक शब्द के उच्चारण के साथ-साथ रात की माया दूर होती जाती। चांद और तारे पश्चिम में उतरते जाते और सूर्य पूर्वाकाश में उदित होता रहता। इस तरह दुनिया का दृश्यपट बदल जाता। यह है कौन मायावी!

गंगा स्नान करके संन्यासी जब होम शिखा के समान अपने लंबे गोरे शरीर को लिए पानी से निकलता और उसके जटाजूट से पानी झरता रहता, तब नए सूरज की किरणें उसके सारे अंगों पर पड़कर चमकती रहतीं।

इस तरह और भी कई महीने बीत गए। चैत के महीने में सूर्य ग्रहण के समय हजारों आदमी गंगा नहाने आए। बबूल के पेड़ों के नीचे बड़ी भारी पेंठ लगी। इस मौके पर संन्यासी के दर्शन के लिए भी बहुत से आदमी आए। जिस गांव में कुसुम की ससुराल थी, वहां से भी बहुत-सी औरतें आईं।

सवेरे का वक्त था, मेरी सीढ़ियों पर बैठे संन्यासी जप कर रहे थे। उन्हें देखते ही अचानक एक स्त्री अपनी साथिन का कंधा मसककर बोल उठी, "अरी ओ, ये तो अपनी कुसुम के पति मालूम पड़ते हैं।"

एक स्त्री अपने घूंघट को जरा ऊंचा करके कहने लगी, "अरी हां री, ये तो हमारे चटर्जियों के घर के छोटे बाबू हैं!"

एक और जो थी, वह घूंघट का इतना आडंबर न रखती थी। उसने कहा, "हां री, वैसी ही नाक है, वैसी ही आंखें हैं।"

चौथी ने संन्यासी की तरफ बिना देखे ही गहरी सांस लेकर गागर से पानी को धक्का देकर कहा, "हाय, वह अब कहां है! अब क्या वह कभी आएगा? कुसुम के ऐसे भाग्य कहां!"

तब फिर किसी ने कहा, "उनके इतनी दाढ़ी नहीं थी।"

कोई बोली, "वह ऐसे दुबले नहीं थे।"

कोई कहने लगी, "वह इतने लंबे कहां थे?"

इस तरह बात का लगभग फैसला-सा हो गया और चर्चा जहां की तहां दब गई।

गांव के दूसरे लोगों ने भी संन्यासी को देखा था, सिर्फ कुसुम ने नहीं देखा था। ज्यादा आदमियों का मिलना-जुलना होते रहने से कुसुम ने मेरे पास आना बिलकुल छोड़ ही दिया। एक दिन संध्या के बाद पूनों का चांद आकाश में उठते देख शायद हम दोनों का पुराना संबंध उसे याद आ गया।

उस समय घाट पर और कोई नहीं था। झींगुर अपनी 'झीं-झीं' आलाप रहे थे। मंदिर के घंटा-घड़ियालों की ध्वनि भी कुछ देर पहले बंद हो गई थी। उसकी आखिरी गूंज की तरंगें क्षीणतर होकर उस पार के छायादार पेड़ों की कतार में विलीन हो गईं। धीरे-धीरे स्वच्छ चांदनी से जलीय आकाश भर गया। मेरी सीढ़ियों पर ज्वार का पानी छप-छपट करने लगा।

कुसुम आई और मेरे ऊपर अपनी छाया डालकर बैठ गई। हवा थम चुकी थी। पेड़-पौधे भी चुपकी साध गए। कुसुम के सामने है गंगा की छाती पर

बेरोक-टोक फैली हुई चांदनी। अंधेरा उसके पीछे, आस-पास, पेड़-पत्तियों में, मंदिर की छाया में, टूटे-फूटे मकानों की दीवारों पर, तालाब के किनारे, ताड़ के पेड़ों के नीचे अपनी देह और मुंह छिपाए दुबककर बैठ गया है। छतिवन के पेड़ों की डालियों पर चमगादड़ लटक रहे हैं। बस्ती के पास गीदड़ों की जोरों की चीख उठी और थम गई।

संन्यासी धीरे-धीरे मंदिर के भीतर से बाहर निकल आए। घाट पर आकर दो-एक सीढ़ी उतरते ही उनकी दृष्टि कुसुम पर पड़ी। अकेली स्त्री को ऐसे एकांत स्थान पर बैठी देख वह लौटना ही चाहते थे कि सहसा कुसुम ने मुंह उठाकर पीछे की ओर देखा।

उसके सिर का कपड़ा पीछे की ओर खिसक गया। खिलते हुए फूल पर जैसे चांदनी पड़ती है, मुंह उठाते ही कुसुम के मुंह पर वैसी ही चांदनी आ पड़ी। उसी क्षण दोनों ने एक-दूसरे को देखा, मानो जान-पहचान हो गई। ऐसा लगा जैसे पहले जन्म की जान-पहचान हो।

सिर के ऊपर से उल्लू बोलता हुआ उड़ गया। उस आवाज से चौंककर कुसुम ने होश संभाला, सिर का कपड़ा खींच लिया और उठकर संन्यासी के पैरों के पास जाकर साष्टांग प्रणाम किया।

संन्यासी ने आशीर्वाद देकर उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"कुसुम!"

उस रात को फिर कोई बात न हुई। कुसुम का घर पास ही था। वह धीरे-धीरे अपने घर चली गई। उस रात को संन्यासी बहुत देर तक मेरी सीढ़ियों पर बैठे रहे। अंत में पूरब का चांद अब पश्चिम में पहुंच गया, संन्यासी के पीछे की छाया जब सामने आ गई, तब वह उठकर मंदिर में चले गए।

अगले दिन से मैं बराबर देखा करता, कुसुम रोज आती और संन्यासी की पदधूलि ले जाती। संन्यासी जब शास्त्र व्याख्या करते, तब वह एक तरफ खड़ी होकर सब सुनती। संन्यासी प्रातः संध्या कर चुकने के बाद कुसुम को बुलाकर उसे धर्म की बातें सुनाते। सब बातें क्या कुसुम समझ सकती थी? लेकिन वह खूब मन लगाकर चुपचाप बैठी-बैठी सब सुना करती।

संन्यासी उसे जैसा उपदेश देते, वह हू-ब-हू वैसे ही उसका पालन करती। रोज वह मंदिर का काम करती, देव-सेवा में जरा भी आलस्य नहीं करती, पूजा के लिए फूल चुनती, गंगा से पानी भरकर मंदिर धोती।

संन्यासी उसे जितनी भी बातें बताते, मेरी सीढ़ियों पर बैठकर वह उन्हीं को सोचा करती। धीरे-धीरे उसकी दृष्टि मानो दूर तक फैल गई। उसने अब तक जो देखा नहीं था, अब वह उसे देखने लगी। जो पहले नहीं सुना था, उसे अब वह सुनने लगी।

उसके शांत चेहरे पर जो एक धूमिल छाया थी, वह दूर हो गई। प्रात:कालीन सूर्य के प्राकाश में जब वह भक्ति भाव से संन्यासी के पैरों के पास आकर लोट जाती, तब वह देवता पर चढ़ाए हुए ओस से धुले पूजा के फूल के समान दिखाई देती। एक निर्मल प्रसन्नता उसके सारे शरीर को प्रकाशमय बना देती।

शीत ऋतु के आखिरी दिन थे। ठंडी-ठंडी हवा के साथ किसी-किसी दिन संध्या के समय सहसा दक्षिण से बसंत की हवा आ मिलती है और तब आकाश से ओस बिलकुल दूर हो जाती। बहुत दिन बाद गांव में बंसी बजने लगी और गीत की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मल्लाह जल में नाव बहाकर डांड़ खेना बंद करके श्याम कन्हैया के गीत गाने लगे। अचानक चिड़ियों ने इस डाली से उस डाली पर फुदक-फुदककर उल्लास से सवाल-जवाब शुरू कर दिए। ऋतु अब ऐसी ही आ गई है।

बसंत की हवा लगने से मेरे पाषाण हृदय के भीतर भी मानो कुछ-कुछ यौवन का संचार हो उठा, जिसे आकर्षित करके ही मानो मेरी लताएं और घास-पौधे देखते-देखते फूलों से लदे जा रहे हैं। इस समय, कुसुम क्यों नहीं दिखाई देती? कुछ दिन से वह मंदिर में भी नहीं आती, संन्यासी के पास भी उसे नहीं देखता।

इस बीच में हो क्या गया, मैं कुछ समझ न सका।

कुछ दिन बाद, एक संध्या के समय मेरी ही सीढ़ियों पर संन्यासी के साथ कुसुम की भेंट हुई।

कुसुम ने सिर झुकाकर कहा, "प्रभु, आपने मुझे बुलाया था?"

"हां, तुम दिखाई क्यों नहीं देतीं? आजकल देव-सेवा में तुम इतनी लापरवाही क्यों कर रही हो?"

कुसुम चुपचाप खड़ी रही।

"मुझसे तुम अपने मन की बात खोलकर कहो।"

कुसुम ने मुंह फेरकर कहा, "प्रभु, मैं पापिन हूं, इसीलिए ऐसी लापरवाही हो रही है मुझसे।"

संन्यासी ने अत्यंत स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "कुसुम, तुम्हारे हृदय में अशांति पैदा हो गई है। मैं यह समझ रहा हूं।"

कुसुम मानो चौंक उठी। उसने शायद समझा कि संन्यासी ने न जाने कितना समझ लिया होगा। उसकी आंखें धीरे-धीरे डबडबा आईं। वह वहीं पर बैठ गई और आंचल से मुंह ढककर सीढ़ी पर संन्यासी के पैरों के पास बैठी-बैठी रोने लगी।

संन्यासी ने कुछ पीछे हटकर धीरे से कहा, "अपनी अशांति की बात तुम मुझसे साफ-साफ कहो, मैं तुम्हें शांति का मार्ग बताऊंगा।"

कुसुम ने अटल भक्ति के स्वर में कहना शुरू किया, लेकिन बीच-बीच में रुक-रुक जाती। कहीं-कहीं बात ही न सूझती, कहने लगी, "आपकी आज्ञा है तो मैं जरूर कहूंगी। पर, मैं अच्छी तरह कह न सकूंगी। आप तो शायद मन ही मन सबकुछ समझ रहे होंगे। प्रभु, मैं एक व्यक्ति की देवता के समान भक्ति करती थी। मैं उनकी पूजा करती थी, उस आनंद से मेरा हृदय भर गया था। एक रात को स्वप्न में देखा, मानो वह मेरे हृदय के स्वामी हैं, न जाने कहां एक वन में बैठकर अपने बाएं हाथ से मेरा दाहिना हाथ लिए मुझे वह प्रेम की बातें सुना रहे हैं। यह बात मुझे जरा भी असंभव या आश्चर्यजनक नहीं मालूम हुई। सपना टूट गया, पर उसका आवेश न गया। उसके दूसरे दिन जब उन्हें देखा, तो मैं उन्हें पहले जैसा न देख सकी। मेरे मन में बार-बार उसी सपने की तस्वीर नाचने लगी। डर से मैं दूर भाग गई, पर वह तस्वीर मेरे साथ-साथ ही रही। तभी से मेरे हृदय की अशांति दूर नहीं हो रही प्रभो! मेरा सबकुछ अंधकारमय हो गया है।"

जब कुसुम आंसू पोंछती हुई बात कह रही थी, तब मैं महसूस कर रहा था कि संन्यासी ने अपने दाहिने पैर से मेरा पत्थर जोर से दबा रखा है।

कुसुम की बात खत्म होने पर संन्यासी ने कहा, "जिसे तुमने सपने में देखा था, वह कौन था—बताओ?"

कुसुम ने हाथ जोड़कर कहा, "सो मैं नहीं बता सकूंगी।"

संन्यासी ने कहा, "तुम्हारी भलाई के लिए ही पूछ रहा हूं। वह कौन है, साफ-साफ बताओ?"

कुसुम ने अपने कोमल होंठों को जोरों से दबाकर, हाथ जोड़कर कहा, "बताना ही पड़ेगा?"

संन्यासी ने कहा, "हां, बताना ही पड़ेगा।"

कुसुम उसी दम बोल उठी, "तुम्हीं तो थे प्रभु!"

कुसुम के ये अपने शब्द ज्यों ही उसके कानों में पड़े, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर मेरी गोद में गिर पड़ी। संन्यासी पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े रहे।

बेहोशी दूर होते ही कुसुम उठकर बैठ गई। तब संन्यासी ने धीरे-धीरे कहा, "तुमने मेरी सभी बातें मानी हैं और भी एक बात माननी होगी। मैं आज ही यहां से जा रहा हूं। मेरे साथ अब तुम्हारी कभी भी भेंट न हो सकेगी। मुझे तुम भूल जाओ। बताओ, इतनी तपस्या करोगी?"

कुसुम उठकर खड़ी हो गई और संन्यासी के मुंह की ओर देखकर धीरे-से बोली, "प्रभो! ऐसा ही होगा।"

संन्यासी ने कहा, "तो मैं जाता हूं।"

कुसुम ने और कुछ न कहकर उन्हें प्रणाम किया, उनके पैरों की धूल सिर से लगाई।

संन्यासी चले गए।

'वह आज्ञा दे गए हैं, उन्हें भूलना होगा!' कहती हुई कुसुम धीरे-धीरे गंगा के पानी में उतरी।

बचपन से उसने इस पानी के किनारे दिन बिताए हैं, शांति के समय यह पानी अगर हाथ बढ़ाकर उसे गोद में न लेगा तो और कौन लेगा? चांद अस्त हो गया, रात्रि घोर अंधकारमय हो गई। पानी में एक आवाज-सी सुनाई पड़ी और कुछ भी समझ में नहीं आया। अंधकार में हवा सनसनाने लगी। हवा ने शायद यह सोचकर कि किसी को कुछ दिखाई न दे जाए—मुंह से फूंककर आकाश के तारों को बुझा देना चाहा।

मेरी गोद में जो खेला करती थी, वह आज अपना खेल खत्म करके मेरी गोद से खिसक गई और मैं जान भी न पाया।

❑❑

4

स्वर्णमृग

आदिनाथ और बैजनाथ चक्रवर्ती दोनों की शिरकत में जमींदारी है। इन दोनों में बैजनाथ की हालत कुछ खराब है। बैजनाथ के पिता महेशचंद्र में संपत्ति की रक्षा करने या उसे बढ़ाने की बुद्धि जरा भी न थी। वह अपने बड़े भाई शिवनाथ पर ही पूरा भरोसा रखते थे।

शिवनाथ ने छोटे भाई महेशचंद्र को स्नेह के खूब झांसे दिए और उसके बदले उनकी तमाम जायदाद हड़प ली। सिर्फ थोड़े से प्रॉमेसरी नोट उनके पास बच रहे। जीवन-समुद्र में बैजनाथ को अब सिर्फ अपने उन्हीं थोड़े से सरकारी कागजों की नाव का सहारा है।

शिवनाथ ने बड़ी खोज करके एक बड़े आदमी की इकलौती लड़की के साथ अपने पुत्र आदिनाथ का ब्याह कर दिया और इस तरह वे संपत्ति वृद्धि का एक रास्ता छोड़ गए। महेशचंद्र ने सात-सात लड़कियों के बोझ से दबे हुए एक गरीब ब्राह्मण पर दया करके दहेज में एक पैसा भी न लेकर उसकी बड़ी लड़की के साथ अपने पुत्र का ब्याह कर दिया।

समधी की सातों लड़कियों को वह इसलिए अपने घर न ला सके कि उनको सिर्फ एक ही लड़का था। उस ब्राह्मण ने कोई विशेष आग्रह नहीं किया, मगर फिर भी सुनते हैं कि बाकी लड़कियों के ब्याह के लिए उन्होंने समधी को अपने बूते से ज्यादा रुपये-पैसे से मदद की थी।

पिता की मृत्यु के बाद बैजनाथ अपने प्रॉमेसरी नोटों को लेकर बिलकुल निश्चिंत और संतोष के साथ जिंदगी बिताने लगे। काम-धंधे की बात उनके मन में आती ही न थी। उनका काम बस इतना ही था कि पेड़ की डाली काटकर बैठे-बैठे उसकी छड़ी बनाया करते। दुनिया भर के बच्चे और नौजवान उनके

पास आते और छड़ी के लिए उम्मीदवार रहते और वह उन्हें छड़ी बना-बनाकर देते।

इसके सिवा उदारता की उत्तेजना में मछली पकड़ने की छड़ी और पतंग उड़ाने की चरखी वगैरह बनाने में ही उनका काफी समय निकल जाता। ऐसा कोई काम हाथ में आ जाए, जिसमें बड़ी सावधानी से बहुत दिनों तक छीलने-घिसने की जरूरत हो और सांसारिक उपयोगिता को देखते हुए उसमें उतना वक्त बरबाद करना फजूल मालूम दे, तो उनके उत्साह की हद न रहती।

अकसर देखा जाता कि महल्ले में जब दलबंदी और षड्यंत्र या साजिश के पीछे बड़े-पवित्र चंडी मंडप और चौबारे धुआंधार हो उठते, तब बैजनाथ एक कलम तराश चाकू और एक डाली हाथ में लिए सवेरे से दोपहर तक और खाने-पाने के बाद शाम तक अपने चबूतरे पर अकेले अपनी धुन में मस्त बैठे रहते।

षष्ठी देवी की कृपा से बैजनाथ के दो लड़के और एक लड़की पैदा हुई। पर गृहिणी मोक्षदा सुंदरी का असंतोष दिनोदिन बढ़ता ही जाता है। उन्हें इस बात का अफसोस है कि आदिनाथ के घर जैसा समारोह है, बैजनाथ के घर वैसा क्यों नहीं।

उस घर की विंध्यवासिनी के जितने गहने हैं, बनारसी और ढाके की जितनी साड़ियां हैं, उनके यहां बातचीत का जैसा ढंग और रहन-सहन का जैसा ठाठ है, वैसा मोक्षदा के घर नहीं। इससे बढ़कर बेइंसाफी की बात और क्या हो सकती है? और मजा यह कि एक ही खानदान है। कपट से भाई की जायदाद हड़प कर ही तो इतनी तरक्की की है उन लोगों ने! ज्यों-ज्यों सुनती जाती, त्यों-त्यों मोक्षदा के हृदय में अपने ससुर और ससुर के इकलौते बेटे पर अश्रद्धा और अवज्ञा बढ़ती ही जाती।

अपने घर में उसे कुछ भी नहीं सुहाता। सभी बातों में उसे अड़चन और मान-हानि दिखाई देती। सोने की खटिया है, सो भी ऐसी कि मुर्दा ले जाने की खाट से बदतर। जिसकी सात पीढ़ियों में अपना कहने को कोई नहीं, ऐसा एक अनाथ चमगादड़ का बच्चा भी इसके घर की टूटी-फूटी पुरानी दीवार में नहीं चिपटा रह सकता। घर की सजावट देखकर तो महात्मा परमहंस की आंखों में भी पानी आ जाएगा। बढ़ा-चढ़ाकर कही गई इन सब बातों का प्रतिवाद करना मरदों जैसी कायर जाति के लिए तो संभव ही नहीं, इसलिए बैजनाथ बाहर के चबूतरे पर बैठकर दूनी लगन से छड़ी छीलने में लग गए।

लेकिन मौन व्रत विपत्ति की एकमात्र अमोघ औषधि नहीं है। किसी-किसी दिन पति के शिल्प कार्य में विघ्न डालकर मोक्षदा उन्हें अंत:पुर में बुलवा ही लेतीं और अत्यंत गंभीरता से दूसरी ओर ताकती हुई कहतीं, "ग्वाले से कह दो, दूध बंद कर दे।"

बैजनाथ सन्नाटे में आ जाते और नम्रता से पूछते, "दूध बंद करने से कैसे काम चलेगा? लड़के पीएंगे क्या?"

गृहिणी जी उत्तर देतीं, "मांड़।"

किसी-किसी दिन इसके विपरीत भाव भी दिखाई देता। मोक्षदा पति को बुलाकर कहतीं, "मैं कुछ नहीं जानती। जो करना हो, तुम्हीं करो।"

बैजनाथ उदास होकर पूछते, "क्या करना है, बताओ भी?"

"कम से कम इस महीने का तो सामान ले आओ।" कहकर गृहिणी ऐसी एक फेहरिस्त बनाकर देतीं, जिससे राजसूय यज्ञ भी समारोह के साथ संपन्न हो जाता।

बैजनाथ हिम्मत बांधकर अगर पूछते भी कि इतने का क्या होगा? तो उत्तर सुनते, "तो लड़कों को भूखों मरने दो। मैं भी मर जाऊं, तब तुम अकेले रह जाना और खूब सस्ते में काम चलाना।"

इस तरह धीरे-धीरे यह बात बैजनाथ की समझ में आ गई कि अब छड़ी छीलने से काम नहीं चलेगा। पैसा पैदा करने का कोई रास्ता ढूंढ़ निकालना ही पड़ेगा। नौकरी या रोजगार करना बैजनाथ के लिए मुश्किल है, लिहाजा उन्होंने सोचा कि कुबेर के भंडार में घुसने का कोई सुगम रास्ता ढूंढ़ निकालना ही इस आफत से बचने का एकमात्र उपाय है।

एक रात को बिछौने पर पड़े-पड़े वह अत्यंत दीनता से प्रार्थना करने लगे, 'हे माता जगदंबे, स्वप्न में यदि किसी दु:साध्य रोग की पेटेंट दवा बता दो, तो अखबारों में विज्ञापन लिखने का भार मैं ले लूं।'

उस रात को स्वप्न में देखा कि उनकी पत्नी उन पर नाराज होकर चट से 'विधवा विवाह' करने का प्रण कर बैठीं।

'धन की कमी होते हुए काफी गहने कहां मिलेंगे?' यह कहकर बैजनाथ उनकी प्रतिज्ञा का विरोध कर रहे हैं और 'विधवा को गहने की जरूरत नहीं' कहकर पत्नी उसका खंडन कर रही हैं। इसका मुंहतोड़ जबाव कुछ है जरूर, पर उस समय उनके दिमाग में नहीं आया।

इतने में नींद उचट गई। देखा तो सवेरा हो गया। तब झट से उनके दिमाग में आया कि क्यों उनकी पत्नी का विधवा विवाह नहीं हो सकता? इसके लिए वह कुछ दुखी भी हुए।

दूसरे दिन सवेरे नहा-धोकर बैजनाथ अकेले बैठे पतंग में डोरा डाल रहे थे। इतने में एक संन्यासी ने आकर दरवाजे पर जय ध्वनि की।

संन्यासी को देखते ही बिजली की तरह बैजनाथ को भावी ऐश्वर्य की उज्ज्वल मूर्ति दिखाई दी। संन्यासी का बड़ा आदर-सत्कार हुआ। उसे अच्छा खाना खिलाया गया।

बहुत साध्य साधना के बाद इतना मालूम कर सके कि संन्यासी सोना बना सकता है और उस विद्या को दान करने में उसे कोई आपत्ति भी नहीं है। यह जानकर गृहिणी भी मारे खुशी के नाच उठीं। यकृत के विकार से जैसे सब पीला ही पीला दिखाई देता है, वैसे ही उन्हें तमाम दुनिया में सोना ही सोना दिखाई देने लगा। कल्पना शिल्पी द्वारा सोने का पलंग, घर का असबाब और दीवारों तक को सोने से मढ़कर मन ही मन उन्होंने विंध्यवासिनी को निमंत्रण दे दिया।

संन्यासी प्रतिदिन दो सेर दूध और डेढ़ सेर मोहन भोग उड़ाने लगा और बैजनाथ के सरकारी कागजों को दुहकर उसने मनमाना रौप्य रस निकालना शुरू कर दिया।

छड़ी और चरखी के भूखे लड़कों का झुंड आता और बैजनाथ के दरवाजे पर धमाधम घूंसा जमाकर लौट जाता। घर में लड़के वक्त पर खाना नहीं पाते। कोई गिरकर माथे पर गूमड़ा कर लेता तो कोई रो-रोकर जमीन-आसमान एक कर डालता। मां-बाप का उधर कुछ ध्यान ही नहीं। चुपचाप अग्निकुंड के सामने बैठे कड़ाहे की ओर टकटकी लगाए रहते। न आंखों के पलक गिरते और न मुंह से बात निकलती। ऐसा लगने लगा जैसे तृषित एकाग्र नेत्रों पर लगातार आग की लौ का प्रतिबिंब पड़ते रहने से आंखों की मणियों में मानो स्पर्श मणि के गुण आ गए हों।

दो-दो प्रॉमेसरी नोटों की उस अग्निकुंड में आहुति हो चुकने के बाद एक दिन संन्यासी से आश्वासन मिला, "कल सोने में रंग आएगा।"

उस रात को दोनों में से किसी को भी नींद नहीं आई। स्त्री-पुरुष मिलकर स्वर्णपुरी बनाने के काम में लग गए। इस विषय में कभी-कभी दोनों में मतभेद और बहस भी होने लगती, परंतु आनंद के आवेग में उसकी मीमांसा होने में देर

न लगती। एक-दूसरे का खयाल रखकर अपने-अपने मन में से कुछ-कुछ त्याग करने में किसी ने कंजूसी नहीं की। सचमुच, उस रात को दांपत्य एकीकरण घना हो गया था।

दूसरे दिन, संन्यासी का पता ही नहीं! चारों तरफ से सोने का रंग जाता रहा, सूर्य की किरणें तक अंधकारमय दिखने लगीं। इसके बाद फिर घर की खटिया, असबाब और दीवारें चौगुनी गरीबी प्रकट करने लगीं।

अब से घर के काम-काज के बारे में बैजनाथ कोई बात कहते तो गृहिणी बड़े मधुर स्वर में कहतीं, "बस, रहने दो। अक्लमंदी काफी दिखा चुके हो, अब जरा कुछ दिन चुप बने रहो।"

बैजनाथ बेचारे चुप हो जाते।

मोक्षदा ने अब ऐसा श्रेष्ठता का भाव धारण कर लिया है, मानो इस स्वर्ण मरीचिका में उन्हें एक घड़ी के लिए भी शांति नहीं मिली।

अपराधी बैजनाथ पत्नी को खुश करने के लिए बहुत से उपाय सोचने लगे। एक दिन गुप्त उपहार लेकर पत्नी के पास पहुंचे और खूब हंसकर बड़ी चतुराई से सिर हिलाते हुए बोले, "क्या लाया हूं, बताओ तो?"

पत्नी ने कुतूहल को छिपाकर उदासीन भाव से कहा, "कैसे बताऊं! मैं कोई जादू तो जानती नहीं।"

बैजनाथ ने अनावश्यक समय नष्ट न करके पहले तो धीरे-धीरे उसकी गांठ खोली। उसके बाद फूंक मारकर कागज की धूल उड़ाई, फिर बड़ी सावधानी से एक-एक तह खोलकर, ऊपर का कागज हटाकर आर्ट स्टूडियो की बनी दश महाविद्या की पंचरंगी तस्वीर निकाली और उजाले की तरफ घुमाकर पत्नी के सामने रख दी।

पत्नी को उसी समय विंध्यवासिनी के खास कमरे में लगे हुए विलायती तैलचित्र की याद आई। वह बहुत ही अवज्ञा के साथ बोलीं, "अहा, बलिहारी है! इसे तुम अपनी बैठक में ही लगा लेना और बैठे-बैठे इसी की ओर देखा करना। मुझे इसकी जरूरत नहीं।"

बैजनाथ उदास हो गए और समझ गए कि विधाता ने उन्हें अन्य शक्तियों के साथ पत्नी को खुश रखने की दुर्लभ शक्ति से भी वंचित रखा है।

इधर देश भर में जितने ज्योतिषी थे, मोक्षदा ने सबको हाथ दिखाया तथा जन्मपत्री भी दिखाई। सभी ने यही कहा कि वह सधवा अवस्था में मरेंगी, परंतु

उस परमानंदमय परिणाम के लिए वह बहुत उतावली न थीं और इसलिए इससे भी उनका कुतूहल न मिटा।

फिर सुना कि उनका संतान भाग्य अच्छा है, लड़के-लड़कियों से जल्द ही घर भर जाएगा। सुनकर कोई खास खुशी नहीं जाहिर की।

अंत में एक ज्योतिषी ने कहा, ''एक साल के अंदर अगर बैजनाथ को दैव धन न मिल जाए तो हम अपनी पोथी-पत्रा सब जला डालेंगे।''

ज्योतिषी की इस दृढ़ प्रतिज्ञा को सुनकर मोक्षदा के मन में अब रत्ती भर भी अविश्वास न रह गया।

ज्योतिषी तो काफी भेंट-पूजा लेकर विदा हो गए, पर बैजनाथ की जिंदगी भार हो गई। धन कमाने के कुछ साधारण प्रचलित मार्ग हैं भी—जैसे खेती, नौकरी, व्यापार, चोरी और धोखेबाजी वगैरह-वगैरह, पर दैवीय धन कमाने का वैसा कोई मार्ग नहीं है। अत: मोक्षदा बैजनाथ को ज्यों-ज्यों उत्साह देतीं और फटकार बतातीं, त्यों-त्यों उन्हें किसी तरफ कोई रास्ता नहीं सूझता। कहां खोदना शुरू करें, किस तालाब में खोज कराने के लिए पनडुब्बों को तैनात करें, मकान की किस दीवार को तुड़वाएं—कुछ निर्णय नहीं कर पाए।

मोक्षदा ने बहुत ही नाराज होकर पति से कहा, ''मरदों के माथे में मगज के बदले गोबर भरा रहता है, यह मैं पहले नहीं जानती थी।'' फिर बोलीं, ''जरा कहीं हिलो तो सही। ऊपर को मुंह बाए बैठे रहने से क्या आसमान से रुपये बरसेंगे?''

बात तो ठीक है। बैजनाथ चाहते भी यही हैं, पर हिलें तो किस तरफ, कहां? कोई बताता भी तो नहीं, इसलिए चबूतरे पर बैठकर वह फिर छड़ी छीलने लगे।

इधर आश्विन मास में दुर्गा पूजा नजदीक आ गई। चतुर्थी से नाव आ-आकर घाट पर लगने लगीं। प्रवासी लोग अपने देश को लौटने लगे। टोकनियों में कुम्हड़ा, घुइयां, सूखे नारियल तथा टीन के बक्सों में लड़कों के लिए जूते, छाते, कपड़े और प्रेयसी के लिए एसेंस, साबुन, सुगंधित नारियल तेल तथा नई-नई कहानियों की किताबें आ रही हैं।

शरद् की सूर्य किरणें, उत्सव के हास्य की तरह बादलों से घिरे आकाश में व्याप्त हो रही हैं। अधपके धान के खेत थर-थर कांप रहे हैं, वर्षा से धुली हुई पेड़ों की हरी-हरी पत्तियां नए शीत की हवा से सिसकारी भर रही हैं। चायना

टसर का कोट पहने, कंधे पर इंठी हुई चादर लटकाए, सिर पर छतरी ताने परदेश से लौटते हुए पथिकगण खेत के रास्ते से घर की तरफ जा रहे हैं।

बैजनाथ बैठे-बैठे यही देखा करते और उनकी लंबी सांसें निकलती रहतीं। अपने आनंद शून्य घर के साथ बंगाल के हजारों घरों की तुलना करते और मन-ही-मन कहते, 'विधाता ने मुझे ही क्यों ऐसा अकर्मण्य पैदा किया?'

लड़के तड़के ही उठकर प्रतिमा निर्माण देखने के लिए आदिनाथ के आंगन में जाकर बैठ गए। खाने का समय होने पर दासी उन्हें जबरदस्ती वहां से पकड़ लाई।

बैजनाथ उस समय चबूतरे पर बैठे हुए आज के इस विश्वव्यापी उत्सव में अपने जीवन की निष्फलता का स्मरण कर-करके दुखी हो रहे थे। दासी के हाथ से दोनों लड़कों को छुड़ाकर प्रेम से उन्हें अपनी गोद के पास खींचकर बड़े लड़के से पूछा, "क्यों रे, अबकी पूजा में तू क्या लेगा, बोल?"

अविनाश ने उसी समय जवाब दिया, "एक नाव देना, बापूजी!"

छोटे लड़के ने भी सोचा कि बड़े भइया से किसी विषय पर कम रहना ठीक नहीं, वह बोला, "मुझे भी एक नाव देना, बापूजी!"

बाप के लायक लड़के हैं। एक निकम्मा शिल्प कार्य मिल गया कि बाप धन्य हो गए। बाप ने कहा, "अच्छी बात है।"

इधर यथासमय पूजा की छुट्टियों में काशी से मोक्षदा के एक चाचा घर लौटे। वह वकालत करते हैं।

मोक्षदा ने कुछ दिनों तक उनके घर खूब आना-जाना जारी रखा। आखिर एक दिन पति से आकर कहने लगीं, "सुनते हो, तुम्हें काशी जी जाना पड़ेगा।"

बैजनाथ को अचानक लगा, मानो उनका अब अंत समय आ पहुंचा। जरूर किसी ज्योतिषी ने जन्मपत्री देखकर कहा होगा, इसी से सहधर्मिणी उनकी सद्‌गति के लिए सोच रही है।

बाद में मालूम पड़ा कि काशी में एक मकान है और वहां गुप्त धन मिलेगा। उस मकान को खरीदकर उसमें से धन ले आना होगा।

बैजनाथ ने कहा, "यह तो बड़ी आफत है। मैं काशी नहीं जा सकूंगा।"

बैजनाथ आज तक घर छोड़कर कभी बाहर नहीं गए। प्राचीन शास्त्रकार लिखते हैं, गृहस्थ को किस तरह घर से निकाला जाता है, इस विषय में स्त्रियों को 'अशिक्षित पटुत्व' होता है। मोक्षदा अपने मुंह की बातों से मानो घर में लाल

मिर्च का धुआं भर देती थीं, लेकिन उससे अभागा बैजनाथ सिर्फ आंसू ही बहाकर रह जाता, काशी जाने का नाम तक नहीं लेता।

दो-तीन दिन इस तरह बीत गए। बैजनाथ ने बैठे-बैठे कुछ लकड़ियों को काट-छांटकर और जोड़-जाड़कर खेलने की दो नावें बनाईं। उनमें मस्तूल लगाए और कपड़ा काटकर पाल लगा दिए। लाल कपड़े की ध्वजा लगाई और पतवार वगैरह जहां की तहां बैठा दीं। एक गुड्डे को मल्लाह बनाया और यात्री भी बैठा दिए। गरज यह कि उसमें उन्होंने काफी निपुणता का परिचय दिया।

उन नावों को देखकर अपने मन को वश में रख सकें, ऐसे संयतचित्त बालक विरले ही मिलेंगे। इसलिए बैजनाथ ने सप्तमी के पहले छठ की रात को जब दोनों नावें लड़कों के हाथ में दीं, तो वे मारे खुशी के नाचने लगे। एक तो खाली नाव ही काफी थी, उस पर लगे हुए थे पाल, मस्तूल, पतवार और मल्लाह वगैरह सबकुछ। यही उनके लिए ताज्जुब की बात थी।

लड़कों की खुशी की धूम ने मां का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने अपनी आंखों से गरीब बाप का दिया हुआ पूजा का उपहार पुत्रों के हाथ में देखा। मारे गुस्से के उन्हें रोना आ गया। उसने तकदीर पर हाथ दे मारा और लड़कों के हाथ से खिलौने छीनकर जंगले से बाहर फेंक दिए।

'सोने का हार तो दरकिनार रहा, साटन का कोट और जरीदार टोपी भी मिट गई! कैसा मनहूस आदमी है, दो खिलौने देकर अपने ही लड़कों को धोखा देने आया है! उसमें भी कंजूस से दो पैसे खर्च नहीं किए गए, अपने हाथ से बनाई है!'

छोटा लड़का जोर से रो उठा।

"मूरख कहीं का!" कहते हुए मोक्षदा ने उसके गाल पर कसकर एक तमाचा जड़ दिया।

बड़ा लड़का बाप के मुंह की ओर देखकर अपना दुख भूल गया और ऊपरी खुशी दिखाता हुआ बोला, "बापूजी, मैं कल खूब सवेरे जाकर उठा लाऊंगा।"

बैजनाथ उसके दूसरे ही दिन काशी जाने के लिए राजी हो गए, पर रुपये कहां हैं? उनकी पत्नी ने जेवर बेचकर रुपये इकट्ठे किए। वे बैजनाथ की दादी के जमाने की चीजें थीं। ऐसा पक्का सोना और इतनी वजनी चीजें आजकल तो देखने के लिए भी न मिलेंगी।

बैजनाथ को ऐसा लगा, जैसे वह मरने जा रहे हैं। लड़कों को गोद में लेकर पुचकारा, खूब प्यार किया, फिर आंखों में आंसू भरकर घर से निकल पड़े। तब मोक्षदा भी रोने लगी।

काशी का मकान मालिक बैजनाथ के ककिया ससुर का मुवक्किल था। शायद इसीलिए मकान खूब ऊंचे दामों में बिका। बैजनाथ उस मकान में अकेले ही रहने लगे। मकान बिलकुल गंगा के किनारे हैं। गंगा की धारा उसकी नींव को धोती हुई बहती है।

रात को बैजनाथ के रोंगटे खड़े हो उठे। सूने मकान में सिरहाने के पास एक दीया जलाकर चादर ओढ़कर सो रहे थे, पर नींद नहीं आई। आधी रात को जब तमाम शोरगुल थम गया, तब कहीं से एक 'झनझन' आवाज सुनकर बैजनाथ चौंक पड़े। आवाज बहुत धीमी पर सुनाई साफ देती है। मानो पाताल में राज बलि के कोषाध्यक्ष अपने भंडार में बैठे हुए रुपये गिन रहे हों।

बैजनाथ के मन में भय, कुतूहल और साथ ही अजेय आशा का भी संचार हुआ। कांपते हुए हाथ से दीया उठाकर सब कोठरियों में घूम आए। एक कोठरी में घुसते तो मालूम होता कि आवाज दूसरी कोठरी से आ रही है। बैजनाथ सारी रात इसी तरह इस कोठरी से उस कोठरी घूमते रहे। दिन को रात का वह पातालभेदी शब्द अन्य शब्दों के साथ मिल गया, फिर वह पहचान में नहीं आया।

रात को जब दो-तीन पहर बीत चुके और दुनिया सो चुकी तो फिर वह शब्द जग उठा। बैजनाथ का मन बहुत ही व्याकुल हो उठा। उनसे शब्द का लक्ष्य ठीक करके किधर जाना चाहिए, कुछ तय करते न बना। मानो मरुभूमि में पानी का स्वर सुनाई दे रहा है, पर किधर से आ रहा है, कुछ निर्णय करते नहीं बना। डर यह है कि कहीं गलत रास्ता पकड़ लिया और गुप्त झरना बिलकुल अधिकार के बाहर चला गया तो? प्यासा पथिक जैसे चुपचाप खड़ा-खड़ा पानी के झरने की आवाज की तरफ बड़े गौर से कान लगाए रहता है, इधर प्यास भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, ठीक वही दशा बैजनाथ की हुई।

यों ही कई दिन कट गए। अंत में एक दिन दोपहर को सब दरवाजे बंद करके उन्होंने घर भर में साबर ठकठकाना शुरू कर दिया। बगल की एक छोटी कोठरी की जमीन पोली-सी मालूम पड़ी।

आधी रात के करीब बैजनाथ अकेले बैठकर जमीन खोदने लगे। अब रात खत्म होने लगी। पौ फटने लगी, तब कहीं गड्ढा पूरा खुद पाया।

उन्होंने देखा कि नीचे एक घर-सा बना हुआ है। उसमें बिना विचारे पैर डालने की उनकी हिम्मत न पड़ी। गड्ढे के ऊपर बिछौना बिछाकर पड़े रहे, पर आवाज इतनी साफ-साफ सुनाई देने लगी कि डर के मारे वहां ठहरना मुश्किल हो गया। वहां से उठ आए, लेकिन घर को यों ही सूना छोड़कर दूर जाने की भी उनकी इच्छा न हुई। लोभ और भय दोनों मिलकर उन्हें दोनों हाथ पकड़कर खींचने लगे। रात बीत गई।

आज दिन में भी आवाज सुनाई दे रही है। नौकर तक को उन्होंने घर के भीतर नहीं आने दिया और खाना-पीना भी बाहर ही किया। खा-पीकर घर में घुसे और भीतर से ताला बंद कर दिया।

दुर्गा नाम का जप करते हुए उन्होंने गड्ढे के मुंह पर से बिस्तर हटाकर अलग कर दिया। पानी की 'छपछप' और धातु की 'ठन-ठन' बिलकुल साफ-साफ सुनाई देने लगी।

डरते-डरते गड्ढे के पास आहिस्ता से मुंह ले जाकर देखा। बहुत नीचे एक कोठरी सी है, उसमें पानी का झरना झर रहा है। अंधेरे में विशेष कुछ नहीं दिखाई दिया। फिर एक बड़ी लकड़ी डालकर आजमाया। देखा कि पानी घुटनों से ज्यादा नहीं है। एक दियासलाई और बत्ती लेकर उस कोठरी के अंदर बड़ी आसानी से कूद पड़े। क्षण भर में ही कहीं सारी आशा बुझ न जाए, इसलिए बत्ती जलाने में हाथ कांपने लगे। बहुत-सी तीलियां नष्ट होने के बाद बत्ती जलीं।

देखा कि लोहे की मोटी जंजीर से एक तांबे का बड़ा भारी घड़ा बंधा हुआ है। जब-जब स्रोत का पानी जोर से आता है तो जंजीर घड़े पर पड़ती और आवाज करती है।

बैजनाथ पानी पर 'छप-छप' शब्द करते हुए झटपट घड़े के पास पहुंचे। देखा तो घड़ा खाली है। फिर भी अपनी आंखों पर विश्वास न ला सके। दोनों हाथों से घड़ा उठाकर उसे खूब झकझोर डाला। भीतर कुछ भी न निकला। उसे औंधा करके हिलाया, पर कुछ भी न गिरा। देखा तो उसका गला उखड़ा हुआ है, मानो किसी समय इस घड़े का मुंह बिलकुल बंद था, बाद में किसी ने तोड़ा है। तब बैजनाथ पागल की तरह पानी के अंदर दोनों हाथों से टटोल-टटोलकर देखने लगे। कीचड़ में कोई चीज पड़ी-सी लगी। उठाकर देखा तो मुर्दे की खोपड़ी निकली। उसे भी कानों के पास ले जाकर झकझोरा, भीतर कुछ न निकला। खोपड़ी उठाकर फेंक दी। बहुत देर तक ढूंढ़ते रहे, पर नरकंकाल की हड्डियों के सिवा और कुछ हाथ न आया।

देखा, गंगा की तरफ दीवार में एक जगह सूराख-सा हो रहा है। उसमें से पानी आ रहा है। संभव है, उनसे पहले के जिस आदमी की जन्मपत्री में दैव धन प्राप्ति की बात लिखी थी, वह शायद इसी छिद्र से घुसा हो।

आखिर जब बिलकुल हताश हो गए तो 'अरी मेरी मां!' कहकर एक गहरी सांस ली। उसके जवाब में मानो अतीत काल के और भी बहुत से हताश व्यक्तियों की सांसें भीषण गंभीरता के साथ पाताल से गूंज उठीं।

तमाम देह में पानी और कीचड़ लपेटे हुए बैजनाथ ऊपर आए। सारा संसार उन्हें आदि से अंत तक झूठा और जंजीर से बंधे हुए घड़े की तरह सूना मालूम देने लगा।

फिर सब चीज-बस्त बांधनी पड़ेगी, टिकट खरीदना पड़ेगा, गाड़ी पर चढ़ना होगा, घर जाना होगा, पत्नी के सामने जवाबदेही करनी होगी, अपने अकर्मण्य जीवन भार को पहले की तरह ढोना पड़ेगा। तबीयत हुई कि नदी के कमजोर बालू के तट की तरह चट से टूटकर पानी में गिर जाएं, पर ऐसा न कर सके। फिर वही चीज बस्त बांधनी पड़ी, टिकट खरीदना पड़ा और गाड़ी पर भी चढ़ना पड़ा।

शाम के वक्त घर के दरवाजे पर आ पहुंचे। आश्विन मास में शरद् ऋतु के प्रात:काल में दरवाजे के पास बैठकर बैजनाथ ने अनेक प्रवासियों को घर लौटते देखा है और गहरी उसांस.लेकर मन ही मन वह विदेश लौटने के इस सुख के लिए लालायित भी हुए हैं, लेकिन तब वह आज की इस संध्या की स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे।

घर में जाकर आंगन के तख्त पर निर्बोध की तरह बैठे रहे, भीतर नहीं गए। सबसे पहले महरी ने उन्हें देखा और देखते ही शोर मचा दिया। लड़के दौड़े आए। गृहिणी ने बुलावा भेजा।

बैजनाथ का मानो एक नशा-सा उतर गया। फिर मानो वह उसी पुरानी घर-गृहस्थी में सोते-सोते जाग उठे। सूखे मुंह पर मलिन हंसी लिए एक लड़के को गोद में लेकर और एक हाथ पकड़कर भीतर पहुंचे। दीया जल चुका था। यद्यपि रात नहीं हुई थी, फिर भी जाड़े की संध्या में रात की तरह सन्नाटा छा गया था।

बैजनाथ कुछ देर तक तो चुप रहे, फिर मृदु स्वर में पत्नी से पूछने लगे, "कहो, कैसी रही?"

पत्नी ने इसका कोई उत्तर न देकर पूछा, "क्या हुआ?"

बैजनाथ ने कुछ जवाब न देकर सिर पर हाथ दे मारा। मोक्षदा का मुंह अत्यंत कठोर हो गया।

लड़के बेचारे किसी भारी अकल्याण की छाया देखकर आहिस्ते से किनारा कर गए। महरी से जाकर बोले, "उस दिन वाली नाई की कहानी सुनाओ न।" और बिस्तर पर पड़ रहे।

रात होने लगी, पर दोनों के मुंह से एक भी बात न निकली। घर के अंदर न जाने कैसे एक सन्नाटा-सा छा गया। मोक्षदा के होंठ धीरे-धीरे वज्र की तरह कठोर होने लगे।

बहुत देर बाद मोक्षदा बिना कुछ कहे-सुने ही उठकर अपने कमरे में चली गईं और भीतर से हुड़का लगा लिया।

बैजनाथ चुपचाप बाहर खड़े रहे। चौकीदार 'सोने वाले होशियार!' आवाज देकर चला गया। थकी हुई दुनिया सुख की नींद सोती रही। स्वजनों से लेकर अनंत आकाश के नक्षत्र तक किसी ने भी इस लांछित निद्राहीन पुरुष बैजनाथ से एक बात भी न पूछी।

बहुत रात बीते, शायद किसी स्वप्न से जागकर बैजनाथ के बड़े लड़के ने बिछौने से उठकर बरामदे में आकर पुकारा, "बापूजी!"

तब उसके बापूजी वहां थे नहीं। बालक ने और भी जरा-जोर से बंद किवाड़ के बाहर से पुकारा, "बापूजी!"

पर कोई जवाब न मिला, फिर वह डरता-डरता बिछौने पर जाकर सो गया।

पहले की रीति के अनुसार महरी ने हुक्का भरकर बैजनाथ की तलाश की, लेकिन वह कहीं भी न दिखाई दिए। दिन चढ़ने पर पड़ोसी घर लौटे हुए पड़ोसी की खबर-सुध लेने आए, पर बैजनाथ के साथ किसी की भी मुलाकात न हुई।

❑❑

5

प्राण मन

मेरी खिड़की के सामने लाल मिट्टी की सड़क है। उस पर लदी हुई बैलगाड़ियां चलती हैं, पयाल के गट्ठर लादे संथाल स्त्रियां हाट को जाती हैं और शाम को हंसती-बतियातीं घर लौटती हैं, पर मनुष्य के चलने-फिरने की ओर आज मेरा ध्यान नहीं। जीवन का जो भाग अस्थिर है, नाना चिंताओं से उद्विग्न है, नाना चेष्टाओं से चंचल है, वह आज ढक गया है। शरीर आज रुग्ण है, मन आज अनासक्त है।

लहरों वाला समुद्र बाहरी समुद्र है। भीत वहां पृथ्वी की गंभीर गर्भशय्या है, लहरें वहां की बातों को गड़बड़ी में डालकर भुला देती हैं। लहरें जब ठहर जाती हैं तो समुद्र अपने गोचर के साथ अगोचर की, गहरे तले के साथ ऊपरी भाग की अखंड एकता में स्तब्ध होकर विराजता है। उसी तरह मेरे सचेष्ट प्राण को छुट्टी मिलते ही उस गंभीर प्राण में मुझे स्थान मिला, जहां संसार के आदि काल का लीला क्षेत्र है।

जब तक मैं राह चलता पथिक था, तब तक मुझे उस सड़क के किनारे वट वृक्ष की ओर देखने का समय नहीं मिला। आज राह छोड़कर खिड़की में आ खड़ा हुआ हूं, आज से उसके साथ मेरा समझौता शुरू हो गया।

मेरे चेहरे की ओर देख-देखकर क्षण-क्षण में वह व्याकुल हो उठता है। मानो कहना चाहता है, 'समझे नहीं?'

मैंने सांत्वना देते हुए कहा, 'समझ गया, सब समझ गया। तुम इस तरह व्याकुल मत होओ।'

कुछ देर के लिए वह फिर शांत हो गया। फिर देखा कि एकाएक चंचल हो उठा। फिर वही थरथर, झलमल।

फिर उसे शांत करके कहा, 'हां-हां, तुम्हारी बात ठीक है। मैं तुम्हारा खेल का साथी हूं। लाखों-करोड़ों वर्षों से इस मिट्टी के खेल घर से मैंने भी तुम्हारी ही तरह अंजुलि भर-भरकर सूर्यालोक पान किया है। धरणी के स्तन्य-रस में मैं तुम्हारा हिस्सेदार था।'

तब उसके भीतर से सहसा हवा का एक शब्द सुनाई दिया। वह मुझसे कहता रहा, 'हां-हां!'

जो भाषा के रक्त से मर्मर से मेरे हृदय में बजा करती है, जो प्रकाश अंधकार की निःशब्द आवर्तन ध्वनि है, वह भाषा उसके पत्र मर्मर के द्वारा मेरे पास तक आ पहुंचती है। वह भाषा संसार की सरकारी भाषा है।

उसकी मूल वाणी है, 'हूं-हूं, मैं हूं, हम सब हैं!'

यह बड़ी खुशी की बात है। उस खुशी से विश्व के अणु-परमाणु थर-थर कांप रहे हैं।

उस वटवृक्ष के साथ मेरी आज की उसी एक भाषा में उसी एक खुशी की बातचीत हो रही है।

वह मुझसे कहता है, 'तुम हो न?'

मैं जवाब देता, 'हूं-हूं, मैं हूं, मीत!'

इसी तरह 'हूं' और 'हो' मिलकर दोनों एक ताल से ताली बजा रहे हैं।

2

उस वटवृक्ष से जब मेरी बातचीत शुरू हुई, तब वसंत से उसके पत्ते कच्चे कोमल थे। उनकी अनेक संधों में से आकाश से भागा हुआ प्रकाश घास पर आकर पृथ्वी की छाया के साथ गलबहियां डाले छिपे-छिपे खेला करता था।

उसके बाद आषाढ़ की वर्षा उतरी। उसके पत्तों का रंग बादलों जैसा गहरा होने लगा। आज उन हरे पत्तों की राशि प्रवीणों की पक्की बुद्धि की तरह गाढ़ी हो गई। बाहर के प्रकाश को अब उनकी किसी भी संध में से घुसने का रास्ता नहीं मिलता। तब पेड़ था गरीब की लड़की की तरह, आज वह धनी घर की गृहिणी है, मानो पर्याप्त परितृप्ति का चेहरा हो।

आज सवेरे उसने मरकत मणि का बीस लड़ियों वाला हार झिलमिलाते हुए मुझसे कहा, 'सिर पर इस तरह ईंट-पत्थर ओढ़कर क्यों बैठे हो? मेरी तरह एकदम बाहर चले आओ न!'

मैंने कहा, 'मनुष्य को भीतर-बाहर दोनों तरफ संभालते हुए चलना पड़ता है।'

पेड़ जरा हिल-हिलाकर बोल उठा, 'समझ नहीं सका?'

मैंने कहा, 'हमारे दो संसार हैं। एक भीतर की ओर, दूसरा बाहर की ओर।'

पेड़ ने कहा, 'यह तुमने खूब कहा! अजी, भीतर की चीज है कहां?'

'मेरे अपने ही घेरे में।'

'वहां करते क्या हो?'

'सृष्टि करता हूं।'

'सृष्टि और घेरे के भीतर! तुम्हारी बातें समझना मुश्किल है।'

मैंने कहा, 'जैसे तटों के बंधन में पड़कर नदी होती है, वैसे घेरे में घिरकर ही तो सृष्टि होती है। एक ही चीज घेरे में घिरकर कहीं हीरे का टुकड़ा होता है तो कहीं बड़ का पेड़।'

पेड़ ने कहा, 'तुम्हारा घेरा कैसा है, जरा सुनूं तो सही?'

मैंने कहा, 'वह मेरा मन है। उसमें जो कुछ आकर अटक जाता है, वही हो जाता है सृष्टि।'

पेड़ ने कहा, 'चंद्र और सूर्य से उसे तो नापा नहीं जा सकता। चंद्र और सूर्य तो बाहर की चीज हैं।'

'तो फिर नापोगे किससे?'

'सुख से, खाकर दुख से।'

पेड़ ने कहा, 'यह देखो, पुरवैया हवा मेरे कानों से बातें करती है, मेरे प्राणों में उसकी प्रेरणा जाग उठती है, पर तुम न जाने किसकी बातें कह गए, मैं कुछ समझ नहीं न सका।'

मैंने कहा, 'समझाऊं कैसे? तुम्हारी उस पुरवैया हवा को ज्यों ही हमने अपने घेरे के भीतर वीणा के तार से बांध दिया, त्यों ही वह एक सृष्टि से दूसरी सृष्टि में आ पहुंची। यह सृष्टि किस आकाश में स्थान पाती है, किस विराट चित्त के स्मरणाकाश में, सो मैं भी ठीक से नहीं जानता। मालूम होता है, मानो वेदना का कोई आकाश है और वह आकाश नापने का आकाश नहीं।'

'और उसका काल?'

'उसका काल भी घटना का काल नहीं, वेदना का काल है। इसी से वह काल संख्या के परे है।'

'दो आकाश और दो कालों के जीव हो तुम। तुम अद्‌भुत हो, तुम्हारी भीतर की बातें मैं कुछ भी नहीं समझा।'

'न समझे तो न सही।'

'मेरे बाहर की बातें तुम ही कौन-से ठीक-ठीक समझते हो?

'तुम्हारी बाहर की बात मेरे भीतर आकर जैसी बन जाती है, उसे अगर समझना कहो तो वह समझना है, अगर गीत कहो तो गीत है, कल्पना कहो तो कल्पना है।'

3

पेड़ ने सारी की सारी डालों को उठाकर मुझसे कहा, 'जरा ठहरो! तुम बहुत ज्यादा सोचा करते हो और बकते भी बहुत हो।'

सुनकर मैंने सोचा—बात तो सच है। मैंने कहा, 'चुप रहने के लिए तुम्हारे पास आता हूं, पर अभ्यास दोष से चुप रहते हुए भी बड़बड़ाता रहता हूं—जैसे कोई-कोई सोते-सोते चला करता है।'

कागज और पेंसिल उठाकर फेंक दी, उसी की तरफ बिना पलक झपकाए देखता रहा। उसकी चिकनी पत्तियां उस्ताद की उंगलियों की तरह आलोक वीणा के तारों पर द्रुत ताल से पड़ने लगीं।

सहसा मेरा मन बोल उठा, 'यह तुम जो देख रहे हो और यह मैं जो सोच रहा हूं—इनके बीच मेल कहां पर है?'

मैंने उसे डपटकर कहा, 'फिर तुम्हारा प्रश्न? चुप रहो!'

वह चुप रहा, एकटक देखता रहा। समय बीतता गया।

मैंने कहा, 'समझ गया।'

4

वह दिन तो चुपचाप ही बीत गया।

दूसरे दिन मेरे मन ने मुझसे पूछा, 'कल पेड़ की तरफ देखते-देखते अचानक जो कह उठे थे कि 'समझ गया', सो क्या समझे बताओ तो?

मैंने कहा, 'मनुष्य के प्राण अपने ही अंदर नाना चिंताओं से घुला-घुलाकर मैले हो गए हैं, इसलिए प्राणों का विशुद्ध रूप देखना हो तो देखना चाहिए उस घास की ओर, उस पेड़ की ओर।'

'कैसा देखा तुमने?'

'देखा, उन प्राणों में अपने ही आप में कितना आनंद है! अपने को लेकर उसने अपने पत्ते-पत्ते पर, फूल-फूल पर, फल-फल पर कितने जतन से कैसे-कैसे नक्शे उतारे हैं, कैसे-कैसे रंग भरे हैं, कितनी गंध, कितना रस, कोई ठीक है! इसी से उस बड़ की ओर ताकता हुआ मन ही मन कह रहा था—ओ वनस्पति, जनमते ही पृथ्वी पर प्रथम प्राण जो आनंद ध्वनि कर उठा था, वही ध्वनि तुम्हारी शाखा-शाखा में हो रही है। वही आदि युग की सरल हंसी तुम्हारे पत्ते-पत्ते पर झलमला रही है। मेरे भीतर वह प्रथम प्राण आज चंचल हो उठा है। चिंताओं की चारदीवारी के भीतर वह बंदी होकर बैठा था, तुमने उसे बुलाकर कहा—अरे, आ न रे। उजाले में, हवा में आ और मेरी ही तरह ले आ अपने रूप की तूलिका, रंग की कटोरी और रस का प्याला!'

मन मेरा कुछ देर चुप बना रहा। उसके बाद कुछ उदास होकर बोला, 'तुम प्राण की ही बात को लेकर कुछ ज्यादती किया करते हो। मैं जो इतना सामान इकट्ठा करता हूं, उसकी बातें इस तरह सजा-सजाकर क्यों नहीं कहते?'

'उसकी बात और क्या कहूं! उसने खुद ही अपने टंकार-झंकार-हुंकार-कंकार से आकाश को कंपा रखा है। उसके भार से, उसकी जटिलता से, उसके जंजाल से पृथ्वी का हृदय व्यथित हो उठा है। बहुत सोचता हूं, समझ में नहीं आता—इसका अंत कहां है। थाक पर थाक और कितनी थाकें लगेंगी, गांठों पर गांठ और कितनी गांठें पड़ेंगी? इसी प्रश्न का उत्तर था उस पेड़ के पत्तों पर।'

'अच्छा! क्या जवाब था, सुनूं?'

'वह कहता है, प्राण जब तक नहीं है, तब तक सबकुछ केवल स्तूप है, सबकुछ भार है! प्राणों का स्पर्श लगते ही उपकरणों के साथ उपकरण, सामान के साथ सामान आप ही मिल-जुलकर अखंड सुंदर हो जाता है। उस सुंदर को ही देखो, वनविहारी। उसकी वंशी तो बज रही है वट की छाया में।'

तब, न मालूम कब की, कौन-सी पिछली रैन थी, पौ फट चुकी थी।

प्राण ने अपनी शय्या छोड़ दी। उसी दिन वह पहले-पहल राह पर निकला अज्ञात से मिलने जाने के लिए, अचेतन जगत के उस पार, खुले हुए अनंत मैदान की ओर।

तब उसकी देह में न तो थकान थी और न मन में चिंता। उसकी राजपुत्र जैसी पोशाक में न तो कहीं धूल लगी थी और न छेद ही हुए थे।

आज आषाढ़ के प्रात:काल में उस अक्लांत निश्चिंत प्रसन्न प्राण को देखा, उस वटवृक्ष में। उसने अपनी शाखाएं हिलाकर मुझसे कहा, 'नमस्कार!'

मैंने कहा, 'राजपुत्र और मरु दैत्य में लड़ाई कैसी चल रही है, सो तो बताओ?'

उसने कहा, 'अच्छी चल रही है। एक बार चारों ओर आंख पसारकर देखो न।'

आंख उठाकर देखा—उत्तर का मैदान घास से ढका पड़ा है, पूरब का ढका मैदान धान के अंकुरों से पट गया है, दक्षिण में बांध के किनारे ताड़ वृक्षों की पंक्ति खड़ी है, पश्चिम में शाल, ताड़, महुआ, आम, जामुन, खजूर सबने मिलकर ऐसी भीड़ लगा दी है कि दिगंत दिखाई ही नहीं देता।

मैंने कहा, 'राजपुत्र, धन्य हो तुम! तुम कोमल हो, किशोर हो और दैत्य जैसा प्रवीण है, वैसा ही कठोर। तुम छोटे हो, तुम्हारा तूण छोटा है, तुम्हारे तीर छोटे हैं और वह विपुल, उसका वर्म मोटा है, उसका गदा भारी है। फिर भी तो देखता हूं पीठ पर तुमने पांव रख दिया है, पत्थर हार मान रहा है, धूल सब कुछ मंजूर करके दस्तखत किए दे रही है।'

वटवृक्ष ने कहा, 'तुमने इतना समारोह कहां देखा?'

मैंने कहा, 'तुम्हारी लड़ाई को मैं देखता हूं शांति के रूप में, तुम्हारे कर्म को मैं देखता हूं विश्राम के वेश में, तुम्हारी विजय को मैंने देखा है नम्रता की मूर्ति में—इसीलिए तो तुम्हारी छाया में साधक आकर बैठे हैं, उस सहज युद्ध जय के मंत्र और उस सहज अधिकार की संधि सीखने के लिए। प्राण किस तरह अपना काम करते हैं, यह दिखाने के लिए ही वन-वन में तुमने उसकी पाठशालाएं खोल दी हैं। इसी से जो क्लांत हैं, थके हुए हैं, वे तुम्हारी छाया में आते हैं और जो आर्त हैं, दुखी हैं, वे तुम्हारी वाणी ढूंढ़ते फिरते हैं।'

मेरी स्तुति सुनकर वट के भीतर का प्राण पुरुष शायद खुश हो गया। कहने लगा, 'मैं निकल पड़ा हूं मरु दैत्य के साथ लड़ाई लड़ने। मगर मेरा एक छोटा भाई है। वह न जाने किस लड़ाई में कहां चला गया, मुझे अब उसकी टोह ही नहीं मिलती। कुछ देर पहले तुम क्या उसी की बात कह रहे थे?'

'हां, उसी का हमने नाम रख दिया है मन।'

'वह मुझसे चंचल है। किसी बात में उसे संतोष नहीं। उस अशांत की खबर मुझे दे सकते हो, कहां है वह?'

मैंने कहा, 'कुछ-कुछ जरूर दे सकता हूं। तुम लड़ रहे हो जीने के लिए, वह लड़ रहा है पाने के लिए। कुछ दूर और एक लड़ाई चल रही है, छोड़ने के लिए। तुम्हारी लड़ाई है अचेतन के साथ, उसकी लड़ाई है अभाव के साथ। एक और भी लड़ाई है, वह संचय के साथ। लड़ाई जटिल होती जा रही है, व्यूह में जो घुस रहा है, उसे व्यूह से निकलने का रास्ता ढूंढ़े नहीं मिल रहा। हार-जीत अनिश्चित होने से चक्कर में पड़ जाता है।

'इस दुविधा में तुम्हारी यह हरी पताका योद्धाओं को आश्वासन दे रही है। कह रही है—जय, प्राणों की जय! गान की तान बढ़ती ही चलती है। आगे वह किस सप्तक से किस सप्तक में चढ़ गई, कोई ठिकाना नहीं! वह स्वर-संकट में उसका तंबूरा अपने सरल तार से कहा रहा है—भय नहीं, डर नहीं डरने की कोई बात नहीं। कह रहा है—यह देखो, मूल सुर मैंने बांध रखा है। यह आदि प्राण का स्वर है। सभी उन्मत्त तानें इस सुर से सुंदर के स्थायी में आकर मिलेंगी, आनंद के गान में आकर एक हो जाएंगी। संपूर्ण पाना, संपूर्ण देना फूल की भांति खिल उठेगा, फल की तरह फल उठेगा।'

❑❑

6

प्यासा पत्थर

पूजा की छुट्टियों में पछांह की सैर करके मैं अपने एक रिश्तेदार के साथ कलकत्ता लौट रहा था। इत्तिफाक से रेल में एक सज्जन से भेंट हो गई और बातचीत का सिलसिला जम गया।

उनका पहनावा देखकर पहले तो मुझे गलतफहमी हुई कि शायद वह दिल्ली वाले मुसलमान हैं। बाद में उनकी बातें सुनकर मैं और भी ज्यादा भूल-भुलैया में पड़ गया। हर एक विषय में वह इस ढंग से बातचीत करने लगे, जैसे विधाता दुनिया के सभी काम उनसे सलाह-मशविरा करके करते होंगे।

तमाम दुनिया में भीतर ही भीतर कैसी-कैसी बिन देखी और बिन सुनी वारदातें हो रही हैं, रूसी लोग कितने आगे बढ़ गए हैं और बढ़ते ही जा रहे हैं। अंग्रेज लोग कैसे-कैसे खुफिया इरादे बांध रहे हैं? हिंदुस्तान की देशी रियासतों में न जाने कैसे एक खिचड़ी-सी पकती जा रही है और हम इन सभी बातों से बिलकुल नावाकिफ रहकर कैसे बेफिक्र पड़े खर्राटे ले रहे हैं, वगैरह-वगैरह।

काफी नई-नई बातें सुना चुकने के बाद अंत में उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, ''होरेशियो, तुम्हारे इन अखबारों में छपने वाली खबरों से जमीन और आसमान में कहीं ज्यादा वारदात हुआ करती हैं!''

असल में, अबकी बार हम पहले-पहल घर से बाहर निकले हुए थे, इसलिए उनकी बातचीत और रंग-ढंग देखकर दंग रह गए। हजरत जरा-जरा सी बात पर कभी विज्ञान का, कभी वेद का ऐसा हवाला दे बैठते कि हमारी अक्ल ही काम न करती।

विज्ञान, वेद और फारसी भाषा में हमारा कोई दखल न होने से उनके प्रति हमारी श्रद्धा बराबर बढ़ती ही गई। यहां तक कि मेरे थियोसोफिस्ट मित्र के मन

में यह बात जमकर बैठ गई कि उनका किसी अलौकिक शक्ति से कुछ न कुछ संबंध जरूर है। वह चाहे किसी चुंबकीय शक्ति से हो या दैव शक्ति से, या फिर सूक्ष्म शरीर या उसी की तरह की किसी और चीज से।

वह इस असाधारण व्यक्ति की छोटी से छोटी बात इतनी भक्ति और इतनी दिलचस्पी के साथ सुन रहे थे कि बाहर का उन्हें जरा भी होश न था। साथ ही मुझसे छिपाकर उनकी कोई-कोई बात वह नोट भी कर रहे थे। ताज्जुब है, वह असाधारण व्यक्ति भी भीतर ही भीतर इस बात को ताड़ गया था और मन-ही-मन वह खुश भी हो रहा था।

गाड़ी आकर जब जंक्शन पर खड़ी हुई तो हम दूसरी गाड़ी के इंतजार में वेटिंग रूप में जाकर ठहर गए। रात के करीब दस-साढ़े दस बजे होंगे। मालूम हुआ कि रास्ते में कहीं कुछ गड़बड़ी हो जाने से गाड़ी आज लेट हो गई है। मैं मेज पर बिस्तर बिछाकर जरा सो लेने की जुगाड़ में लगा ही था कि इतने में उन साहब ने एक बड़ा दिलचस्प किस्सा छेड़ दिया। ऐसा कि उस रात को फिर किसी को नींद न आई। वह कहने लगे—

"राज्य की शासन व्यवस्था के विषय में जरा कुछ मतभेद हो जाने से जूनागढ़ का काम छोड़कर जब मैं हैदराबाद निजाम सरकार में दाखिल हुआ, तब मुझे जवान और मजबूत आदमी देखकर वहां की सरकार ने भड़ौंच में रूई की चुंगी का दरोगा बना दिया।"

भड़ौंच बड़ी रमणीक जगह है। निर्जन सुनसान पहाड़ियों के नीचे से, बड़े-बड़े जंगलों में होकर वहां की सुस्ता नदी (संस्कृत 'स्वच्छतोया' का अपभ्रंश हो सकता है) पत्थर की छोटी-छोटी बटियों से मुखरित अपने निर्धारित मार्ग से निपुण नर्तकी की तरह कदम-कदम पर टेढ़ी-तिरछी होती हुई तेजी से नाचती चली गई।

ठीक उस नदी के किनारे ही संगमरमर से बने हुए डेढ़ सौ सीढ़ियों से सुशोभित बहुत ऊंचे घाट पर एक सफेद संगमरमर का महल पहाड़ के पैरों के पास अकेला खड़ा था। उसके आस-पास कहीं भी कोई बस्ती नहीं। भड़ौंच की रूई की हाट और बस्ती वहां से बहुत दूर थी।

लगभग ढाई सौ वर्ष पहले, दूसरे शाह महमूद ने अपने भोग-विलास के लिए ऐसे एकांत स्थान में रमणीक महल बनवाया था। किसी जमाने में वहां स्नानागार के फव्वारे के मुंह से गुलाब जल की धाराएं निकला करती थीं। बालू से ठंडे किए गए जंगल के उस एकांत महल में सफेद संगमरमर के तर आसन

पर बैठी हुई जवान ईरानी सुंदरियां अपने कोमल नंगे तलवों को साफ-सुथरे पानी में फैला-फैलाकर, नहाने से पहले अपने लंबे काले घुंघराले बालों को बिखेरकर सितार गोद में लिए, अंगूरी लताओं की तरह झूमती हुई सी गजल गाया करती थीं।

अब फव्वारे नहीं चलते, वे गीत भी नहीं होते और न अब पहले की तरह उस सफेद संगमरमर पर उन गोरे, नंगे पांवों के कोमल तलवे ही पड़ते हैं। अब तो महल हम जैसे एकांतवास से घबराए हुए महसूल कलेक्टरों का बहुत बड़ा और बिलकुल सुनसान 'क्वार्टर' बना हुआ है। मगर दफ्तर के बूढ़े क्लर्क करीम खां ने मुझे उस महल में रहने के लिए बार-बार मना किया था। उसने कहा था, 'तबीयत हो तो दिन में भले ही रहिए, मगर रात वहां हरगिज न बिताइएगा।'

तब मैंने उसकी बात हंसी में उड़ा दी थी। नौकरों ने तो साफतौर से कह दिया कि शाम तक तो वे वहां काम पर रहेंगे, पर रात को हरगिज न रहेंगे।

मैंने कहा, "ठीक है।"

असल में वह मकान इतना बदनाम था कि रात को चोर तक उसमें घुसने की हिम्मत न करते।

पहले-पहल जब मैंने उस सुनसान पत्थर के महल में कदम रखा, तो उसका सन्नाटा अजगर की तरह मेरी छाती पर बैठ गया। मुझसे जहां तक बनता, बाहर ही बाहर रहता और कामकाज से खूब थककर रात को वहां लौटता और जाते ही सो जाता।

इस तरह एक हफ्ता भी न बीत पाया होगा कि उस महल के एक अजीब नशे ने आहिस्ता-आहिस्ता मुझ पर कब्जा-सा करना शुरू कर दिया! मेरी उस हालत का बयान करना भी मुश्किल है और उस बात पर किसी को विश्वास दिलाना तो और भी मुश्किल है। सारा का सारा महल मानो किसी बड़े भारी अजगर की तरह मुझे अपने जठरस्थ मोह-रस से धीरे-धीरे पचाने लगा।

शायद उस मकान में घुसने के साथ ही मुझ पर उसकी प्रक्रिया शुरू हो गई थी, पर मैंने जिस दिन सचेतन दशा से पहले-पहल उसे महसूस किया, उस दिन की बातें मुझे साफ-साफ याद हैं।

गर्मियों के दिन थे। रूई का बाजार ढीला था और मेरे हाथ में कोई खास काम भी न था। सूरज छिपने के कुछ पहले मैं उस नदी किनारे के घाट के नीचे की सीढ़ियों पर आरामकुरसी पर बैठा आराम कर रहा था।

नदी उन दिनों सूख-सी गई थी। उस पार का दूर तक फैला हुआ बालू तट डूबते हुए सूरज की आभा से रंगीन हो उठा था। इस पार घाट की सीढ़ियों के नीचे साफ और उथले पानी में पत्थर की गोल-गोल बटियां चमक रही थीं। उस दिन कहीं भी हवा का नाम तक न था। पास के पहाड़ी जंगल से तुलसी, पुदीना और सौंफ की उठती हुई सुगंध ने स्थिर आकाश को कुछ भारी और चंचल-सा कर रखा था।

सूर्य जब पहाड़ की चोटी के पीछे छिप गया तो चट से दिन की नाट्यशाला में मानो एक लंबी छाया यवनिका सी पड़ गई। उस जगह, बीच में पहाड़ पड़ जाने से सूर्यास्त के समय प्रकाश और अंधकार का मेल देर तक नहीं ठहरता घोड़े पर सवार होकर कहीं घूम आने के लिए मैं उठना ही चाहता था कि इतने में सीढ़ियों पर एक साथ बहुत-सी पग-ध्वनियां सुनाई दीं। पीछे की ओर मुड़कर देखा तो कोई नहीं!

कानों को भ्रम हो गया होगा, ऐसा समझकर मैं फिर मुड़कर बैठ गया। फिर तो एक साथ मुझे बहुत-सी पग-ध्वनियां सुनाई दीं—जैसे बहुत-सी सखियां मिलकर दौड़ती-फुदकती हुई उतर रही हों। कुछ आशंका लिए हुए एक तरह का अपूर्व पुलक मेरे सारे अंगों में फैल गया।

यद्यपि मेरे सामने कोई भी मूर्ति न थी, फिर भी स्पष्ट मालूम होने लगा कि गरमी की उस संध्या में चंचल तरुणियों का एक झुंड नदी के पानी में नहाने आ रहा है। यद्यपि उस संध्या के समय निस्तब्ध पर्वत के नीचे, नदी तट पर, सुनसान महल में, कहीं भी कोई शब्द नहीं हो रहा था—फिर भी मानो मैंने स्पष्ट सुना कि झरने की धारा की कुतूहलपूर्ण कालहास्य करती और एक दूसरे का तेजी से पीछा करती हुई स्नानार्थिनी तरुणियां ठीक मेरे बगल से निकल गईं। किसी ने मेरी तरफ देखा तक नहीं! मानो वे मेरे लिए अदृश्य हों और मैं उनके लिए।

नदी पहले की तरह शांत थी, पर मैं अपनी आंखों के सामने साफ देखने लगा कि स्वच्छ जल की कम गहरी जलधारा में हंस-हंसकर सखियां एक-दूसरे पर पानी उछालने लगीं और तैरने वालियों के चंचल पदाघातों से पानी की बूंदें मोतियों की तरह आसमान से बिखरने लगीं।

मेरे हृदय में एक प्रकार का कंपन शुरू हो गया। वह उत्तेजना या भय के कारण था या आनंद या कुतूहल के कारण—मैं कुछ नहीं कह सकता। भीतर से बड़ी तबीयत होने लगी कि अच्छी तरह देखूं, पर सामने देखने को कुछ था ही नहीं।

फिर ऐसा लगा कि शायद अच्छी तरह कान लगाकर सुनने से उनकी बातें भी साफ-साफ सुनाई देंगी, पर एकाग्रचित्त से कान लगाकर सुनने पर भी सिर्फ जंगली झींगुरों की झनकार ही सुनाई दी।

मालूम होने लगा कि ढाई सौ वर्ष पहले की काली यवनिका ठीक मेरे सामने लटक रही है। मैंने डरते-डरते उसका जरा-सा एक कोना उठाकर भीतर देखा। शायद वहां बड़ी भारी मजलिस लगी हुई थी। पर गाढ़े अंधकार में कुछ दिखाई ही नहीं दिया।

इतने में अचानक उमस को तोड़ती हुई खूब तेजी से सनसनाकर हवा चलने लगी। सुस्ता का ठहरा हुआ पानी देखते-देखते अप्सरा के सिर के घुंघराले बालों की तरह कुंचित हो उठा और संध्या की छाया से ढकी सारी वनभूमि एक क्षण में मर्मर-ध्वनि के साथ सहसा दुःस्वप्न से जाग उठी।

चाहे सच मानिए या सपना, मेरे सामने ढाई सौ वर्ष पहले के अतीत क्षेत्र से प्रतिफलित होकर एक अदृश्य मरीचिका उतर आई थी। वह एक क्षण में न जाने कहां विलीन हो गई। जो मायाविनी तरुणियां मेरे बिलकुल नजदीक से, बिना देह के तेज कदमों से, बिना आहट के ऊंचे सुंदर हास्य के साथ दौड़ती-फुदकती हुई सुस्ता नदी के पानी में कूद पड़ी थीं, वे फिर पानी से उठकर अपने-अपने भीगे आंचलों को निचोड़ती हुई मेरे पास से वापस नहीं गईं। हवा जिस तरह गंध को उड़ा ले जाती है, ठीक उसी तरह वसंत के एक निःश्वास में वे भी उड़कर न जाने कहां चली गईं।

तब मुझे बड़ी दहशत मालूम देने लगी कि कहीं अकेला पाकर अचानक मेरे सिर पर कविता देवी तो नहीं सवार हो गई। मैं बेचारा रूई की चुंगी वसूल करके किसी तरह अपना गुजर करता हूं। सत्यानासिनी कहीं मेरा खात्मा करने तो नहीं आई। सोचा कि अच्छी तरह भोजना करना चाहिए, खाली पेट में ही इस तरह की बेहूदा बीमारियां आ घेरती हैं—जिनका इलाज लुकमान हकीम से भी न हुआ था।

उसी वक्त मैंने अपने बावर्ची को बुलाकर उसे खूब घी और मसाले मिलाकर मुगलई खाने बनाने का हुक्म दिया।

दूसरे दिन सवेरे कल की सारी बातें बिलकुल मजाक-सी मालूम होने लगीं। खा-पीकर मैं बड़ी खुश तबीयत से साहबों की तरह हैट-कोट पहनकर टमटम हांकता हुआ अपने काम पर चला गया। उस दिन मुझे तिमाही रिपोर्ट

लिखनी थी, इसलिए देर से घर लौटने की बात थी। मगर शाम होते ही जैसे कोई मुझे मकान की ओर खींचने लगा। कौन खींचने लगा, पता नहीं, पर ऐसा लगने लगा कि 'सब बैठी होंगी।' रिपोर्ट अधूरी छोड़कर मैंने हैट उठाया और उसी वक्त शांत व विशाल महल की ओर चल दिया।

सीढ़ियों के ऊपर का सामने वाला दीवानखाना काफी बड़ा था। उसमें काफी ऊंचे और बड़े-बड़े खंभों की तीन कतारें थीं और उन पर मेहराबदार बड़ी भारी छत, जिसके नीचे की चित्रकारी तरह-तरह के प्राकृतिक दृश्य और तस्वीरें देखते ही बनती थीं। वह विशाल कमरा दिन-रात भांय-भांय किया करता था।

उस दिन, संध्या का प्रारंभ होने पर भी बत्ती नहीं जलाई गई थी। दरवाजा ठोकर ज्यों ही मैं उस कमरे में घुसा, त्यों ही ऐसा लगा कि वहां एकाएक भगदड़-सी मच गई। मालूम हुआ, जैसे सभा भंग करके चारों तरफ दरवाजों और खिड़कियों से, जहां जिसको राह मिली, सब भाग खड़ी हुईं। दूसरे ही क्षण फिर वही सूना का सूना!

मैं कहीं किसी को न देखकर दंग रह गया। मेरा सारा शरीर एक प्रकार के आवेश से रोमांचित हो उठा। बहुत दिनों के पुराने बचे-खुचे तेल-फुलेल और अतरों की मंद-मंद सुगंध मेरी नाक में घुसने लगी। मैं उस दीपहीन, जलहीन विशाल महल के पुराने सफेद पत्थर के बने खंभों के बीच खड़ा-खड़ा सुन रहा था। 'झर-झर' शब्द करता हुआ फव्वारे का पानी सफेद संगमरमर पर पड़ रहा था और सितारों से क्या सुर निकल रहा था, कुछ समझ न सका।

कहीं सोने के गहनों की झनकार, कहीं जवाहरात जेवरों की चमक और कहीं नूपुरों की छमछम! कभी शाही घड़ियाल का प्रहर सूचक नाद, बहुत दूर पर नौबत की मीठी तान, हवा से झूमते हुए स्फटिक के बड़े-बड़े झाड़ों के लटकनों की टुनटुन ध्वनि, बाहर के बरामदों से बुलबुलों का गीत, बगीचे से पालतू सारसों के बोल, सबने मिलकर मानो मेरी तरफ किसी प्रेत लोक की कोई जबरदस्त रागिनी छेड़ दी।

मेरे ऊपर एक तरह की मोह-माया सी छा गई। लगा कि संसार में यह अदृश्य घटना ही एकमात्र सत्य है, बाकी सबकुछ मिथ्या है। मैं अपने को बिलकुल भूल गया। मेरा अमुक नाम है, साढ़े चार सौ रुपया तनख्वाह पाने वाला चुंगी का दरोगा हूं और कोट-पैंट पहनकर टमटम पर सवार होकर रोज दफ्तर जाया करता हूं। सच तो यह है कि ये सब छोटी-छोटी बातें मेरे लिए

महज मजाक, बिलकुल झूठी और बेसिर-पैर की मालूम होने लगीं। सब रंग-ढंग देखकर अंत में मैं उस विशाल शांत अंधकारपूर्ण सभा भवन में खड़ा-खड़ा जोर-जोर से ठहाका मारकर हंस पड़ा।

इतने में मेरा मुसलमान चपरासी कैरोसिन का जलता हुआ लैंप हाथ में लेकर घर में घुसा। उसने मुझे पागल समझा या क्या, मैं नहीं कह सकता—पर उसी क्षण मुझे याद आया कि मैं दिवंगत अमुक चंद्र का बड़ा लड़का अमुकनाथ हूं। साथ ही यह भी सोचने लगा कि संसार के भीतर या बाहर कहीं भी अमूर्त फव्वारा हमेशा झरता है या नहीं और अदृश्य उंगलियों के आघात से किसी मायामयी वीणा से अनंत रागिनी ध्वनित होती है या नहीं—यह तो हमारे महाकवि ही बता सकते हैं, पर इतना तो बिलकुल सही और सौ फीसदी सच है कि मैं भड़ौंच की हाट से रूई चुंगी वसूल करने वाला रियासत का तनख्वाह पाने वाला नौकर हूं। फिर मैं अपने पूर्व क्षणों की अद्‌भुत मोहमाया की याद करके मेज के पास लैंप के सामने बैठकर अखबार देखता हुआ मजे ले-लेकर हंसने लगा।

अखबार पढ़ने के बाद मैंने मुगलई खाना खाया, फिर उसके बाद कोने वाले अपने छोटे-से कमरे में चला आया और बत्ती बुझाकर बिस्तर पर लेट गया। मेरे सामने की खुली हुई खिड़की से अंधकारपूर्ण जंगल से घिरे हुए अरावली पहाड़ की चोटी के ऊपर जलता हुआ तारा करोड़ों योजन (दूरी मापने की एक इकाई) दूध आकाश से इस छोटी-सी खाट पर पड़े हुए मुझ चुंगी दरोगा की ओर एकटक देख रहा था। मैं उसकी ओर देखता हुआ कब सो गया, मुझे पता नहीं। कितनी देर तक सोता रहा, सो भी नहीं जानता।

एकाएक मैं चौंककर जाग पड़ा। कमरे में कोई आवाज हुई हो या कोई अचानक घुस आया हो, सो बात नहीं। अंधकारमय पर्वत शिखर के ऊपर जो तारा चमक रहा था, वह डूब चुका था। अंधेरे पाख की फीकी चांदनी अनधिकार प्रवेश के संकोच से संकुचित होकर मेरी खिड़की से भीतर घुस रही थी।

अपने कमरे के भीतर मुझे कोई दिखाई नहीं दिया, फिर भी मानो मुझे साफ मालूम होने लगा कि न जाने कौन आकर मुझे अपने कोमल कर स्पर्श से धीरे-धीरे हिला रही है। मैं जागकर बैठ गया। देखा कि वह मुंह से कुछ न कहकर सिर्फ अपनी अंगूठियों से चमकती हुई पांचों उंगलियों से इशारा करके मुझे खूब सावधानी से अपने पीछे-पीछे चले आने का हुक्म दे रही है।

मैं बहुत ही आहिस्ता से उठा। हालांकि उस सैकड़ों कमरों वाले विशाल

महल में मेरे सिवा और कोई भी न था, फिर भी कदम-कदम पर मुझे ऐसी दहशत होने लगी कि कहीं कोई जाग न जाए। उस महल के अधिकांश कमरे बंद रहते थे और उन कमरों में मैं कभी गया भी नहीं था।

रात के उस अंधेरे में हौले-हौले पैर रखता हुआ, अपनी सांस पर पूरा काबू रखकर मैं उस अदृश्य बुला ले जाने वाली के पीछे--पीछे कहां जा रहा था—आज भी उसे मैं ठीक से समझा नहीं सकता। कितने अंधकारपूर्ण पतले मार्ग, कितने लंबे-चौड़े बरामदे, कितने सुनसान दीवानखाने, कितनी छोटी-छोटी बंद कोठरियां पार करता हुआ जाने लगा—उसका कोई ठिकाना नहीं। अपनी उस अदृश्य दूती को यद्यपि मैं आंखों से नहीं देख रहा था, फिर भी उसकी शक्ल-सूरत मेरे मन में थी।

ईरानी तरुणी थी वह। ढीली आस्तीनों में दूधिया संगमरमर जैसे उसके कठिन कोमल गोल-मटोल हाथ दिखाई दे रहे थे। माथे पर लाल मखमल की टोपी थी और उसके नीचे झीने कपड़े की एक नकाब थी, जो उसके कोमल गोल गुलाबी मुखड़े पर बड़ी सुहावनी लग रही थी। कमर से एक रेशमी फेंटा बंधा था और उसमें उरसी थी एक बांकी छुरी।

मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे 'अलिफ लैला' की हजार रातों में से कोई एक रात आज उपन्यास लोक से उड़कर यहां आ गई हो और मैं ऐसा लग रहा था जैसे अंधकारमय रात में सोते हुए बगदाद के संकरे रास्ते से किसी संकटपूर्ण अभिसार के लिए चला जा रहा हूं!

अंत में, मेरी दूती एक गहरे नीले रंग के परदे के सामने जाकर सहसा ठिठककर खड़ी हो गई और नीचे की ओर उंगली का इशारा करके कुछ दिखाने लगी। नीचे कुछ भी न था, फिर भी मेरे हृदय का खून जमकर बर्फ हो गया। मुझे लगा कि उस परदे के सामने जमीन पर कमखाब की पोशाक पहने, गोद में नंगी तलवार लिए, दोनों पैर फैलाए कोई खौफनाक हब्शी खोजा बैठा ऊंघ रहा है। दूती निहायत हलके कदमों से बिना आहट किए उसकी टांगों को लांघ कर परदे के पास पहुंची और धीरे से उसने उसका एक कोना उठाया।

भीतर का थोड़ा-सा हिस्सा मुझे दिखाई दे गया। देखा कि फर्श पर खास फारस का बना बढ़िया गलीचा बिछा हुआ है। भीतर तख्त के ऊपर कौन बैठा हुआ है, यह साफ नजर नहीं आया—सिर्फ केसरिया रंग का ढीला पायजामा और उसके नीचे जरीदार जूतियों समेत गोरे-गोरे दो सुंदर पांव लाल मखमल के आसन पर लापरवाही से पड़े दिखाई दिए।

फर्श पर एक ओर एक स्फटिक की थाली में कुछ सेब, नाशपाती, नारंगी और अंगूर के गुच्छे सजे हुए थे। उसके पास ही एक छोटा-सा प्याला और सुनहरे रंग की अंगूरी शराब से भरी हुई कांच की सुराही किसी आने वाले मेहमान के लिए इंतजार कर रही थी। भीतर से ऐसी एक तरह की अमीरी ढंग की महक और उसके साथ बहुत ही उम्दा खुशबूदार धूप का धुआं चला आ रहा था कि मुझे एक तरह का नशा-सा आ गया।

मैं भी कांपते हुए दिल से खोजा की टांगें लांघकर आगे बढ़ना ही चाहता था कि वह कमबख्त जाग उठा और उसकी गोद में पड़ी हुई नंगी तलवार झन्न से संगमरमर के फर्श पर गिर पड़ी।

अचानक एक विकट चीख सुनकर मैं चौंक पड़ा। आंखें खुलीं तो देखा कि अपनी उस कैंप खाट पर ही मैं पसीने से तरबतर हुआ बैठा हूं। भोर के उजाले से कृष्ण पक्ष का चांद रात भर जगे हुए बीमार की तरह पीला पड़ गया है। बाहर वह पागल मेहरअली अपने रोज के दस्तूर के माफिक पौ फटते ही सुनसान सड़क पर 'दूर रहो, दूर रहो सब! झूठा है, सब झूठा है!' चिल्लाता हुआ महल के चारों तरफ दौड़ रहा है।

इस तरह अरबी उपन्यास 'अलिफ-लैला' की एक रात देखते-देखते खत्म हो गई, मगर उम्मीद इतनी थी कि अब भी एक हजार रातें और बाकी हैं।

मेरे दिन के साथ रात का बड़ा भारी विरोध उठ खड़ा हुआ। दिन में हारी-थकी देह लेकर अपने काम पर जाता और दिन भर वहां स्वप्नमयी मायाविनी रात को कोसता रहता और फिर शाम होते ही अपने दिल के कार्यबद्ध अस्तित्व को बिलकुल झूठा और महज मजाक समझने लगता।

शाम के बाद मैं एक अजीब नशे के जाल में अपने आप फंसकर बुरी तरह उलझ जाता। तब से मैं अपने को सैकड़ों वर्ष पहले के किसी एक अलिखित इतिहास का और कोई व्यक्ति समझने लगता। फिर विलायती तंग कोट और चुस्त पैंट मुझे भद्दा लगने लगता।

तब मैं लाल मखमल की टोपी, ढीला पायजामा, फूलदार कबा तथा रेशम का लंबा चोंगा पहनकर और रंगीन रेशमी रूमाल में अतर डालकर बड़ी दिलचस्पी के साथ अपने को तैयार करता। फिर सिगरेट फेंककर गुलाबजल से भरा लंबी नलीदार बड़ा-सा पेचवान लेकर ऊंचे गद्दीदार मसद पर ऐसे बैठ जाता जैसे कोई प्रेमी रात को किसी अपूर्व प्रिय सम्मिलन के लिए परम आग्रह के साथ तैयार बैठा हो।

उसके बाद अंधकार जितना ही घना होता जाता, उतनी ही न जाने कैसी-कैसी अद्‌भुत घटनाएं होती रहतीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। ठीक ऐसा लगने लगता, जैसे किसी रहस्यपूर्ण विचित्र कहानी के कुछ फटे पन्ने वसंत की आकस्मिक हवा से इस विशाल महल के चित्र-विचित्र कमरों में उड़े फिरते हों। कुछ पन्नों तक सिलसिला मिल जाता, फिर उसके बाद का हिस्सा ढूंढ़े नहीं मिलता। मैं भी उन उड़ते हुए पन्नों का पीछा करता हुआ सारी रात कमरे-कमरे और कोठरी-कोठरी में मारा-मारा फिरता रहता।

उन अजीब-अजीब सपनों के एक-एक टुकड़े में कभी हिना की खुशबू, कभी सितार की झनकार और कभी खुशबूदार पानी की ठंडी-ठंडी बौछारों के साथ आती हुई हवा की हिलोरों में अपनी मानस नायिका को बिजली की लकीर की तरह चमकती हुई देख लिया करता।

मेरी वह मान अभिसारिका केसरिया रंग का पायजामा पहने, अपने दूधिया गुलाबी कोमल पैरों में जरीदार नुकीली जूतियां डाले और उठी हुई छाती पर जरी की बेल-बूटेदार कंचुकी कसे, माथे पर सामने की ओर सुनहरी झालरदार सिंदूरी रंग की शानदार टोली लगाए घने अंधकार में बिजली की तरह क्षण में चमककर छिप जाती।

उसने मुझे पागल कर दिया था। मैं उसके इंतजार में अपनी उस मानस प्रेयसी के सपनों का जटिल मार्ग तय करता हुआ मायापुरी में जाकर वहां की गली-गलो में, कोठरी-कोठरी में इधर से उधर भटकता फिरता। किसी-किसी दिन शाम को जब मैं बड़े आईने के दोनों ओर दो बत्तियां जलाकर बड़ी दिलचस्पी के साथ अपने को शहजादे की पोशाक से सजाने में मशगूल रहता तो सहसा देखता हूं कि आईने में मेरे प्रतिबिंब के बहुत ही पास, क्षण भर के लिए उस ईरानी तरुणी की छाया आ खड़ी हुई है।

उसी क्षण वह अपनी सुराहीदार गरदन हिलाकर अपनी बड़ी-बड़ी भौंरे-सी काली आंखों की पुतलियों से अपने हृदय की गहरी प्रीति और जबरदस्त चाह का इशारा करती हुई दिल का दर्द आंखों के आईने में लाकर कटाक्ष करती और नाचती-थिरकती इठलाती हुई अपने यौवन पुष्पित देह लता को तेजी से ऊपर की ओर घुमाती हुई, क्षण में वेदना, वासना और विभ्रम के हास्य कटाक्ष करती और आभूषण ज्योति की चिनगारियां बरसाती हुई दर्पण की दर्पण ही में विलीन हो जाती।

फिर वन की संपूर्ण सुगंध को लूटता हुआ पवन का एक निरकुंश झोंका आता और मेरी दोनों बत्तियों को बुझाकर चला जाता। मैं भी अपना साज शृंगार छोड़-छाड़कर एक कोने में अपनी खाट पर पड़ जाता। बिस्तर पर पड़ते ही मेरा तन-मन पुलकित हो उठता और मैं आंखें मींचकर सोने की कोशिश करता। उस समय मेरे चारों तरफ वह झोंका, अरावली पहाड़ियों के जंगली फूलों की वह खुशबू मानो किसी अतृप्त प्रेम के बहुत-बहुत प्यार, हजारों-लाखों चुंबन और कोमल कर स्पर्श से उस सुनसान अंधकार को भर देता और वहीं का वहीं चक्कर काटता रहता।

अपने कानों के आस-पास मैं मन को लुभाने वाली सुंदरी तरुणियों की आपस की बातचीत सुनता रहता। मेरे माथे पर उनकी सुगंधित सांस आ-आकर लगती, बार-बार हल्की खुशबू लिए हुए बहुत ही बारीक और मुलायम दुपट्टा आ-आकर मेरे गालों पर पड़ता और उसकी सुरसुराहट से मैं बेचैन हो-हो उठता। धीरे-धीरे वह मोहिनी नागिन अपने मादक वेष्टन से मेरे सारे अंगों को कसकर बांध डालती और मैं मदहोश हो गहरी नींद में खर्राटे लेने लगता।

एक दिन मैंने तय किया कि शाम होने के पहले ही घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिए कहीं निकल जाऊं, पर पीछे से न मालूम कौन मुझे मना करने लगा। फिर मैंने उसकी एक न सुनी। एक खूंटी पर मेरा हैट और कोट टंगा था, मैंने उन्हें उठाकर ज्यों ही पहनना शुरू किया, त्यों ही सुस्ता नदी की रेती और अरावली पहाड़ियों की सूखी पत्तियों का झंडा फहराता हुआ एक जोर का बवंडर अचानक आ धमका और मेरे उस कोट, पैंट व हैट को छीनकर न जाने कहां उड़ा ले गया।

साथ ही एक बड़ी प्यारी और मीठी जोर की हंसी उस तूफान के साथ घूमती हुई दिलचस्पी और कौतुक के हर एक परदे पर उंगलियां रखती हुई, ऊंचे से ऊंचे सप्तक पर चढ़ती हुई आसमान की आख़िरी सतह में जाकर सूरज की रोशनी के साथ विलीन हो गई।

उस दिन फिर मैं घोड़े पर घूमने न जा सका और उसके दूसरे दिन से तो— फिर मैंने साहबी हैट कोट पहनना ही छोड़ दिया।

उस दिन फिर आधी रात को अचानक मैं सोते से उठकर बैठ गया। सुना, मानो कोई छाती कूट-कूटकर गला फाड़-फाड़कर रो रही है—मानो ठीक मेरी खाट के नीचे, जमीन के भीतर उस विशाल महल की पत्थर की नींव के नीचे,

किसी नमीशुदा अंधेरी कब्र के भीतर से रो-रोकर कह रही हो, 'तुम मुझे इस कठोर माया, इस गहरी नींद और फजूल के इन सपनों के सारे दरवाजे तोड़कर अपने घोड़े पर चढ़ाकर, अपनी छाती से चिपटाकर, जंगल के भीतर से, पहाड़ियों के ऊपर से, नदी पार होकर, सूरज की रोशनी से रोशन अपनी खुली हुई आजाद दुनिया में ले चलो। मुझे छुटकारा दे दो, मुझे आजाद कर दो।'

'मैं कौन हूं, मेरी हस्ती ही क्या है? मैं कैसे तुम्हें आजाद कर दूं, मैं कैसे तुम्हारा उद्धार करूं? मैं उस घूमते और बदलते हुए सपनों के तूफानी बहाव में डूबती हुई मुहब्बत और चाह से भरी हुई किस हवसनाक नाजनी को खींचकर किनारे लगाऊं, किस कामना सुंदरी का उद्धार करूं?

'तुम कब थीं, कहां थीं? हे दिव्य रूपिणी! तुम किस शीतल झरने के तट पर, किस खर्जूर कुंज की छाया में, किस गृहहीना मरुवासिनी कोख में पैदा हुई थीं? तुम्हें कौन बद्दू डाकू, वनलता से कली की तरह मां की गोद से तोड़कर, तूफानी चाल चलने वाले अरबी घोड़े पर बैठाकर, जलते हुए रेगिस्तान को पार करके, किस शाही शहर के गुलामों के बाजार में बेचने के लिए ले गया था। वहां किस बादशाह का कौन-सा खैरख्वाह खिदमतगार तुम्हारी इस फूल की तरह तुरंत खिली और शर्म से कांपती हुई जवानी की बहार को देखकर, सोने के सिक्कों के बदले तुम्हें खरीदकर समुद्र पार होकर, सोने की पालकी में बैठाकर अपने शाह के महल में भेंट चढ़ा गया था?

'वहां का कैसा इतिहास था वह! वहां की सारंगी की धुन, नूपुरों की झनकार और छलकती हुई सुनहली शीराजी शराब के बीच चमचमाती हुई कटारों की झलक, विष की ज्वाला, कटाक्षों की चोट, कैसी थी वह! ओफ, कितना फैला हुआ, कितना दौलत शुदा और कैसा अनंत कारागार था वह! भीतर दोनों ओर दासियां अपनी चूड़ियों में हीरे के नगों की चमकाती हुई चंवर डुला रही हैं और शहंशाह बादशाह उनके गोरे पांवों पर माणिक-मोतियों से जड़ी हुई जूतियों के पास लोट रहे हैं!

बाहर...बाहर के दरवाजे पर यमदूत जैसे हब्शी देवदूत जैसी पोशाक पहने, हाथ में नंगी तलवार लिए खड़े हैं! उसके बाद उस खून-खराबा से नापाक, डाह और बदला लेने की हवस में पागल और साजिशों की आग से जलती हुई, ऐश-आराम और दौलत के तूफानी बहाव में बहती हुई, रेगिस्तान की फूल की कली तुम यहां कहां, किस मौत की दुनिया में आ फंसीं! हे

दिव्यरूपिणी! यहां कहां किस निष्ठुर, निर्दय कठोर महिमा तट पर बलि चढ़ा दी गई हो तुम? हे दिव्यरूपिणी! कब थीं, कहां थीं, कहां हो तुम? मैं कैसे तुम्हारा उद्धार करूं?'

इतने में अचानक उस पागल मेहर अली की चीख मेरे कानों में पड़ी, "दूर रहो, दूर रहो सब! झूठा है, सब झूठा है!"

आंखें खोलकर देखा, सवेरा हो गया है। चपरासी ने डाक लाकर मेरे हाथ में दी और बावर्ची आकर पूछने लगा, "आज क्या खाना बनेगा?"

मैंने कहा, "बस, अब इस मकान में नहीं रहना है।"

उसी दिन मेरा सब असबाब उठकर दफ्तर पहुंच गया। दफ्तर का बुड्ढा क्लर्क करीम खां मुझे देखकर कुछ मुसकराया। मैं उसकी मुसकराहट से नाराज-सा हुआ, पर बगैर कुछ जवाब दिए अपना काम करने लगा।

ज्यों-ज्यों शाम करीब आने लगी, त्यों-त्यों मैं अनमना-सा होने लगा। ऐसा लगने लगा जैसे अभी तुरंत कहीं जाना है। रूई के हिसाब जांचने का काम मुझे बिलकुल गैर-जरूरी और वाहियात मालूम हुआ। निजाम की निजामत तक मुझे कोई खास जरूरी चीज नहीं मालूम हुई। चारों तरफ जो कुछ मौजूद है, जो कुछ चल-फिर रहा है, मेहनत-मजदूरी कर रहा है, खा-पी रहा है, वह सबकुछ मुझे बहुत ही वाहियात, बिलकुल नाचीज, बेमतलब का और राह का मुंहताज भिखारी-सा मालूम होने लगा।

मैं कलम फेंककर भारी-भरकम खाते-बही बंद करके फौरन उठ खड़ा हुआ और अपनी टमटम पर बैठकर चल दिया। देखा कि टमटम ऐन गोधूलि के लग्न पर खुद-ब-खुद उस सफेद संगमरमर के बने शाही महल के सामने जा खड़ी हुई। मैं चट से उतरकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां तय करता हुआ बड़ी तेजी से उसके अंदर दाखिल हुआ।

आज सबकुछ खामोश और सुनसान है। ऐसा लगा जैसे महल की सारी अंधेरी कोठरियां मुझसे सख्त नाराज होकर मुंह फुलाए पड़ी हों। अफसोस, रंज और पछतावे से मेरा कलेजा ऊपर को आने लगा, लेकिन किससे कहूं, किससे हाथ जोड़कर माफी मांगूं, कोई भी तो दिखाई नहीं देता। मैं अपना सूना और रोता हुआ दिल लेकर अंधेरी कोठरियों में भटकने लगा।

जब मैं बिलकुल थककर चूर हो गया, तब भीतर से मेरी तबीयत चाहने लगी कि एक सितार हाथ में लेकर किसी को सुनाने के लिए कुछ गाऊं और कहूं कि 'हे दीपशिखा, ओ मेरी शमा! जो पतंगा तुझे छोड़कर भाग जाने की

कोशिश कर रहा था, वह आज फिर अपनी खुशी से जल मरने आया है। अबकी बार तू उसे माफ कर दे। उसके दोनों पंख जला डाल। मेरी तबीयत और मुहब्बत के सिवा और सबकुछ मेरा जलाकर खाक कर दे। तू रह जा और मैं रह जाऊं, बस और कुछ नहीं।'

इतने में एकाएक मेरे माथे पर आंसू की दो बूंदें गिरीं। उस दिन अरावली पहाड़ी की चोटी पर घनघोर बादल मंडरा रहे थे। अंधकारमय जंगल और स्वच्छ नदी का स्याही-सा पानी किसी खौफनाक मेहमान के इंतजार में बैठा था। इतने में सहसा जल, स्थल, आकाश सब एक साथ चौंक पड़े। अकस्मात एक तूफान अपने बिजली के दांत कड़कड़ाता हुआ कुदरत की मजबूत जंजीर को तोड़कर भागे हुए मदोन्मत्त पागल हाथी की तरह मार्गहीन सुदूर वन में से चीखता चिंघाड़ता हुआ दौड़ा चला आया। महल के बड़े-बड़े कमरे अपने सारे के सारे दरवाजों के सिर धुन-धुनकर तीव्र वेदना से पछाड़ खा-खाकर फूट-फूटकर रोने लगे।

आज नौकर-चाकर सब दफ्तर वाले मकान में ही थे। महल में बत्ती जलाने वाला कोई न था। उस बादलों से घिरी हुई अमावस की रात में महल के भीतर उस कसौटी से काले अंधेरे में मैं बिलकुल साफ-साफ देखने लगा कि मेरी वह दिलरुबा, वही ईरानी नाजनी पलंग के नीचे गलीचे पर औंधी पड़ी हुई अपनी दोनों मुट्ठियां बांध-बांधकर अपने बिखरे हुए रूखे बालों को नोच-नोचकर फेंक रही है। उसके गोरे मुलायम माथे से ताजा गरम खून फूट-फूटकर बह रहा है।

कभी वह जोर से 'हा-हा-हा' करके सूखी हंसी हंस पड़ती, कभी फूट-फूटकर रोने लगती—कभी दोनों हाथों से चोली के दामन तोड़कर उसे फाड़-फाड़कर उघड़ी हुई छाती पीटने लगती और खुली हुई खिड़कियों से गरजती हुई तूफानी हवा और मूसलाधार वर्षा की बौछार आ-आकर उसके गम से तपे बदन पर ऐसा छिड़काव करने लगती, जैसे बगैर औलाद की किसी विधवा किंतु तरुण रानी को सिंहासन पर बैठाने के लिए अभिषिक्त कर रही हो।

उस तमाम रात न तो आंधी थमी और न उसका रोना ही बंद हुआ। मैं बेमतलब के गम और पछतावे से गमगीन और बेचैन होकर अंधेरी कोठरियों में भटकता फिरा। कहीं किसी का पता न चला—तसल्ली दूं तो किसे दूं? यह चोट खाया हुआ गम और नाराजगी है किसकी? यह तड़पता हुआ बेचैन पछतावा, यह अंदरूनी गहरे गम का धुआं उठ कहां से रहा है? मैं कुछ समझ न सका।

इतने में पागल मेहर अली न जाने कहां से अचानक चीख उठा, "दूर रहो, दूर रहो सब! झूठा है, झूठा है, सब झूठा है!"

देखा कि सवेरा हो गया है और मेहर अली ऐसे जबरदस्त तूफान और मूसलाधार मेह में भी अपने कायदे को बगैर तोड़े उस प्यासे पत्थर के महल के चारों तरफ रोज की तरह चीखता हुआ दौड़ रहा है। एकाएक खयाल आया कि शायद यह मेहर अली भी मेरी ही तरह किसी समय कमबख्ती का मारा इस महल में आ ठहरा होगा और अब पागल होकर बाहर निकल भागने पर भी पत्थर के बने इस अजगर की तेज सांस के खिंचाव से खिंच-खिंचकर रोज सवेरे इसके चारों तरफ चक्कर काटा करता है। न भीतर आकर अपना खात्मा ही कर पाता है और न बाहर रहकर जिंदादिली से जिंदगी ही बिता सकता है।

मैं उसी वक्त उसी आंधी-मेह में दौड़ा-दौड़ा उस पागल के पास पहुंचा और उससे कहने लगा, "भाई मेहर अली, क्या झूठ है—मुझे बताओ न?"

मेरी बात का कोई जवाब न देकर, जोर का एक धक्का मारकर मुझे गिराकर अजगर के मुंह के कौर की तरह खिंचता हुआ और चक्कर काटता हुआ, मोह में पड़े पक्षी की तरह चीखता हुआ वह उस प्यासे पत्थर के महल के चारों तरफ लगातार घूमता ही रहा। बीच-बीच में अपने को होशियार और काबू में रखने के लिए बार-बार सिर्फ एक ही बात चिल्ला-चिल्लाकर कहता रहा, "दूर रहो, दूर रहो सब! झूठा है, सब झूठा है!"

मैं उसी वक्त, उसी हालत में, उस आंधी-मेह में पागल की तरह घबराया हुआ दफ्तर पहुंचा और करीम खां को पास बुलाकर मैंने उससे धीरे से पूछा, "इसके मानी क्या हैं? मुझे साफ-साफ बताओ?"

बुड्ढे ने जो कुछ कहा, उसका मतलब सिर्फ इतना ही था कि किसी जमाने में उस शाही महल में असंख्य वासनाएं जवानी की उमंगों से भरी हुई बेचारी बेशुमार बांदियों के दिलों की बेकरार ख्वाहिशें और मदोन्मत्त भोग संभोग की झुलसा देने वाली लपटें हरदम उमड़ती-घुमड़ती और लहरें लिया करती थीं। बेकरार दिलों की उन सब चिनगारियों से, फूल की कली-सी उन सब बेबस जिंदगियों की बद्दुआ से पत्थर के बने इस शाही महल का हर एक पत्थर अभी तक भूखा और प्यासा तड़प रहा है और इसीलिए अपने आस-पास किसी जिंदा आदमी को पाते ही उसे खून के प्यासे पिशाच की तरह खा डालना चाहता है। उसका खून पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहता है।

आज तक जो लोग उस महल में तीन रातें रहे हैं, उनमें से सिर्फ मेहर अली ही पागल होकर बाहर निकल पाया है, वरना और कोई भी इसके पास से बचा नहीं।

मैंने पूछा, "मेरे उद्धार की भी कोई तकरीब बता सकते हो?"

बुड्ढे ने कहा, "सिर्फ एक ही तरकीब है और वह बहुत ही मुश्किल है। मैं तुम्हें बताए देता हूं, लेकिन उससे पहले उस गुलबाग की एक जरखरीद ईरानी बांदी का किस्सा बताना बहुत जरूरी है। वैसा ताज्जुब का और वैसा दिल दहलाने वाला हादसा शायद ही दुनिया में पहले कभी किसी ने सुना होगा।"

इतने में स्टेशन के कुलियों ने आकर खबर दी, "गाड़ी आ रही है, हुजूर!"

इतनी जल्दी? झटपट बिस्तर बांधते-बंधवाते गाड़ी आ पहुंची। उस गाड़ी के फर्स्ट क्लास कंपार्टमेंट से तुरंत ही सोते से उठा हुआ एक अंगरेज खिड़की में से गरदन निकालकर स्टेशन का नाम पढ़ने की कोशिश कर रहा था। वह हमारे उन बाबू साहब को देखते ही 'हैलो!' कहकर चिल्ला उठा और हाथ के इशारे से उसने उन्हें अपने डब्बे में बुला दिया।

हम लोग एक सेकंड क्लास डब्बे में लद गए। फिर उन बाबू साहब का आज तक कुछ पता ही न लगा। अफसोस कि ऐसे दिलचस्प किस्से का आखिरी हिस्सा हम सुन ही न पाए।

मैंने अपने साथी मित्र से कहा, "देखा हजरत, हम दोनों को बेवकूफ बनाकर कैसा चकमा दे गया पट्ठा! मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि शुरू से लेकर आखिर तक सारा किस्सा बेबुनियाद और मनगढ़ंत है।"

इस पर हम दोनों में इतनी बहस हुई और उसका दोनों दिलों पर ऐसा असर पड़ा कि हम दोनों में जिंदगी भर के लिए बोलचाल ही बंद हो गई।

❑❑

7

एक बरसाती कहानी

यहां से बहुत दूर, उससे भी दूर समुद्र के बीच एक द्वीप है। वहां सिर्फ ताश के बादशाह, ताश की बेगम, ताश के इक्के और ताश ही के गुलाम रहते हैं। दुरी-तिरी से लेकर नहला-दहला तक और भी अनेक गृहस्थों के घर हैं, पर उनकी शुमार ऊंची जात में नहीं।

इक्का, बादशाह और गुलामये तीन ही मुख्य वर्ण हैं, नहला-दहला आदि अंत्यज हैं। इक्का बादशाह के साथ एक पंक्ति में बैठने का उन्हें हक नहीं।

पर उनकी शृंखला बड़ी अच्छी है, किसकी कितनी कीमत और इज्जत है, यह बहुत पहले से ही तय हो चुका है। उसमें से जरा भी इधर-उधर नहीं हो सकता। सभी कोई निर्दिष्ट नियमानुसार अपना-अपना काम करते रहते हैं। यह चलना केवल वंशानुक्रम से अपने पूर्वजों की लकीर पर चलना मात्र है। जैसे 'अ आ इ ई' को पढ़ने वाला लड़का पट्टी पर लिखे हुए हरफों पर हाथ चलाता रहता है, वैसे ही।

इनका काम क्या है, सो विदेशियों के लिए समझना मुश्किल है। सहसा देखने से खेल मालूम देगा। सिर्फ नियम से चलना-फिरना, नियम से आना-जाना और नियम से उठना-बैठना। बस, यही काम है उनका। अदृश्य हाथ उन्हें चलाते हैं और वे चलते हैं।

उनके चेहरों पर भावों का कोई परिवर्तन नहीं होता। हमेशा से उन पर एक ही भाव की मुहर लगी हुई है, जैसे आंखें फाड़-फाड़कर देखती हुई तस्वीर हों। बाबा आदम के जमाने से अब तक, सिर की टोपी से लेकर पैर के जूते तक, ज्यों के त्यों एक से बने हुए हैं।

किसी को भी कभी कुछ सोचना नहीं पड़ता, विचारना नहीं पड़ता, सभी

कोई निर्जीव की तरह चुपचाप चला-फिरा करते हैं। गिरते समय बिना आहट के चुपके से गिर जाते हैं और स्थिर दृष्टि से चित होकर आकाश की ओर देखते रहते हैं।

किसी को कोई आशा नहीं, अभिलाषा नहीं, नए मार्ग पर चलने की चेष्टा नहीं, हंसना नहीं, रोना नहीं, संदेह नहीं, दुविधा नहीं, कुछ नहीं। पिंजरे के अंदर जैसे चिड़िया फड़फड़ाती है। इन चित्रवत् मूर्तियों के अंत:करण में वैसा किसी जीवित प्राणी के अशांत पश्चाताप जैसा कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।

पर किसी समय इन पिंजरों में जीवों का वास था और तब पिंजरा हिलता-डुलता था, भीतर से चिड़ियों के पंखों की आवाज और चुरचुराट सुनाई पड़ती थी, गहन वन और विस्तृत आकाश की बात याद आती थी। पर अब सिर्फ पिंजरे की संकीर्णता और सिलसिले से लगी हुई लोहे की सींकों का ही अनुभव होता है। चिड़ियां उड़ गईं या हुई पड़ी हैं, यह कौन कह सकता है?

गजब का सन्नाटा है, बड़ी शांति है। पूरा आराम है, बड़ा संतोष है। रास्ते में, घाट में, घर में, आंगन में सर्वत्र संयत वायुमंडल है। कहीं कोई शब्द नहीं, द्वंद्व नहीं, उत्साह नहीं, आग्रह नहीं, केवल रोजमर्रा के छोटे-मोटे काम हैं और थोड़ा बहुत आराम है।

समुद्र ने अविश्राम सुरतान की धुन में, तट पर हजारों फेन शुभ्र कोमल हथेलियों के आघात से समस्त द्वीपों को मीठी नींद सुला रखा है। पक्षी माता के फैले हुए नील पंखों के समान आकाश दिग्दिगंत की रक्षा कर रहा है। बहुत दूर उस पार गहरी नील रेखा के समान विदेश का आभास दीख पड़ता है। वहां से राग-द्वेष का द्वंद्व कोलाहल समुद्र पार होकर नहीं आ सकता।

2

समुद्र के उस पार, उस विदेश में किसी तिरस्कृत रानी का लड़का, एक राजकुमार रहता है। वह अपनी निर्वासित माता के साथ समुद्र के किनारे अपनी धुन में बचपन बिता रहा है।

वह अकेला बैठा-बैठा मन ही मन आशा का एक बड़ा भारी जाल बुन रहा है। उस जाल को दिशा-विदिशा में फैलाकर कल्पना से विश्व जगत के नए-नए रहस्यों को फंसाकर अपने द्वार के सामने इकट्ठा करता जाता है। उसका अशांत मन समुद्र के किनारे आकाश की सीमा पर उस दिगंत रोधी नील पर्वत माला के उस पार हमेशा विचरण करता फिरता है।

वह जानना चाहता है कि पक्षीराज घोड़ा कहां मिलता है ? सर्प के मस्तक की मणि कहां मिलती है ? पारिजात पुष्प और सोने-चांदी की जादू की लकड़ी कहां मिलती है ? सात समुद्र, तेरह नदियों के उस पार दुर्गम दैत्य भवन में सपने की अलोक सुंदरी राजकुमारी कहां सो रही है ?

राजपुत्र पाठशाला में पढ़ने जाता है। वहां से लौटकर सौदागर के बेटे से देश-विदेश की बातें और कोतवाल के बेटे से ताल-बेताल की कहानियां सुनता है। रिमझिम-रिमझिम मेह बरसता और बदलों से तमाम दिशाएं अंधकारमय हो जातीं। उस समय घर के द्वार पर मां के पास बैठकर समुद्र की ओर देखता हुआ राजपुत्र कहता, "मां, कोई खूब दूर देश की कहानी सुनाओ न, मां!"

मां बहुत देर तक अपने बचपन में सुनी हुई किसी अपूर्व देश की अपूर्व कहानी सुनाने लगती और वर्षा के 'झरझर' शब्द के साथ उस कहानी को सुनकर राजपुत्र का मन उदास हो जाता।

एक दिन सौदागर के बेटे ने आकर राजकुमार से कहा, "मित्र, पढ़ाई तो खत्म हो चुकी, अब कहीं देश भ्रमण के लिए जाऊंगा। तुमसे विदा लेने आया हूं।"

राजकुमार ने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

कोतवाल के बेटे के कहा, "मुझे अकेला ही छोड़ जाओगे ? मैं भी तो साथी हूं तुम्हारा ?"

राजकुमार ने अपनी दु:खिनी मां से जाकर कहा, "मां, मैं देश भ्रमण के लिए जा रहा हूं। अब तुम्हारा दुख दूर करने का उपाय कर आऊंगा।"

तीनों मित्र चल दिए।

3

समुद्र में सौदागर की बारह नावें बिलकुल तैयार खड़ी थीं। तीनों मित्र उनमें जा बैठे। दखिनी हवा से पाल भर गए और नावें राजपुत्र की मनोवासना की तरह दौड़ती हुई चलने लगीं।

शंख द्वीप में जाकर उन लोगों ने एक नाव शंखों से भरी, चंदन द्वीप में जाकर एक नाव चंदन से भरी और प्रवाल द्वीप में जाकर एक नाव प्रवालों से भरी।

उसके बाद और चार बरसों में जब गजदंत, कस्तूरी, लौंग और जायफल

से और चार नावें भर गईं, तब सहसा एक बड़ा भारी तूफान उठ खड़ा हुआ।

सब नावें डूब गईं, सिर्फ एक नाव बची, जिसने तीनों मित्रों को द्वीप में बुरी तरह पटक दिया और खुद टुकड़े-टुकड़े हो गई।

उस द्वीप में ताश के इक्के, ताश के बादशाह, ताश की बेगम और ताश ही के गुलाम अपने-अपने कायदे से रहते और दहला-नहला आदि भी उनकी सेवा बजाते हुए नियमानुसार दिन काटते हैं।

4

ताश के राज्य में अब तक कोई उपद्रव नहीं था। अब पहले पहल यहां उपद्रव शुरू हुआ। इतने दिनों के बाद यह तर्क उठा कि ये तीन आदमी, जो सहसा एक दिन शाम को समुद्र से निकलकर आए हैं। इन्हें किस वर्ग या श्रेणी में रखा जाए?

पहले तो यह विचारणीय बात है कि इनकी जाति क्या है, इक्का, बादशाह, गुलाम या नहला-दहला? दूसरी बात यह कि इनका गोत्र क्या है—हुक्म, पान, ईंट या चिड़ी?

इन सब बातों के बगैर सुलझे इनके साथ किसी तरह का व्यवहार करना कठिन है। ये किनका अन्न खाएंगे, किनके साथ रहेंगे। इनमें से अधिकार भेद से कौन वायुकोण में, कौन नैर्ऋत्य कोण में, कौन ईशान कोण में सिराहना रख कर सोएगा और कौन खड़े-खड़े? इन सब बातों का कुछ भी निर्णय नहीं हो रहा।

इस राज्य में इतनी जबरदस्त दुश्चिंता का कारण इससे पहले कभी नहीं आया। पर भूख के मारे तड़पते हुए विदेशी मित्रों को इन सब गहन विषयों की रंचमात्र भी चिंता न थी। उन्हें किसी तरह खाने-पीने को मिल जाए तो वे लाखों पा जाएं। जब देखा कि लोग उन्हें खिलाने-पिलाने में संकोच कर रहे हैं और विधि-विधान ढूंढ़ने के लिए इक्के बड़ी-बड़ी सभाएं कर रहे हैं। तब वे, जहां जो कुछ मिला, खाने-पीने लगे।

उनके इस बरताव से दुरी-तिरी तक दंग रह गईं। तिरी ने कहा, "भाई चौआ, इनके कोई परहेज विचार नहीं है!"

दुरी ने कहा, "बहन तिरी, इससे तो साफ मालूम पड़ता है कि ये हम लोगों से भी नीची जाति के हैं।"

खा-पीकर ठंडे होकर तीनों मित्रों ने देखा कि यहां के लोग कुछ नए ही ढंग के हैं। मानो संसार में उनकी कहीं भी जड़ नहीं है। मानो इसकी चोटी पकड़कर किसी ने इन्हें उखाड़ लिया है और ये संसार के स्पर्श के हटकर त्रिशंकु की तरह लटक रहे हैं। जो कुछ भी ये करते हैं, मानो वह कोई दूसरा ही कर रहा है। ठीक पुतली नाच की झूलती हुई पुतलियों का-सा इनका हाल है। इसी से किसी के मुंह पर कोई भाव नहीं, कोई चिंता नहीं, सभी अत्यंत गंभीर चाल से एक ओर ही बंधे हुए नियम से चल-फिर रहे हैं। फिर भी कुल मिलाकर ये बड़े अजीब, बड़े विचित्र से लगते हैं।

चारों तरफ इस तरह की जीवित निर्जीवता का गंभीर रंग-ढंग देखकर राजकुमार आकाश की ओर मुंह उठाकर कहकहा मार के हंस पड़ा और उसकी वह आंतरिक कुतूहलपूर्ण उच्च हास्य ध्वनि ताश राज्य के सुनसान मार्ग में बड़ी विचित्र सुनाई दी। यहां के सभी लोग ऐसे सुगंभीर हैं कि कुतूहल अपने अकस्मात निकले हुए उच्छृंखल शब्द से आप ही चकित हो गया, म्लान होकर बुझ गया और चारों तरफ का लोकप्रवाह पहले से कहीं दूना स्तब्ध और गंभीर मालूम होने लगा।

दोनों मित्रों ने व्याकुल होकर राजकुमार से कहा, "मित्र, इस निरानंद भूमि पर अब तो एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता। यहां और दो-चार दिन रह गए तो बीच-बीच में अपने को छू-छूकर देखना पड़ेगा कि जिंदा हैं या मर गए!"

राजकुमार ने कहा, "नहीं भाई, मुझे बड़े मजे आ रहे हैं। देखने में ये आदमी जैसे लगते हैं, पर इनमें एकआध बूंद जीवित वस्तु भी है या नहीं, एक बार हिला-डुलाकर देख तो लेना चाहिए।"

5

कुछ समय इसी तरह बीत गया। मगर ये तीनों विदेशी युवक वहां के किसी नियम के जाल में नहीं फंसे। वहां जब जिस समय उठना, बैठना, मुंह फेरना, चित होना, औंधे होना, सिर हिलाना, कलाबाजी खाना चाहिए, ये उनमें से कोई भी काम न करते, बल्कि मजे ले-लेकर देखते और हंसते रहते। यह बात कभी उनके दिमाग में भी न आती कि यहां के इन विधिविहित असंख्य क्रियाकलापों में कोई गंभीरता भी हो सकती है।

एक दिन इक्का, बादशाह और गुलाम ने आकर राजपुत्र, कोतवाल के

लड़के और सौदागर के बेटे से, फूटे बरतन की तरह बजकर बड़ी गंभीरता से पूछा, "तुम लोग नियम के माफिक क्यों नहीं चलते?"

तीनों मित्रों ने उत्तर दिया, "हमारी तबीयत?"

ताश राज्य के अधिनायक ने बड़े आश्चर्य के साथ, मानो सपने से जागकर पूछा, "तबीयत! वह ससुरी कौन-सी बला है?"

पहले तो किसी भी तरह उनकी समझ ही में न आया कि तबीयत क्या चीज है, पर बाद में धीरे-धीरे समझ गए। वे प्रतिदिन देखने लगे कि इस तरह न चलकर उस तरह चलना भी संभव है, जैसे 'इधर' है, वैसे 'उधर' नाम की भी कोई चीज है। विदेश से तीनों जीते जागते दृष्टांतों ने आकर समझा दिया कि विधान की चारदीवारी के भीतर की मनुष्य की संपूर्ण स्वाधीनता की सीमा नहीं है। इसी तरह वे आगे चलकर 'तबीयत' नाम की एक राजशक्ति के प्रभाव को अस्पष्ट रूप से अनुभव भी करने लगे।

ज्यों ही राजशक्ति का उन्हें अनुभव हुआ, त्यों ही ताश राज्य इस छोर से लेकर उस छोर तक कुछ-कुछ हिल उठा और सोए पड़े बड़े भारी अजगर की बहुत-सी कुंडलियों के अंदर जिस तरह अत्यंत मंद गति से जागरण संचरण करता है, उस तरह उसमें जागरण शुरू हो गया।

6

इतना सबकुछ होते हुए भी निर्विकार मूर्ति बेगमों ने अब तक किसी की ओर आंख उठाकर नहीं देखा, चुपचाप बिना किसी घबराहट के वे अपना काम कर रही थीं। एक दिन वसंत की संध्या को इनमें से एक ने अचानक चकित होकर अपनी आंखों की काली-काली बरौनियों को ऊपर उठाकर राजपुत्र की ओर मुग्ध और कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखा।

राजपुत्र चौंक उठा बोला, "अरे, यह क्या! मैंने तो समझा था कि संगमरमर की मूर्ति हैं! सो बात तो नहीं, यह तो नारी है!"

फिर अपने दोनों मित्रों को एकांत में ले जाकर राजपुत्र ने कहा, "भई, इनमें तो बड़ा माधुर्य है, बड़ी मिठास है। देखो न, इनकी भावुकतापूर्ण स्निग्ध सजल काली-काली आंखें तो देखो! इनके पहले ही कटाक्ष से मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि मैंने किसी नई दुनिया में आकर प्रथम उषा का उदय देखा! अहा, इतने दिनों तक धीरज के साथ रहना हमारा आज सार्थक हुआ।"

दोनों मित्र बड़े कुतूहल के साथ हंसते हुए बोले, "सचमुच!"

और उधर वह पान की बेगम आए दिन अपने नियमों को भूलने लगी। उसे अब जहां हाजिर होना चाहिए, सो न होकर वह बार-बार सबकुछ भूल जाने लगी। मान लो, जब उसे गुलाम के बगल में पंक्तिवार खड़ा होना चाहिए, तब वह सहसा राजपुत्र के बगल में जाकर खड़ी हो जाती और तब गुलाम दृढ़ और गंभीर स्वर में कह उठता, "बीवी, तुम भूल गईं?"

सुनकर पान की बेगम के गुलाबी गाल और भी सुर्ख हो उठते, उसकी निर्निमेष दृष्टि नीचे को झुक जाती।

राजपुत्र उत्तर देता, "कुछ भूल नहीं हुई, आज से मैं ही गुलाम हूं।"

तुरंत खिले हुए रमणी हृदय से यह क्या अपूर्व शोभा निकलने लगी। यह कैसा अचिंतनीय लावण्य विकसित होने लगा! उसकी गति में यह कैसी सुमधुर चपलता है, उसकी निगाहों में यह कैसी मधु की तरंगें हैं, उसके सारे अस्तित्व से यह कैसा एक तरह का सुगंधिमय अनुराग और व्यथा का उच्छ्वास उच्छ्वसित हो रहा है!

इस नवीन अपराधिनी की भूल सुधारने की तरफ ध्यान देते हुए अब तो और सबसे गलतियां होने लगीं। इक्का अपने समीचीन मान की रक्षा करना भूल गया। बादशाह और गुलाम में अब कोई भेद भाव न रहा, नहला-दहला भी न जाने कैसे हो गए।

इस पुराने द्वीप में वसंत की कोयल बहुत बार बोली है, पर अबकी बार जैसी बोली है वैसी शायद पहले कभी नहीं बोली। समुद्र हमेशा से एक ही तरह का स्वर अलापता आ रहा है, शुरू से लेकर अब तक वह सनातन विधान की अलंघनीय महिमा ही एक स्वर में गाता आया है, पर आज वह सहसा दखिनी हवा से चंचल विश्वव्यापी यौवन तरंगों की तरह प्रकाश और छाया में, भाव और भाषा में, अपनी अथाह आकुलता व्यक्त करने की कोशिश करने लगा।

7

क्या यही वह इक्का है, यही वह बादशाह है, यही वह गुलाम है? कहां गए वे परिपुष्ट पुरितुष्ट गोल-मटोल सुंदर चेहरे? आज तो कोई आकाश की ओर देख रहा है तो कोई समुद्र के किनारे बैठा न जाने क्या सोच रहा है, किसी को रात में नींद नहीं आती तो किसी को भोजन नहीं रुचता।

किसी के चेहरे पर ईर्ष्या है तो किसी के अनुराग, किसी के चेहरे पर व्याकुलता है तो किसी के संशय। कहीं हंसी है तो कहीं रोग, कहीं विषाद है तो कहीं संगीत। आज सभी एक बार अपनी तरफ और एक बार दूसरे की तरफ देख रहे हैं, सभी अपने साथ दूसरों की तुलना कर रहे हैं।

इक्का सोच रहा है कि नौजवान बादशाह वैसे देखने में तो बुरा नहीं है, पर उसके चेहरे पर खूबसूरती नहीं, मेरे चाल-चलन के अंदर ऐसी एक महानता है कि किसी-किसी खास व्यक्ति की निगाह मेरी तरफ खिंचे बिना रह ही नहीं सकती।

बादशाह सोच रहा है कि इक्का हमेशा बड़े मिजाज से गरदन टेढ़ी किए इठलाता रहता है, वह समझता है कि 'उसे देखकर बेगमों की छाती फटती होगी!' मन ही मन यह कहता हुआ वह जरा तिरछी हंसी हंसकर दर्पण में अपना मुंह देख लेता।

देश भर में जितनी भी बेगम थीं, सबकी सब खूब शृंगार करतीं और आपस में एक दूसरी से कहतीं, "बस अब रहने भी दो! गर्विता नायिका के लिए इतनी सज-धज की धूम क्यों? तेरा रंग-ढंग देखकर मुझे तो शरम आती है!" और फिर पहले से दूने उत्साह और उद्यम से अपने हाव-भाव फैलाती रहतीं।

कहीं दो सखा तो कहीं दो सखियां मिलकर गलबहियां डाले एकांत में बैठी आपस में गुप्त बातचीत करती रहतीं। कभी हंसती तो कभी रोतीं, कभी गुस्सा होतीं तो कभी रूठ जातीं और पीछे से फिर मनाती फिरतीं।

युवकगण सड़क के किनारे, वन की छाया में, पेड़ों की जड़ से पीठ टेके सूखे पत्तों पर पैर पसारे आलस में बैठे रहते। नवयुवतियां सुनील वस्त्र पहने उस छाया-पथ से अपनी धुन में चलती हुई वहां आकर निगाहें नीची करके इस तरह आंखें फेर लेतीं, जैसे किसी को उन्होंने देखा ही नहीं, मानो यहां वे किसी को दिखाई देने नहीं आईं। ऐसा हाव-भाव दिखलाती हुई वहां से निकल जातीं।

उनकी इन शरारतों को देखकर कोई-कोई पागल युवक दुस्साहस की लकड़ी टेकता हुआ जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ किसी एक के पास पहुंच जाता और मन के पसंद की एक भी बात जब उसे याद न आती तो शर्मिंदा होकर खड़ा रहा जाता। इस तरह अनुकूल अवसर उसके हाथ से निकल जाता और तरुणी भी अतीत क्षण की तरह क्रमशः दूर जाकर विलीन हो जाती।

सिर पर चिड़ियां बोलती रहतीं, वसंत की हवा आंचल और अलकें

उड़ाती हुई सनसनाती चली जाती, पेड़ों के पत्ते 'झर-झर,' 'मर-मर' शब्द करते रहते और समुद्र उन तरुण-तरुणियों के हृदय की अव्यक्त इच्छाओं को अपनी लगातार उठती हुई लहरों और ध्वनियों को झूले में बैठाकर तेजी से बढ़ाता रहता। किसी एक वसंत में तीन विदेशी युवकों ने आकर सूखी गंगा में ऐसा ही एक भारी तूफान खड़ा कर दिया।

8

राजकुमार ने देखा कि ज्वार-भाटा के उतार-चढ़ाव में सारा देश स्तंभित हो गया है। किसी के मुंह पर कोई बात नहीं, सिर्फ एक दूसरे का मुंह ताकना, एक कदम बढ़ना और दो कदम पीछे हटना, अपने मन की वासनाओं का ढेर लगाकर बालू के महल चिनना और तोड़ना। सभी अपने घर के एक कोने में बैठे अपनी ही अग्नि में अपनी आहुति दे रहे हैं। दिनोदिन वे दुबले-पतले कमजोर और खामोश से होते जा रहे हैं। सिर्फ उनकी आंखें ही आंखें जल रही हैं। मन की बात होंठों तक आकर उन्हें इस तरह कंपाकर रह जाती है, जैसे नए पेड़ के कोमल पत्ते हवा से कांपते हैं।

राजपुत्र ने सबको बुलाकर कहा, "बांसुरी लाओ, तुरही-भेरी बजाओ, सब मिलकर आनंद ध्वनि करो, पान की बीबी स्वयंवरा होंगी आज!"

उसी समय नहले-दहले ने अपनी-अपनी बांसुरी बजाना शुरू कर दिया, दुरी-तिरी तुरही-भेरी लेकर तैनात हो गईं। अचानक उस तरह की आनंद तरंग से पहले की वह कानाफूसी और मुंह देखा-देखी सब बंद हो गई।

आनंद उत्सव में स्त्री-पुरुष सब एक साथ मिलकर कितनी बातें, कितनी हंसी, कितने मजाक करने लगे, मसखरी-मसखरी में कितनी मन की बातें कहीं, व्यंग्य ही व्यंग्य में कितनी नाराजगी और अविश्वास जाहिर किया, उच्च हास्य में कितनी तुच्छ बातें होती रहीं, कोई ठीक है! घने जंगल में जोरों की हवा चलने पर जैसे शाखाओं-शाखाओं और पत्तों-पत्तों में, लताओं-लताओं और पेड़ों-पेड़ों में परस्पर नाना प्रकार से हिलना-डुलना, मिलना-जुलना होता रहता है, उनमें भी वैसा ही होने लगा।

ऐसे कोलाहल और आनंदोत्सव में बांसुरी सवेरे से ही बड़े मीठे सुर में शहाना रागिनी गाने लगी है। आज के इस आनंद में गंभीरता का, मिलन में व्याकुलता का, विश्व दृश्य में सुंदरता का और दृश्य में प्रीति की वेदना का

संचार होने लगा। जो अच्छी तरह प्रेम नहीं करते थे, वे खूब प्रेम करने लगे और जो खूब प्रेम करते थे, वे मारे आनंद के उदास हो गए।

पान की बीबी रंगीन कपड़े पहनकर तमाम दिन एक गुप्त छाया-कुंज में बैठी रही। उसके कानों में भी दूर से शहाना की तान पहुंच रही थी और आंखें उसकी मुंदी जाती थीं। सहसा उसने आंखें खोलकर देखा कि सामने राजपुत्र बैठा हुआ उसके मुंह की तरफ देख रहा है। उसे कंपकंपी आ गई, दोनों हाथों से अपना मुंह ढककर वह जमीन पर धूल में लोट गई।

राजपुत्र दिनभर अकेले समुद्र के किनारे घूमता हुआ उसकी विह्वल दृष्टि और लज्जा के मारे जमीन पर लोटने की बात की मन ही मन आलोचना करने लगा। रात को सैकड़ों-हजारों दीपों के प्रकाश में, मालाओं की सुगंध में, बांसुरी की धुन में, वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित मचलते-हंसते हुए युवकों की सभा में एक तरुणी कंपित चरणों से माला हाथ में लिए आई और धीरे-धीरे राजपुत्र के सामने आकर मस्तक झुकाकर खड़ी हो गई।

पर अभिलषित कंठ तक न उसकी माला पहुंची और न अभिलषित मुंह की ओर वह आंख उठाकर निहार ही सकी। उसकी दशा देखकर राजपुत्र ने स्वयं ही सिर झुका दिया और माला स्वयंवरा के हाथ से स्खलित होकर उसके कंठ में आ पड़ी। चित्रवत निस्तब्ध सभा सहसा एक अपूर्व आनंदोल्लास से गूंज उठी। सबने वर-वधू को बड़े आदर के साथ सिंहासन पर बैठाया, फिर सबने मिलकर राजपुत्र का राज्याभिषेक किया।

इसके कई दिन बाद समुद्र पार की निर्वासित दुखिया रानी सोने की नाव पर बैठकर अपने पुत्र के नवीन राज्य में आ गईं।

तस्वीरों का गुट सहसा आदमी बन गया। अब यहां पहले की तरह अविच्छिन्न शांति और अपरिवर्तनीय गंभीरता नहीं है। संसार प्रवाह ने अपने सुख-दुख, राग-द्वेष, संपद-विपद के साथ-साथ इस नवीन राजा के नए राज्य को परिपूर्ण और हरा-भरा कर डाला है। अब यहां कोई अच्छा है तो कोई बुरा, किसी को विषाद है तो किसी को कुछ, सब तरह के आदमी हैं। अब सब अलंघ्य विधि-विधान के अनुसार निरीह नहीं, बल्कि अपनी इच्छा के अनुसार सज्जन और दुर्जन हैं।

❑❑

8

मुक्ति का उपाय

फकीरचंद बचपन ही से गंभीर प्रकृति के आदमी थे। बड़े-बूढ़ों में बैठते तो जंच जाते। ठंडा पानी, सर्दी, ओस और हंसी-मजाक उन्हें कतई न सुहाता। एक तो वैसे ही चेहरा गंभीर, उस पर उसके चारों तरफ काले रंग का ऊनी गुलूबंद लपेटे रहते। इससे वह बहुत ही ऊंचे दरजे के आदमी मालूम पड़ते।

इसके सिवा, बहुत ही कम उमर में उनके होंठ और ठोड़ी, गाल दाढ़ी-मूंछों से बहुत ढक जाने के कारण चेहरे पर ऐसी कोई जगह ही न रह गई कि जहां से हंसी निकलती और दिखाई देती।

उनकी पत्नी हेमवती की उमर कम है और उसका मन सांसारिक विषयों में खूब ज्यादा लगा हुआ है। वह बंकिम बाबू के उपन्यास पढ़ना चाहती है और पति को ठीक देवता जैसा मानकर उनकी पूजा करके तृप्त नहीं होना चाहती। वह जरा कुछ हंसी-मजाक और राग-रंग पसंद करती है, खिलता हुआ फूल जैसे हवा और प्रभात के प्रकाश के लिए व्याकुल हो उठता है उसी तरह वह अपने नवयौवन के समय पति से लाड़-प्यार और हंसी-मसखरी पाने की काफी आस रखती है। लेकिन पतिदेव छुट्टी पाते ही उसे 'भागवत' पढ़ाते, शाम को, 'भगवद्गीता' सुनाते और उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए बीच-बीच में कभी-कभी शारीरिक शासन करने में भी कसर नहीं रखते।

जिस दिन हेमवती के तकिये के नीचे से 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' निकला था। उस दिन उस बेचारी सौभाग्यवती युवती की सारी रात आंसू बहाते बीती और तब कहीं फकीरचंद को तसल्ली हुई। एक तो उपन्यास पढ़ना और फिर पतिदेव को धोखा देना! कुछ भी हो, लगातार आदेश, अनुदेश, उपदेश धर्मनीति और दंड नीति की चोट सहते-सहते अंत में हेमवती के मुंह की हंसी,

मन का सुख और यौवन का आवेग बिलकुल जाता रहा और उस तरह उसके पतिदेव को नारी पीड़न में पूरी सफलता मिल गई।

पर अनासक्तों के लिए संसार में अनेक मित्र हैं। एक के बाद एक फकीर के एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई, जिससे गृहस्थी का बंधन और भी बढ़ गया। पिता की ताड़ना से इतने बड़े गंभीर प्रकृति फकीरचंद को भी ऑफिसों में नौकरी की उम्मीदवारी में घूमना पड़ा, पर नौकरी मिलने की कोई भी उम्मीद नहीं दिखाई दी।

अंत में उन्होंने सोचा कि बुद्धदेव की तरह मैं भी गृहस्थी त्याग दूंगा। यह विचारकर एक दिन आधी रात को वह घर छोड़कर चल दिए।

2

बीच का थोड़ा-सा और इतिहास है, जिसका कहना जरूरी है। नौगांव निवासी छठीलाल के एक ही लड़का था। नाम था माखनलाल। ब्याह के बाद जल्दी कोई बाल-बच्चा न होने के कारण, पिता के अनुरोध और नवीनता के प्रलोभन से उन्होंने एक और ब्याह कर लिया। इस ब्याह के बाद क्रमश: उनकी दोनों पत्नियों से सात लड़कियां और एक लड़का पैदा हुआ।

माखनलाल आदमी बड़े शौकीन और चंचल प्रकृति हैं, किसी भी तरह के भारी कर्त्तव्य के द्वारा अपने को बंधन में डालना उन्हें कतई पसंद नहीं, उनकी जीवन नैया पर एक तो बाल-बच्चों का पूरा भार, उस पर दोनों कर्णधारों ने मिलकर जब दोनों तरफ से जोरों से झोंका मारना शुरू किया तो बिलकुल असहाय हो जाने से उन्होंने भी एक दिन आधी रात को डुबकी लगाई।

बहुत दिनों तक उनका कोई पता ही न चला। कभी-कभी सुनने में आता कि एक ब्याह में कैसा सुख है, इस बात की परीक्षा करने कि लिए उन्होंने काशी में जाकर लुके-छिपे एक और ब्याह कर लिया है। सुनते हैं, अब कुछ शांति मिली है। सिर्फ देश के आस-पास आने के लिए कभी-कभी उनका मन चलता है, पर पकड़े जाने के डर से आ नहीं सकते।

3

कुछ दिन इधर-उधर घूम-फिरकर उदास फकीरचंद नौगांव पहुंचे। सड़क के किनारे एक वट वृक्ष के नीचे आसन जमाकर एक गहरी सांस लेकर कहने

लगे, "अहा, वैराग्य मेवाभयं। दारा-पुत्र, धन-जन कोई भी किसी का नहीं। का ते कांता कस्ते पुत्रः ?" कहते-कहते उन्होंने एक गाना शुरू कर दिया—

"सुन रे सुन, ओ रे ओ अबोध मन!
सुन साधु की उक्ति, होगी मुक्ती,
उसी सुयुक्ति को तू कर रे ग्रहण।
भव की शुक्ति तोड़, मुक्ति मुक्ता का रे अन्वेषण,
ओ रे ओ, भोले मन, भोले मन!"

सहसा गीत बंद हो गया। "अरे, ये कौन? ये तो बापूजी मालूम होते हैं! पता लगा लिया मालूम पड़ता है? अब तो बड़ी मुसीबत में आ फंसे! फिर उसी गृहस्थी के अंधकूप के बीच ले जाएंगे। ऊंहुंक् भागना पड़ेगा।"

4

साधु फकीरचंद झटपट पास के एक घर में घुस गए। बूढ़ा मकान मालिक चुपचाप बैठा हुक्का पी रहा था।

फकीर को घर में घुसते देख पूछ बैठा, "कौन है?"

फकीर, "बच्चा, मैं हूं संन्यासी।"

वृद्ध, "संन्यासी? देखूं, देखूं बेटा, जरा उजाले में देखूं?"

इतना कहकर बुड्ढा उसे उजाले में खींच ले गया और उसके मुंह के आगे झुककर, बूढ़े आदमी जैसे बड़ी मुश्किल से पोथी पढ़ते हैं उस तरह, उसका मुंह देख-देखकर बड़बड़ाने लगा, "यही तो हमारा माखन! वही नाक है, वही आंखें हैं, सिर्फ माथे में कुछ फर्क आ गया है और उस चांद से चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ आ गई हैं।" कहते-कहते बूढ़े ने फकीर के दढ़ियल मुंह पर दो-एक बार हाथ फेरा और बोला, "बेटा, माखन!"

कहने की जरूरत नहीं कि बूढ़े का नाम छठीलाल है।"

फकीर बड़े चक्कर में पड़ गया, बोला "माखन!

मेरा नाम तो माखन नहीं है। पहले मेरा नाम कुछ भी क्यों न हो, अब मेरा नाम निदानंद स्वामी है। इच्छा हो तो परमानंद भी कह सकते हो।"

छठीलाल, "बेटा, अब तुम अपने को चिउड़ा बताओ, चाहे परमान्न, तुम हो मेरे माखन ही। बेटा, तुम्हें तो मैं नहीं भूल सकता। यह तो बताओ बेटा, किस दुख से तुमने गृहस्थी त्याग दी? किस बात की कमी थी यहां? दो-दो बहुएं हैं,

बड़ी से प्रेम न हो, छोटी तो है! लड़के बालों की भी कमी नहीं। दुश्मनों के मुंह पर राख पड़े, तुम्हारे सात लड़कियां हैं, एक लड़का है और मैं बूढ़ा बाप हूं, सो और कितने दिन जीऊंगा, सबकुछ तुम्हारा ही बना रहेगा।"

फकीर सहसा चौंक पड़ा बोला, "कैसी मुसीबत है? सुनते ही डर लगता है।"

अब सारा माजरा उसकी समझ में आ गया। वह सोचने लगा कि 'बुराई क्या है, दो-चार दिन बुड्ढे का पुत्र बनकर यहीं छिपा रहूं, उसके बाद पता न लगने पर बाप जब चले जाएंगे, तब यहां से चलता बनूंगा।"

फकीर को चुपचाप देख बुड्ढे के मन में कोई संदेह न रह गया। अपने नौकर को बुलाकर कहा, "अरे ओ किसना, सबको जाकर कह तो आ, हमारा माखन लौट आया है।"

5

देखते-देखते आदमियों से घर भर गया। महल्ले के लगभग सभी लोगों ने कहा, "वही तो है!" किसी-किसी ने थोड़ा-बहुत संदेह भी प्रकट किया, पर विश्वास करने के लिए लोग इतने व्यग्र थे कि संदिग्ध लोगों पर उन्हें बड़ा गुस्सा आने लगा। मानो वे जानबूझकर उनके रंग में भंग डालने आए हों, मानो वे महल्ले के चौदह अक्षर के पयार छंद को सत्रह अक्षर का बना बैठे हों। किसी भी तरह उसका संक्षेप हो जाए तो महल्ले के आदमियों को आराम मिले। वे न तो भूत मानते हैं, न ओझा को बुलाते हैं।

ताज्जुब की कहानी सुनकर जबकि सब दंग हो गए हैं, तब वे प्रश्न छेड़ते हैं। उन लोगों को एक तरह से नास्तिक कहना चाहिए। अरे, तुम भूत पर विश्वास करो या न करो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, पर बूढ़े बाप के खोए हुए लड़के पर भी विश्वास न करना, यह तो बड़ा हृदय-हीनता का काम है। कुछ भी हो, सबकी जब डांट पड़ी, तो शक करने वालों का गिरोह चुप हो गया।

महल्ले के लोग फकीरचंद की पहाड़-सी अटल गंभीरता पर जरा भी ध्यान न देकर उसे घेर बैठे और कहने लगे, "ओफ्फोह! अब आप ऋषि बन गए हैं! तपस्वी हो गए हैं! हमेशा तो यार-दोस्तों में छनती रही और आज हजरत अचानक महामुनि जमदग्नि बन बैठे! भई, बात क्या है?"

महामना फकीरचंद को यह बात बहुत ही बुरी लगी, पर क्या करते, सहनी पड़ी। एक आदमी तो बिलकुल उनके ऊपर आकर बैठ गया, बोला, "अरे मखना, तू तो बिलकुल काला था, गोरा कैसे हो गया?"

फकीर ने जवाब दिया, "योगाभ्यास से।"

सबसे कहा, "देखा, योग का कैसा प्रभाव है!"

एक ने कहा, "इसमें आश्चर्य ही क्या! शास्त्र में लिखा है, भीम ने जब हनुमान की पूंछ पकड़कर उन्हें उठाना चाहा, तो किसी भी तरह उठा न सके। यह कैसे हुआ? वह भी तो योगबल था भाई!"

यह बात सबको माननी पड़ी।

इतने में छठीलाल ने आकर फकीर से कहा, "बेटा, एक बार घर के भीतर हो आओ।"

अब तक यह बात फकीर के दिमाग में पैदा ही नहीं हुई थी। सहसा उसके माथे पर बिजली-सी आ पड़ी। बहुत देर तक चुप रहकर, महल्ले वालों के अनेक अनुचित हंसी-मजाकों को हजम करके, अंत में बोला, "बच्चा, मैं साधु हो चुका हूं, अब मैं घर में नहीं घुस सकता।"

छठीलाल ने महल्ले के लोगों को संबोधन करके कहा, "तो जरा आप लोगों को तकलीफ करनी होगी। बहुओं को यहीं लिए आता हूं। वे व्याकुल हो रही हैं।"

सब उठ गए। फकीर सोचने लगा कि इसी मौके पर मारूं एक दौड़, यहां से भाग चलूं। पर रास्ते में जाते ही महल्ले के लोग कुत्ते की तरह पीछा करेंगे, यह सोचकर बेचारे को बेबसी से वहीं बैठा रहना पड़ा।

इतने में ज्यों ही माखनलाल की दोनों स्त्रियों ने प्रवेश किया, त्यों ही फकीर ने उन्हें सिर झुकाकर नमस्कार करके कहा, "माताओ, मैं तुम्हारी संतान हूं।"

उसी क्षण फकीर की नाक के आगे कड़े और चूड़ियों वाला एक हाथ तलवार की तरह खेल गया और फूटे कांसे की तरह एक आवाज बज उठी, "अरे ओ मुंहजले, तूने माता किससे कहा?"

साथ ही एक और कंठ ने, और भी दो स्वर ऊंचे से, महल्ले को कंपाते हुए गरजकर कहा, "तेरी आंखें फूट गईं क्या, दिखाई नहीं देता, तुझे मौत भी न आई!"

अपनी पत्नी के मुंह से ऐसी मुहावरेदार भाषा सुनने का वह आदी न था, इसलिए अत्यंत दीनता से उसने हाथ जोड़कर कहा, "आप लोग गलत समझी हैं! चलिए, मैं उजाले में खड़ा होता हूं, जरा मुझे पहचानिए तो सही, मैं कौन हूं?"

पहली और दूसरी ने पारी-पारी से कहा, "बहुत देख चुकी हूं! देखते-देखते आंखें घिस गई हैं। तुम नन्हे-से लल्ला नहीं हो, आज नए पैदा नहीं हुए हो! तुम्हारे दूध के दांत टूटे जमाना गुजर चुका। अरे, तुम्हें मौत भूल गई है तो क्या मैं भी भूल जाऊंगी।"

ऐसी इकतरफा दांपत्य वार्ता कब तक चलती रहती, कह नहीं सकते, कारण फकीर बिलकुल वाक्शक्ति रहित होकर सिर झुकाए खड़ा रहा था। इतने में अत्यंत कोलाहल सुनकर और सड़क पर भीड़ जमते देख छठीलाल ने घर में प्रवेश किया। बोले, "इतने दिनों तक हमारे घर में सन्नाटा बीत रहा था, जरा भी शोरगुल न था। आज मालूम पड़ता है कि हमारा माखन लौट आया!"

फकीरचंद ने हाथ जोड़कर कहा, "महाशयजी, अपनी पुत्रवधुओं के हाथ से मुझे बचाइए।"

"बेटा, बहुत दिन बाद आए हो, इसी से जरा असहाय मालूम पड़ता है। अच्छा, बेटी, तुम लोग अभी जाओ। माखन तो अभी यहीं है, इसे अब मैं किसी भी तरह नहीं जाने दूंगा।"

दोनों ललनाएं बिदा हो गईं। फकीर ने कहा, "महाशयजी, आपका पुत्र क्यों गृहस्थी छोड़कर चला गया है, इसका मैंने पूरा अनुभव कर लिया है। आप मेरा प्रणाम लीजिए, मैं चला।"

बूढ़े ने ऐसे जोर से रोना शुरू किया कि महल्ले के तमाम लोग समझ बैठे कि माखन ने बाप को पीटा है। वे 'हें-हें' करते हुए दौड़े आए। सबने आकर फकीर को चेता दिया, "ऐसा पाखंड यहां नहीं चल सकता। भले आदमी की तरह रहना होगा।"

एक ने कहा, "ये परमहंस थोड़े ही हैं, परमबक हैं, बक! बुगला भगत!"

गंभीरता, दाढ़ी-मूंछ और गुलूबंद के जोर से फकीर को ऐसी बुरी-भली कभी न सुननी पड़ी थी। खैर, कुछ भी हो, फिर कहीं भाग न जाए, इस आशंका से महल्ले के लोग चौकन्ने रहे। स्वयं जमींदार ने गांव वालों का पक्ष लिया।

फकीर ने देखा, ऐसा कड़ा पहरा बैठा है कि बिना मरे यहां से निकलना ही मुश्किल है। वह अकेला घर में बैठा हुआ गीत गाने लगा—

"अब तू सुन के सुयुक्ति कर रे ग्रहण,
ओ रे ओ अबोध मन!"

कहना न होगा कि इस गीत का आध्यात्मिक अर्थ क्षीण हो चला है।

ऐसे तो किसी तरह दिन कट ही रहे थे, इतने में एक और आफत आ पड़ी। माखन के आने की खबर पाते ही दोनों पत्नियों के मायके से साले और सालियों का एक झुंड और आ पहुंचा।

आने के साथ उन लोगों ने सबसे पहले फकीर की दाढ़ी-मूंछें नोचना शुरू किया, कहने लगीं, "ये तो सचमुच की दाढ़ी-मूंछ नहीं हैं, भेष बदलने के लिए गोंद से चिपका ली हैं!"

सब मूंछ पकड़कर खींचने लगीं तो बेचारे फकीरचंद जैसे अत्यंत महान पुरुष के लिए अपने माहात्म्य की रक्षा करना कठिन हो गया। इसके सिवा कानों पर भी काफी आफत थी, एक तो मलकर, दूसरे ऐसी-ऐसी भाषाओं का प्रयोग करके कि जिसके सुनने से बिना मले ही कान लाल हो उठें!

इसके बाद उन लोगों ने फकीर को ऐसे-ऐसे गीतों के नमूने सुनाए कि आधुनिक बड़े-बड़े नए पंडित भी उनकी आध्यात्मिक व्याख्या करने में हार मान जाएं। सोते वक्त बेचारे के गालों पर स्याही और चूना पोत दिया गया। खाते वक्त कसेरू के बदले घुइयां, नारियल के पानी के बदले हुक्के का पानी, दूध के बदले पीठी का धोवन देने की तैयारियां की गईं, पाटा के नीचे सुपारी रखकर मजे की पटक खिलाई, पूंछ बनाई और सैकड़ों प्रचलित तरकीबों से फकीर की गंभीरता मिट्टी में मिला दी।

फकीरचंद गुस्से में आकर, लाल-पीला होकर, झुंझलाकर, चिल्लाकर किसी भी तरह उपद्रवकारियों के मन में भय का संचार न कर सका। उलटा सबके सामने भोंदू बुद्धू बन गया। इसके सिवा दरवाजे की ओट में से मीठे गले की कह-कहदार हंसी कभी-कभी उसके कानों में पड़ती, वह कुछ परिचित-सी मालूम देती, उससे मन उसका और भी दूना अधीर हो उठता।

परिचित स्वर पाठकों से छिपा नहीं है। इतना कह देना काफी होगा कि छठीलाल किसी नाते से हेमवती के मामा लगते हैं। ब्याह के बाद, सास से बहुत तंग आकर पितृ-मातृहीन हेमवती कभी-कभी किसी न किसी नातेदार के यहां आकर आश्रय लिया करती है।

बहुत दिनों बाद वह अपने मायके से यहां आकर नेपथ्य से इस परम

कुतूहलपूर्ण अभिनय को देख रही थी। उस समय हेमवती में स्वाभाविक रंग-प्रियता के साथ-साथ प्रतिहिंसा प्रवृत्ति का उद्रेक हुआ था या नहीं, इस बात को चरित्र उत्सव विद्वान ही समझ सकते हैं, हमारी समझ से बाहर है।

जिनके साथ हंसी-मसखरी का रिश्ता था वे तो बीच-बीच में दम भी ले लेते थे, पर जिनसे स्नेह का नाता है उनसे छुटकारा पाना मुश्किल है। एक लड़के और सात लड़कियों ने उसके नाकों दम कर दिया, एक क्षण के लिए भी छोड़ना जिसे कहते हैं उस पर उनकी माताओं ने बाप के स्नेह पर दखल जमाने के लिए उन्हें बड़ी कड़ाई के साथ लगा रखा है। दोनों माताओं में भी आपस में अनबन खूब थी।

दोनों ही इस कोशिश में थीं कि मेरे बच्चे ज्यादा प्यार पाएं। दोनों ही अपनी-अपनी संतानों को हर वक्त उत्तेजित करती जातीं। दोनों दल मिलकर पिता की गरदन से लिपटते, गोद में बैठते, मुंह चूमते। इस तरह दोनों दल अपना-अपना प्यार दिखाने में एक-दूसरे को जीतने की कोशिश करने लगे।

यह कहने की जरूरत ही नहीं कि बेचारा फकीरचंद अत्यंत निर्लिप्त स्वभाव का है, नहीं तो अपने बाल-बच्चों को छोड़कर साधु ही क्यों होता? और बच्चे सब ऐसे हैं कि भक्ति करना जानते ही नहीं, उन्होंने साधुत्व पर मुग्ध होना सीखा ही नहीं, इसलिए फकीरचंद की शिशु जाति पर तिल मात्र भी अनुरक्ति नहीं। वह उन्हें कीट-पतंगों की तरह अपने शरीर से दूर रखना चाहते हैं।

फिलहाल वह प्रतिक्षंण शिशु-टिड्डियों से आच्छन्न होकर, शुरू से आखिर तक आंखफोड़ू बर्जेस टाइप के छोटे-बड़े फुटनोटों से भरे हुए ऐतिहासिक ग्रंथ की तरह शोभा पा रहे हैं। उनमें और बच्चों में उमर का काफी तारतम्य है, फिर भी वह उनके साथ प्रौढ़ सभ्य जनोचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं।

बेचारे शुद्ध पवित्र फकीरचंद की आंखों में आंसू भर आते और इसमें संदेह नहीं कि वे आनंदाश्रु नहीं होते। दूसरे के बच्चे जब अनेक स्वरों में उन्हें "कक्का, कक्का!" कहकर प्यार करते, तब उनका जी चाहता कि वह उन पर पाशविक शक्ति प्रयोग करें, पर डर से कर नहीं सकते। मुंह और आंखें विकृत करके चुपचाप बैठे रहते।

अंत में फकीरचंद ने बड़े जोर से हल्ला मचाकर कहा, "मैं तो जाऊंगा ही, देखूं, मुझे कौन रोके रखता है!"

तब गांव के लोगों ने एक वकील को लाकर खड़ा कर दिया। वकील ने कहा, "जानते हैं, आपके दो पत्नियां हैं?"

फकीरचंद, "जी, यहीं आकर पहले-पहल मालूम हुआ।"

वकील, "अपने इस बड़े परिवार के भरण-पोषण का भार अगर आपने नहीं लिया, तो आपकी इन अनाथिनी दोनों स्त्रियों को अदालत की शरण लेनी पड़ेगी। पहले से कहे देता हूं।"

फकीरचंद को सबसे ज्यादा डर था तो बस अदालत का ही। यह बात उन्हें मालूम थी कि वकील लोग जिरह करते वक्त महापुरुषों के मानसम्मान और गांभीर्य का जरा भी खयाल नहीं करते, खुलेआम अपमानित करते हैं और अखबारों में उसकी रिपोर्ट भी छपवा देते हैं। फकीरचंद ने डबडबाती हुई आंखों से वकील को विस्तृत आत्मपरिचय देने की कोशिश की और वकील ने उनकी चालाकी, हाजिरजवाबी और झूठी बनावटी बातें बनाने की असाधारण क्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सुनकर फकीर को अपने हाथ-पैर नोच खाने की इच्छा होने लगी।

छठीलाल फकीरचंद को फिर भागने के लिए तैयार देखकर मारे शोक के अधीर हो उठे। महल्ले के लोग उन्हें चारों तरफ से घेरकर गाली-गलौज करने लगे और वकील साहब ने उन्हें ऐसा डराया-धमकाया कि बेचारे का सारा उत्साह पस्त हो गया, बोलती बंद हो गई।

इसके बाद जब आठों बच्चों ने मिलकर गाढ़े स्नेह के साथ चारों तरफ से चिपटकर उनके नाकों दम कर दिया, तब ओट में खड़ी हुई हेमवती हंसे या रोए, कुछ निश्चय न कर सकी।

फकीरचंद ने तंग आकर और कोई चारा न देख, इसी बीच पिता को एक चिट्ठी डाल दी थी, जिसमें सब हाल साफ-साफ लिख दिया था। उस चिट्ठी को पाकर फकीरचंद के पिता हरिचरण बाबू भी आ पहुंचे। पर महल्ले के लोग, जमींदार और वकील किसी भी तरह अपना दखल नहीं छोड़ना चाहते। यह फकीरचंद नहीं है, माखनलाल ही है, इस बात के उन लोगों ने हजारों सबूत पेश किए, यहां तक कि जिस दाई ने माखनलाल को पाल-पोसकर बड़ा किया था उस बुढ़िया को भी पकड़ लाए। वह भी अपने कांपते हुए हाथ से फकीरचंद की ठोड़ी उठाकर, मुंह को अच्छी तरह देख-भालकर उसकी दाढ़ी पर आंसू टपकाने लगी।

जब देखा कि इतने पर भी फकीरचंद बस में नहीं आता, तब घूंघट निकालकर दोनों स्त्रियां स्वयं आ उपस्थित हुईं। महल्ले के लोग शरम के मारे उठकर बाहर चले गए। रह गए सिर्फ दोनों बाप, फकीरचंद और बालबच्चे।

दोनों स्त्रियों ने हाथ हिलाकर फकीर से पूछा, "कहां किस भाड़ में, जमराज के किस द्वार पर जाना चाहता है, बता?"

फकीरचंद ठीक-ठीक जवाब न दे सके, इसलिए चुपचाप बैठे रहे, पर चेहरे को देखकर तो यही अनुमान हुआ कि जमराज के किसी खास द्वार से उनका कोई खास पक्षपात नहीं है, फिलहाल किसी भी एक द्वार की उसे शरण मिल जाए, तो उनकी जान बच जाए। सिर्फ एक बार इस व्यूह से किसी तरह निकल भर जाएं।

इतने एक तीसरी रमणी मूर्ति ने घर में प्रवेश करके फकीरचंद को प्रणाम किया। फकीरचंद पहले तो चकित हो गए, फिर मारे खुशी के उछलकर बोले, "अरे, यह तो हेमवती है!"

अपनी या दूसरे की स्त्री को देखकर आज तक इतना प्रेम उनकी आंखों में इससे पहले कभी न दिखाई दिया था। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मूर्तिमती मुक्ति ने स्वयं आकर दर्शन दिए हैं।

और एक आदमी मुंह पर दुशाला डाले छिपकर सब देख रहा था। उसका नाम है माखनलाल। एक अपरिचित निरीह व्यक्ति को अपने पद पर अभिषिक्त देखकर वह अब तक परम सुखानुभव कर रहा था, अंत में जब उसने हेमवती को उपस्थित देखकर समझा कि उक्त निरपराधी व्यक्ति उसका खास बहनोई ही है, तब उसके मन में दया आ गई, घर में घुसकर बोला, "ऊं हुंक, अपने ही आदमी को इस तरह विपत्ति में डालना महापाप है।" अपनी दोनों स्त्रियों की ओर उंगली से इशारा करता हुआ बोला, "ये इनकी नहीं, मेरी ही रस्सी हैं, मेरी ही गागर हैं।"

माखनलाल के इस असाधारण महत्व और वीरता से महल्ले के लोग दंग रह गए।

❑❑

9

दुलहिन

बहुत पुरानी बात है। बचपन में जिस स्कूल में मैं पढ़ता था उसमें नीचे के दरजों में पंडित शिवनाथ से हम लोग पहाड़ा पढ़ा करते थे। उनकी दाढ़ी-मूंछें सफाचट, सिर के बाल जड़ तक छंटे हुए और उस पर छोटी-सी चोटी शोभा पाया करती थी। उन्हें देखते ही लड़कों के प्राण सूख जाते थे।

प्राणियों में अकसर यह बात देखने में आती है कि जिनके डंक हैं उनके दांत नहीं होते। पर हमारे पंडितजी में दोनों बातें एक ही साथ मौजूद थीं। एक ओर थप्पड़-घूंसे हम पौधों पर ओलों की तरह बरसते, तो दूसरी ओर कठोर वचन सुनकर सबको छठी की याद आ जाती।

पंडितजी को इस बात का अफसोस था कि 'पुराने जमाने की तरह गुरु-शिष्य का संबंध अब नहीं रहा, विद्यार्थी अब देवता के समान गुरु की भक्ति नहीं करते।' इस तरह अपना अफसोस जाहिर करके वह अपनी उपेक्षित देव महिमा को बालकों के सिर पर जोरों से पटक दिया करते और कभी-कभी गहरी हुंकार भरते, पर उसके भीतर इतनी ओछी बातें मिली रहतीं कि उसे देवता के वज्रनाद का रूपांत समझ लेने में किसी को भ्रम नहीं हो सकता।

कुछ भी हो, हमारे स्कूल का कोई भी लड़का इस तीसरे दरजे के दूसरे विभाग के देवता को इंद्र, चंद्र, वरुण अथवा कार्तिक न समझता था, सिर्फ एक ही देवता के साथ उनकी तुलना होती थी, जिनका नाम यमराज है और इतने दिनों बाद, अब तो यह मानने में कोई दोष ही नहीं और न डर है कि हम लोग मन ही मन चाहते थे कि उक्त देवालय से प्रस्थान करने में अब वह ज्यादा देर न करें तो अच्छा है।

पर इतना तो अच्छी तरह समझ लिया गया था कि नर देवता के समान

दूसरी बला नहीं। सुरलोक वासी देवता उपद्रव नहीं करते। पेड़ से एक फूल तोड़कर चढ़ा देने से वे खुश हो जाते हैं और न दो तो तकाजा नहीं करते। पर हमारे पंडित देवता बहुत अधिक की आशा रखते थे और हमसे जरा भी गलती हो जाती, तो लाल-लाल आंखें निकालकर मारने दौड़ते थे। उस समय वह किसी भी तरफ से देवता जैसे नहीं दिखाई देते।

लड़कों को तकलीफ देने के लिए हमारे शिवनाथ पंडित के पास एक अस्त्र था, जो सुनने में मामूली, पर वास्तव में बहुत खतरनाक था। वह लड़कों के नए-नए नाम रखा करते थे। नाम यद्यपि शब्द के सिवा और कुछ नहीं, पर आदमी अपने से अपने नाम को ज्यादा चाहता है। अपने नाम की प्रसिद्धि के लिए लोग क्या-क्या कष्ट नहीं सहा करते ? यहां तक कि नाम की रक्षा के लिए लोग मरने में भी नहीं हिचकिचाते।

नाम पर मिटने वाले मानव के नाम को विकृत कर देना उसकी जान से भी प्यारी जगह पर चोट पहुंचाना है। और तो क्या, जिसका नाम भूतनाथ है उसे अगर नलिनकांत कहा जाए, तो उसके लिए भी वह असह्य है।

इससे एक खास तत्व की जानकारी होती है, वह यह कि आदमी चीज की अपेक्षा नाचीज को ज्यादा कीमती समझता है। सोने की अपेक्षा बात को, प्राणों की अपेक्षा मान को और अपने से अपने नाम को बड़ा मानता है।

मानव स्वभाव के इन अंतर्निहित गूढ़ नियमों के वशीभूत होकर पंडितजी ने जब शशिशेखर का नाम 'छछूंदर' रख दिया तब वह बहुत ही दुखी हुआ। खासकर इसलिए उसकी मर्मव्यथा और भी बढ़ गई कि उक्त नामकरण की वजह से उसके चेहरे पर खासतौर से गौर किया जाता है, फिर भी अत्यंत शांत भाव से, सब सहते हुए, उसे चुपचाप बैठा रहना पड़ा।

पंडितजी ने आशुतोष का नाम रखा था 'दुलहिन' और इस नाम के साथ थोड़ा-सा इतिहास भी है।

आसू अपने दरजे में बहुत ही सीधा सादा और भोला-भाला लड़का था। वह हमेशा चुप बना रहता, लड़ना-झगड़ना उसकी जन्मपत्री में ही नहीं लिखा था, बड़ा झेंपू था। उमर में भी शायद वह सबसे छोटा था, सभी बातें सुनकर मुस्करा देता था, पर पढ़ता खूब था। स्कूल के बहुत से लड़के उसके साथ मित्रता करने के लिए उत्सुक थे, पर वह किसी के साथ खेलता न था। छुट्टी होते ही तुरत-फुरत घर चला जाता।

दोपहर को एक बजे के करीब उसके घर की महरी दोने में कुछ मिठाई और छोटे-से गिलास में पानी लेकर आया करती। आसू को इसके लिए बड़ी शर्म मालूम होती, वह चाहता कि महरी किसी तरह लौट जाए तो मानो वह बच जाए। वह नहीं चाहता था इस बात को कोई जाने कि स्कूल के छात्र के अलावा वह और कुछ है। मानो यह उसके लिए बहुत ही छिपाने की बात थी कि वह घर का कोई है, अपने मां-बाप का लड़का है, भाई-बहनों का भाई है, इस विषय में हमेशा उसकी यही कोशिश रहती कि कोई लड़का उसकी कोई भी बात जान न ले।

पढ़ने-लिखने में उसकी कोई गलती न होती थी, सिर्फ किसी-किसी रोज स्कूल जाने में जरा देर हो जाया करती थी। शिवनाथ पंडित जब उससे कारण पूछते, तो वह उसका कोई उत्तर न दे सकता था। इसके लिए कभी-कभी उसे बड़ी फटकार सहनी पड़ती थी। पंडितजी उसे घुटनों पर हाथ रखकर पीठ नीची करके दालान की सीढ़ियों पर खड़ा कर देते थे और चारों दरजों के लड़के उस झेंपू लड़के को उस हालत में देखा करते थे।

एक दिन ग्रहण की छुट्टी थी। उसके दूसरे दिन, स्कूल में बैठे हुए पंडितजी ने देखा कि एक सिलेट और स्याही लगे बस्ते में पढ़ने की किताबें लपेटे हुए, और दिन की अपेक्षा बहुत संकुचित भाव से, आसू क्लास में घुस रहा है।

शिवनाथ पंडित ने सूखी हंसी हंसते हुए कहा, "अच्छा, दुलहिन आ गई क्या?"

पढ़ाई खत्म होने पर, छुट्टी होने के पहले, उन्होंने सब लड़कों को संबोधन करके कहा, "सुनो रे, सब कोई सुनो!"

पृथ्वी की सारी मध्याकर्षण शक्ति जोरों से बालक को नीचे की ओर खींचने लगी, फिर भी छोटा-सा आसू अपनी बेंच पर धोती का एक ठोक और दोनों पैर लटकाकर, सब लड़कों का लक्ष्य बनकर बैठा रहा। अब तक तो आसू की काफी उम्र हुई होगी और उसके जीवन में बहुत से भारी-भारी सुख-दुख लज्जा के दिन आए होंगे, पर उस जैसे नहीं, हालांकि बात बहुत छोटी-सी है और दो शब्दों में खत्म हो जाती है, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें एक रस है। आसू की एक छोटी बहन थी, उसके बराबर की कोई साथिन या बहन न थी, इसलिए आसू के साथ वह खेला करती थी।

लोहे की रेलिंग से घिरा हुआ गेट वाला आसू का मकान है, सामने गाड़ी

ठहरने के लिए दालान है। उस दिन खूब वर्षा हो रही थी। जूता हाथ में लिए, सिर पर छतरी ताने, जो दो-चार आदमी सामने से जा रहे थे, उन्हें किसी भी ओर ताकने की फुरसत न थी। बादलों के उस अंधकार में, वर्षा के झम-झम-झम शब्द में, तमाम दिन की छुट्टी में दालान की सीढ़ियों पर बैठा आसू अपनी बहन के साथ खेल रहा था।

उस दिन उनके गुड्डा-गुड़िया का ब्याह था। उसी की तैयारी के बारे में आंसू अत्यंत गंभीरता के साथ अपनी बहन को उपदेश दे रहा था।

अब सवाल उठा कि पुरोहित किसे बनाया जाए? बालिका चट से दौड़ी गई और एक आदमी से पूछने लगी, "क्यों जी, तुम हम लोगों के पुरोहित बनोगे!"

आसू ने पीछे मुंह फेरकर देखा कि शिवनाथ पंडित अपनी भीगी छतरी समेटे पानी से तरबतर बरामदे में खड़े हैं। रास्ते से जा रहे थे, बारिश ज्यादा होने से यहां ठहर गए हैं। बालिका उन्हें पुरोहित बनने के लिए आग्रह कर रही है।

पंडितजी को देखते ही आसू अपने खेल और बहन दोनों को छोड़-छाड़कर एक दौड़ में मकान के अंदर भाग गया। उसका छुट्टी का दिन बिलकुल ही मिट्टी में मिल गया।

दूसरे दिन शिवनाथ पंडित ने जब सूखी हंसी के साथ भूमिका के रूप में इस घटना का उल्लेख कर आसू का नाम 'दुलहिन' रख दिया, तब उसने पहले जैसे सभी बातों में मुस्करा देता था वैसे ही मुस्कराकर, अपने चारों तरफ की हंसी में शामिल होने की कोशिश की, इतने में घंटा बज गया, सब दरजों के लड़के बाहर चले गए और दोने में थोड़ी-सी मिठाई और चमकते हुए फूल के गिलास में पानी लिए महरी दरवाजे पर आ खड़ी हुई।

उस समय हंसते-हंसते उसका मुंह और कान सुर्ख हो उठे, व्यथित ललाट की नसें फूल उठीं और वेग से निकलते हुए आंसू रोके न रुक सके।

पंडितजी आरामघर में जलपान करके निश्चिंत हुक्का पीने लगे। लड़के बड़े आनंद से आसू को घेरकर 'दुलहिन' 'दुलहिन' कहकर हल्ला मचाने लगे। छुट्टी के दिन का अपनी छोटी बहन के साथ खेला हुआ वह खेल आसू की दृष्टि में अपने जीवन का एक सबसे बढ़कर लज्जाजनक भ्रम मालूम होने लगा, उसे विश्वास न हुआ कि दुनिया के आदमी कभी भी उस दिन की बात को भूल जाएंगे।

❑❑

10

तिनके का संकट

जमींदार के नायब गिरीश बसु के अंतःपुर में प्यारी नाम की एक दासी काम में लगी। उसकी उम्र भले ही कम थी, पर स्वभाव अच्छा था। दूर पराए गांव से आकर कुछ दिन काम करने के बाद ही एक दिन वह वृद्ध नायब की प्रेम दृष्टि से आत्मरक्षा के लिए मालकिन के पास रोती हुई हाजिर हुई।

मालकिन बोलीं, "बेटी, तू दूसरी जगह चली जा। तू तो अच्छे घर की लड़की है। यहां रहने पर तुझे परेशानी होगी।" फिर चुपचाप कुछ पैसे देकर उसे विदा कर दिया।

पर भागना इतना आसान नहीं था। हाथ में राह-खर्च भी थोड़ा था, इसलिए प्यारी ने गांव में हरिहर भट्टाचार्य महाशय के घर पर आश्रय लिया।

उनके समझदार बेटों ने कहा, "बाबूजी, क्यों नाहक विपत्ति मोल ले रहे हैं।"

हरिहर ने उत्तर दिया, "विपत्ति स्वयं आकर आश्रय मांगे तो उसे लौटाया नहीं जा सकता, बेटे!"

गिरीश वसु ने साष्टांग दंडवत करते हुए कहा, "भट्टाचार्य महाशय, आपने मेरी नौकरानी क्यों फुसला ली? घर में काम की बड़ी असुविधा हो रही है।"

उत्तर में हरिहर ने दो-चार खरी बातें कड़े स्वर में कहीं। वह सम्मानित व्यक्ति थे, किसी की खातिर कोई बात घुमा-फिराकर कहना नहीं जानते थे। नायब मन ही मन पर निकली चींटी के साथ उनकी तुलना करता चला गया। जाते वक्त बड़े आडंबर के साथ उनकी चरण-धूलि ली।

दो-चार दिनों बाद ही भट्टाचार्य के घर पर पुलिस आ धमकी। गृहस्वामिनी के तकिए के नीचे से नायब की पत्नी के कानों पर एक जोड़ा झुमका मिला।

दासी बेचारी चोर प्रमाणित होकर जेल चली गई। भट्टाचार्य महाशय को अपने देश प्रसिद्ध दबदबे के जोर पर चोरी के माल के संरक्षण के अभियोग से मुक्ति मिली। नायब ने फिर ब्राह्मण की चरण धूलि ली। उनके मन में कांटा चुभा रहा।

उनके बेटों ने कहा, "जमीन-जायदाद बेचकर कलकत्ता चलें, यहां बड़ी मुश्किल नजर आ रही है।"

हरिहर ने उत्तर दिया, "पैतृक घर मुझसे छोड़ा नहीं जाएगा। भाग्य में बदी होने पर विपत्ति कहां नहीं आती?"

इसी बीच गांव में नायब द्वारा अत्यधिक कर वृद्धि की कोशिश मैं रैयत विद्रोही हो उठी। हरिहर की सारी जमीन माफी की थी, जमींदार से उसका कोई सरोकार नहीं था। नायब ने अपने मालिक को जतलाया, हरिहर ने ही रैयतों को आश्रय देकर विद्रोही बना दिया है।

जमींदार ने कहा, "जैसे भी हो भट्टाचार्य को ठीक करो।"

नायब भट्टाचार्य की चरण-धूलि लेकर बोला, "सामने वाली जमीन परगना की सीमा में है, उसे तो छोड़ना होगा।"

हरिहर ने कहा, "यह क्या कह रहे हो? वह तो मेरी बहुत दिनों की दान की जमीन है।"

हरिहर के आंगन से लगी पैतृक जमीन को जमींदार के परगने में बताकर नालिश दायर कर दी गई।

हरिहर बोले, "तब तो इस जमीन को छोड़ना पड़ेगा। मैं तो बुढ़ापे में अदालत में गवाही देने नहीं जा सकूंगा।"

उनके बेटों ने कहा, "घर से लगी पैतृक जमीन ही यदि छोड़नी पड़े तो फिर घर में कैसे टिका जाएगा?"

वृद्ध पैतृक घर के प्राणाधिक मोह में कांपते डग से अदालत में गवाह के कठघरे में जाकर खड़े हुए। मुंसिफ नवगोपाल बाबू ने उनकी गवाही सही मान मुकदमा खारिज कर दिया। गांव में भट्टाचार्य के खास रैयतों ने इसे लेकर बड़े धूमधाम से उत्सव-समारोह शुरू कर दिया।

हरिहर ने जल्दी से उन्हें रोका।

नायब ने आकर विशेष आडंबर के साथ भट्टाचार्य की चरण धूलि-ली और सारी देह और सिर माथे लगाई और फिर अपील दायर कर दी।

वकील लोग हरिहर से पैसा नहीं लेते थे। वे ब्राह्मण को बार-बार आश्वासन

देते। इस मुकदमे में हारने की कोई संभावना नहीं है। दिन भी क्या कभी रात हो सकती है? यह सुनकर हरिहर निश्‍चिंत होकर बैठ रहे।

एक दिन जमींदार की कचहरी में ढाकढोल बज उठे। पाठे की बलि के साथ नायब के मकान में काली मैया की पूजा होगी। भला बात क्या है? भट्टाचार्य को खबर मिली कि अपील में उनकी हार हुई है।

दिन कैसे रात हुई! बसंत बाबू ने इसका गूढ़ वृत्तांत इस तरह बतलाया, "हाल ही में जो नए एडीशनल जज होकर आए हैं, मुंसिफ नवगोपाल बाबू के साथ उनकी बड़ी खटपट थी। उस समय वह कुछ नहीं कर पाए। आज जजी की कुरसी पर बैठकर नवगोपाल बाबू की दी हुई राय को देखते ही उसे उन्होंने पलट दिया। इसलिए आप हार गए।"

आकुल हरिहर ने पूछा, "हाईकोर्ट में क्या इसकी कोई अपील नहीं?"

बसंत बाबू ने उत्तर दिया, "जज बाबू ने अपील से फल पाने की संभावना तक नहीं छोड़ी है। उन्होंने आपके गवाह पर संदेह प्रकट किया और विरोधी पक्ष के गवाह का विश्‍वास किया। हाईकोर्ट में तो गवाह पर विचार नहीं होगा।"

वृद्ध ने आंखों में आंसू भरकर पूछा, "फिर मेरे लिए कोई उपाय?"

वकील बोले, "उपाय तो एक भी नजर नहीं आता।"

दूसरे दिन गिरीश बसु ने लोगों के साथ आकर समारोह के साथ ब्राह्मण की चरण-धूलि ली और जाते हुए उच्छ्‍वसित गहरी सांस के साथ कहा, "प्रभु, जैसी तुम्हारी इच्छा!"

❑❑

11

अंतिम प्यार

आर्ट स्कूल के प्रोफेसर मनमोहन बाबू घर पर बैठे मित्रों के साथ मनोरंजन कर रहे थे, ठीक उसी समय योगेश बाबू ने कमरे में प्रवेश किया।

योगेश बाबू अच्छे चित्रकार थे, उन्होंने अभी थोड़े समय पूर्व ही स्कूल छोड़ा था। उन्हें देखकर एक व्यक्ति ने कहा, "योगेश बाबू! नरेंद्र क्या कहता है, आपने सुना कुछ?"

योगेश बाबू ने आराम कुर्सी पर बैठकर पहले तो एक लम्बी सांस ली, पश्चात् बोले, "क्या कहता है?"

नरेंद्र कहता है, "बंग-प्रांत में उसकी कोटि का कोई भी चित्रकार इस समय नहीं है।"

"ठीक है, अभी कल का छोकरा है न। हम लोग तो जैसे आज तक घास छीलते रहे हैं। झुंझलाकर योगेश बाबू ने कहा।

जो लड़का बातें कर रहा था, उसने कहा, "केवल यही नहीं, नरेंद्र आपको भी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता।"

योगेश बाबू ने उपेक्षित भाव से कहा, "क्यों, कोई अपराध!"

"वह कहता है, आप आदर्श का ध्यान रखकर चित्र नहीं बनाते।"

"तो किस दृष्टिकोण से बनाता हूं?"

"दृष्टिकोण... ?"

"रुपये के लिए।"

योगेश बाबू ने एक आंख बंद करके कहा, "व्यर्थ!" फिर आवेश में कान के पास से अपने अस्त-व्यस्त बालों को ठीक कर बहुत देर तक मौन बैठे रहे। चीन का जो सबसे बड़ा चित्रकार हुआ है उनके बाल भी बहुत बड़े थे। यही

कारण था कि योगेश ने भी स्वभाव-विरुद्ध सिर पर लंबे-लंबे बाल रखे हुए थे। ये बाल उनके मुख पर बिल्कुल नहीं भाते थे। क्योंकि बचपन में एक बार चेचक के आक्रमण से उनके प्राण तो बच गए थे। किंतु मुख बहुत कुरूप हो गया था। एक तो स्याम-वर्ण, दूसरे चेचक के दाग। चेहरा देखकर सहसा यही जान पड़ता था, मानो किसी ने बंदूक में छर्रे भरकर लिबलिबी दाब दी हो।

कमरे में जो लड़के बैठे थे, योगेश बाबू को क्रोधित देखकर उनके सामने ही मुंह बंद करके हंस रहे थे।

सहसा वह हंसी योगेश बाबू ने भी देख ली, क्रोधित स्वर में बोले, "तुम लोग हंस रहे हो, क्यों?"

एक लड़के ने चाटुकारिता से जल्दी-जल्दी कहा, "नहीं महाशय! आपको क्रोध आए और हम लोग हंसें, यह भला कभी संभव हो सकता है?"

"ऊंह! मैं समझ गया, अब अधिक चातुर्य की आवश्यकता नहीं। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि अब तक तुम सब दांत निकालकर रो रहे थे, मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं?" यह कहकर उन्होंने आंखें बंद कर लीं।

लड़कों ने किसी प्रकार हंसी रोककर कहा, "चलिए यों ही सही, हम हंसते ही थे और रोते भी क्यों? पर हम नरेंद्र के पागलपन को सोचकर हंसते थे। वह देखो मास्टर साहब के साथ नरेंद्र भी आ रहा है।"

मास्टर साहब के साथ-साथ नरेंद्र भी कमरे में आ गया।

योगेश ने एक बार नरेंद्र की ओर वक्र दृष्टि से देखकर मनमोहन बाबू से कहा, "महाशय! नरेंद्र मेरे विषय में क्या कहता है?"

मनमोहन बाबू जानते थे कि उन दोनों की लगती है। दो पाषाण जब परस्पर टकराते हैं तो अग्नि उत्पन्न हो ही जाती है। अतएव वह बात को संभालते, मुस्कराते-से बोले, "योगेश बाबू, नरेंद्र क्या कहता है?"

"नरेंद्र कहता है कि मैं रुपये के दृष्टिकोण से चित्र बनाता हूं। मेरा कोई आदर्श नहीं है?"

मनमोहन बाबू ने पूछा, "क्यों नरेंद्र?"

नरेंद्र अब तक मौन खड़ा था, अब किसी प्रकार आगे आकर बोला, "हां कहता हूं, मेरी यही सम्मति है।"

योगेश बाबू ने मुंह बनाकर कहा, "बड़े सम्मति देने वाले आए। छोटे मुंह बड़ी बात। अभी कल का छोकरा और इतनी बड़ी-बड़ी बातें।"

मनमोहन बाबू से कहा, "योगेश बाबू जाने दीजिए, नरेंद्र अभी बच्चा है, और बात भी साधारण है। इस पर वाद-विवाद की क्या आवश्यकता है?"

योगेश बाबू उसी तरह आवेश में बोले, "बच्चा है। नरेंद्र बच्चा है। जिसके मुंह पर इतनी बड़ी-बड़ी मूंछें हों, वह यदि बच्चा है तो बूढ़ा क्या होगा? मनमोहन बाबू! आप क्या कहते हैं?"

एक विद्यार्थी ने कहा, "महाशय, अभी जरा देर पहले तो आपने उसे कल का छोकरा बताया था।"

योगेश बाबू का मुख क्रोध से लाल हो गया, बोले, "कब कहा था?"

"अभी इससे जरा देर पहले।"

"झूठ! बिल्कुल झूठ!! जिसकी इतनी बड़ी-बड़ी मूंछें हैं उसे छोकरा कहूं, असंभव है। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि मैं बिल्कुल मूर्ख हूं।"

सब लड़के एक स्वर से बोले, "नहीं, महाशय! ऐसी बात हम भूलकर भी जिह्वा पर नहीं ला सकते।"

मनमोहन बाबू किसी प्रकार हंसी को रोककर बोले, "चुप-चुप! गोलमाल न करो।"

योगेश बाबू ने कहा, "हां नरेंद्र! तुम यह कहते हो कि बंग-प्रांत में तुम्हारी टक्कर का कोई चित्रकार नहीं है।"

नरेंद्र ने कहा, "आपने कैसे जाना?"

"तुम्हारे मित्रों ने कहा।"

"मैं यह नहीं कहता। तब भी इतना अवश्य कहूंगा कि मेरी तरह हृदय-रक्त पीकर बंगाल में कोई चित्र नहीं बनाता।"

"इसका प्रमाण?"

नरेंद्र ने आवेशमय स्वर में कहा, "प्रमाण की क्या आवश्यकता है? मेरा अपना यही विचार है।"

"तुम्हारा विचार असत्य है।"

नरेंद्र बहुत कम बोलने वाला व्यक्ति था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मनमोहन बाबू ने इस अप्रिय वार्तालाप को बंद करने के लिए कहा, "नरेंद्र इस बार प्रदर्शनी के लिए तुम चित्र बनाओगे ना?"

नरेन्द्र ने कहा, "विचार तो है।"

"देखूंगा तुम्हारा चित्र कैसा रहता है?"

नरेंद्र ने श्रद्धा-भाव से उनकी पग-धूलि लेकर कहा, "जिसके गुरु आप हैं उसे क्या चिंता? देखना सर्वोत्तम रहेगा।"

योगेश बाबू ने कहा, "राम से पहले रामायण! पहले चित्र बनाओ फिर कहना।"

नरेंद्र ने मुंह फेरकर योगेश बाबू की ओर देखा, कहा कुछ भी नहीं, किंतु मौन भाव और उपेक्षा ने बातों से कहीं अधिक योगेश के हृदय को ठेस पहुंचाई।

मनमोहन बाबू ने कहा, "योगेश बाबू, चाहे आप कुछ भी कहें मगर नरेंद्र को अपनी आत्मिक शक्ति पर बहुत बड़ा विश्वास है। मैं दृढ़ निश्चय से कह सकता हूं कि यह भविष्य में एक बड़ा चित्रकार होगा।"

नरेंद्र धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया।

एक विद्यार्थी ने कहा, "प्रोफेसर साहब, नरेंद्र में किसी सीमा तक विक्षिप्तता की झलक दिखाई देती है।"

मनमोहन बाबू ने कहा, "हां, मैं भी मानता हूं। जो व्यक्ति अपने घाव अच्छी तरह प्रकट करने में सफल हो जाता है, उसे सर्व-साधारण किसी सीमा तक विक्षिप्त समझते हैं। चित्र में एक विशेष प्रकार का आकर्षण तथा मोहकता उत्पन्न करने की उसमें असाधारण योग्यता है। तुम्हें मालूम है, नरेंद्र ने एक बार क्या किया था? मैंने देखा कि नरेंद्र के बाएं हाथ की उंगली से खून का फव्वारा छूट रहा है और वह बिना किसी कष्ट के बैठा चित्र बना रहा है। मैं तो देखकर चकित रह गया। मेरे मालूम करने पर उसने उत्तर दिया कि उंगली काटकर देख रहा था कि खून का वास्तविक रंग क्या है? अजीब व्यक्ति है। तुम लोग इसे विक्षिप्तता कह सकते हो, किंतु इसी विक्षिप्तता के ही कारण तो वह एक दिन अमर कलाकार कहलाएगा।"

योगेश बाबू आंख बंद करके सोचने लगे। जैसे गुरु वैसे चेले—दोनों-के-दोनों पागल हैं।

2

नरेंद्र सोचते-सोचते मकान की ओर चला—मार्ग में भीड़-भाड़ थी। कितनी ही गाड़ियां चली जा रही थीं; किंतु इन बातों की ओर उसका ध्यान नहीं था। उसे क्या चिंता थी? संभवत: इसका भी उसे पता न था।

वह थोड़े समय के भीतर ही बहुत बड़ा चित्रकार हो गया, इस थोड़े-से

समय में वह इतना सुप्रसिद्ध और सर्वप्रिय हो गया था कि उसके ईर्ष्यालु मित्रों को अच्छा न लगा। इन्हीं ईर्ष्यालु मित्रों में योगेश बाबू भी थे। नरेंद्र में एक विशेष योग्यता और उसकी तूलिका में एक असाधारण शक्ति है। योगेश बाबू इसे दिल-ही-दिल में खूब समझते थे, परंतु ऊपर से उसे मानने के लिए तैयार न थे।

इस थोड़े समय में ही उसका इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करने का एक विशेष कारण भी था। वह यह कि नरेंद्र जिस चित्र को भी बनाता था अपनी सारी योग्यता उसमें लगा देता था। उसकी दृष्टि केवल चित्र पर रहती थी, पैसे की ओर भूलकर भी उसका ध्यान नहीं जाता था। उसके हृदय की महत्वाकांक्षा होती थी कि चित्र बहुत ही सुंदर हो। उसमें अपने ढंग की विशेष विलक्षणता हो। मूल्य चाहे कम मिले या अधिक। वह अपने विचार और भावनाओं की मधुर रूप-रेखाएं अपने चित्र में देखता था। जिस समय चित्र चित्रित करने बैठता तो चारों ओर फैली हुई असीम प्रकृति और उसकी सारी रूप-रेखाएं हृदय-पट से गुंफित कर देता। इतना ही नहीं; वह अपने अस्तित्व से भी विस्मृत हो जाता। वह उस समय पागलों की भांति दिखाई पड़ता और अपने प्राण तक उत्सर्ग कर देने से भी उस समय सम्भवत: उसको संकोच न होता।

यह दशा उस समय की एकाग्रता की होती। वास्तव में इसी कारण से उसे यह सम्मान प्राप्त हुआ। उसके स्वभाव में सादगी थी, वह जो बात सादगी से कहता, लोग उसे अभिमान और प्रदर्शनी से लदी हुई समझते। उसके सामने कोई कुछ न कहता परंतु पीछे-पीछे लोग उसकी बुराई करने से न चूकते, सब-के-सब नरेंद्र को संज्ञाहीन-सा पाते, वह किसी बात को कान लगाकर न सुनता। कोई पूछता कुछ और वह उत्तर देता कुछ और ही। वह सर्वदा ऐसा प्रतीत होता जैसे अभी-अभी स्वप्न देख रहा था और किसी ने सहसा उसे जगा दिया हो, उसने विवाह किया और एक लड़का भी उत्पन्न हुआ, पत्नी बहुत सुंदर थी, परंतु नरेंद्र को गार्हस्थिक जीवन में किसी प्रकार का आकर्षण न था, तब भी उसका हृदय प्रेम का अथाह सागर था, वह हर समय इसी धुन में रहता था कि चित्रकला में प्रसिद्धि प्राप्त करे।

यही कारण था कि लोग उसे पागल समझते थे। किसी हल्की वस्तु को यदि पानी में जबर्दस्ती डुबो दो तो वह किसी प्रकार भी न डूबेगी, वरन ऊपर तैरती रहेगी। ठीक यही दशा उन लोगों की होती है जो अपनी धुन के पक्के होते हैं। वे सांसारिक दु:ख-सुख में किसी प्रकार डूबना नहीं जानते। उनका हृदय हर समय कार्य की पूर्ति में संलग्न रहता है।

नरेंद्र सोचते-सोचते अपने मकान के सामने आ खड़ा हुआ। उसने देखा कि द्वार के समीप उसका चार साल का बच्चा मुंह में उंगली डाले किसी गहरी चिंता में खड़ा है। पिता को देखते ही बच्चा दौड़ता हुआ आया और दोनों हाथों से नरेंद्र को पकड़कर बोला, "बाबूजी!"

"क्यों बेटा!"

बच्चे ने पिता का हाथ पकड़ लिया और खींचते हुए कहा, "बाबूजी, देखो हमने एक मेढक मारा है जो लंगड़ा हो गया है..."

नरेंद्र ने बच्चे को गोद में उठाकर कहा, "तो मैं क्या करूं? तू बड़ा पाजी है।"

बच्चे ने कहा, "वह घर नहीं जा सकता—लंगड़ा हो गया है, कैसे जाएगा? चलो उसे गोद में उठाकर घर पहुंचा दो।"

नरेंद्र ने बच्चे को गोद में उठा लिया और हंसते-हंसते घर में ले गया।

3

एक दिन नरेंद्र को ध्यान आया कि इस बार की प्रदर्शनी में जैसे भी हो अपना एक चित्र भेजना चाहिए। कमरे की दीवार पर उसके हाथ के कितने ही चित्र लगे हुए थे। कहीं प्राकृतिक दृश्य, कहीं मनुष्य के शरीर की रूप-रेखा, कहीं स्वर्ण की भांति सरसों के खेत की हरियाली, जंगली मनमोहक दृश्यावली और कहीं वे रास्ते जो छाया वाले वृक्षों के नीचे से टेढ़े-तिरछे होकर नदी के पास जा मिलते थे। धुएं की भांति गगनचुंबी पहाड़ों की पंक्ति, जो तेज धूप में स्वयं झुलसी जा रही थीं और सैकड़ों पथिक धूप से व्याकुल होकर छायादार वृक्षों के समूह में शरणार्थी थे, ऐसे कितने ही दृश्य थे। दूसरी ओर अनेकों पक्षियों के चित्र थे। उन सबके मनोभाव उनके मुखों से प्रकट हो रहे थे। कोई गुस्से में भरा हुआ, कोई चिंता की अवस्था में तो कोई प्रसन्न मुख।

कमरे के उत्तरीय भाग में खिड़की के समीप एक अपूर्ण चित्र लगा हुआ था; उसमें ताड़ के वृक्षों के समूह के समीप सर्वदा मौन रहने वाली छाया के आश्रय में एक सुंदर नवयुवती नदी के नील-वर्ण जल में अचल बिजली-सी मौन खड़ी थी। उसके होंठों और मुख की रेखाओं में चित्रकार ने हृदय की पीड़ा अंकित की थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो चित्र बोलना चाहता है, किंतु यौवन अभी उसके शरीर में पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हुआ है।

इन सब चित्रों में चित्रकार के इतने दिनों की आशा और निराशा मिश्रित थी, परंतु आज उन चित्रों की रेखाओं और रंगों ने उसे अपनी ओर आकर्षित न किया। उसके हृदय में बार-बार यही विचार आने लगे कि इतने दिनों उसने केवल बच्चों का खेल किया है। केवल कागज के टुकड़ों पर रंग पोता है। इतने दिनों से उसने जो कुछ रेखाएं कागज पर खींची थीं, वे सब उसके हृदय को अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं, क्योंकि उसके विचार पहले की अपेक्षा बहुत उच्च थे। उच्च ही नहीं बल्कि बहुत उच्चतम होकर चील की भांति आकाश में मंडराना चाहते थे। यदि वर्षा ऋतु का सुहावना दिन हो तो क्या कोई शक्ति उसे रोक सकती थी? वह उस समय आवेश में आकर उड़ने की उत्सुकता में असीमित दिशाओं में उड़ जाता। एक बार भी फिरकर नहीं देखता। अपनी पहली अवस्था पर किसी प्रकार भी वह संतुष्ट नहीं था। नरेंद्र के हृदय में रह-रहकर यही विचार आने लगा। भावना और लालसा की झड़ी-सी लग गई।

उसने निश्चय कर लिया कि इस बार ऐसा चित्र बनाएगा। जिससे उसका नाम अमर हो जाए। वह इस वास्तविकता को सबके दिलों में बिठा देना चाहता था कि उसकी अनुभूति बचपन की अनुभूति नहीं है।

मेज पर सिर रखकर नरेंद्र विचारों का ताना-बाना बुनने लगा। वह क्या बनाएगा? किस विषय पर बनाएगा? हृदय पर आघात होने से साधारण प्रभाव पड़ता है। भावनाओं के कितने ही पूर्ण और अपूर्ण चित्र उसकी आंखों के सामने से सिनेमा-चित्र की भांति चले गए, परंतु किसी ने भी दमभर के लिए उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित न किया। सोचते-सोचते संध्या के अंधियारे में शंख की मधुर ध्वनि ने उसको मस्त कर देने वाला गाना सुनाया। इस स्वर-लहरी से नरेंद्र चौंककर उठ खड़ा हुआ। पश्चात् उसी अंधकार में वह चिंतन-मुद्रा में कमरे के अंदर पागलों की भांति टहलने लगा। सब व्यर्थ! महान प्रयत्न करने के पश्चात् भी कोई विचार न सूझा।

रात बहुत जा चुकी थी। अमावस्था की अंधेरी में आकाश परलोक की भांति धुंधला प्रतीत होता था। नरेंद्र कुछ खोया-खोया सा पागलों की भांति उसी ओर ताकता रहा।

बाहर से रसोइये ने द्वार खटखटाकर कहा, "बाबूजी!"

चौंककर नरेंद्र ने पूछा, "कौन है?"

"बाबूजी भोजन तैयार है, चलिए।"

झुंझलाते हुए नरेंद्र ने कटु स्वर में कहा, "मुझे तंग न करो। जाओ मैं इस समय न खाऊंगा।"

"कुछ थोड़ा-सा।"

"मैं कहता हूं बिल्कुल नहीं।" और निराश-मन रसोइया भारी कदमों से वापस लौट गया और नरेंद्र ने अपने को चिंतन-सागर में डुबो दिया। दुनिया में जिसको ख्याति प्राप्त करने का व्यसन लग गया हो उसको चैन कहां?

4

एक सप्ताह बीत गया। इस सप्ताह में नरेंद्र ने घर से बाहर कदम न निकाला। घर में बैठा सोचता रहता किसी-न-किसी मंत्र से तो साधना की देवी अपनी कला दिखाएगी ही।

इससे पूर्व किसी चित्र के लिए उसे विचार-प्राप्ति में देर न लगती थी, परंतु इस बार किसी तरह भी उसे कोई बात न सूझी। ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते जाते थे वह निराश होता जाता था? केवल यही क्यों? कई बार तो उसने झुंझलाकर सिर के बाल नोच लिए। वह अपने आपको गालियां देता, पृथ्वी पर पेट के बल पड़कर बच्चों की तरह रोया भी परंतु सब व्यर्थ।

प्रात:काल नरेंद्र मौन बैठा था कि मनमोहन बाबू के द्वारपाल ने आकर उसे एक पत्र दिया। उसने उसे खोलकर देखा। प्रोफेसर साहब ने उसमें लिखा था, "प्रिय नरेंद्र,"

प्रदर्शनी होने में अब अधिक दिन शेष नहीं हैं। एक सप्ताह के अंदर यदि चित्र न आया तो ठीक नहीं। लिखना, तुम्हारी क्या प्रगति हुई है और तुम्हारा चित्र कितना बन गया है?

योगेश बाबू ने चित्र चित्रित कर दिया है। मैंने देखा है, सुंदर है, परंतु मुझे तुमसे और भी अच्छे चित्र की आशा है। तुमसे अधिक प्रिय मुझे और कोई नहीं। आशीर्वाद देता हूं, तुम अपने गुरु की लाज रख सको।

इसका ध्यान रखना। इस प्रदर्शनी में यदि तुम्हारा चित्र अच्छा रहा तो तुम्हारी ख्याति में कोई बाधा न रहेगी। तुम्हारा परिश्रम सफल हो, यही कामना है।

"मनमोहन"

पत्र पढ़कर नरेंद्र और भी व्याकुल हुआ। केवल एक सप्ताह शेष है और

अभी तक उसके मस्तिष्क में चित्र के विषय में कोई विचार ही नहीं आया। खेद है अब वह क्या करेगा?

उसे अपने आत्म-बल पर बहुत विश्वास था, पर उस समय वह विश्वास भी जाता रहा। इसी तुच्छ शक्ति पर वह दस व्यक्तियों में सिर उठाए फिरता रहा?

उसने सोचा था अमर कलाकार बन जाऊंगा, परंतु वाह रे दुर्भाग्य! अपनी अयोग्यता पर नरेंद्र की आंखों में आंसू भर आए।

5

रोगी की रात जैसे आंखों में निकल जाती है उसकी वह रात वैसे ही समाप्त हुई। नरेंद्र को इसका तनिक भी पता न हुआ। उधर वह कई दिनों से चित्रशाला ही में सोया था। नरेंद्र के मुख पर जागरण के चिह्न थे। उसकी पत्नी दौड़ी-दौड़ी आई और शीघ्रता से उसका हाथ पकड़कर बोली, "अजी बच्चे को क्या हो गया है, आकर देखो तो।"

नरेंद्र ने पूछा, "क्या हुआ?"

पत्नी लीला हांफते हुए बोली, "शायद हैजा! इस प्रकार खड़े न रहो, बच्चा बिल्कुल अचेत पड़ा है।"

बहुत ही अनमने मन से नरेंद्र शयन-कक्ष में प्रविष्ट हुआ।

बच्चा बिस्तर से लगा पड़ा था। पलंग के चारों ओर उस भयानक रोग के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे। लाल रंग दो घड़ी में ही पीला हो गया था। सहसा देखने से यही ज्ञात होता था जैसे बच्चा जीवित नहीं है। केवल उसके वक्ष के समीप कोई वस्तु 'धक-धक' कर रही थी, और इस क्रिया से ही जीवन के कुछ चिह्न दृष्टिगोचर होते थे।

वह बच्चे के सिरहाने सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

लीला ने कहा, "इस तरह खड़े न रहो। जाओ, डॉक्टर को बुला लाओ।"

मां की आवाज सुनकर बच्चे ने आंखें मलीं। भर्राई हुई आवाज में बोला, "मां! ओ मां!!"

"मेरे लाल! मेरी पूंजी। क्या कह रहा है?" कहते-कहते लीला ने दोनों हाथों से बच्चे को अपनी गोद से चिपटा लिया। मां के वक्ष पर सिर रखकर बच्चा फिर पड़ा रहा।

नरेंद्र के नेत्र सजल हो गए। वह बच्चे की ओर देखता रहा।

लीला ने उपालंभमय स्वर में कहा, "अभी तक डॉक्टर को बुलाने नहीं गए?"

नरेंद्र ने दबी आवाज में कहा, "ऐं...डॉक्टर?"

पति की आवाज का अस्वाभाविक स्वर सुनकर लीला ने चकित होते हुए कहा, "क्या?"

"कुछ नहीं।"

"जाओ, डॉक्टर को बुला लाओ।"

"अभी जाता हूं।"

नरेंद्र घर से बाहर निकला।

घर का द्वार बंद हुआ। लीला ने आश्चर्य चकित होकर सुना कि उसके पति ने बाहर से द्वार की जंजीर खींच ली और वह सोचती रही, "यह क्या?"

6

नरेंद्र चित्रशाला में प्रविष्ट होकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

दोनों हाथों से मुंह ढांपकर वह सोचने लगा। उसकी दशा देखकर ऐसा लगता था कि वह किसी तीव्र आत्मिक पीड़ा से पीड़ित है। चारों ओर गहरे सूनेपन का राज्य था। केवल दीवार लगी हुई घड़ी कभी न थकने वाली गति से 'टिक-टिक' कर रही थी और नरेंद्र के सीने के अंदर उसका हृदय मानो उत्तर देता हुआ कह रहा था—धक! धक! संभवत: उसके भयानक संकल्पों से परिचित होकर घड़ी और उसका हृदय परस्पर कानाफूसी कर रहे थे। सहसा नरेंद्र उठ खड़ा हुआ। संज्ञाहीन अवस्था में कहने लगा, "क्या करूं? ऐसा आदर्श फिर न मिलेगा, परंतु...वह तो मेरा पुत्र है।"

वह कहते-कहते रुक गया। मौन होकर सोचने लगा। सहसा मकान के अंदर से सनसनाते हुए बाण की भांति 'हाय' की हृदयबेधक आवाज उसके कानों में पहुंची।

"मेरे लाल! तू कहां गया?"

जिस प्रकार चिल्ला टूट जाने से कमान सीधी हो जाती है, चिंता और व्याकुलता से नरेंद्र ठीक उसी तरह सीधा खड़ा हो गया। उसके मुख पर लाली का चिह्न तक न था, फिर कान लगाकर उसने आवाज सुनी, वह समझ गया कि बच्चा चल बसा।

मन-ही-मन में बोला, 'भगवान्! तुम साक्षी हो, मेरा कोई अपराध नहीं।'

इसके बाद वह अपने सिर के बालों को मुट्ठी में लेकर सोचने लगा। जैसे कुछ समय पश्चात् ही मनुष्य निद्रा से चौंक उठता है उसी प्रकार चौंककर जल्दी-जल्दी मेज पर से कागज, तूलिका और रंग आदि लेकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

शयन-कक्ष के सामने एक खिड़की के समीप आकर वह अचकचा कर खड़ा हो गया। कुछ सुनाई देता है क्या? नहीं सब खामोश हैं। उस खिड़की से कमरे का आंतरिक भाग दिखाई पड़ रहा था। झांककर भय से थर-थर कांपते हुए उसने देखा तो उसके सारे शरीर में कांटे-से चुभ गए बिस्तर उलट-पुलट हो रहा था। पुत्र से रिक्त गोद किए मां वहीं पड़ी तड़प रही थी।

और इसके अतिरिक्त...मां कमरे में पृथ्वी पर लोटते हुए, बच्चे के मृत शरीर को दोनों हाथों से वक्ष:स्थल के साथ चिपटाए, बाल बिखरे, नेत्र विस्फारित किए, बच्चे के निर्जीव होंठों को बार-बार चूम रही थी।

नरेंद्र की दोनों आंखों में किसी ने दो सलाखें चुभो दी हों। उसने होंठ चबाकर कठिनता से स्वयं को संभाला और इसके साथ ही कागज पर पहली रेखा खींची। उसके सामने कमरे के अंदर वही भयानक-दृश्य उपस्थित था। संभवत: संसार के किसी अन्य चित्रकार ने ऐसा दृश्य सम्मुख रखकर तूलिका न उठाई होगी।

देखने में नरेंद्र के शरीर में कोई गति न थी, परंतु उसके हृदय में कितनी वेदना थी? उसे कौन समझ सकता है, वह तो पिता था।

नरेंद्र जल्दी-जल्दी चित्र बनाने लगा। जीवन-भर चित्र बनाने में इतनी जल्दी उसने कभी न की उसकी उंगलियां किसी अज्ञात शक्ति से अपूर्व प्राप्त कर चुकी थीं। रूप-रेखा बनाते हुए उसने सुना, "बेटा, ओ बेटा! बातें करो, बात करो, जरा एक बार तुम देख तो लो?"

नरेंद्र ने अस्फुट स्वर में कहा, "उफ! यह असहनीय है।" और उसके हाथ से तूलिका छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

किंतु उसी समय तूलिका उठाकर वह पुनः चित्र बनाने लगा। रह-रहकर लीला का क्रंदन-रुदन कानों में पहुंचकर हृदय को छेड़ता और रक्त की गति को बंद करता और उसके हाथ स्थिर होकर उसकी तूलिका की गति को रोक देते।

इसी प्रकार पल-पर-पल बीतने लगे।

मुख्य द्वार से अंदर आने के लिए नौकरों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था, परंतु नरेंद्र मानो इस समय विश्व और विश्वव्यापी कोलाहल से बहरा हो चुका था। वह कुछ भी न सुन सका। इस समय वह एक बार कमरे की ओर देखता और एक बार चित्र की ओर, बस रंग में तूलिका डुबोता और फिर कागज पर चला देता।

वह पिता था, परंतु कमरे के अंदर पत्नी के हृदय से लिपटे हुए मृत बच्चे की याद भी वह धीरे-धीरे भूलता जा रहा था।

सहसा लीला ने उसे देख लिया। दौड़ती हुई खिड़की के समीप आकर दुखित स्वर में बोली, "क्या डॉक्टर को बुलाया? जरा एक बार आकर देख तो लेते कि मेरा लाल जीवित है या नहीं...यह क्या? चित्र बना रहे हो?"

चौंककर नरेंद्र ने लीला की ओर देखा। वह लड़खड़ाकर गिर रही थी।

बाहर से द्वार खटखटाने और बार-बार चिल्लाने पर भी जब कपाट न खुले, तो रसोइया और नौकर दोनों डर गए। वे अपना काम समाप्त करके प्राय: संध्या समय घर चले जाते थे और प्रात:काल काम करने आ जाते थे। प्रतिदिन लीला या नरेंद्र दोनों में से कोई-न-कोई द्वार खोल देता था, आज चिल्लाने और खटखटाने पर भी द्वार न खुला। इधर रह-रहकर लीला की क्रंदन-ध्वनि भी कानों में आ रही थी।

उन लोगों ने मुहल्ले के कुछ व्यक्तियों को बुलाया। अंत में सबने सलाह करके द्वार तोड़ डाला।

सब आश्चर्य चकित होकर मकान में घुसे। जीने से चढ़कर देखा कि दीवार का सहारा लिए, दोनों हाथ जंघाओं पर रखे नरेंद्र सिर नीचा किए हुए बैठा है।

उनके पैरों की आहट से नरेंद्र ने चौंककर मुंह उठाया। उसके नेत्र रक्त की भांति लाल थे। थोड़ी देर पश्चात् वह ठहाका मारकर हंसने लगा और सामने लगे चित्र की ओर उंगली दिखाकर बोल उठा, "डॉक्टर! डॉक्टर!! मैं अमर हो गया।"

7

दिन बीतते गए, प्रदर्शनी आरंभ हो गई।

प्रदर्शनी में देखने की कितनी ही वस्तुएं थीं, परंतु दर्शक एक ही चित्र पर झुके पड़ते थे। चित्र छोटा-सा था और अधूरा भी, नाम था 'अंतिम प्यार।'

चित्र में चित्रित किया हुआ था, एक मां बच्चे का मृत शरीर हृदय से लगाए अपने दिल के टुकड़े के चंदा-से मुख को बार-बार चूम रही है।

शोक और चिंता में डूबी हुई मां के मुख, नेत्र और शरीर में चित्रकार की तूलिका ने एक ऐसा सूक्ष्म और दर्दनाक चित्र चित्रित किया जो देखता उसकी आंखों से आंसू निकल पड़ते। चित्र की रेखाओं में इतनी अधिक सूक्ष्मता से दर्द भरा जा सकता है, यह बात इससे पहले किसी के ध्यान में न आई थी।

इस दर्शक-समूह में कितने ही चित्रकार थे। उनमें से एक ने कहा, "देखिए योगेश बाबू, आप क्या कहते हैं ?"

योगेश बाबू उस समय मौन धारण किए चित्र की ओर देख रहे थे, सहसा प्रश्न सुनकर एक आंख बंद करके बोले, "यदि मुझे पहले से ज्ञात होता तो मैं नरेंद्र को अपना गुरु बनाता।"

दर्शकों ने धन्यवाद, साधुवाद और वाह-वाह की झड़ी लगा दी; परंतु किसी को भी मालूम न हुआ कि उस सज्जन पुरुष का मूल्य क्या है, जिसने इस चित्र को चित्रित किया है।

किस प्रकार चित्रकार ने स्वयं की धूलि में मिलाकर रक्त से इस चित्र को रंगा है, उसकी यह दशा किसी को भी ज्ञात न हो सकी।

❑❑

12

गूंगी

कन्या का नाम जब सुभाषिणी रखा गया था तब कौन जानता था कि वह गूंगी होगी। इसके पहले, उसकी दो बड़ी बहनों के सुकेशिनी और सुहासिनी नाम रखे जा चुके थे, इसी से तुकबंदी मिलाने के हेतु उसके पिता ने छोटी कन्या का नाम रख दिया सुभाषिणी। अब सब लोग केवल उसे 'सुभा' ही कहकर बुलाते हैं।

बहुत खोज और खर्च के बाद दोनों बड़ी कन्याओं के हाथ पीले हो चुके हैं, और अब छोटी कन्या सुभा माता-पिता के हृदय के नीरव बोझ की तरह घर की शोभा बढ़ा रही है। जो बोल नहीं सकती, वह सब-कुछ अनुभव कर सकती है—यह बात सबकी समझ में नहीं आती, और इसी से सुभा के सामने ही सब उसके भविष्य के बारे में तरह-तरह की चिंता-फिक्र की बातें किया करते हैं। किंतु स्वयं सुभा इस बात को बचपन से ही समझ चुकी है कि उसने विधाता के शाप के वशीभूत होकर ही इस घर में जन्म लिया है। इसका फल यह निकला कि वह सदैव अपने को सब परिजनों की दृष्टि से बचाए रखने का प्रयत्न करने लगी। वह मन-ही-मन सोचने लगी कि उसे सब भूल जाएं तो अच्छा हो। लेकिन, जहां पीड़ा है, उस स्थान को क्या कभी कोई भूल सकता है? माता-पिता के मन में वह हर समय पीड़ा की तरह जीती-जागती बनी रहती है।

विशेषकर उसकी माता उसे अपनी ही किसी गलती के रूप में देखती है; क्योंकि प्रत्येक माता पुत्र की अपेक्षा पुत्री को कहीं अधिक अपने अंश के रूप में देखती है। और पुत्री में किसी प्रकार की कमी होने पर, उसे अपने लिए मानो विशेष रूप से लज्जाजनक बातें समझती । सुभा के पिता वाणीकंठ तो सुभा को अपनी दोनों बड़ी पुत्रियों की अपेक्षा कुछ अधिक ही स्नेह करते हैं; पर माता उसे अपने गर्भ का कलंक समझकर उससे उदासीन ही रहती है।

सुभा को बोलने की जबान नहीं है, पर उसकी लंबी-लंबी पलकों में दो बड़ी-बड़ी काली आंखें अवश्य हैं, और उसके ओष्ठ तो मन के भावों के तनिक से संकेत पर नए पल्लव की तरह कांप-कांप उठते हैं।

वाणी द्वारा हम जो अपने मन के भाव प्रकट करते हैं उसको हमें बहुत कुछ अपनी चेष्टाओं से गढ़ लेना पड़ता है, बस, कुछ अनुवाद करने के समान ही समझिए। और, वह हर समय ठीक भी नहीं होता, ताकत की कमी से बहुधा उसमें भूल हो जाती है। लेकिन खंजन जैसी आंखों को कभी कुछ भी अनुवाद नहीं करना पड़ता, मन अपने-आप ही उन पर छाया डालता रहता है, मन के भाव अपने आप ही उस छाया में कभी विस्तृत होते और कभी सिकुड़ते हैं। कभी-कभी आंखें चमक-दमककर जलने लगती हैं और कभी उदासीनता की कालिमा में बुझ-सी जाती हैं, कभी डूबते हुए चंद्रमा की तरह टकटकी लगाए न जाने क्या देखती रहती हैं तो कभी चंचल दामिनी की तरह, ऊपर-नीचे, इधर-उधर चारों ओर बड़ी तेजी से छिटकने लगती हैं। और विशेषकर मुंह के भाव के सिवा जिसके पास जन्म से हो और कोई भाषा नहीं, उसकी आंखों की भाषा तो बहुत उदार और अथाह गहरी होती ही है, करीब-करीब साफ-सुथरी नील-गगन के समान।

उन आंखों को उदय से अस्त तक, सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक छवि-लोक की निस्तब्ध रंगभूमि ही मानना चाहिए। जिह्वाहीन इस कन्या में विशाल प्रकृति के समान एक जनहीन महानता है, और यही कारण है कि असाधारण लड़के-लड़कियों को उसकी ओर से किसी-न-किसी प्रकार का भय-सा बना रहता, उसके साथ कोई खेलता नहीं। वह नीरव दुपहरिया के समान शब्दहीन और संगहीन एकांतवासिनी बनी रहती है।

2

गांव का नाम है चंडीपुर। उसके पार्श्व में बहने वाली सरिता बंगाल की एक छोटी-सी सरिता है, गृहस्थ के घर की छोटी लड़की के समान। बहुत दूर तक उसका फैलाव नहीं है, उसको तनिक भी आलस्य नहीं, वह अपनी इकहरी देह लिए अपने दोनों छोरों की रक्षा करती हुई अपना काम करती जाती है। दोनों छोरों के ग्रामवासियों के साथ मानो उसका एक-न-एक संबंध स्थापित हो गया है। दोनों ओर गांव हैं, और वृक्षों के छायादार ऊंचे किनारे हैं, जिनके नीचे से

गांव की लक्ष्मी सरिता अपने-आपको भूलकर शीघ्रता के साथ कदम बढ़ाती हुई बहुत ही प्रसन्न-चित्त असंख्य शुभ कार्यों के लिए चली जा रही है।

वाणीकंठ का अपना घर नदी के बिल्कुल एक छोर पर है। उसका खपच्चियों का बेड़ा, ऊंचा छप्पर गाय-घर, भुस का ढेर, आम, कटहल और केलों का बगीचा हरेक नाविक की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करता है। ऐसे घर में, आसानी से चलने वाली ऐसी सुख की गृहस्थी में उस गूंगी कन्या पर किसी की दृष्टि पड़ती है या नहीं, मालूम नहीं। पर काम-धंधे से ज्योंही उसे तनिक फुर्सत मिलती, त्योंही झट से वह उस नदी के किनारे जा बैठती।

प्रकृति अपने पार्श्व में बैठकर उसकी सारी कमी को पूर्ण कर देती है। नदी की स्वर-ध्वनि, मनुष्यों का शोर, नाविकों का सुमधुर गान, चिड़ियों का चहचहाना, पेड़-पौधों की मर्मर ध्वनि, सब मिलकर चारों ओर के गमनागमन आंदोलन और कंपन के साथ होकर सागर की उत्ताल तरंगों के समान उस बालिका के चिर-स्तब्ध हृदय उपकल के पार्श्व में आकर मानो टूट-फूट पड़ती हैं।

प्रकृति के ये अनोखे शब्द और अनोखे गीत—यह भी तो गूंगी की ही भाषा है, बड़ी-बड़ी आंखों और उसमें भी बड़ी पलकों वाली सुभाषिणी की जो भाषा है, उसी का मानो वह विश्वव्यापी फैलाव है। जिसमें झींगुरों की 'झिन-झिन' ध्वनि से गूंजती हुई तृणभूमि से लेकर शब्दातीत नक्षत्र-लोक तक केवल इंगित, संगीत, क्रंदन और उच्छ्वासें भरी पड़ी हैं।

और दुपहरिया को नाविक और मछुए खाने के लिए अपने-आने घर जाते, गृहस्थ और पक्षी आराम करते, पार उतारने वाली नौका बंद पड़ी रहती, जन-समाज अपने सारे काम-धंधों के बीच में रुककर सहसा भयानक निर्जन मूर्ति धारण करता, तब रुद्र महाकाल के नीचे एक गूंगी प्रकृति और एक गूंगी कन्या दोनों आमने-सामने चुपचाप बैठी रहतीं। एक दूर तक फैली हुई धूप में और दूसरी एक छोटे-से वृक्ष की छाया में।

3

सुभाषिणी की कोई सहेली हो ही नहीं, सो बात नहीं। गौ-घर में दो गायें हैं, एक का नाम है सरस्वती और दूसरी का नाम है पार्वती। ये नाम सुभाषिणी के मुंह से उन गायों ने कभी भी नहीं सुने, परंतु वे उसके पैरों की मंथर गति को भलीभांति पहचानती हैं। सुभाषिणी का बिना बातों का एक ऐसा करुण स्वर है,

जिसका अर्थ वे भाषा की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता से समझ जाती हैं। वह कभी उन पर लाड़ करती, कभी डांटती और कभी प्रार्थना का भाव दर्शाकर उन्हें मनाती और इन बातों को उसकी 'सारो' और 'पारो' इंसान से कहीं अधिक और भलीभांति समझ जाती हैं।

सुभाषिणी गौ-घर में घुसकर अपनी दोनों बांहों से जब 'सारो' की गर्दन पकड़कर उसके कान के पास अपनी कनपटी रगड़ती , तब 'पारो' स्नेह की दृष्टि से उसकी ओर निहारती हुई, उसके शरीर को चाटने लगती। सुभाषिणी दिन-भर में कम-से-कम दो-तीन बार तो नियम से गौ-घर में जाया करती। इसके सिवा अनियमित आना-जाना भी बना रहता। घर में जिस दिन वह कोई सख्त बात सुनती, उस दिन उसका समय अपनी गूंगी सखियों के पास बीतता। सुभाषिणी की सहनशील और विषाद-शांत चितवन को देखकर वे न जाने कैसी एक अन्य अनुमान शक्ति में उसकी मर्म-वेदना को समझ जातीं और उसकी देह से सटकर धीरे-धीरे उसकी बांहों पर सींग घिस-घिसकर अपनी मौन आकुलता से उसको धैर्य बंधाने का प्रयत्न करतीं।

इसके सिवा, एक बकरी और बिल्ली का बच्चा भी था। उनके साथ सुभाषिणी की गहरी मित्रता तो नहीं थी, फिर भी वे उससे बहुत प्यार रखते और कहने के अनुसार चलते। बिल्ली का बच्चा, चाहे दिन हो या रात, जब-तब सुभाषिणी की गर्म गोद पर बिना किसी संकोच के अपना हक जमा लेता और सुख की नींद सोने की तैयारी करता और सुभाषिणी जब उसकी गर्दन और पीठ पर अपनी कोमल उंगलियां फेरती, तब तो वह ऐसे आंतरिक भाव दर्शाने लगता, मानो उसको नींद में खास सहायता मिल रही है।

4

ऊंची श्रेणी के प्राणियों में सुभाषिणी को और भी एक मित्र मिल गया था, किंतु उसके साथ उसका ठीक कैसा संबंध था, इसकी पक्की खबर बताना मुश्किल है। क्योंकि उसके बोलने की जिह्वा है और वह गूंगी है, अत: दोनों की भाषा एक नहीं थी।

वह था गुसाइयों का छोटा लड़का प्रताप! प्रताप बिल्कुल आलसी और निकम्मा था। उसके माता-पिता ने बड़े प्रयत्नों के उपरांत इस बात की आशा तो बिल्कुल छोड़ दी थी कि वह कोई काम-काज करके घर-गृहस्थी की कुछ सहायता करेगा।

निकम्मों के लिए एक बड़ा सुभीता यह है कि परिजन उन पर बेशक नाराज रहें पर बाहरी जनों के लिए वे प्राय: स्नेहपात्र होते हैं, कारण, किसी विशेष काम में न फंसे रहने से वे सरकारी मिलकियत-से बन जाते हैं। नगरों में जैसे घर के पार्श्व में या कुछ दूर पर एक-आध सरकारी बगीचे का रहना आवश्यक है, वैसे ही गांवों में दो-चार निठल्ले-निकम्मे सरकारी इंसानों का रहना आवश्यक है। काम-धंधों में, हास-परिहास में और जहां कहीं भी एक-आध की कमी देखी, वहीं वे चट-से हाथ के पास ही मिल जाते हैं।

प्रताप की विशेष रुचि एक ही है। वह है मछली पकड़ना। इससे उसका बहुत-सा समय आसानी के साथ कट जाता है। तीसरे पहर सरिता के तीर पर बहुधा वह इस काम में तल्लीन दिखाई देता और इसी बहाने सुभाषिणी से उसकी भेंट हुआ करती। चाहे किसी भी काम में हो, पार्श्व में एक हमजोली मिलने मात्र से ही प्रताप का हृदय खुशी से नाच उठता। मछली के शिकार में मौन साथी ही सबसे श्रेयस्कर माना जाता है, अत: प्रताप सुभाषिणी की खूबी को जानता है और कद्र करता है। यही कारण है कि और सब तो सुभाषिणी को 'सुभा' कहते, किंतु प्रताप उसमें और भी स्नेह भरकर सुभा को 'सू' कहकर पुकारता।

सुभाषिणी इमली के वृक्ष के नीचे बैठी रहती और प्रताप पास ही जमीन पर बैठा हुआ सरिता-जल में कांटा डालकर उसी की ओर निहारता रहता। प्रताप के लिए उसकी ओर से हर रोज एक पान का बीड़ा बंधा हुआ था और उसे स्वयं वह अपने हाथ से लगा कर लाती। और शायद, बहुत देर तक बैठे-बैठे, देखते-देखते उसकी इच्छा होती कि वह प्रताप की कोई विशेष सहायता करे, उसके किसी काम में सहारा दे। उसके ऐसा मन में आता कि किसी प्रकार वह यह बता दे कि संसार में वह भी एक कम आवश्यक व्यक्ति नहीं लेकिन उसके पास न तो कुछ करने को था और वह न कुछ कर ही सकती थी। तब वह मन-ही-मन भगवान् से ऐसी अलौकिक शक्ति के लिए विनती करती कि जिससे वह जादू-मंतर से चट से ऐसा कोई चमत्कार दिखा सके जिसे देखकर प्रताप दंग रह जाए, और कहने लगे, "अच्छा! 'सू' में यह करामात! मुझे क्या पता था?"

मान लो, सुभाषिणी यदि जल-परी होती और धीरे-धीरे जल में से निकलकर सर्प के माथे की मणि घाट पर रख देती और प्रताप अपने उस छोटे-से धंधे को

छोड़कर मणि को पाकर जल में डुबकी लगाता और पाताल में पहुंचकर देखता कि रजत-प्रासाद में स्वर्ण-जड़ित शैया पर कौन बैठी है? और आश्चर्य से मुंह खोलकर कहता, "अरे! यह तो अपनी वाणीकंठ के घर की वही गूंगी छोटी कन्या है 'सू'! मेरी 'सू' आज मणियों से जटित, गंभीर, निस्तब्ध पातालपुरी की एकमात्र जलपरी बनी बैठी है।" तो! क्या यह बात हो ही नहीं सकती, क्या यह नितांत असंभव ही है? वास्तव में कुछ भी असंभव नहीं। लेकिन फिर भी, 'सू' प्रजा-शून्य पातालपुरी के राजघराने में जन्म न लेकर वाणीकंठ के घर पैदा हुई है, और इसीलिए वह आज 'गुसांइयों के घर के लड़के प्रताप को किसी प्रकार के आश्चर्य से अचंभित नहीं कर सकते।

5

सुभाषिणी की अवस्था दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। धीरे-धीरे मानो वह अपने आपको अनुभव कर रही है। मानो किसी एक पूर्णिमा को किसी सागर से एक ज्वार-सा आकर उसके अंतराल को किसी एक नवीन अनिर्वचनीय चेतना शक्ति से भर-भर देता है। अब मानो वह अपने-आपको देख रही है, अपने विषय में कुछ सोच रही है, कुछ पूछ रही है, लेकिन कुछ समझ नहीं पाती।

पूर्णिमा की गाढ़ी रात्रि में उसने एक दिन धीरे-से कक्ष के झरोखे को खोलकर, भयत्रस्तावस्था में मुंह निकाल कर बाहर की ओर देखा। देखा कि संपूर्ण-प्रकृति भी उसके समान सोती हुई दुनिया पर अकेली बैठी हुई जाग रही है। वह भी यौवन के उन्माद से, आनंद से, विषाद से, असीम नीरवता की अंतिम परिधि तक, यहां तक कि उसे भी पार करके चुपचाप स्थित बैठी है, एक शब्द भी उसके मुख से नहीं निकल रहा है। मानो इस स्थिर निस्तब्ध प्रकृति के एक छोर पर उससे भी स्थिर और उससे भी निस्तब्ध एक भोली लड़की खड़ी हो।

इधर कन्या के विवाह की चिंता में माता-पिता बहुत बेचैन हो उठे हैं और गांव के लोग भी यत्र-तत्र निंदा कर रहे हैं। यहां तक कि जाति विच्छेद कर देने की भी अफवाह उड़ी हुई है। वाणीकंठ की आर्थिक दशा वैसे अच्छी है, खाते-पीते आराम से हैं और इसी कारण इनके शत्रुओं की भी गिनती नहीं है।

स्त्री-पुरुषों में इस बात पर बहुत-कुछ सलाह-मशविरा हुआ। कुछ दिनों के लिए वाणीकंठ गांव से बाहर परदेश चले गए।

अंत में एक दिन घर लौटकर पत्नी से बोले, "चलो, कलकत्ते चले चलें?

कलकत्ता-गमन की तैयारियां पूरे जोर-शोर से होने लगीं। कुहरे से ढके हुए सवेरे के समान सुभा का सारा अंत:करण अश्रुओं की भाप से ऊपर तक भर आया। भावी आशंका से भयभीत होकर वह कुछ दिनों में मूक पशु की तरह लगातार अपने माता-पिता के साथ रहती और अपने बड़े-बड़े नेत्रों से उनके मुख की ओर देखकर मानो कुछ समझने का प्रयत्न किया करती पर वे उसे कोई भी बात समझाकर बताते ही नहीं थे।

इसी बीच में एक दिन तीसरे पहर, तट के समीप मछली का शिकार करते हुए प्रताप ने हंसते-हंसते पूछा, "क्यों री सू, मैंने सुना है कि तेरे लिए वर मिल गया है, तू विवाह करने कलकत्ता जा रही है। देखना, कहीं हम लोगों को भूल मत जाना।" इतना कहकर वह जल की ओर निहारने लगा।

तीर से घायल हिरणी जैसे शिकारी की ओर ताकती और आंखों-ही-आंखों में वेदना प्रकट करती हुई कहती रहती है, "मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?" सुभा ने लगभग वैसे ही प्रताप की ओर देखा, उस दिन वह वृक्ष के नीचे नहीं बैठी। वाणीकंठ जब बिस्तर से उठकर धूम्रपान कर रहे थे। सुभा उनके चरणों के पास बैठकर उनके मुख की ओर देखती हुई रोने लगी। अंत में बेटी को ढाढस और सांत्वना देते हुए पिता के सूखे हुए कपोलों पर अश्रु की दो बूंदें ढुलक पड़ीं।

कल कलकत्ता जाने का शुभ मुहूर्त है। सुभा ग्वाल-घर में अपनी चिर-संगिनियों से विदा लेने के लिए गई। उन्हें अपने हाथ से खिलाकर गले में बांह डालकर वह अपनी दोनों आंखों से खूब जी-भर के उनसे बातें करने लगी। उसके दोनों नेत्र अश्रुओं के बांध को न रोक सके।

उस दिन शुक्ला-द्वादशी की रात थी। सुभा अपनी कोठरी में से निकल कर उसी जाने-पहचाने सरिता-तट के कच्चे घाट के पास घास पर औंधी लेट गई। मानो वह अपनी और अपनी गूंगी जाति की पृथ्वी माता से अपनी दोनों बांहों को लिपटाकर कहना चाहती है, "तू मुझे कहीं के लिए मत विदा कर मां, मेरे समान तू मुझे अपनी बांहों से पकड़े रख, कहीं मत विदा कर।"

6

कलकत्ते के एक किराये के मकान में एक दिन सुभा की माता ने उसे वस्त्रों से खूब सजा दिया। कसकर उसका जूड़ा बांध दिया, उसमें जरी का फीता

लपेट दिया, आभूषणों से लादकर उसके स्वाभाविक सौंदर्य को भरसक मिटा दिया। सुभा के दोनों नेत्र अश्रुओं से गीले थे। नेत्र कहीं सूख न जाएं, इस भय से माता ने उसे बहुत समझाया-बुझाया और अंत में फटकारा भी, पर अश्रुओं ने फटकार की कोई परवाह न की।

उस दिन कई मित्रों के साथ वह कन्या को देखने के लिए आया। कन्या के माता-पिता चिंतित, शंकित और भयभीत हो उठे। मानो देवता स्वयं अपनी बलि के पशुओं को देखने आए हों।

अंदर से बहुत डांट-फटकार बताकर कन्या के अश्रुओं की धारा को और भी तीव्र रूप देकर उसे निरीक्षकों के सम्मुख भेज दिया।

निरीक्षकों ने बहुत देर तक देखभाल के उपरांत कहा, ''ऐसी कोई बुरी भी नहीं है।''

विशेषकर कन्या के अश्रुओं को देखकर वे समझ गए कि इसके हृदय में कुछ दर्द भी है; और फिर हिसाब लगाकर देखा कि जो हृदय आज माता-पिता के बिछोह की बात सोचकर इस प्रकार द्रवित हो रहा है, अंत में कल उन्हीं के काम वह आएगा। सीप के मोती के समान कन्या के आंसुओं की बूंदें उसका मूल्य बढ़ाने लगीं। उसकी ओर से किसी को कुछ कहना ही नहीं पड़ा।

पात्र देखकर, खूब अच्छे मुहूर्त में सुभा का विवाह-संस्कार हो गया।

गूंगी कन्या को दूसरों के हाथ सौंपकर माता-पिता अपने घर लौट आए। और तब कहीं उनकी जाति और परलोक की रक्षा हो सकी।

सुभा का पति पछांह की ओर नौकरी करता है। विवाह के उपरांत शीघ्र ही वह पत्नी को लेकर नौकरी पर चला गया।

एक सप्ताह के अंदर ससुराल के सब लोग समझ गए कि बहू गूंगी है, पर इतना किसी ने न समझा कि इसमें उसका अपना कोई दोष नहीं, उसने किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया है। उसके नेत्रों ने सभी बातें कह दी थीं, किंतु कोई उसे समझ न सका। अब वह चारों ओर निहारती रहती है, उसे अपने मन की बात कहने की भाषा नहीं मिलती। जो गूंगे की भाषा समझते थे, उसके जन्म से परिचित थे, वे चेहरे उसे यहां दिखाई नहीं देते। कन्या के गहरे शांत अंत:करण में असीम अव्यक्त क्रंदन ध्वनित हो उठा, और सृष्टिकर्ता के सिवा और कोई उसे सुन ही न सका।

अबकी बार उसका पति अपनी आंखों और कानों से ठीक प्रकार परीक्षा लेकर एक बोलने वाली कन्या को ब्याह लाया।

13

खोया हुआ मोती

मेरी नौका ने स्नान-घाट की टूटी-फूटी सीढ़ियों के समीप लंगर डाला। सूर्यास्त हो चुका था। नाविक नौका के तख्ते पर ही मगरिब (सूर्यास्त) की नमाज अदा करने लगा। प्रत्येक सजदे के पश्चात् उसकी काली छाया सिंदूरी आकाश के नीचे एक चमक के समान खिंच जाती।

नदी के किनारे एक जीर्ण-क्षीर्ण इमारत खड़ी थी, जिसका छज्जा इस प्रकार झुका हुआ था कि उसके गिर पड़ने की हर घड़ी भारी शंका रहती थी। उसके द्वारों और खिड़कियों के किवाड़ बहुत पुराने और ढीले हो चुके थे। चहुं ओर शून्यता छाई हुई थी। उस शून्य वातावरण में सहसा एक मनुष्य की आवाज मेरे कानों में सुनाई पड़ी और मैं कांप उठा।

"आप कहां से आ रहे हैं ?"

मैंने गर्दन घुमाकर देखा तो एक पीले, लंबे और वृद्ध मनुष्य की शक्ल दिखाई पड़ी जिसकी हड्डियां निकली हुई थीं, दुर्भाग्य के लक्षण सिर से पैर तक प्रकट हो रहे थे। वह मुझसे दो-चार सीढ़ियां ऊपर खड़ा था। सिल्क का मैला कोट और उसके नीचे एक मैली-सी धोती बांधे हुए। उसका निर्बल शरीर, उतरा हुआ मुख और लड़खड़ाते हुए कदम बता रहे थे कि उस क्षुधा-पीड़ित मनुष्य को शुद्ध वायु से अधिक भोजन की आवश्यकता है।

"मैं रांची से आ रहा हूं।'

यह सुनकर वह मेरे बराबर उसी सीढ़ी पर आ बैठा।

"और आपका काम ?"

"व्यापार करता हूं।"

"काहे का ?"

"इमारती लकड़ी, रेशम और त्रिफला का।"

"आपका नाम क्या है?"

एक क्षण सोचने के बाद मैंने उसे अपना एक बनावटी नाम बता दिया। किंतु वह अब मुझे एक टक देख रहा था।

"परंतु आपका यहां आना कैसे हुआ? केवल मनोरंजन के लिए या वायु-परिवर्तन के लिए?"

मैंने कहा, "वायु-परिवर्तन के लिए।"

"यह भी खूब कही। मैं लगभग छः वर्ष से प्रतिदिन यहां की ताजी वायु पेट भरकर खा रहा हूं और साथ ही पंद्रह ग्रेन कुनैन भी; परंतु अंतर कुछ नहीं हुआ। कोई लाभ दिखाई नहीं देता।"

"किंतु रांची और यहां के जलवायु में तो पृथ्वी और आकाश का अंतर है।"

"इसमें संदेह नहीं, किंतु आप यहां ठहरे किस स्थान पर हैं? क्या इसी मकान में?"

संभवतः उस व्यक्ति को संदेह हो गया था कि मुझे उसके किसी गड़े हुए धन का कहीं से सुराग मिल गया है और मैं उस स्थान पर ठहरने के लिए नहीं; बल्कि उसके गड़े हुए धन पर अपना अधिकार जमाने आया हूं। मकान की भलाई-बुराई के संबंध में एक शब्द तक कहे बिना उसने अपने उस मकान के स्वामी की पंद्रह साल पूर्व की एक कथा सुनानी आरंभ कर दी—

"उसकी गंजी खोपड़ी में गहरी और चमकदार काली आंखें मुझे कॉलरिज के पुराने नाविक का स्मरण करा रही थीं। वह एक स्थानीय स्कूल में अध्यापक था।

"नाविक ने समाज से निवृत्त होकर रोटी बनानी आरंभ कर दी। सूर्यास्त होने के समय आकाश के सिंदूरी रंग पर अधिकार जमाने वाली अंधेरी में वह खंडहर-भवन एक विचित्र-सा भयावह दृश्य प्रदर्शित कर रहा था।

"मेरे पास सीढ़ी पर बैठे हुए उस दुबले और लंबे स्कूल मास्टर ने कहा, 'मेरे इस गांव में आने से लगभग दस साल पूर्व एक व्यक्ति फणीभूषण सहाय इस मकान में रहता था। उसका चाचा दुर्गामोहन बिना अपने किसी उत्तराधिकारी के मर गया। जिसकी संपूर्ण संपत्ति और विस्तृत व्यापार का अकेला वही अधिकारी था।

''पाश्चात्य शिक्षा और नई सभ्यता का भूत फणीभूषण पर सवार था। कॉलेज में कई वर्षों तक शिक्षा प्राप्त कर चुका था। वह अंग्रेजों की भांति कोठी में जूता पहने फिरा करता था, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वे लोग उनके साथ कोई व्यापारिक रियायत देने के रवादार न थे। वे भली-भांति जानते थे कि फणीभूषण आखिर को नए बंगाल की वायु में सांस ले रहा है।

''इसके अतिरिक्त एक और बला उसके सिर पर सवार थी। अर्थात् उसकी पत्नी परम सुंदरी थी। यह सुंदर बला और पाश्चात्य शिक्षा दोनों उसके पीछे ऐसी पड़ी थीं कि तोबा भली! खर्च सीमा से बाहर। तनिक शरीर गर्म हुआ और झट सरकारी डॉक्टर 'खट-खट' करते आ पहुंचे।

''विवाह संभवत: आपका भी हो चुका है। आपको भी वास्तव में यह अनुभव हो गया है कि स्त्री कठोर स्वभाव वाले पति को सर्वदा पसंद करती है। वह अभागा व्यक्ति जो अपनी पत्नी के प्रेम से वंचित हो, यह न समझ बैठे कि वह इस संपत्ति से माला-माल नहीं या सौंदर्य से वंचित है। विश्वास कीजिए वह अपनी सीमा से अधिक कोमल प्रकृति और प्रेम के कारण इसी दुर्भाग्य में फंसा हुआ है। मैंने इस विषय में खूब सोचा है और इस तथ्य पर पहुंचा हूं और यह है भी ठीक। पूछिए क्यों? लीजिए इस प्रश्न का संक्षिप्त और विस्तृत उत्तर इस प्रकार है।

''यह तो आप अवश्य मानेंगे कि कोई भी व्यक्ति उस समय तक वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि उसे अपने जन्मजात विचार और स्वाभाविक योग्यताओं के प्रकट करने के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्राप्त न हो। हरिण को आपने देखा है वह अपने सींगों को वृक्ष से रगड़कर आनंद प्राप्त करता है, नर्म और नाजुक केले के खंभे से नहीं। सृष्टि के आरंभ से ही नारी-जाति इस जंगली और कठोर-स्वभाव पुरुष को जीतने के लिए विशेष ढंग सीखती चली आ रही है। यदि उसे पहले ही से आज्ञाकारी पति मिल जाए तो उसके वे आकर्षक हथकंडे जो उसको मां और दादियों से बपौती के रूप में मिले हैं, और लंबे समय से निरंतर चलते रहने के कारण सीमा से अधिक सत्य भी सिद्ध हुए हैं, न केवल बेकार रह जाते हैं बल्कि स्त्री को भार-स्वरूप मालूम होने लगते हैं।

''स्त्री अपने आकर्षक सौंदर्य के बल पर पुरुष का प्रेम और उसकी आज्ञाकारिता प्राप्त करना चाहती है। किंतु जो पति स्वयं ही उनके सौंदर्य के

सामने झुक जाए, वह वास्तव में दुर्भाग्यशाली होता है, और उससे अधिक उसकी पत्नी।

"वर्तमान सभ्यता ने ईश्वर-प्रदत्त उपहार अर्थात् 'पुरुष की सुंदर कठोरता" उससे छीन ली है। पुरुष ने अपनी निर्बलता से स्त्री के दांपत्य-बंधन को बड़ी सीमा तक ढीला कर दिया है। मेरी इस कहानी का अभागा फणीभूषण भी इस नवीन सभ्यता की छलना से छला हुआ था और यही कारण था कि न वह अपने व्यापार में सफल था और न गृहस्थ जीवन से संतुष्ट। यदि एक ओर वह अपने व्यापार में लाभ से बेखबर था तो दूसरी ओर अपनी पत्नी के पतित्व-अधिकार से वंचित।

"फणीभूषण की पत्नी मनीमलिका को प्रेम और विलास-सामग्री बेमांगे मिली थी। उसे सुंदर और बहुमूल्य साड़ियों के लिए अनुनय-विनय तो क्या पति से कहने की आवश्यकता भी न होती थी। सोने के आभूषणों के लिए उसे झुकना न पड़ता था। इसलिए उसके स्त्रियोचित स्वभाव को आज्ञा देने वाले स्वर का जीवन में कभी आभास न हुआ था, यही कारण था कि वह अपनी प्रेममयी भावनाओं में आवेश की स्थिति उत्पन्न न कर पाती थी। उसके कान,'लो स्वीकार करो' के मधुर शब्दों से परिचित थे; किंतु उसके होंठ 'लाओ' और 'दो' से सर्वथा अपरिचित।

उसके सीधे स्वभाव का पति इस मिथ्या-भावना की कहावत से प्रसन्न था कि 'कर्म किए जाओ फल की कामना मत करो, तुम्हारा परिश्रम कभी अकारथ नहीं जाएगा।' वह इसी मिथ्या भावना के पीछे हाथ-पैर मारे जा रहा था। परिणाम यह हुआ कि उसकी पत्नी उसे ऐसी मशीन समझने लगी जो बिना चलाए चलती है। स्वयं ही बिना कुछ कष्ट किए सुंदर साड़ियां और बहुमूल्य आभूषण बनाकर उसके कदमों पर डालती रहती। उसके पुर्जे इतने शक्तिशाली और टिकाऊ थे कि कभी भी उसको तेल देने की आवश्यकता न होती।

"फणीभूषण की जन्मभूमि और रहने का स्थान समीप ही एक देहात का गांव था, किंतु उसके चाचा के व्यापार का मुख्य स्थान यही शहर था। इसी कारण उसकी आयु का अधिक भाग यहीं व्यतीत हुआ था। वैसे मां मर चुकी थी; किंतु मौसी और मामियां आदि ईश्वर की कृपा से विद्यमान थीं। परंतु वह विवाह के बाद ही फौरन मनीमलिका को अपने साथ ले आया। उसने विवाह अपने सुख के लिए किया था न कि अपने संबंधियों की सेवा के लिए।

"पत्नी और उसके अधिकारों में पृथ्वी-आकाश का अंतर है। पत्नी को प्राप्त कर लेना और फिर उसकी देख-भाल करना, उसको अपना बनाने के लिए काफी नहीं हुआ करता।

"मनीमलिका सोसायटी की अधिक भक्त न थी। इसलिए व्यर्थ का खर्च भी न करती थी, बल्कि इसके प्रतिकूल बड़ी सावधानी रखने वाली थी। जो उपहार फणीभूषण उसको एक बार ला देता फिर क्या मजाल कि उसको हवा भी लग जाए। वह सावधानी से सब रख दिया जाता। कभी ऐसा नहीं देखा गया कि किसी पड़ोसिन को उसने भोजन पर बुलाया हो। वह उपहार या भेंट लेने-देने के पक्ष में भी न थी।

"सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि चौबीस साल की आयु में भी मनीमलिका चौदह वर्ष की सुंदर युवती दिखाई देती थी। ऐसा प्रतीत होता मानो उसका रूप-लावण्य केवल स्थायी ही नहीं, बल्कि चिरस्थायी रहने वाला है। मनीमलिका के पार्श्व में हृदय न था बर्फ का टुकड़ा था, जिस पर प्रेम की तनिक भी तपन न पहुंची थी। फिर वह पिघलता क्यों और उसका यौवन ढलता किस प्रकार?

"जो वृक्ष पत्तों से लदा होता है प्राय: फल से वंचित रहता है। मनीमलिका का सौंदर्य भी फलहीन था। वह संतानहीन थी। रख-रखाव और व्यक्तिगत देख-रेख करती भी तो काहे की? उसका सारा ध्यान अपने आभूषणों पर ही केंद्रित था। संतान होती तो वसंत की मीठी-मीठी धूप की भांति उसके बर्फ के हृदय को पिघलाती और वह निर्मल जल उसके दांपत्य-जीवन के मुरझाए हुए वृक्ष को हरा कर देता।

"मनीमलिका गृहस्थ के काम-काज और परिश्रम से भी न कतराती थी। जो काम वह स्वयं कर सकती उसका पारिश्रमिक देना उसे खलता था। दूसरों के कष्ट का न उसे ध्यान था और न नाते-रिश्तेदारों की चिंता। उसको अपने काम से काम था। इस शांत जीवन के कारण वह स्वस्थ और सुखी थी। न कभी चिंता होती थी, न कोई कष्ट।

"प्राय: पति इसे संतोष तो क्या सौभाग्य समझेंगे? क्योंकि जो पत्नी हर समय फरमाइशें लेकर पति की छाती पर चढ़ती रहे वह सारे गृहस्थ के लिए रोग सिद्ध होती है।

"कम-से-कम मेरी तो यही सम्मति है कि सीमा से बढ़ा हुआ प्रेम पत्नी

के लिए संभवतः गौरव की बात हो, किंतु पति के लिए एक विपत्ति से कम...सोचिए तो सही कि क्या पुरुष का यही काम रह गया है कि वह हर समय यही तोलता-जोखता रहे कि उसकी पत्नी उसे कितना चाहती है, मेरा तो यह दृष्टिकोण है कि गृहस्थ का जीवन उस समय अच्छा व्यतीत होता है जब पति अपना काम करे और पत्नी अपना।

''स्त्री का सौंदर्य और प्रेम यानी तिरिया-चरित्र पुरुष की बुद्धि से परे की चीज है, किंतु स्त्री-पुरुष के प्रेम के उतार-चढ़ाव और उसके न्यूनाधिक अंतर को गंभीर दृष्टि से देखती रहती है। वह शब्दों के लहजे और छिपी हुई बात के अर्थ को झट अलग कर लेती है। इसका कारण केवल यह है कि जीवन के व्यापार में स्त्री की पूंजी लेकर केवल पुरुष का प्रेम है। यह उनके जीवन का एकमात्र सहारा है। यदि वह पुरुष की रुचि के वायु के प्रवाह को अपनी जीवन-नैया के वितान से स्पर्श करने में सफल हो जाए तो विश्वस्ततः नैया अभिप्राय के तट तक पहुंच जाती है। इसीलिए प्रेम का कल्पना-यंत्र पुरुष के हृदय में नहीं, स्त्री के हृदय में लगाया गया है।

''प्रकृति ने पुरुष और स्त्री की रुचि में स्पष्ट रूप से अंतर रखा है, किंतु पाश्चात्य सभ्यता इस स्त्री-पुरुष के अंतर को मिटा देने पर तुली हुई है। स्त्री-पुरुष बनी जा रही है और पुरुष स्त्रियोचित चरित्र तथा नारी कर्म-क्षेत्र को अपने जीवन का आनंद समझने लगे हैं। इसलिए यह कठिन हो गया है कि विवाह के समय कोई यह कह सके कि वधू स्त्री है या स्त्रीनुमा स्त्री पुरुष। इसी प्रकार स्त्री। इसलिए कि अंतर केवल हृदय का है। पर क्या जाने कि पुरुष का हृदय मरदाना है या जनाना?

''मैं बहुत देर से आपको शुष्क बातें सुना रहा हूं, परंतु किसी सीमा तक क्षमा के योग्य भी हूं। मैं अपनों से दूर निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा हूं। मेरी दशा उस तमाशा देखने वाले दर्शक के समान है जो दूर से गृहस्थ्-जीवन का तमाशा देख रहा हो और वह उसके गुणों से लाभ उठाकर केवल उसके लिए कुछ सोच सकता हो। इसीलिए दांपत्य-जीवन पर मेरे विचार अत्यंत गंभीर हैं। मैं अपने शिष्यों के सम्मुख तो यह विचार प्रकट कर नहीं सकता, इसी कारण आपके सामने प्रकट करके अपने हृदय को हल्का कर रहा हूं। आप अवकाश के समय इन पर विचार करें।

''सारांश यह है कि यद्यपि गृहस्थ-जीवन में प्रकट रूप में कोई कष्ट

फणीभूषण को न था। समय पर भोजन मिल जाता, घर का प्रबंध सुचारू रूप से चल रहा था, किंतु फिर भी एक प्रकार की विकलता और अविश्वास उसके हृदय में समाया हुआ था और वह नहीं समझ पाता था कि वह है क्या? उसकी दशा उस बच्चे के समान थी जो रो रहा है और नहीं जानता कि उसके हृदय में कोई इच्छा है या नहीं।

''अपनी जीवन-संगिनी के हृदय के स्नेह-रिक्त स्थान को वह सुनहरे और मूल्यवान आभूषणों व इसी प्रकार के अन्य उपहारों से भर देना चाहता था।

''उसका चाचा दुर्गामोहन दूसरी तरह का व्यक्ति था। वह अपनी पत्नी के प्रेम को किसी भी मूल्य पर क्रय करने के पक्ष में न था और न ही वह प्रेम के विषय में चिड़चिड़े स्वभाव का था। फिर भी अपनी जीवन-संगिनी के प्रेम की प्राप्ति के लिए भाग्यशाली था।

''जिस प्रकार एक सफल दुकानदार को कहीं तक बे-लिहाज होना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार एक सफल पति बनने के लिए पुरुष को कही तक कठोर स्वभाव बन जाना भी अति आवश्यक है। सानुरोध आपको मैं यह सीख देता हूं।''

ठीक उसी समय गीदड़ों की चीख-पुकार जंगल में सुनाई दी। ऐसा ज्ञान होता था कि या तो वे उस स्कूल के अध्यापक के दांपत्य-जीवन के मनोविज्ञान पर घिनौना परिहास कर रहे हैं या फणीभूषण की कहानी के प्रवाह को कुछ क्षणों के लिए उस चीख-पुकार से रोक देना चाहते हैं। फिर भी बहुत जल्दी वह चीख-पुकार रुक गई और पहले से भी गहन अंधेरी और शून्यता वायुमंडल पर छा गई, किंतु स्कूल के अध्यापक ने पुन: कथा आरंभ की—

''सहसा फणीभूषण के बड़े व्यवसाय में शिक्षाप्रद अवनति दृष्टिगोचर हुई। यह क्यों हुआ? इसका उत्तर मेरी बुद्धि से परे है। संक्षिप्त में यह कि कुसमय ने उसके लिए बाजार में साख रखना कठिन कर दिया। यदि किसी प्रकार कुछ दिनों के लिए वह एक बड़ी पूंजी प्राप्त करके मंडियों में फैला सकता तो संभव था कि बाजार से माल को न खरीदने के तूफान से बच निकलता, किंतु इतनी बड़ी रकम का तुरंत प्रबंध खाला का घर न था।

''यदि स्थानीय साहूकारों से कर्ज मांगता तो अनेक प्रकार की अफवाहें फैल जातीं और उसकी साख को असहनीय हानि पहुंचती। यदि पत्र-व्यवहार मे भुगतान का ढंग करता तो रुक्का या पर्चे के बिना संभव न था और इससे

उसकी ख्याति को बहुत बड़ा आघात पहुंचने की संभावना थी। केवल एक युक्ति थी कि पत्नी के आभूषणों पर रुपया प्राप्त किया जाए और यह विचार उसके हृदय में दृढ़ हो गया।

"फणीभूषण मनीमलिका के पास गया। परंतु वह ऐसा पति न था कि पत्नी से स्पष्ट और सबलता से कह सके। दुर्भाग्यवश उसे अपनी पत्नी से उतना घनिष्ठ प्रेम था जैसा कि उपन्यास के किसी नायक को नायिका से हो सकता है।

"सूर्य का आकर्षण पृथ्वी पर बहुत अधिक है, किंतु अधिक प्रभावशाली नहीं। यही दशा फणीभूषण के प्रेम की थी। उस प्रेम का मनीमलिका के हृदय पर कोई प्रभाव न था। किंतु मरता क्या न करता, आर्थिक कठिनाई की चर्चा, प्रोनोट, कर्जे का कागज, बाजार के उतार-चढ़ाव की दशा, इन सब बातों को कंपित और अस्वाभाविक स्वर में फणीभूषण ने अपनी पत्नी को बताया। झूठे मान, असत्य विचार और भावावेश में साधारण-सी समस्या जटिल बन गई। अस्पष्ट शब्दों में विषय की गंभीरता बता कर डरते-डरते अभागे फणीभूषण ने कहा, 'तुम्हारे आभूषण!'

"मनीमलिका ने न 'हां' कही और न 'ना' और न उसके मुख से कुछ ज्ञात होता था। उस पर गहरा मौन छाया हुआ था। फणीभूषण के हृदय को गहरा आघात पहुंचा। किंतु उसने प्रकट न होने दिया। उसमें पुरुषों का-सा वह साहस न था कि प्रत्येक वस्तु का वह प्रतिदिन निरीक्षण करता। उसके इंकार पर उसने किसी प्रकार की चिंता प्रदर्शित न की। वह ऐसे विचारों का व्यक्ति था कि प्रेम के जगत में शक्ति और आधिक्य से काम नहीं चल सकता। पत्नी की स्वीकृति के बिना वह आभूषणों को छूना भी पाप समझता था। इसलिए निराश होकर रुपये की प्राप्ति के लिए युक्तियां सोचकर कलकत्ता चला गया।"

2

"पत्नी अपने पति को प्राय: जानती है, उसकी नस-नस से परिचित होती है, पर पति अपनी पत्नी के चारित्र्य का इतना गंभीर अध्ययन नहीं कर सकता। यदि पति कुछ गंभीर व्यक्ति हो तो पत्नी के चरित्र के कुछ भाग उसकी तीक्ष्ण दृष्टि से बचाकर जान लेता है। संभवत: यह सत्य है कि मनीमलिका ने फणीभूषण को अच्छी तरह न समझा। एक पाश्चात्य व्यक्ति का व्यक्तित्व मूर्ख स्त्री के अंधविश्वास-जैसे जीवन और उसकी समझबूझ से प्राय: ऊंचा होता है। वह

स्वयं स्त्री की भांति एक रोमांचकारी व्यक्तित्व बनकर रह जाता है और इसी कारण पुरुष की उन दशाओं में से किसी में भी फणीभूषण को पूरी तरह सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

"मूर्ख-अंधा-जंगली—"

"मनीमलिका ने अपने बड़े सलाहकार मधुसूदन को बुलाया। यह दूर के रिश्ते से चचेरा भाई था और फणीभूषण के व्यापार में एक असामी की देख-रेख पर नियुक्त था। योग्यता के कारण नहीं, बल्कि रिश्तेदारी के जोर पर वह उस असामी पर अधिकार जमाए हुए था। काम की चतुराई के कारण नहीं, बल्कि रिश्तेदारी की धौंस में हर माह वेतन से भी अधिक रकम ले उड़ता था। मनीमलिका ने सारी रामकहानी उसके सामने वर्णन की और अंत में पूछा, "क्या करूं, नेक सलाह दो।"

"मधु ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता के ढंग से सिर हिलाकर कहा, 'मेरा माथा ठनकता है, इस मामले में कुशल दिखाई नहीं देती।"

"सांसारिक बुद्धिहीन व्यक्तियों को हर कार्य में संदेह ही दिखाई दिया करता है। उनको किसी काम में कुशल नहीं दिखाई देती।

"फणीभूषण को रुपया तो मिलने से रहा, अंत में तुम्हें आभूषणों से भी हाथ धोने पड़ेंगे।

"सांसारिक समस्याओं और पुरुष तथा नारी के सम्बन्ध में जो मनीमलिका के अपने व्यक्तिगत विचार थे, उनके प्रकाश में मधु के निकाले हुए परिणाम का प्रथम भाग संभावित और दूसरा सत्य मालूम होता था। विश्वास उसके हृदय से जाता रहा था, संतान उसके थी ही नहीं। बाकी रहा पति, वह किसी गिनती में ही न था। अतः उसका संपूर्ण ध्यान अपने आभूषणों पर केंद्रित था। इन्हीं से उसके हृदय की प्रसन्नता थी, ये ही उसको संतान के समान प्रिय थे। संतान को मां से छीन लीजिए फिर देखिए ममता की क्या दशा होती है। यही दशा मनीमलिका की थी। उसका यह विचार था कि उसके आभूषण पति के मनसूबों की भेंट हो जाएंगे।

"फिर मुझे क्या करना चाहिए?"

"अभी मैके चली जाओ, सारे आभूषण वहां छोड़ आओ।" चालाक मधु ने कहा।

"इस प्रकार उसकी हांड़ी को भी बघार लगता है। यदि सारे नहीं तो कुछ

आभूषण मधु को अपने हत्थे चढ़ने की भी आशा थी। मनीमलिका उसी समय सहमत हो गई।

बढ़ते हुए अंधकार से स्कूल के अध्यापक पर भी गंभीरता छा गई थी, किंतु कुछ क्षणों के पश्चात् उसने फिर वर्णन आरंभ किया—

3

"झुटपुटे के समय जबकि सावन की घटाएं आकाश पर डेरा जमाए हुए थीं, वर्षा मूसलाधार हो रही थी, एक नौका ने रेतीली सीढ़ियों पर लंगर डाला। दूसरे दिन प्रात: घटाटोप अंधेरे में मनीमलिका आई और एक मोटी चादर में सिर से पांव तक लिपटी हुई नौका पर सवार हो गई।

"मधु जो रात से उसी नौका में सोया हुआ था, उसकी आहट से जाग गया।

"आभूषणों की संदूकची मुझे दे दो; ताकि सुरक्षित रख लूं।

"अभी ठहरो जल्दी क्या है? चलो तो सही, आगे देखा जाएगा।

"नौका का लंगर उठा और वह फुंकारती हुई नदी की लहरों से जूझने लगी। मनीमलिका ने सारे आभूषण एक-एक करके पहन लिए थे। संदूक में बंद करके ले जाना असुरक्षित मालूम होता था। मधु हक्का-बक्का रह गया, जब उसने देखा कि मनी के पास संदूकची नहीं है। उसको इसकी कल्पना भी न थी कि उसने आभूषणों को अपने प्राणों से लगा रखा है।

"चाहे मनीमलिका ने फणीभूषण को न समझा था किंतु मधु के चरित्र का एक बहुत ही ठीक अंदाजा लगाया था।

"जाने से पहले मधु ने फणीभूषण के एक विश्वासी मुनीम को लिख भेजा था कि मैं मनीमलिका के साथ उसको मैके पहुंचाने जा रहा हूं। यह मुनीम दुनिया का अनुभवी और बड़ी आयु का था और फणीभूषण के पिता के समय से ही उसके साथ था। उसको मनीमलिका के जाने से बहुत चिंता और संदेह हुआ। उसने अपने मालिक को फौरन लिखा। वफादारी और खैरख्वाही ने उसे प्रेरणा दी और अपने पत्र में अपने मालिक को खूब खरी-खरी सुनाई। पति की लाज और दूरदर्शिता दोनों का यह अर्थ नहीं है कि पत्नी को इस प्रकार स्वतंत्र छोड़ दिया जाए। मनीमलिका के हृदय के संदेह को फणीभूषण समझ गया। उसे अत्यंत दु:ख हुआ। वह इस संबंध में एक शब्द भी शिकायत का जबान पर न

लाया। अपमान और कष्ट सहे, किंतु उसने मनीमलिका पर कोई दबाव डालना उचित न समझा; किंतु फिर भी इतना अविश्वास! वर्षों से वह मेरे एकांत की और सांसारिक साथी रही है। आश्चर्य है कि उसने मुझे तनिक भी न समझा।

''इस मौके पर कोई और होता तो क्रोधावेश में न जाने क्या कर बैठता, किंतु फणीभूषण मौन था और दु:ख प्रकट करके मनीमलिका को दुखित करना उचित न समझता था।

''पुरुष को चाहिए कि वह दावानल की भांति जरा-जरा-सी बात पर भड़क जाए। जिस प्रकार स्त्री सावन के बादलों की भांति बात-बात पर आंसुओं की झड़ी लगा देती है। किंतु अब वह पहले से दिन कहां?

''फणीभूषण ने मनीमलिका को उसकी अनुपस्थिति में बिना सूचना दिए जाने के विषय में कोई डांट-फटकार का पत्र न लिखा। बल्कि यह निश्चय कर लिया कि मरते दम तक उसके आभूषणों का नाम तक जबान पर न लाएगा। रुपये की वसूली में फणीभूषण सफल हो गया। उसके व्यापारिक रास्ते खुल गए। दस दिन के पश्चात् वह अपने घर को वापस चला, इस विचार को लिए हुए कि आभूषण मैके में छोड़कर मनीमलिका घर को वापस आ गई होगी।

''दस दिन पहले का तुच्छ और असफल प्रश्नकर्त्ता जब मस्तानी चाल से घर में कदम रखेगा और पत्नी की दृष्टि उसकी सफलता से दमकते हुए मुख पर पड़ेगी, तो वह अपने इंकार पर स्वयं लज्जित होगी और अपनी नादानी पर पश्चात्ताप प्रकट करेगी। इन विचारों में मग्न फणीभूषण शयन-कक्ष में पहुंचा। परंतु द्वार पर ताला लगा हुआ था। ताला तुड़वाकर अंदर घुसा तो तिजोरी के किवाड़ खुले पड़े थे।

''इस आघात से वह लड़खड़ा गया। 'शुभ चिंता और प्रेम' उस समय उसके पास निरर्थक और अस्पष्ट शब्द थे। सोने का पिंजरा, जिसकी प्रत्येक सुनहरी तीली को उसने अपने प्राण और आन का मूल्य देकर प्राप्त किया था, टूट चुका था और खाली पड़ा था। वह अब दिवालिया था और सिवाय गहरी उसांस, आंसू और हृदय की टीस के उसके पास कुछ न था।

''मनीमलिका को बुलाने का ध्यान भी उसके हृदय में न आया। उसने यह निश्चय कर लिया कि वह अब चाहे आए या न आए, किंतु वृद्ध मुनीम इस निश्चय के विरुद्ध था। वह अनुरोध कर रहा था कि कम-से-कम कुशल-क्षेम अवश्य मंगानी चाहिए। इतनी देरी का कोई कारण समझ में नहीं आता। उसके

अनुरोध से विवश होकर मनीमलिका के मैके को आदमी भेजा गया। किंतु वह यह अशुभ समाचार लाया कि न यहां मनीमलिका आई है, न मधु।

''यह सुना तो पांव-तले की जमीन निकल गई। नदी-पार आदमी दौड़ाए गए। खोज और प्रयत्न में किसी प्रकार की कमी न रखी। किंतु पता न चलना था, न चला। यह भी मालूम न हो सका कि नौका किस दिशा में गई और नौका का नाविक कौन था।

''निराश फणीभूषण हृदय मसोसकर बैठ गया।

4

''कृष्ण-जन्माष्टमी की संध्या थी। वर्षा हो रही थी। फणीभूषण शयनकक्ष में अकेला था। गांव में एक व्यक्ति भी बाकी न था। जन्माष्टमी के मेले ने गांव-का-गांव सूना कर दिया था। मेले की चहल-पहल और महाभारत के नाटक के शौक ने बच्चे से लेकर बूढ़े तक को खींच लिया था। शयन-कक्ष की खिड़की का एक किवाड़ बंद था। फणीभूषण दीन-दुनिया से बेखबर बैठा था।

''संध्या का झुटपुटा रात्रि के गहन अंधेरे में परिवर्तित हो गया। किंतु इस भयावने अंधेरे, मूसलाधार वर्षा और ठंडी वायु का उसको ध्यान भी न था। दूर से गाने की मधुर ध्वनि से उसकी श्रवण-शक्ति सर्वथा बेसुध थी।

''दीवार पर विष्णु और लक्ष्मी के चित्र लगे हुए थे। फर्श साफ था और प्रत्येक वस्तु उपयुक्त स्थान पर रखी हुई थी।

''पलंग के समीप एक खूंटी पर एक सुंदर और आकर्षक साड़ी लटकी हुई थी। सिरहाने एक छोटी-सी मेज पर पान का बीड़ा स्वयं मनीमलिका के हाथ का बना हुआ रखा-रखा सूख चुका था।

''विभिन्न वस्तुएं सलीके से अपने-अपने स्थान पर रखी हुई थीं। एक ताक में मनीमलिका का प्रिय लैंप रखा हुआ था। जिसको वह अपने हाथ से प्रकाशित किया करती थी और जो उसकी अंतिम विदाई का स्मरण करा रहा था। मनी की स्मृति में इन संपूर्ण वस्तुओं का मौन-रुदन उस कमरे को कामना का शोक-स्थल बनाए हुए था। फणीभूषण का हृदय स्वतः कह रहा था, 'प्यारी मनी, आओ और अपने प्राणमय सौंदर्य से इन सब में प्राण फूंक दो।'

''कहीं आधी रात के लगभग जाकर बूंदों की तड़तड़ थमी। किंतु फणीभूषण उसी विचार में खोया बैठा था।

''अंधेरी रात के असीमित धुंधले वायुमंडल पर मृत्यु की राजधानी का सिक्का चल रहा था। फणीभूषण की दुखित आत्मा का रुग्ण स्वर इतना पीड़ामय था कि यदि मृत्यु की नींद सोने वाली मनीमलिका भी सुन पाए तो एक बार नेत्र खोल दे और अपने सोने के आभूषण पहने हुए उस अंधेरे में ऐसी प्रकट हो जैसे कसौटी के कठोर पत्थर पर किंचित सुनहरी रेखा।

5

''सहसा फणीभूषण के कान में किसी के पैरों की-सी आहट सुनाई दी। ऐसा मालूम होता था कि नदी-तट से वह उस घर की ओर वापस आ रही है। नदी की काली लहरें रात अंधेरी में मालूम न होती थीं। आशा की प्रसन्नता ने उसे जीवित कर दिया। उसके नेत्र चमक उठे। उसने अंधकार के पर्दे को फाड़ना चाहा, किंतु व्यर्थ। जितना अधिक वह नेत्र फाड़कर देखता था, अंधकार के पर्दे और अधिक गहन होते जाते थे और यह मालूम होता था कि प्रकृति इस भयावनी अंधेरी में मनुष्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। आवाज समीप से समीपतर होती गई। यहां तक कि सीढ़ियों पर चढ़ी और सामने द्वार पर आकर रुक गई; जिस पर ताला लगा हुआ था। द्वारपाल भी मेले में गया था। द्वार पर धीमी-सी 'खुट-खुट' सुनाई दी। ऐसी जैसी आभूषणों से सुसज्जित स्त्री का हाथ द्वार खटखटा रहा हो। फणीभूषण सहन न कर सका। जीने से उतरकर बरामदे से होता हुआ द्वार पर पहुंचा। ताला बाहर से लगा हुआ था। संपूर्ण शक्ति से उसने द्वार हिलाया। शोर गुल से उसका सपना टूटा तो वहां कुछ न था।

''वह पसीने में सराबोर था, हाथ-पांव ठंडे हुए थे। उसका हृदय टिमटिमाते हुए दीपक के अंतिम प्रकाश की भांति जलकर बुझने को तैयार था।

''वर्षा की 'तड़तड़' ध्वनि के सिवाय कुछ भी सुनाई न देता था।

''फणीभूषण से यह 'वास्तविकता' किंचित मात्र भी विस्मृत न हुई थी कि उसकी अधूरी इच्छाएं पूरी होते-होते रह गईं।

''दूसरी रात को फिर नाटक होने वाला था, नौकर ने आज्ञा चाही तो चेतावनी दे दी कि बाहर का द्वार खुला रहे।

''यह कैसे हो सकता है। विभिन्न स्वभाव के व्यक्ति बाहर से मेले में आए हुए हैं, दुर्घटना का संदेह है।' नौकर ने कहा।

''नहीं, तुम जरूर खुला रखो।'

''तो फिर मैं मेले नहीं जाऊंगा।'

''तुम अवश्य जाओ।'

''नौकर आश्चर्य में था कि आखिर उनका आशय क्या है ?

''जब संध्या हो गई और चहुं ओर अंधकार छा गया तो फणीभूषण उस खिड़की में आ बैठा। आकाश पर गहरा कोहरा छाया हुआ था, घनघोर घटाएं ऐसी तुली खड़ी थीं कि जल-थल एक कर दें, चहुं ओर शून्यता का राज्य था। ऐसा मालूम होता था कि सारे संसार का वायुमंडल मौन भाव से किसी मधुर ध्वनि को सुनने के लिए अपने कान लगाए हुए हैं। मेढकों की निरंतर 'टर्र-टर्र' की आवाज और ग्रामीण स्वांगों की कंपित ध्वनि भी उस शून्यता में बाधक न मालूम होती थी।

''आधी रात के लगभग फिर संपूर्ण शोर, चहल-पहल रात्रि के मौन में होने लगा। रात ने अपने काले वस्त्रों पर एक और काला आवरण डाल लिया। पहली रात की भांति फणीभूषण को फिर वही आवाज सुनाई दी। उसने नदी की ओर दृष्टि उठाकर भी न देखा। ईश्वर न करे कि कोई अधिकार-चेष्टा द्वारा समय से पूर्व ही उसकी आकांक्षाओं का खून कर दे। वह मूर्तिवत बैठा रहा जैसे किसी ने लकड़ी की प्रतिमा को बनाकर सरेश से कुर्सी पर चिपका दिया हो।

''पंजों की आहट सुनसान घाट की सीढ़ियों की ओर से आकर मुख्य द्वार में प्रविष्ट हुई। चक्कर वाले जीने की सीढ़ियों पर चढ़कर अंदर के कमरे की ओर बढ़ी। लहरों की प्रतिस्पर्धा में आपने नौका को देखा होगा। इसी प्रकार फणीभूषण का हृदय बल्लियों उछलने लगा। वह आवाज बरामदे से होती हुई शयनकक्ष की ओर आई और ठीक द्वार पर आकर ठहर गई। अब केवल द्वार-प्रवेश करना ही शेष था।

''फणीभूषण की आकांक्षाएं मचल उठीं। संतोष का आंचल हाथ से जाता रहा, वह सहसा कुर्सी से उछल पड़ा। एक दु:खभरी चीख, 'मनी' उसके मुख से निकली, किंतु दु:ख है कि उसके पश्चात् मेढकों की आवाज और वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों की 'तड़तड़' के सिवा और कुछ न था।

7

''दूसरे दिन मेला छंटने लगा, दुकानें आरंभ हो गईं; दर्शक अपने-अपने घरों को वापस जाने लगे। मेले की शोभा समाप्त हो गई।

''फणीभूषण ने दिन में व्रत रखा और सब नौकरों को आज्ञा दे दी कि आज रात को कोई भी व्यक्ति न रहे। नौकरों का विचार था कि हमारे मालिक आज किसी विशेष मंत्र का जाप करेंगे।

''संध्या-समय जब कहीं भी आकाश की टुकड़ियों पर बादल न थे वर्षा से धुले हुए वायुमंडल से सितारे चमकने लगे थे, पूर्णिमा का चांद निकला हुआ था, वायु भी मंद-मंद बह रही थी, मेले से लौटे हुए दर्शक अपनी थकान उतार रहे थे। वे बेसुध हुए सो रहे थे और नदी पर कोई नौका दिखाई न देती थी।

''फणीभूषण उसी खिड़की में आ बैठा और तकिये से सिर लगाकर आकाश की ओर ध्यान से देखने लगा। उसको उस समय वह समय याद आया जब वह कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। संध्या-समय चौक में लेटकर अपनी भुजा पर सिर रखकर झिलमिलाते हुए सितारों को देखकर मनीमलिका की सुंदर कल्पना में खो जाया करता था। उन दिनों कुछ समय का बिछोह मिलन की आशाओं को अपने आंचल में लिए बहुत ही प्रिय मालूम हुआ करता था; परंतु वह सब-कुछ अब 'स्वप्न' मालूम होता था।

''सितारे आकाश से ओझल होने लगे, अंधकार ने दाएं-बाएं और नीचे-ऊपर सब ओर से पर्दे डालने आरंभ कर दिए और ये पर्दे आंख की पलकों की भांति परस्पर मिल गए। संसार स्वप्नमय हो गया।

''किंतु आज फणीभूषण पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव-सा था। वह अनुभव कर रहा था कि उसकी आशाओं के पूर्ण होने का समय समीप है।

''पिछली रातों की भांति किसी के पांवों की आहट फिर स्नान-घाट की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी, फणीभूषण ने आंखें बंद कर लीं और विचारों में निमग्न हो गया। पांव की आहट मुख्य द्वार से प्रविष्ट होकर संपूर्ण मकान में होती हुई शयनकक्ष के द्वार पर आकर विलीन हो गई। फणीभूषण का संपूर्ण शरीर कांपने लगा; परंतु वह दृढ़ निश्चय कर चुका था कि अंत तक आंखें न खोलेगा। आहट कमरे में प्रविष्ट हुई, खूंटी पर की साड़ी, ताक के लैंप, खुले हुए पानदान और अन्य वस्तुओं के पास थोड़ी-थोड़ी देर ठहरी और अंत में फणीभूषण की कुर्सी की ओर बढ़ी।

''अब फणीभूषण ने आंखें खोल दीं। धीमी-धीमी चांदनी खिड़की से आ रही थी। उसकी दृष्टि के सामने एक ढांचा, एक हड्डियों का पंजर खड़ा था। उसके रोम-रोम में छल, कलाइयों में कड़े, गले में माला। सारांश यह कि प्रत्येक

जोड़ जड़ाऊ आभूषणों से दमक रहा था। संपूर्ण आभूषण ढीले होने के कारण निकले पड़ते थे। नेत्र वैसे ही बड़े-बड़े और चमकीले, परंतु प्रेम-भावना से रिक्त थे। अठारह वर्ष पूर्व विवाह की रात को शहनाइयों के मधुर स्वरों में इन्हीं मोहिनी आंखों से मनीमलिका ने फणीभूषण को पहली बार देखा था। आज वही आंखें वर्षा की भीगी चांदनी में उसके मुख पर जमी हुई थीं।

"पंजर ने दाएं हाथ से संकेत किया। फणीभूषण स्वयं चल पड़ने वाली मशीन की भांति उठा और पंजर के पीछे-पीछे हो लिया। हर कदम पर उसकी हड्डियां चटख रही थीं, आभूषण झंकृत हो रहे थे। वे बरामदे से होते हुए, सीढ़ियों के नीचे उतरे और उसी पथ पर हो लिए जो स्नान-घाट पर जाता था। अंधेरे में जुगनू कभी-कभी चमक उठते थे। मद्धम धीमी चांदनी वृक्षों के गहन पत्तों में से निकलने के लिए प्रयत्नशील थी।

"वे दोनों नदी के तट पर पहुंचे। पंजर ने सीढ़ियों से नीचे उतरना आरंभ किया। जल पर चांदनी का प्रतिबिंब नदी की लहरों से क्रीड़ा कर रहा था। पंजर नदी में कूद पड़ा, उसके पीछे फणीभूषण का पांव भी नदी में गया। उसकी स्वप्न की छलना टूटी तो वहां कोई न था, केवल वृक्षों की एक पंक्ति चौकीदारी कर रही थी।

"अब फणीभूषण के संपूर्ण शरीर पर कंपन छाया हुआ था। फणीभूषण भी एक अच्छा तैराक था, किंतु अब उसके हाथ-पांव बस में न थे। दूसरे ही क्षण वह नदी के अथाह जल की तह में जा चुका था।"

इस दर्द से भरे हुए अंत पर स्कूल के अध्यापक ने कक्षा को समाप्त किया। उसकी समाप्ति पर हमें फिर एक बार शून्य वायुमंडल का अनुभव हुआ। मैं भी मौन था। अंधेरे में मेरे मुख के विचारों का अध्ययन वह न कर सकता था।

"क्या आप इसको कहानी कहते हैं?" उसने संदेह की मुद्रा में पूछा।

"नहीं! मैं तो इसे सत्य नहीं समझता, प्रथम तो इसका कारण है कि मेरी प्रकृति उपन्यास और कहानी-लेखन से ऊंची है। और दूसरा कारण यह है कि मैं ही फणीभूषण हूं।" मैंने बात को काटकर कहा।

स्कूल का अध्यापक अधिक व्याकुल नहीं था।

"किंतु आपकी पत्नी का नाम?" उसने पूछा।

"नरवदा काली!"

❑❑

14

पिंजर

जब मैं पढ़ाई की पुस्तकें समाप्त कर चुका तो मेरे पिता ने मुझे वैद्यक सिखानी चाही और इस काम के लिए एक जगत के अनुभवी गुरु को नियुक्त कर दिया। मेरा नवीन गुरु केवल देशी वैद्यक में ही चतुर न था, बल्कि डॉक्टरी भी जानता था। उसने मनुष्य के शरीर की बनावट समझाने के आशय से मेरे लिए एक मनुष्य का ढांचा अर्थात् हड्डियों का पिंजर मंगवा दिया था। जो उस कमरे में रखा गया, जहां मैं पढ़ता था। साधारण व्यक्ति जानते हैं कि मुर्दा विशेषत: हड्डियों के पिंजर से, कम आयु वाले बच्चों को, जब वे अकेले हों, कितना अधिक भय लगता है। स्वभावत: मुझको भी डर लगता था और आरंभ में मैं कभी उस कमरे में अकेला न जाता था।

यदि कभी किसी आवश्यकतावश जाना भी पड़ता तो उसकी ओर आंख उठाकर न देखता था। एक और विद्यार्थी भी मेरा सहपाठी था। जो बहुत निर्भय था। वह कभी उस पिंजर से भयभीत न होता था और कहा करता था कि इस पिंजर की सामर्थ्य ही क्या है? जिससे किसी जीवित व्यक्ति को हानि पहुंच सके। अभी हड्डियां हैं, कुछ दिनों पश्चात् मिट्टी हो जाएंगी।

किंतु मैं इस विषय में उससे कभी सहमत न हुआ और सर्वदा यही कहता रहा कि यह मैंने माना कि आत्मा इन हड्डियों से विलग हो गई है, तब भी जब तक यह विद्यमान है वह समय-असमय पर आकर अपने पुराने मकान को देख जाया करती है। मेरा यह विचार प्रकट में अनोखा या असंभव प्रतीत होता था और कभी किसी ने यह नहीं देखा होगा कि आत्मा फिर अपनी हड्डियों में वापस आई हो। किंतु यह एक अमर घटना है कि मेरा विचार सत्य था और सत्य निकला।

2

कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक रात को गार्हस्थ आवश्यकताओं के कारण मुझे उस कमरे में सोना पड़ा। मेरे लिए यह नई बात थी। अत: नींद न आई और मैं काफी समय तक करवटें बदलता रहा। यहां तक कि समीप के गिरजाघर ने बारह बजाए। जो लैंप मेरे कमरे में प्रकाश दे रहा था, वह मद्धम होकर धीरे-धीरे बुझ गया। उस समय मुझे उस प्रकाश के संबंध में विचार आया कि क्षण-भर पहले वह विद्यमान था किंतु अब सर्वदा के लिए अंधेरे में परिवर्तित हो गया। संसार में मनुष्य-जीवन की भी यही दशा है। जो कभी दिन और कभी रात के अनंत में जा मिलता है।

धीरे-धीरे मेरे विचार पिंजर की ओर परिवर्तित होने आरंभ हुए। मैं हृदय में सोच रहा था कि भगवान जाने ये हड्डियां अपने जीवन में क्या कुछ न होंगी। सहसा मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई अनोखी वस्तु मेरे पलंग के चारों ओर अंधेरे में फिर रही है। फिर लंबी सांसों की ध्वनि, जैसे कोई दुखित व्यक्ति सांस लेता है, मेरे कानों में आई और पांवों की आहट भी सुनाई दी।

मैंने सोचा यह मेरा भ्रम है, और बुरे स्वप्नों के कारण काल्पनिक आवाजें आ रही हैं, किंतु पांव की आहट फिर सुनाई दी। इस पर मैंने भ्रम-निवारण हेतु उच्च स्वर से पूछा, "कौन है?" यह सुनकर वह अपरिचित शक्ल मेरे समीप आई और बोली, "मैं हूं, मैं अपने पिंजर को दिखने आई हूं।"

मैंने विचार किया मेरा कोई परिचित मुझसे हंसी कर रहा है। इसलिए मैंने कहा, "यह कौन-सा समय पिंजर देखने का है। वास्तव में तुम्हारा अभिप्राय क्या है?"

ध्वनि आई, "मुझे असमय से क्या अभिप्राय? मेरी वस्तु है, मैं जिस समय चाहूं, इसे देख सकती हूं। आह! क्या तुम नहीं देखते वे मेरी पसलियां हैं, जिनमें वर्षों मेरा हृदय रहा है। मैं पूरे छब्बीस वर्ष इस घोंसले में बंद रही, जिसको अब तुम पिंजर कहते हो। यदि मैं अपने पुराने घर को देखने चली आई तो इसमें तुम्हें क्या बाधा हुई?"

मैं डर गया और आत्मा को टालने के लिए कहा, "अच्छा, तुम जाकर अपना पिंजर देख लो, मुझे नींद आती है। मैं सोता हूं।" मैंने हृदय में निश्चय कर लिया कि जिस समय वह यहां से हटे, मैं तुरंत भागकर बाहर चला जाऊंगा। किंतु वह टलने वाली असामी न थी, कहने लगी, "क्या तुम यहां अकेले सोते हो? अच्छा आओ कुछ बातें करें।"

उसका आग्रह मेरे लिए व्यर्थ की विपत्ति से कम न था। मृत्यु की रूपरेखा

मेरी आंखों के सामने फिरने लगी। किंतु विवशता से उत्तर दिया, "अच्छा तो बैठ जाओ और कोई मनोरंजक बात सुनाओ।"

आवाज आई, "लो सुनो। पच्चीस वर्ष बीते मैं भी तुम्हारी तरह मनुष्य थी और मनुष्यों में बैठकर बातचीत किया करती थी। किंतु अब श्मशान के शून्य स्थान में फिरती रहती हूं। आज मेरी इच्छा है कि मैं फिर एक लंबे समय के पश्चात् मनुष्यों से बातें करूं। मैं प्रसन्न हूं कि तुमने मेरी बातें सुनने पर सहमति प्रकट की है। क्यों? तुम बातें सुनना चाहते हो या नहीं।"

यह कहकर वह आगे की ओर आई और मुझे मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति मेरे पांयती पर बैठ गया है। फिर इससे पूर्व कि मैं कोई शब्द मुख से निकालूं, उसने अपनी कथा सुनानी आरंभ कर दी।

3

वह बोली, "महाशय, जब मैं मनुष्य के रूप में थी तो केवल एक व्यक्ति से डरती थी और वह व्यक्ति मेरे लिए मानो मृत्यु का देवता था। वह था मेरा पति। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मछली को कांटा लगाकर पानी से बाहर ले आया हो। वह व्यक्ति मुझको मेरे माता-पिता के घर से बाहर ले आया था और मुझको वहां जाने न देता था। अच्छा था उसका काम जल्दी ही समाप्त हो गया अर्थात् विवाह के दूसरे महीने ही वह संसार से चल बसा। मैंने लोगों की देखा-देखी वैष्णव रीति से क्रियाकर्म किया, किंतु हृदय में बहुत प्रसन्न थी कि कांटा निकल गया। अब मुझको अपने माता-पिता से मिलने की आज्ञा मिल जाएगी और मैं अपनी पुरानी सहेलियों से, जिनके साथ खेला करती थी, मिलूंगी।

"किंतु अभी मुझको मैके जाने की आज्ञा न मिली थी, कि मेरा ससुर घर आया और मेरा मुख ध्यान से देखकर अपने-आप कहने लगा, 'मुझको इसके हाथ और पांव के चिह्न देखने से मालूम होता है यह लड़की डायन है।'

"अपने ससुर के वे शब्द मुझको अब तक याद हैं। वे मेरे कानों में गूंज रहे हैं। उसके कुछ दिनों पश्चात् मुझे अपने पिता के यहां जाने की आज्ञा मिल गई। पिता के घर जाने पर मुझे जो खुशी प्राप्त हुई वह वर्णन नहीं की जा सकती। मैं वहां प्रसन्नता से अपने यौवन के दिन व्यतीत करने लगी। मैंने उन दिनों अनेकों बार अपने विषय में कहते सुना कि मैं सुंदर युवती हूं, परंतु तुम कहो तुम्हारी क्या सम्मति है?

मैंने उत्तर दिया, "मैंने तुम्हें जीवित देखा नहीं, मैं कैसे सम्मति दे सकता हूं, जो कुछ तुमने कहा ठीक होगा।"

वह बोली, ''मैं कैसे विश्वास दिलाऊं कि इन दो गड्ढों में लज्जाशील दो नेत्र देखने वालों पर बिजलियां गिराते थे। खेद है कि तुम मेरी वास्तविक मुस्कान का अनुमान इन हड्डियों के खुले मुखड़े से नहीं लगा सकते। इन हड्डियों के चहुं ओर जो सौंदर्य था अब उसका नाम तक बाकी नहीं है। मेरे जीवन के क्षणों में कोई योग्य-से-योग्य डॉक्टर भी कल्पना न कर सकता था कि मेरी हड्डियां मानव-शरीर की रूप-रेखा के वर्णन के काम आएंगी। मुझे वह दिन याद है जब मैं चला करती थी तो प्रकाश की किरणें मेरे एक-एक बाल से निकलकर प्रत्येक दिशा को प्रकाशित करती थीं। मैं अपनी बांहों को घंटों देखा करती थी। आह— ये वे बांहें थीं, जिसको मैंने दिखाईं अपनी ओर आसक्त कर लिया। संभवतः सुभद्रा को भी ऐसी बांहें नसीब न हुई होंगी। मेरी कोमल और पतली उंगलियां मृणाल को भी लजाती थीं। खेद है कि मेरे इस नग्न-ढांचे ने तुम्हें मेरे सौंदर्य के विषय में सर्वथा झूठी सम्मति निर्धारित करने का अवसर दिया। तुम मुझे यौवन के क्षणों में देखते तो आंखों से नींद उड़ जाती और वैद्यक ज्ञान का सौदा मस्तिष्क से अशुद्ध शब्द की भांति समाप्त हो जाता।

उसने कहानी का तारतम्य प्रवाहित रखकर कहा, ''मेरे भाई ने निश्चय कर लिया था कि वह विवाह न करेगा। और घर में मैं ही एक स्त्री थी। मैं संध्या-समय अपने उद्यान में छाया वाले वृक्षों के नीचे बैठती तो सितारे मुझे घूरा करते और शीतल वायु जब मेरे समीप से गुजरती तो मेरे साथ अठखेलियां करती थी। मैं अपने सौंदर्य पर घमंड करती और अनेकों बार सोचा करती थी कि जिस धरती पर मेरा पांव पड़ता है यदि उसमें अनुभव करने की शक्ति होती तो प्रसन्नता से फूली न समाती। कभी कहती संसार के संपूर्ण प्रेमी युवक घास के रूप में मेरे पैरों पर पड़े हैं। अब ये संपूर्ण विचार मुझको अनेक बार विफल करते हैं कि आह! क्या था और क्या हो गया।

''मेरे भाई का एक मित्र सतीशकुमार था जिसने मेडिकल कॉलेज में डॉक्टरी का प्रमाण-पत्र प्राप्त किया था। वह हमारा भी घरेलू डॉक्टर था। वैसे उसने मुझको नहीं देखा था परंतु मैंने उसको एक दिन देख ही लिया और मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं कि उसकी सुंदरता ने मुझ पर विशेष प्रभाव डाला। मेरा भाई अजीब ढंग का व्यक्ति था। संसार के शीत-ग्रीष्म से सर्वथा अपरिचित वह कभी गृहस्थ के कामों में हस्तक्षेप न करता। वह मौनप्रिय और एकांत में रहा करता था जिसका परिणाम यह हुआ कि संसार से अलग होकर एकांतप्रिय बन गया और साधु-महात्माओं का-सा जीवन बिताने लगा।

''हां, तो वह नवयुवक सतीशकुमार हमारे यहां प्रायः आता और यही एक

नवयुवक था जिसको अपने घर के पुरुषों के अतिरिक्त मुझे देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। जब मैं उद्यान में अकेली होती और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष के नीचे महारानी की भांति बैठती, तो सतीशकुमार का ध्यान और भी मेरे हृदय में चुटकियां लेता—परंतु तुम किस चिंता में हो। तुम्हारे हृदय में क्या बीत रही है?"

मैंने ठंडी सांस भरकर उत्तर दिया, "मैं यह विचार कर रही हूं कि कितना अच्छा होता कि मैं ही सतीशकुमार होता।"

वह हंसकर बोली, "अच्छा, पहले मेरी कहानी सुन लो फिर प्रेमालाप कर लेना। एक दिन वर्षा हो रही थी, मुझे कुछ बुखार था। उस समय डॉक्टर अर्थात् मेरा प्रिय सतीश मुझे देखने के लिए आया। यह प्रथम अवसर था कि हम दोनों ने एक-दूसरे को आमने-सामने देखा और देखते ही डॉक्टर मूर्ति-समान स्थिर-सा हो गया और मेरे भाई की मौजूदगी ने होश संभालने के लिए बाध्य कर दिया। वह मेरी ओर संकेत करके बोला, "मैं इनकी नब्ज देखना चाहता हूं। मैंने धीरे से अपना हाथ दुशाले से निकाला। डॉक्टर ने मेरी नब्ज पर हाथ रखा। मैंने कभी न देखा कि किसी डॉक्टर ने साधारण ज्वर के निरीक्षण में इतना विचार किया हो। उसके हाथ की उंगलियां कांप रही थीं। कठिन परिश्रम के पश्चात् उसने मेरे ज्वर को अनुभव किया; किंतु वह मेरा ज्वर देखते-देखते स्वयं ही बीमार हो गया। क्यों, तुम इस बात को मानते हो या नहीं।"

मैंने डरते-डरते कहा, "हां, बिल्कुल मानता हूं। मनुष्य की अवस्था में परिवर्तन उत्पन्न होना कठिन नहीं है।"

वह बोली, "कुछ दिनों परीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि मेरे हृदय में डॉक्टर के अतिरिक्त और किसी नवयुवक का विचार तक नहीं। मेरा कार्यक्रम था संध्या-समय वसंती रंग की साड़ी पहनकर बालों में कंघी, फूलों का हार गले में डालकर, दर्पण हाथ में लिए बाग में चले जाना और पहरों देखा करना। क्यों, क्या दर्पण देखना बुरा है?"

मैंने घबराकर उत्तर दिया, "नहीं तो।"

उसने कहानी का सिलसिला स्थापित रखते हुए कहा, "दर्पण देखकर मैं ऐसा अनुभव करती जैसे मेरे दो रूप हो गए हैं अर्थात् मैं स्वयं ही सतीशकुमार बन जाती और स्वयं ही अपने प्रतिबिंब को प्रेमिका समझकर उस पर तन-मन न्योछावर करती। यह मेरा बहुत ही प्रिय मनोरंजन था और मैं घंटों व्यतीत कर देती। अनेकों बार ऐसा हुआ कि मध्याह्न को पलंग पर बिस्तर बिछाकर लेटी और एक हाथ को बिस्तर पर उपेक्षा से फेंक दिया। जरा आंख झपकी तो सपने

में देखा कि सतीशकुमार आया और मेरे हाथ को चूमकर चला गया...बस, अब मैं कहानी समाप्त करती हूं, तुम्हें तो नींद आ रही है।''

मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ चुकी थी। अत: मैंने नम्रता भरे स्वर में कहा, ''नहीं, तुम कहे जाओ, मेरी जिज्ञासा बढ़ती जाती है।''

वह कहने लगी, ''अच्छा सुनो! थोड़े दिनों में ही सतीशकुमार का कारोबार बहुत बढ़ गया और उसने हमारे मकान के नीचे के भाग में अपनी डिस्पेंसरी खोल ली। जब उसे रोगियों से अवकाश मिलता तो मैं उसके पास जा बैठती और हंसी-ठट्ठों में विभिन्न दवाओं के नाम पूछती रहती। इस प्रकार मुझे ऐसी दवाएं भी ज्ञात हो गईं, जो विषैली थीं। सतीशकुमार से जो कुछ मैं मालूम करती वह बड़े प्रेम और नम्रता से बताया करता। इस प्रकार एक लंबा समय बीत गया और मैंने अनुभव करना आरंभ किया कि डॉक्टर होश-हवाश खोए-सा रहता है और जब कभी मैं उसके सम्मुख जाती हूं तो उसके मुख पर मुर्दनी-सी छा जाती है। परंतु ऐसा क्यों होता है इसका कोई कारण ज्ञात न हुआ। एक दिन डॉक्टर ने मेरे भाई से गाड़ी मांगी। मैं पास बैठी थी। मैंने भाई से पूछा, 'डॉक्टर रात में इस समय कहां जाएगा?' मेरे भाई ने उत्तर दिया, 'तबाह होने को।' मैंने अनुरोध किया कि मुझे अवश्य बताओ वह कहां जा रहा है? भाई ने कहा, 'वह विवाह करने जा रहा है।' यह सुनकर मुझ पर मूर्छा-सी छा गई। किंतु मैंने अपने-आपको संभाला और भाई से फिर पूछा, 'क्या वह सचमुच विवाह करने जा रहा है या मजाक करते हो?' उसने उत्तर दिया, 'सत्य ही आज डॉक्टर दुल्हन लाएगा।''

''मैं वर्णन नहीं कर सकती कि यह बात मुझे कितनी कष्टप्रद अनुभव हुई। मैंने अपने हृदय से बार-बार पूछा कि डॉक्टर ने मुझसे यह बात क्यों छिपाकर रखी। क्या मैं उसको रोकती कि विवाह मत करो? इन पुरुषों की बात का कोई विश्वास नहीं।

''मध्याह्न डॉक्टर रोगियों को देखकर डिस्पेंसरी में आया और मैंने पूछा, 'डॉक्टर साहब! क्या यह सत्य है कि आज आपका विवाह है।' यह कहकर मैं बहुत हंसी और डॉक्टर यह देखकर कि मैं इस बात को हंसी में उड़ा रही हूं, न केवल लज्जित हुआ; बल्कि कुछ चिंतित-सा हो गया। फिर मैंने सहसा पूछा, 'डॉक्टर साहब, जब आपका विवाह हो जाएगा तो क्या आप फिर भी लोगों की नब्ज देखा करेंगे। आप तो डॉक्टर हैं और अन्य डॉक्टरों की अपेक्षा प्रसिद्ध भी हैं कि आप शरीर के संपूर्ण अंगों की दशा भी जानते हैं; किंतु खेद है कि आप

डॉक्टर होकर किसी के हृदय का पता नहीं लगा सकते कि वह किस दशा में है। वस्तुत: हृदय भी शरीर का भाग है।''

मेरे शब्द डॉक्टर के हृदय में तीर की भांति लगे; परंतु वह मौन रहा।

4

''लगन का मुहूर्त बहुत रात गए निश्चित हुआ था और बारात देर से जानी थी। अत: डॉक्टर और मेरा भाई प्रतिदिन की भांति शराब पीने बैठ गए। इस मनोविनोद में उनको बहुत देर हो गई।

''ग्यारह बजने को थे कि मैं उनके पास गई और कहा, 'डॉक्टर साहब, ग्यारह बजने वाले हैं आपको विवाह के लिए तैयार होना चाहिए।' वह किसी सीमा तक चेतन हो गया था, बोला, 'अभी जाता हूं।' फिर वह मेरे भाई के साथ बातों में तल्लीन हो गया और मैंने अवसर पाकर विष की पुड़िया, जो मैंने दोपहर को डॉक्टर के सामने रखा हुआ था डाल दी। कुछ क्षणों के पश्चात् डॉक्टर ने अपना गिलास खाली किया और दूल्हा बनने को चला गया। मेरा भाई भी उसके साथ चला गया।''

''मैं अपने दो मंजिले कमरे में गई और अपना नया बनारसी दुपट्टा ओढ़ा, मांग में सिंदूर भर पूरी सुहागन बनकर उद्यान में निकली जहां प्रतिदिन संध्या-समय बैठा करती थी। उस समय चांदनी छिटकी हुई थी, वायु में कुछ सिहरन उत्पन्न हो गई थी और चमेली की सुगंध ने उद्यान को महका दिया था। मैंने पुड़िया की शेष दवा निकाली और मुंह में डालकर एक चुल्लू पानी पी लिया। थोड़ी देर में मेरे सिर में चक्कर आने लगे, आंखों में धुंधलापन छा गया। चांद का प्रकाश मद्धिम होने लगा और पृथ्वी तथा आकाश, बेल-बूटे, अब मेरा घर जहां मैंने आयु बिताई थी, धीरे-धीरे लुप्त होते हुए ज्ञात हुए और मैं मीठी नींद सो गई।

''डेढ़ साल के पश्चात् सुख-स्वप्न से चौंकी तो मैंने क्या देखा कि तीन विद्यार्थी मेरी हड्डियों से डॉक्टरी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और एक अध्यापक मेरी छाती की ओर बेंत से संकेत करके लड़कों को विभिन्न हड्डियों के नाम बता रहा है और कहता है, 'यहां हृदय रहता है, जो विवाह और दु:ख के समय धड़का करता है और वह स्थान है जहां उठती जवानी के समय फूल निकलते हैं।' अच्छा अब मेरी कहानी समाप्त होती हैं। मैं विदा होती हूं, तुम सो जाओ।''

❑❑

15

प्रेम का मूल्य

बृहस्पति देवताओं का गुरु था। उसने अपने बेटे कच को संसार में भेजा कि शुक्राचार्य से अमर-जीवन का रहस्य मालूम करे। कच शिक्षा प्राप्त करके स्वर्ग-लोक को जाने के लिए तैयार था। उस समय वह अपने गुरु की पुत्री देवयानी से विदा लेने के लिए आया।

कच, "देवयानी, मैं विदा लेने के लिए आया हूं। तुम्हारे पिता के चरण-कमलों में मेरी शिक्षा पूरी हो चुकी है। कृपा कर मुझे स्वर्ग-लोक जाने की आज्ञा दो।"

देवयानी, "तुम्हारी कामना पूर्ण हुई। जीवन के अमरत्व का वह रहस्य तुम्हें ज्ञात हो चुका है, जिसकी देवताओं को सर्वदा इच्छा रही है, किंतु तनिक विचार तो करो, क्या कोई और ऐसी वस्तु शेष नहीं जिसकी तुम इच्छा कर सको?"

कच, "कोई नहीं।"

देवयानी, "बिल्कुल नहीं? तनिक अपने हृदय को टटोलो और देखो संभवत: कोई छोटी-बड़ी इच्छा कहीं दबी पड़ी हो?"

कच, "मेरे ऊषाकालीन जीवन का सूर्य अब ठीक प्रकाश पर आ गया है। उसके प्रकाश से तारों का प्रकाश मद्धिम पड़ चुका है। मुझे अप वह रहस्य ज्ञात हो गया है जो जीवन का अमरत्व है।"

देवयानी, "तब तो संपूर्ण संसार में तुमसे अधिक कोई भी व्यक्ति प्रसन्न न होगा। खेद है कि आज पहली बार मैं यह अनुभव कर रही हूं कि एक अपरिचित देश में विश्राम करना तुम्हारे लिए कितना कष्टप्रद था। यद्यपि यह सत्य है कि उत्तम-से-उत्तम वस्तु जो हमारे मस्तिष्क में थी, तुमको भेंट कर दी गई है।"

कच, "इसका तनिक भी विचार मत करो और हर्ष-सहित मुझे जाने की आज्ञा दो।"

देवयानी, "सुखी रहो मेरे अच्छे सखा! तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि यह तुम्हारा स्वर्ग नहीं है। इस मृत्यु-लोक में जहां तृषा से कंठ में कांटे पड़ जाते हैं, हंसना और मुस्कराना कोई ठिठोली नहीं है। यह संसार ही है जहां अधूरी इच्छाएं चहुं ओर घिरी हुई हैं, जहां खोई हुई प्रसन्नता की स्मृति में बार-बार कलेजे में हूक उठती है। जहां ठंडी सांसों से पाला पड़ा है। तुम्हीं कहो, इस दुनिया में कोई क्या हंसेगा?"

कच, "देवयानी बताओ, जल्दी बताओ, मुझसे क्या अपराध हुआ?"

देवयानी, "तुम्हारे लिए इस वन को छोड़ना बहुत सरल है। यह वही वन है जिसने इतने वर्षों तक तुम्हें अपनी छाया में रखा और तुम्हें लोरियां दे-देकर थपकाता रहा। तुम्हें अनुभव नहीं होता कि आज वायु किस प्रकार क्रंदन कर रही है? देखो, वृक्षों की हिलती हुई छाया को देखो, उनके कोमल पल्लवों को निहारो। वे वायु में घूम नहीं रहे बल्कि किसी खोई हुई आशा की भांति भटके-भटके फिर रहे हैं। एक तुम हो कि तुम्हारे ओष्ठों पर हंसी खेल रही है। प्रसन्नता के साथ तुम विदा हो रहे हो।"

कच, "मैं इस वन को किसी प्रकार मातृ-भूमि से कम नहीं समझता; क्योंकि यहां ही मैं वास्तव में आरंभ से जन्मा हूं। इसके प्रति मेरा स्नेह कभी कम न होगा।"

देवयानी, "वह देखो सामने बड़ का वृक्ष है। जिसने दिन के घोर ताप में जबकि तुमने पशुओं को हरियाली में चरने के लिए छोड़ दिया था, तुम पर प्रेम से छाया की थी।"

कच, "ऐ वन के स्वामी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं। जब और विद्यार्थी यहां शिक्षा-प्राप्ति हेतु आएं और शहद की मक्खियों की भनभनाहट और पत्तों की सरसराहट के साथ-साथ तुम्हारी छाया में बैठकर अपना पाठ दोहराएं तो मुझे भी स्मरण रखना।"

देवयानी, "और तनिक वनमती का भी तो ध्यान करो जिसके निर्मल और तीव्र प्रवाह का जल प्रेम-संगीत की एक लहर के समान है।"

कच, "आह! उसको बिल्कुल नहीं भूल सकता। उसकी स्मृति सदा बनी रहेगी। वनमती मेरी गरीबी की साथी है। वह एक तल्लीन युवती की भांति होंठों पर मुस्कान लिए अपने सीधे-सीधे गीत गुनगुनाते हुए निःस्वार्थ सेवा करती है।"

देवयानी, "किंतु प्रिय सखा, तुम्हें स्मरण कराना चाहती हूं कि तुम्हारा और भी कोई साथी था, जिसने बेहद प्रयत्न किया कि तुम इस निर्धनता के दु:ख से भरे जीवन के प्रभाव से प्रभावित न हो। यह दूसरी बात है कि यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ।"

कच, "उसकी स्मृति तो जीवन का एक अंग बन चुकी है।"

देवयानी, "मुझे वे दिन स्मरण हैं जब तुम पहली बार यहां आए थे। उस समय तुम्हारी आयु किशोर अवस्था से कुछ ही अधिक थी। तुम्हारे नेत्र मुस्करा रहे थे, तुम उस समय उधर वाटिका की बाड़ के समीप खड़े थे।"

कच, "हां! हां! उस समय तुम फूल चुन रही थीं। तुम्हारे शरीर पर श्वेत वस्त्र थे। ऐसा दिखाई देता था जैसे ऊषा ने अपने प्रकाश में स्नान किया है। तुम्हें संभवत: स्मरण होगा, मैंने कहा था यदि मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूं तो मेरा सौभाग्य होगा।"

देवयानी, "स्मरण क्यों नहीं है। मैंने आश्चर्य से तुमसे पूछा था कि तुम कौन हो? और तुमने अत्यंत नम्रता से उत्तर दिया था कि मैं इंद्र की सभा के प्रसिद्ध गुरु 'बृहस्पति' का सुपुत्र हूं। फिर तुमने बताया कि तुम मेरे पिता से वह रहस्य मालूम करना चाहते हो, जिससे मुर्दे जीवित हो सकते हैं।"

कच, "मुझे संदेह था कि संभव है, तुम्हारे पिता मुझे अपने शिष्य रूप में स्वीकार न करें।"

देवयानी, "किंतु जब मैंने तुम्हारी स्वीकृति के लिए समर्थन किया तो वह इस विनती को अस्वीकार न कर सके। उनको अपनी पुत्री से इतना अधिक स्नेह है कि वह उसकी बात टाल नहीं सकते।"

कच, "और जब मैं तीन बार विपक्षियों के हाथों मारा गया तो तुम्हीं ने अपने पिता को बाध्य किया था कि मुझे दोबारा जीवित करें। मैं इस उपकार को बिल्कुल नहीं विस्मृत कर सकता।"

देवयानी, "उपकार? यदि तुम उसको विस्मृत कर दोगे तो मुझे बिल्कुल दु:ख न होगा। क्या तुम्हारी स्मृति केवल लाभ पर ही दृष्टि रखती है? यदि यही बात है तो उसका विस्मृत हो जाना ही अच्छा है। प्रतिदिन पाठ के पश्चात् संध्या के अंधेरे और शून्यता में यदि असाधारण हर्ष और प्रसन्नता की लहरें तुम्हारे सिर पर बीती हों तो उनको स्मरण रखो, उपकार को स्मरण रखने से क्या लाभ? यदि कभी तुम्हारे पास से कोई गुजरा हो, जिसके गीत का चुभता हुआ टुकड़ा तुम्हारे पाठ में उलझ गया हो या जिसके वायु में लहराते हुए आंचल ने तुम्हारे ध्यान को पाठ से हटाकर अपनी ओर आकर्षित कर लिया हो, अपने अवकाश के समय में

कभी उसको अवश्य स्मरण कर लेना; परंतु केवल यही, कुछ और नहीं! सौंदर्य और प्रेम का याद न आना ही अच्छा है।"

कच, "बहुत-सी वस्तुएं हैं जो शब्दों द्वारा प्रकट नहीं हो सकतीं।"

देवयानी, "हां, हां, मैं जानती हूं। मेरे प्रेम से तुम्हारे हृदय का एक-एक अणु छिद चुका है और यही कारण है कि मैं बिना संकोच के इस सत्य को प्रकट कर रही हूं कि तुम्हारी सुरक्षा और कम बोलना मुझे पसंद नहीं। तुम्हें मुझसे अलग होना अच्छा नहीं यहीं विश्राम करो, कोई ख्याति ही हर्ष का साधन नहीं है। अब तुम मुझको छोड़कर नहीं जा सकते, तुम्हारा रहस्य मुझ पर खुल चुका है।"

कच, "नहीं देवयानी, नहीं, ऐसा न कहो।"

देवयानी, "क्या कहा, नहीं? मुझसे क्यों झूठ बोलते हो? प्रेम की दृष्टि छिपी नहीं रहती। प्रतिदिन तुम्हारे सिर के तनिक से हिलने से तुम्हारे हाथों के कंपन से तुम्हारा हृदय तुम्हारी इच्छा मुझ पर प्रकट करता है। जिस प्रकार सागर अपनी तरंगों द्वारा काम करता है, उसी प्रकार तुम्हारे हृदय ने तुम्हारी भाव-भंगिमा द्वारा मुझ तक संदेश पहुंचाया। सहसा मेरी आवाज सुनकर तुम तिलमिला उठते थे। क्या तुम समझते हो कि मुझे तुम्हारी उस दशा का अनुभव नहीं हुआ? मैं तुमको भलीभांति जानती हूं और इसलिए अब तुम सर्वदा मेरे हो। तुम्हारे देवताओं का राजा भी इस संबंध को नहीं तोड़ सकता!"

कच, "किंतु देवयानी, तुम्हीं हो, क्या इतने वर्ष अपने घर और घर वालों से अलग रहकर मैंने इसीलिए परिश्रम किया था?"

देवयानी, "क्यों नहीं, क्या तुम समझते हो कि संसार में शिक्षा का मूल्य है और प्रेम का मूल्य ही नहीं? समय नष्ट मत करो, साहस से काम लो और यह प्रतिज्ञा करो। शक्ति, शिक्षा और ख्याति की प्राप्ति के लिए मनुष्य तपस्या और इंद्रियों का दमन करता है। एक स्त्री के सामने इन सबका कोई मूल्य नहीं।"

कच, "तुम जानती हो कि मैंने सच्चे हृदय से देवताओं से प्रतिज्ञा की थी कि मैं जीवन के अमरत्व का रहस्य प्राप्त करके आपकी सेवा में आ उपस्थित होऊंगा?"

देवयानी, "परंतु क्या तुम कह सकते हो कि तुम्हारे नेत्रों ने पुस्तकों के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर दृष्टि नहीं डाली? क्या तुम यह कह सकते हो कि मुझे पुष्प भेंट करने के लिए तुमने कभी अपनी पुस्तक को नहीं छोड़ा? क्या तुम्हें कभी ऐसे अवसर की खोज नहीं रही कि संध्याकाल मेरी पुष्प-वाटिका के पुष्पों पर जल छिड़क सको? संध्या समय जब नदी पर अंधकार का वितान तन जाता

तो मानो प्रेम अपने दुखित मौन पर छा जाता। तुम घास पर मेरे बराबर बैठकर मुझे अपने स्वर्गिक गीता गाकर क्यों सुनाते थे? क्या यह सब काम उन षड़्यंत्रों से भरी हुई चालाकियों का एक भाग नहीं, जो तुम्हारे स्वर्ग में क्षम्य है? क्या इन कृत्रिम युक्तियों से तुमने मेरे पिता को अपना न बनाना चाहा था और अब विदाई के समय धन्यवाद के कुछ मूल्यहीन सिक्के उस सेविका की ओर फेंकते हो, जो तुम्हारे छल से छली जा चुकी है?"

कच, "अभिमानी स्त्री! वास्तविकता को मालूम करने से क्या लाभ? यह मेरा भ्रम था कि मैंने एक विशेष भावना के वश तेरी सेवा की और मुझे उसका दंड मिल गया; किंतु अभी वह समय नहीं आया कि मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूं कि मेरा प्रेम सत्य था या नहीं; क्योंकि मुझे अपने जीवन का उद्देश्य दिखाई दे रहा है। अब चाहे तो तेरे हृदय से अग्नि की चिनगारियां निकल-निकलकर संपूर्ण वायुमंडल को आच्छादित कर लें, मैं भलीभांति जानता हूं कि स्वर्ग अब मेरे लिए स्वर्ग नहीं रहा, देवताओं की सेवा में यह रहस्य तुरंत ही पहुंचाना मेरा कर्त्तव्य है। जिसको मैंने कठिन परिश्रम के पश्चात् प्राप्त किया है। इससे पहले मुझे व्यक्तिगत प्रसन्नता की प्राप्ति का ध्यान तनिक भी नहीं था। क्षमा कर देवयानी, मुझे क्षमा कर? सच्चे हृदय से क्षमा का इच्छुक हूं। इस बात को सत्य जाना कि तुझे आघात पहुंचाकर मैंने अपनी कठिनाइयों को दुगुना कर लिया है।"

देवयानी, "क्षमा? तुमने मेरे नारी-हृदय को पाषाण की भांति कठोर कर दिया है, वह ज्वालामुखी की भांति क्रोध में भभक रहा है। तुम अपने काम पर वापस जा सकते हो किंतु मेरे लिए शेष क्या रहा, केवल स्मृति का एक कंटीला बिछौना और छिपी हुई लज्जा, जो सर्वदा मेरे प्रेम का उपहास करेगी। तुम एक पथिक के रूप में यहां आए धूप से बचने के लिए। मेरे वृक्षों की छाया में आश्रय लिया और अपना समय बिताया। तुमने मेरे उद्यान के संपूर्ण पुष्प तोड़कर एक माला गूंथी और जब चलने का समय आया तो तुमने धागा तोड़ दिया; पुष्पों को धूल में मिला दिया। मैं अपने दुखित हृदय से शाप देती हूं कि जो शिक्षा तुमने प्राप्त की है वह सब तुमसे विस्मृत हो जाए, दूसरे व्यक्ति तुम्हारे से यह शिक्षा प्राप्त करेंगे, किंतु जिस प्रकार तारे रात में अंधियारी से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते, बल्कि अलग रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हारी यह विद्या भी तुम्हारे जीवन से अलग रहेगी। व्यक्तिगत रूप में तुम्हें इससे कोई लाभ न होगा और यह केवल इसलिए कि तुमने प्रेम का अपमान किया, प्रेम का मूल्य नहीं समझा।"

❑❑

16

भिखारिन

अंधी प्रतिदिन मंदिर के दरवाजे पर जाकर खड़ी होती, दर्शन करने वाले बाहर निकलते तो वह अपना हाथ फैला देती और नम्रता से कहती, "बाबूजी, अंधी पर दया हो जाए।"

वह जानती थी कि मंदिर में आने वाले सहृदय और श्रद्धालु हुआ करते हैं। उसका यह अनुमान असत्य न था। आने-जाने वाले दो-चार पैसे उसके हाथ पर रख ही देते। अंधी उनको दुआएं देती और उनकी सहृदयता को सराहती। स्त्रियां भी उसके पल्ले में थोड़ा-बहुत अनाज डाल जाया करती थीं।

प्रातः से संध्या तक वह इसी प्रकार हाथ फैलाए खड़ी रहती। उसके पश्चात् मन-ही-मन भगवान को प्रणाम करती और अपनी लाठी के सहारे झोंपड़ी का पथ ग्रहण करती। उसकी झोंपड़ी नगर से बाहर थी। रास्ते में भी याचना करती जाती किंतु राहगीरों में अधिक संख्या श्वेत वस्त्रों वालों की होती, जो पैसे देने की अपेक्षा झिड़कियां दिया करते हैं। तब भी अंधी निराश न होती और उसकी याचना बराबर जारी रहती। झोंपड़ी तक पहुंचते-पहुंचते उसे दो-चार पैसे और मिल जाते।

झोंपड़ी के समीप पहुंचते ही एक दस वर्ष का लड़का उछलता-कूदता आता और उसके चिपट जाता। अंधी टटोलकर उसके मस्तक को चूमती।

बच्चा कौन है? किसका है? कहां से आया? इस बात से कोई परिचय नहीं था। पांच वर्ष हुए पास-पड़ोस वालों ने उसे अकेला देखा था। इन्हीं दिनों एक दिन संध्या-समय लोगों ने उसकी गोद में एक बच्चा देखा, वह रो रहा था, अंधी उसका मुख चूम-चूमकर उसे चुप कराने का प्रयत्न कर रही थी। वह कोई असाधारण घटना न थी, अतः किसी ने भी न पूछा कि बच्चा किसका है। उसी

दिन से वह बच्चा अंधी के पास था और प्रसन्न था। उसको वह अपने से अच्छा खिलाती और पहनाती।

अंधी ने अपनी झोंपड़ी में एक हांड़ी गाड़ रखी थी। संध्या-समय जो कुछ मांगकर लाती उसमें डाल देती और उसे किसी वस्तु से ढांप देती। इसलिए कि दूसरे व्यक्तियों की दृष्टि उस पर न पड़े। खाने के लए अन्न काफी मिल जाता था। उससे काम चलाती। पहले बच्चे को पेट भरकर खिलाती फिर स्वयं खाती। रात को बच्चे को अपने वक्ष से लगाकर वहीं पड़ रहती। प्रातःकाल होते ही उसको खिला-पिलाकर फिर मंदिर के द्वार पर जा खड़ी होती।

2

काशी में सेठ बनारसीदास बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। बच्चा-बच्चा उनकी कोठी से परिचित है। बहुत बड़े देशभक्त और धर्मात्मा हैं। धर्म में उनकी बड़ी रुचि है। दिन के बारह बजे तक सेठ स्नान-ध्यान में संलग्न रहते। कोठी पर हर समय भीड़ लगी रहती। कर्ज के इच्छुक तो आते ही थे, परंतु ऐसे व्यक्तियों का भी तांता बंधा रहता जो अपनी पूंजी सेठजी के पास धरोहर रूप में रखने आते थे। सैकड़ों भिखारी अपनी जमा-पूंजी इन्हीं सेठजी के पास जमा कर जाते। अंधी को भी यह बात ज्ञात थी, किंतु पता नहीं अब तक वह अपनी कमाई यहां जमा कराने में क्यों हिचकिचाती रही।

उसके पास काफी रुपये हो गए थे, हांड़ी लगभग पूरी भर गई थी। उसको शंका थी कि कोई चुरा न ले। एक दिन संध्या-समय अंधी ने वह हांड़ी उखाड़ी और अपने फटे हुए आंचल में छिपाकर सेठजी की कोठी पर पहुंची।

सेठजी बही-खाते के पृष्ठ उलट रहे थे, उन्होंने पूछा, "क्या है बुढ़िया?"

अंधी ने हांड़ी उनके आगे सरका दी और डरते-डरते कहा, "सेठजी, इसे अपने पास जमा कर लो, मैं अंधी, अपाहिज कहां रखती फिरूंगी?"

सेठजी ने हांड़ी की ओर देखकर कहा, "इसमें क्या है?"

अंधी ने उत्तर दिया, "भीख मांग-मांगकर अपने बच्चे के लिए दो-चार पैसे संग्रह किए हैं, अपने पास रखते डरती हूं, कृपया इन्हें आप अपनी कोठी में रख लें।"

सेठजी ने मुनीम की ओर संकेत करते हुए कहा, "बही में जमा कर लो।" फिर बुढ़िया से पूछा, "तेरा नाम क्या है?"

अंधी ने अपना नाम बताया, मुनीमजी ने नकदी गिनकर उसके नाम से जमा कर ली और वह सेठजी को आशीर्वाद देती हुई अपनी झोंपड़ी में चली गई।

3

दो वर्ष बहुत सुख के साथ बीते। इसके पश्चात् एक दिन लड़के को ज्वर ने आ दबाया। अंधी ने दबा-दारू की, झाड़-फूंक से भी काम लिया, टोने-टोटके की परीक्षा की, परंतु संपूर्ण प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। लड़के की दशा दिन-प्रतिदिन बुरी होती गई, अंधी का हृदय टूट गया, साहस ने जवाब दे दिया, निराश हो गई। परंतु फिर ध्यान आया कि संभवतः डॉक्टर के इलाज से फायदा हो जाएं। इस विचार के आते ही वह गिरती-पड़ती सेठजी की कोठी पर आ पहुंची। सेठजी उपस्थित थे।

अंधी ने कहा, ''सेठजी मेरी जमा-पूंजी में से दस-पांच रुपये मुझे मिल जाए तो बड़ी कृपा हो। मेरा बच्चा मर रहा है, डॉक्टर को दिखाऊंगी।''

सेठजी ने कठोर स्वर में कहा, ''कैसी जमा पूंजी? कैसे रुपये? मेरे पास किसी के रुपये जमा नहीं हैं।''

अंधी ने रोते हुए उत्तर दिया, ''दो वर्ष हुए मैं आपके पास धरोहर रख गई थी। दे दीजिए बड़ी दया होगी।''

सेठजी ने मुनीम की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखते हुए कहा, ''मुनीमजी, जरा देखना तो, इसके नाम की कोई पूंजी जमा है क्या? तेरा नाम क्या है री?''

अंधी की जान-में-जान आई, आशा बंधी। पहला उत्तर सुनकर उसने सोचा कि सेठ बेईमान है, किंतु अब सोचने लगी संभवतः उसे ध्यान न रहा होगा। ऐसा धर्मी व्यक्ति भी भला कहीं झूठ बोल सकता है। उसने अपना नाम बता दिया। उलट-पलटकर देखा। फिर कहा, ''नहीं तो, इस नाम पर एक पाई भी जमा नहीं है।''

अंधी वहीं जमी बैठी रही। उसने रो-रोकर कहा, ''सेठजी, परमात्मा के नाम पर, धर्म के नाम पर, कुछ दे दीजिए। मेरा बच्चा जी जाएगा। मैं जीवन-भर आपके गुण गाऊंगी।''

परंतु पत्थर में जोंक न लगी। सेठजी ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया, ''जाती है या नौकर को बुलाऊं।''

अंधी लाठी टेककर खड़ी हो गई और सेठजी की ओर मुंह करके बोली, "अच्छा भगवान तुम्हें बहुत दे।" और अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

यह अशीष न था बल्कि एक दुखी का शाप था। बच्चे की दशा बिगड़ती गई, दवा-दारू हुई ही नहीं, फायदा क्यों कर होता। एक दिन उसकी अवस्था चिंताजनक हो गई, प्राणों के लाले पड़ गए, उसके जीवन से अंधी भी निराश हो गई। सेठजी पर रह-रहकर उसे क्रोध आता था। इतना धनी व्यक्ति है, दो-चार रुपये दे देता तो क्या चला जाता और फिर मैं उससे कुछ दान नहीं मांग रही थी, अपने ही रुपये मांगने गई थी। सेठजी से उसे घृणा हो गई।

बैठे-बैठे उसको कुछ ध्यान आया। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और ठोकरें खाती, गिरती-पड़ती, सेठजी के पास पहुंची और उनके द्वार पर धरना देकर बैठ गई। बच्चे का शरीर ज्वर से भभक रहा था और अंधी का कलेजा भी।

एक नौकर किसी काम से बाहर आया। अंधी को बैठा देखकर उसने सेठजी को सूचना दी, सेठजी ने आज्ञा दी कि उसे भगा दो।

नौकर ने अंधी से चले जाने को कहा, किंतु वह उस स्थान से न हिली। मारने का भय दिखाया, पर वह टस-से-मस न हुई। उसने फिर अंदर जाकर कहा कि वह नहीं टलती।

सेठजी स्वयं बाहर पधारे। देखते ही पहचान गए। बच्चे को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि उसकी शक्ल-सूरत उनके मोहन से बहुत मिलती-जुलती है। सात वर्ष हुए तब मोहन किसी मेले में खो गया था। उसकी बहुत खोज की, पर उसका कोई पता न मिला। उन्हें स्मरण हो आया कि मोहन की जांघ पर एक लाल रंग का चिह्न था। इस विचार के आते ही उन्होंने अंधी की गोद के बच्चे की जांघ देखी। चिह्न अवश्य था परंतु पहले से कुछ बड़ा। उनको विश्वास हो गया कि बच्चा उन्हीं का है। परंतु तुरंत उसको छीनकर अपने कलेजे से चिपटा लिया। शरीर ज्वर से तप रहा था। नौकर को डॉक्टर लाने के लिए भेजा और स्वयं मकान के अंदर चल दिए।

अंधी खड़ी हो गई और चिल्लाने लगी, "मेरे बच्चे को न ले जाओ, मेरे रुपये तो हजम कर गए अब क्या मेरा बच्चा भी मुझसे छीनोगे?"

सेठजी बहुत चिंतित हुए और कहा, "बच्चा मेरा है, यही एक बच्चा है, सात वर्ष पूर्व कहीं खो गया था अब मिला है, सो इसे कहीं नहीं जाने दूंगा और लाख यत्न करके भी इसके प्राण बचाऊंगा।"

अंधी ने एक जोर का ठहाका लगाया, "तुम्हारा बच्चा है, इसलिए लाख यत्न करके भी इसे बचाओगे। मेरा बच्चा होता तो उसे मर जाने देते, क्यों? यह भी कोई न्याय है? इतने दिनों तक खून-पसीना एक करके इसको पाला है। मैं इसको अपने हाथ से नहीं जाने दूंगी।"

सेठजी की अजीब दशा थी। कुछ करते-धरते बन नहीं पड़ता था। कुछ देर वहीं मौन खड़े रहे। फिर मकान के अंदर चले गए। अंधी कुछ समय तक खड़ी रोती रही। फिर वह भी अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु की कृपा हुई या दवा ने जादू का-सा प्रभाव दिखाया। मोहन का ज्वर उतर गया। होश आने पर उसने आंख खोली तो सर्वप्रथम शब्द उसकी जबान से निकला, "मां!"

चहुं ओर अपरिचित शक्लें देखकर उसने अपने नेत्र फिर बंद कर लिए। उस समय से उसका ज्वर फिर अधिक होना आरंभ हो गया। 'मां-मां' की रट लगी हुई थी, डॉक्टरों ने जवाब दे दिया, सेठजी के हाथ-पांव फूल गए, चहुं ओर अंधेरा दिखाई पड़ने लगा।

"क्या करूं एक ही बच्चा है, इतने दिनों बाद मिला भी तो मृत्यु उसको अपने चंगुल में दबा रही है, इसे कैसे बचाऊं?"

सहसा उनको अंधी का ध्यान आया। पत्नी को बाहर भेजा कि देखो कहीं वह अब तक द्वार पर न बैठी हो। परंतु वह वहां कहां? सेठजी ने फिटन तैयार कराई और बस्ती से बाहर उसकी झोंपड़ी पर पहुंचे। झोंपड़ी बिना द्वार के थी, अंदर गए। देखा अंधी एक फटे-पुराने टाट पर पड़ी है और उसके नेत्रों से अश्रुधार बह रही है। सेठजी ने धीरे से उसको हिलाया। उसका शरीर भी अग्नि की भांति तप रहा था।

सेठजी ने कहा, "बुढ़िया! तेरा बच्च मर रहा है, डॉक्टर निराश हो गए, रह-रहकर वह तुझे पुकारता है। अब तू ही उसके प्राण बचा सकती है। चल और मेरे...नहीं-नहीं अपने बच्चे की जान बचा ले।"

अंधी ने उत्तर दिया, "मरता है तो मरने दो, मैं भी मर रही हूं। हम दोनों स्वर्ग-लोक में फिर मां-बेटे की तरह मिल जाएंगे। इस लोक में सुख नहीं है, वहां मेरा बच्चा सुख में रहेगा। मैं वहां उसकी सुचारू रूप से सेवा-सुश्रूषा करूंगी।"

सेठजी रो दिए। आज तक उन्होंने किसी के सामने सिर न झुकाया था।

किंतु इस समय अंधी के पांवों पर गिर पड़े और रो-रोकर कहा, "ममता की लाज रख लो, आखिर तुम भी उसकी मां हो। चलो, तुम्हारे जाने से वह बच जाएगा।"

ममता शब्द ने अंधी को विकल कर दिया। उसने तुरंत कहा, "अच्छा चलो।"

सेठजी सहारा देकर उसे बाहर लाए और फिटन पर बिठा दिया। फिटन घर की ओर दौड़ने लगी। उस समय सेठ जी और अंधी भिखारिन दोनों की एक ही दशा थी। दोनों की यही इच्छा थी कि शीघ्र-से-शीघ्र अपने बच्चे के पास पहुंच जाएं।

कोठी आ गई, सेठजी ने सहारा देकर अंधी को उतारा और अंदर ले गए। भीतर जाकर अंधी ने मोहन के माथे पर हाथ फेरा। मोहन पहचान गया कि यह उसकी मां का हाथ है। उसने तुरंत नेत्र खोल दिए और उसे अपने समीप खड़े हुए देखकर कहा, "मां, तुम आ गईं।"

अंधी भिखारिन मोहन के सिरहाने बैठ गई और उसने मोहन का सिर अपनी गोद में रख लिया। उसको बहुत सुख अनुभव हुआ और वह उसकी गोद में तुरंत सो गया।

दूसरे दिन से मोहन की दशा अच्छी होने लगी और दस-पंद्रह दिन में वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। जो काम हकीमों के जोशांदे, वैद्यों की पुड़ियां और डॉक्टरों के मिक्सचर न कर सके वह अंधी की स्नेहमयी सेवा ने पूरा कर दिया।

मोहन के पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर अंधी ने विदा मांगी। सेठजी ने बहुत-कुछ कहा-सुना कि वह उन्हीं के पास रह जाए परंतु वह सहमत न हुई, विवश होकर विदा करना पड़ा। जब वह चलने लगी तो सेठजी ने रुपयों की एक थैली उसके हाथ में दे दी। अंधी ने मालूम किया, "इसमें क्या है?"

सेठजी ने कहा, "इसमें तुम्हारी धरोहर है, तुम्हारे रुपये। मेरा वह अपराध..."

अंधी ने बात काट कर कहा, "यह रुपये तो मैंने तुम्हारे मोहन के लिए संग्रह किए थे, उसी को दे देना।"

अंधी ने थैली वहीं छोड़ दी। और लाठी टेकती हुई चल दी। बाहर निकलकर फिर उसने उस घर की ओर नेत्र उठाए। उसके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे किंतु वह एक भिखारिन होते हुए भी सेठ से महान थी। इस समय सेठ याचक था और वह दाता थी।

❑❑

17

कवि का हृदय

चांदनी रात में भगवान विष्णु बैठे मन-ही-मन गुनगुना रहे थे—

"मैं विचार किया करता था कि मनुष्य सृष्टि का सबसे सुंदर निर्माण है, किंतु मेरा विचार भ्रामक सिद्ध हुआ। कमल के उस फूल को, जो वायु के झोंकों से हिलता है, मैं देख रहा हूं कि वह संपूर्ण जीव-मात्र से कितना अधिक पवित्र और सुंदर है। उसकी पंखुड़ियां अभी-अभी प्रकाश से खिली हैं। वह ऐसा आकर्षक है कि मैं अपनी दृष्टि उस पर से नहीं हटा सकता। हां, मानवों में इसके समान कोई वस्तु विद्यमान नहीं।"

विष्णु भगवान ने एक ठंडी सांस खींची। उसके एक क्षण पश्चात् सोचने लगे—

'आखिर किस प्रकार मुझको अपनी शक्ति से एक नवीन अस्तित्व उत्पन्न करना चाहिए, जो मनुष्यों में ऐसा हो जैसा कि फूलों में कमल है। जो आकाश और पृथ्वी दोनों के लिए सुख तथा प्रसन्नता का कारण बने। ऐ कमल! तू एक सुंदर युवती के रूप में परिवर्तित हो जा और मेरे सामने खड़ा हो।"

जल में एक हल्की-सी लहर उत्पन्न हुई, जैसे कृष्ण चिड़िया के पंखों से प्रकट होती है। रात अधिक प्रकाशमान हो गई। चंद्रमा पूरे प्रकाश के साथ चमकने लगा, परंतु कुछ समय पश्चात् सहसा सब मौन रह गए, जादू पूरा हो गया। भगवान के सम्मुख कमल मानवी-रूप में खड़ा था।

वह ऐसा सुंदर रूप था कि स्वयं देवता को भी देखकर आश्चर्य हुआ। उस रूपवती को संबोधित करके विष्णु भगवान बोले, "तुम इसके पहले सरोवर का फूल थीं, अब मेरी कल्पना का फूल हो, बातें करो।"

सुंदर युवती ने बहुत धीरे-से बोलना आरंभ किया। उसका स्वर ठीक ऐसा था जैसे कमल की पंखुड़ियां प्रात:समीरण के झोंकों से बज उठती हैं।

"महाराज, आपने मुझको मानवी-रूप में परिवर्तित किया है, कहिए अब आप मुझे किस स्थान में रहने की आज्ञा देते हैं। महाराज, पहले मैं पुष्प थी तो वायु के थपेड़ों से डरा करती थी और अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेती थी। मैं वर्षा और आंधी से भय मानती थी, बिजली और उसकी कड़क से मेरे हृदय को डर लगता था, मैं सूर्य की जलाने वाली किरणों से डरा करती थी, आपने मुझको कमल से इस अवस्था में बदला है अतः मेरी पहले-सी प्रकृति है। मैं पृथ्वी से और जो कुछ उस पर विद्यमान है, उससे डरती हूं। फिर आज्ञा दीजिए मुझे कहां रहना चाहिए।"

विष्णु ने तारों की ओर दृष्टि की, एक क्षण तक कुछ सोचा, उसके बाद पूछा, "क्या तुम नगराज के शिखरों पर रहना चाहती हो?"

"नहीं महाराज वहां बर्फ है और मैं शीत से डरती हूं।"

"अच्छा, मैं सरोवर की तह में तुम्हारे लिए शीशे का महल बनवा दूंगा।"

"जल की गहराइयों में सर्प और भयावने जंतु रहते हैं इसलिए मुझे डर लगता है।"

"तो क्या तुमको सुनसान उजाड़ स्थान रुचिकर है?"

"नहीं महाराज, वन की तूफानी समीर और दामिनी की भयावनी कड़क को मैं किस प्रकार सहन कर सकती हूं।"

"तो फिर तुम्हारे लिए कौन-सा स्थान निश्चित किया जाए? हां, अजंता की गुफाओं में साधु रहते हैं, क्या तुम सबसे अलग किसी गुफा में रहना चाहती हो?"

"महाराज, वहां बहुत अंधेरा है, मुझे डर लगता है।"

भगवान विष्णु घुटने के नीचे हाथ रखकर एक पत्थर पर बैठ गए। उनके सामने वही सुंदरी सहमी हुई खड़ी थी।

2

बहुत देर के उपरांत जब ऊषा-किरण के प्रकाश ने पूर्व दिशा में आकाश को प्रकाशित किया, जब सरोवर का जल, ताड़ के वृक्ष और हरे बांस सुनहरे हो गए, गुलाबी बगुले, नीले सारस और श्वेत हंस मिलकर पानी पर और मोर जंगल में कूकने लगे तो उसके साथ ही वीणा की मस्त कर देने वाली लय से मिश्रित प्रेमगान सुनाई देना आरंभ हुआ। भगवान अब तक संसार की चिंता में संलग्न थे, अब चौंके और कहा, "देखो! कवि वाल्मीकि सूर्य को नमस्कार कर रहा है।"

कुछ समय के पश्चात् केसरिया पर्दे जो चांदनी को ढके हुए थे उठ गए और सरोवर के समीप कवि वाल्मीकि प्रकट हुए। मनुष्य के रूप में बदले हुए कमल के फूल को देखकर उन्होंने वाद्ययंत्र बजाना बंद कर दिया। वीणा उनके हाथों से गिर पड़ी, दोनों हाथ जंघाओं पर जा लगे। वह खड़े-के-खड़े रह गए। जैसे सर्वथा किंकर्तव्यविमूढ़ थे।

भगवान ने पूछा, "वाल्मीकि क्या बात है, मौन हो गए ?"

वाल्मीकि बोले, "महाराज, आज मैंने प्रेम का पाठ पढ़ा है।" बस इससे अधिक कुछ न कह सके।

विष्णु भगवान का मुख सहसा चमक उठा। उन्होंने कहा, "सुंदर कामिनी! मुझको तेरे लिए योग्य स्थान मिल गया। जा कवि के हृदय में निवास कर।"

भगवान ने वाल्मीकि के हृदय को शीशे के समान निर्मल बना दिया था। वह सुंदरी अपने निर्वाचित स्थान में प्रविष्ट हो रही थी, किंतु जैसे ही उसने वाल्मीकि के हृदय की गहराई को मापा, उसका मुख पीला पड़ गया और उस पर भय छा गया।

देवता को आश्चर्य हुआ।

बोले, "क्या कवि-हृदय में भी रहने से डरती हो ?"

"महाराज, आपने मुझे किस स्थान पर रहने की आज्ञा दी है। मुझको तो उस एक ही हृदय में नगराज के शिखर, अजीब जंतुओं से भरी हुई जल की अथाह गहराई और अजंता की अंधेरी गुफाएं आदि सब-कुछ दृष्टिगोचर होता है। इसलिए महाराज मैं भयभीत होती हूं।"

यह सुनकर विष्णु भगवान मुस्काए और बोले, "मनुष्य के रूप में परिवर्तित सुमन रत्न। यदि कवि के हृदय में हिम है तो तुम वसंत ऋतु की उष्ण समीर का झोंका बन जाओगी, जो हिम को भी पिघला देगा। यदि उसमें जल की गहराई है तो तुम उस गहराई में मोती बन जाओगी। यदि निर्जन वन है तो तुम उसमें सुख और शांति के बीज बो दोगी। यदि अजंता की गुफा है तो तुम उसके अंधेरे में सूर्य की किरण बनकर चमकोगी।"

कवि ने इस बीच में बोलने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। उसकी ओर देखते ही भगवान विष्णु ने इतना और कहा, "जाओ, यह वस्तु तुम्हें देता हूं, इसे लो और सुखी रहो।"

❑❑

18

समाज का शिकार

मैं जिस युग का वर्णन कर रहा हूं उसका न आदि है न अंत! वह एक बादशाह का बेटा था और उसका महलों में लालन-पालन हुआ था, किंतु उसे किसी के शासन में रहना स्वीकार न था। इसलिए उसने राजमहलों को तिलांजलि देकर जंगलों की राह ली। उस समय देशभर में सात शासक थे। वह सातों शासकों के शासन से बाहर निकल गया और ऐसे स्थान पर पहुंचा जहां किसी का राज्य न था।

आखिर शाहजादे ने देश को क्यों छोड़ा?

इसका कारण स्पष्ट है कि कुएं का पानी अपनी गहराई पर संतुष्ट है। नदी का जल तटों की जंजीरों में जकड़ा हुआ है, किंतु जो पानी पहाड़ की चोटी पर है उसे हमारे सिरों पर मंडराने वाले बादलों में बंदी नहीं बनाया जा सकता।

शाहजादा भी ऊंचाई पर था और यह कल्पना भी न की जा सकती थी कि वह इतना विलासी जीवन छोड़कर जंगलों, पहाड़ों और मैदानों में दृढ़ता से सामना करेगा। इस पर भी बहादुर शाहजादा भयावने जंगल को देखकर भयभीत न हुआ। उसकी राह में सात समुद्र थे और न जाने कितनी नदियां? किंतु उसने सबको अपने साहस से पार कर लिया।

मनुष्य शिशु से युवा होता है और युवा से वृद्ध होकर मर जाता है, और फिर शिशु बनकर संसार में आता है। वह इस कहानी को अपने माता-पिता से अनेक बार सुनता है कि भयानक समुद्र के किनारे एक किला है। उसमें एक शाहजादी बंदी है, जिसे मुक्त कराने के लिए एक शाहजादा जाता है।

कहानी सुनने के पश्चात् वह चिंतन की मुद्रा में कपोलों पर हाथ रखकर सोचता कि कहीं मैं ही तो वह शाहजादा नहीं हूं।

जिन्नों के द्वीप की दशा सुनकर उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे एक दिन शाहजादी को बंदीगृह से मुक्ति दिलाने के लिए उस द्वीप को प्रस्थान करना पड़ेगा। संसार वाले मान-सम्मान चाहते हैं, धन-ऐश्वर्य के इच्छुक रहते हैं, प्रसिद्धि के लिए मरते हैं, भोग-विलास की खोज में लगे रहते हैं, किंतु स्वाभिमानी शाहजादा सुख-चैन का जीवन छोड़कर अभागी शाहजादी को जिन्नों के भयानक बंदीगृह से मुक्ति दिलाने के लिए भयानक द्वीप का पर्यटन करता है।

2

भयानक तूफानी सागर के सम्मुख शाहजादे ने अपने थके हुए घोड़े को रोका; किंतु पृथ्वी पर उतरना था कि सहसा दृश्य बदल गया और शाहजादे ने आश्चर्यचकित दृष्टि से देखा कि सामने एक बहुत बड़ा नगर बसा हुआ है। ट्राम चल रही है, मोटरें दौड़ रही हैं, दुकानों के सामने खरीददारों की और दफ्तरों के सामने क्लर्कों की भीड़ है। फैशन के मतवाले चमकीले वस्त्रों से सुसज्जित चहुं ओर घूम-फिर रहे हैं। शाहजादे की यह दशा कि पुराने कुर्ते में बटन भी लगे हुए नहीं। वस्त्र मैले, जूता फट गया, हरेक व्यक्ति उसे घृणा की दृष्टि से देखता है किंतु उसे चिंता नहीं। उसके सामने एक ही उद्देश्य है और वह अपनी धुन में मग्न है।

अब वह नहीं जानता कि शाहजादी कहां है ?

वह एक अभागे पिता की अभागी बेटी है। धर्म के ठेकेदारों ने उसे समाज की मोटी जंजीरों में जकड़कर छोटी अंधेरी कोठरी के द्वीप में बंदी बना दिया है। चहुं ओर पुराने रीति-रिवाज और रूढ़ियों के समुद्र घेरा डाले हुए हैं।

क्योंकि उसका पिता निर्धन था और वह अपने होने वाले दामाद को लड़की के साथ अमूल्य धन-संपत्ति न दे सकता था। इसलिए किसी सज्जन खानदान का कोई शिक्षित युवक उसके साथ विवाह करने पर सहमत न होता था। लड़की की आयु अधिक हो गई। वह रात-दिन देवताओं की पूजा-अर्चना में लीन रहती थी। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया और वह अपने चाचा के पास चली गई।

चाचा के पास नकद रुपया भी था और काफी मकान आदि भी। अब उसे सेवा के लिए मुफ्त की सेविका मिल गई। वह सवेरे से रात के बारह बजे तक घर के काम-काज में लगी रहती।

बिगड़ी दशा का शाहजादा उस लड़की के पड़ोस में रहने लगा। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। प्रेम की जंजीरों ने उनके हृदयों से विवाह कर दिया। लड़की जो अब तक पैरों से कुचली हुई कोमल कली की भांति थी उसने प्रथम बार संतोष और शांति की सांस ली।

किंतु धर्म के ठेकेदार यह किस प्रकार सहन कर सकते थे कि कोई दुखित स्त्री लोहे की जंजीरों से छुटकारा पाकर सुख का जीवन व्यतीत कर सके।

उसका विवाह क्या हुआ एक प्रलय उपस्थित हो गई। प्रत्येक दिशा में शोर मचा कि 'धर्म संकट में है, 'धर्म संकट में है।'

चाचा ने मूछों पर ताव देकर कहा, "चाहे मेरी संपूर्ण संपत्ति नष्ट ही क्यों न हो जाए, अपने कुल के रीति-रिवाजों की रक्षा करूंगा।"

बिरादरी वाले कहने लगे, "एक समाज की सुरक्षा हेतु लाखों रुपया बलिदान कर देंगे", और एक धर्म के पुजारी सेठ ने कहा, "भाई कलयुग है, कलियुग। यदि हम अचेत रहे तो धर्म विलय हो जाएगा। आप सब महानुभाव रुपये-पैसे की चिंता न करें, यदि यह मेरा महान कोष धर्म के काम न आया, तो फिर किस काम आएगा ? तुम तुरंत इस पापी चांडाल के विरुद्ध अभियोग आरंभ करो।"

अभियोगी न्यायालय में उपस्थित हुआ। अभियोगी की ओर से बड़े-बड़े वकील अपने गाऊन फड़काते हुए न्यायालय पहुंचे। अभागी लड़की के विवाह के लिए तो कोई एक पैसा भी खर्च करना न चाहता था, किंतु उसे और उसके पति को जेल भिजवाने के लिए रुपयों की थैलियां खुल गईं।

नौजवान अपराधी ने चकित नेत्रों से देखा।

विधान की किताबों को चाटने वाली दीमकें दिन को रात और रात को दिन कर रही थीं।

धर्म के ठेकेदारों ने देवी-देवताओं की मन्नत मानी। किसी के नाम पर बकरे बलिदान किए गए, किसी के नाम पर सोने का तख्त चढ़ाया गया। अभियोग की क्रिया तीव्र गति से आरंभ हुई। बिगड़ी हुई दशा वाले शाहजादे की ओर से न कोई रुपया व्यय करने वाला था न कोई पक्ष-समर्थन करने वाला।

न्यायाधीश ने उसे कठिन कारावास का दंड दिया।

मंदिरों में प्रसन्नता के घंटे-घड़ियाल बजाए गए, संपूर्ण शक्ति से शंख बजाए गए, देवी और देवताओं के नाम बलि दी गई, पुजारियों और महंतों की बन आई। सब आदमी खुशी से परस्पर धन्यवाद और साधुवाद देकर कहने लगे,

"भाइयो! यह समय कलियुग का है परंतु ईश्वर की कृपा से धर्म अभी जीवित है।"

3

शाहजादा अपनी सजा काटकर कारावास से वापिस आ गया किंतु उसका लंबा-चौड़ा पर्यटन अभी समाप्त न हुआ था। वह संसार में अकेला था, कोई भी उसका संगी-साथी नहीं। संसार वाले उसे दंडी (सजायाफ्ता) कहकर उसकी छाया से भी बचते हैं।

सत्य है इस संसार में राज-नियम भी ईश्वर है।

फिर ईश्वर के अपराधी से सीधे मुंह बात करना किसे सहन हो सकता है?

लंबी-चौड़ी मुसाफिरी तो उसकी समाप्त न हुई; किंतु उसके चलने का अंत हो गया। उसके जख्मी पांवों में चलने की शक्ति शेष न रही।

वह थककर गिर पड़ा, रोगी था...बहुत अधिक रोगी। उस असहाय पथिक की सेवा-सुश्रूषा कौन करता?

किंतु उसकी अवस्था पर एक सुहृदय देवता का हृदय दुखा। उसका नाम 'काल' था। उसने शाहजादे की सेवा-सुश्रूषा की। उसने सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और उसके साथ शाहजादा उस संसार में पहुंच गया जहां न समाज है और न उसके अन्याय और न अन्यायी।

बच्चा आश्चर्य से अपनी मां की गोद में यह कहानी सुनता है और अपने फूल-से कोमल कपोलों पर हाथ रखकर सोचता है, कहीं वह शाहजादा मैं ही तो नहीं हूं।

❑❑

19

यह स्वतंत्रता

पाठक चक्रवर्ती अपने मुहल्ले के लड़कों का नेता था। सब उसकी आज्ञा मानते थे। यदि कोई उसके विरुद्ध जाता तो उस पर आफत आ जाती, सब मुहल्ले के लड़के उसको मारते थे। आखिरकार बेचारे को विवश होकर पाठक से क्षमा मांगनी पड़ती। एक बार पाठक ने एक नया खेल सोचा। नदी के किनारे एक लकड़ी का बड़ा लट्ठा पड़ा था, जिसकी नौका बनाई जाने वाली थी। पाठक ने कहा, ''हम सब मिलकर उस लट्ठे को लुढ़काएं, लट्ठे का स्वामी हम पर क्रुद्ध होगा और हम सब उसका मजाक उड़ाकर खूब हंसेंगे।'' सब लड़कों ने उसका अनुमोदन किया।

जब खेल आरंभ होने वाला था तो पाठक का छोटा भाई मक्खन बिना किसी से एक भी शब्द कहे उस लट्ठे पर बैठ गया। लड़के रुके और एक क्षण तक मौन रहे। फिर एक लड़के ने उसको धक्का दिया, परंतु वह न उठा। यह देखकर पाठक को क्रोध आया। उसने कहा, ''मक्खन, यदि तू न उठेगा तो इसका बुरा परिणाम होगा।'' किंतु मक्खन यह सुनकर और आराम से बैठ गया। अब यदि पाठक कुछ हल्का पड़ता, तो उसकी बात जाती रहतो बस, उसने आज्ञा दी कि लट्ठा लुढ़का दिया जाए।

लड़के आज्ञा पाते ही एक-दो-तीन कहकर लट्ठे की ओर दौड़े और सबने जोर लगाकर लट्ठे को धकेल दिया। लट्ठे को फिसलता और मक्खन को गिरता देखकर लड़के बहुत प्रसन्न हुए किंतु पाठक कुछ भयभीत हुआ। क्योंकि वह जानता था कि इसका परिणाम क्या होगा।

मक्खन पृथ्वी पर से उठा और पाठक को लातें और घूंसे मारकर घर की ओर रोता हुआ चल दिया।

पाठक को लड़कों के सामने इस अपमान से बहुत खेद हुआ। वह नदी-किनारे मुंह-हाथ धोकर बैठ गया और घास तोड़-तोड़कर चबाने लगा। इतने में एक नौका वहां पर आई जिसमें एक अधेड़ आयु वाला व्यक्ति बैठा था। उस व्यक्ति ने पाठक के समीप आकर मालूम किया, "पाठक चक्रवर्ती कहां रहता है?"

पाठक ने उपेक्षा भाव से बिना किसी ओर संकेत किए हुए कहा, "वहां," और फिर घास चबाने लगा।

उस व्यक्ति ने पूछा, "कहां?"

पाठक ने अपने पांव फैलाते हुए उपेक्षा से उत्तर दिया, "मुझे नहीं मालूम।"

इतने में उसके घर का नौकर आया और उसने उससे कहा, "पाठक, तुम्हारी मां तुम्हें बुला रही हैं।"

पाठक ने जाने से इंकार किया, किंतु नौकर चूंकि मालकिन की ओर से आया था, इस वजह से वह उसको जबर्दस्ती मारता हुआ ले गया?

पाठक जब घर आया तो उसकी मां ने क्रोध में आकर पूछा, "तूने मक्खन को फिर मारा?"

पाठक ने उत्तर दिया, "नहीं तो, तुमसे किसने कहा?"

मां ने कहा, "झूठ मत बोल, तूने मारा है।"

पाठक ने फिर उत्तर दिया, "नहीं यह बिल्कुल असत्य है, तुम मक्खन से पूछो।"

मक्खन चूंकि कह चुका था कि मुझे मारा है इसलिए उसने अपने शब्द कायम रखे और दोबारा फिर कहा, "हां-हां तुमने मारा है।"

यह सुनकर पाठक को क्रोध आया और मक्खन के समीप आकर उसे मारना आरंभ कर दिया। उसकी मां ने उसे तुरंत बचाया और पाठक को मारने लगी। उसने अपनी मां को धक्का दे दिया। धक्के से फिसलते हुए उसकी मां ने कहा, "अच्छा, तू अपनी मां को भी मारना चाहता है।"

ठीक उसी समय वह अधेड़ आयु का व्यक्ति घर में आया और कहने लगा, "क्या किस्सा है?"

पाठक की मां ने पीछे हटकर आने वाले को देखा और तुरंत ही उसका क्रोध आश्चर्य में परिवर्तित हो गया। क्योंकि उसने अपने भाई को पहचाना और कहा, "क्यों दादा, तुम यहां? कैसे आए?" फिर उसने नीचे को झुकते हुए उसके चरण छुए।

उसका भाई विशंभर उसके विवाह के पश्चात् बंबई चला गया था, वह व्यापार करता था। अब कलकत्ता अपनी बहन से मिलने आया, क्योंकि बहन के पति की मृत्यु हो गई थी।

कुछ दिन तो बड़ी प्रसन्नता के साथ बीते। एक दिन विशंभर ने दोनों लड़कों की पढ़ाई के विषय में पूछा।

उसकी बहन ने कहा, "पाठक हमेशा दु:ख देता रहता है और बहुत चंचल है, किंतु मक्खन पढ़ने का बहुत इच्छुक है।"

यह सुनकर उसने कहा, "मैं पाठक को बंबई ले जाकर पढ़ाऊंगा।"

पाठक भी चलने के लिए सहमत हो गया। मां के लिए यह बहुत हर्ष की बात थी, क्योंकि वह सर्वदा डरा करती थी कि कहीं किसी दिन पाठक मक्खन को नदी में न डुबो दे या उसे जान से न मार डाले।

पाठक प्रतिदिन मामा से पूछता था कि तुम किस दिन चलोगे। आखिर को चलने का दिन आ गया। उस रात पाठक से सोया भी न गया, सारा दिन जाने की खुशी में इधर-उधर फिरता रहा। उसने अपनी मछली पकड़ने की हत्थी, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े और बड़ी पतंग भी मक्खन को दे दी, क्योंकि उसे जाते समय मक्खन से सहानुभूति-सी हो गई थी।

2

बम्बई पहुंचकर पाठक अपनी मामी से पहली बार मिला। वह उसके आने से कुछ प्रसन्न न हुई; क्योंकि उसके तीन बच्चे ही काफी थे। एक और चंचल लड़के का आ जाना उसके लिए आपत्ति थी।

ऐसे लड़के के लिए उसका अपना घर ही स्वर्ग होता है, उसके लिए एक नए घर में नए लोगों के साथ रहना बहुत कठिन हो गया।

पाठक को यहां पर सांस लेना कठिन हो गया। वह रात को प्रतिदिन अपने नगर के स्वप्न देखा करता और वहां जाने की इच्छा करता रहता। उसको वह स्थान याद आता जहां वह पतंग उड़ाता था और जहां वह जब कभी चाहता जाकर स्नान करता था। मां का ध्यान उसे दिन-रात विकल करता रहता। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो गई...अब स्कूल में उससे अधिक कमजोर कोई विद्यार्थी न था। जब कभी उसका अध्यापक उससे कोई प्रश्न करता, तो वह मौन खड़ा हो जाता और चुपचाप अध्यापक की मार सहन करता। जब दूसरे लड़के खेलते तो वह अलग खड़ा होकर घरों की छतों को देखा करता।

एक दिन उसने बहुत साहस करके अपने मामा से मालूम किया, "मामाजी, मैं कब तक घर जाऊंगा?"

मामा ने उत्तर दिया, "ठहरो, जब तक कि छुट्टियां न हो जाएं।"

किंतु छुट्टियों में अभी बहुत दिन शेष थे, इसलिए उसको काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस बीच में एक दिन उसने अपनी किताब खो दी। अब उसको अपना पाठ याद करना बहुत कठिन हो गया। प्रतिदिन उसका अध्यापक उसे बड़ी निर्दयता के साथ मारता था। उसकी दशा इतनी खराब हो गई कि उसके मामा के बेटे उसे अपना कहते हुए शरमाते थे। पाठक मामी के पास गया और कहने लगा, "मैं स्कूल न जाऊंगा, मेरी पुस्तक खो गई है।"

मामी ने क्रोध से अपने होंठों को चबाते हुए कहा, "दुष्ट! मैं तुझको कहां से महीने में पांच बार पुस्तक खरीद कर दूं?"

इस समय पाठक के सिर में दर्द उठा, वह सोचता था कि मलेरिया हो जाएगा; किंतु सबसे बड़ा सोच-विचार यह था कि बीमार होने के पश्चात् वह घर वालों के लिए एक आपत्ति बन जाएगा।

दूसरे दिन प्रातः पाठक कहीं भी दिखाई न दिया। उसको चारों तरफ खोजा गया किंतु वह न मिला। वर्षा बहुत तेज हो रही थी और वे व्यक्ति जो उसे खोजने गए, बिल्कुल भीग गए। आखिरकार विशंभर ने पुलिस को सूचना दे दी।

3

मध्याह्न पुलिस का सिपाही विशंभर के द्वार पर आया। वर्षा अब भी हो रही थी और सड़कों पर पानी खड़ा था। दो सिपाही पाठक को हाथों पर उठाए हुए लाए और विशंभर के सामने रख दिया। पाठक के सिर से पांव तक कीचड़ लगी हुई और उसकी आंखें ज्वर से लाल थीं। विशंभर उसको घर के अंदर ले गया, जब उसकी पत्नी ने पाठक को देखा तो कहा, "यह तुम क्या आपत्ति ले आए हो, अच्छा होता जो तुम इसको घर भिजवा देते।"

पाठक ने यह शब्द सुने और सिसकियां लेकर कहने लगा, "मैं घर जा तो रहा था परंतु वे दोनों मुझे जबर्दस्ती ले आए।"

ज्वर बहुत तीव्र हो गया था। सारी रात वह अचेत पड़ा रहा, विशंभर एक डॉक्टर को लाया। पाठक ने आंखें खोलीं और छत की ओर देखते हुए कहा, "छुट्टियां आ गई हैं क्या?"

विशंभर ने उसके आंसू पोंछे और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसके सिरहाने बैठ गया। पाठक ने फिर बड़बड़ाना शुरू किया, "मां, मां मुझे इस प्रकार न मारो, मैं सच-सच बताता हूं।"

दूसरे दिन पाठक को कुछ चेत हुआ। उसने कमरे के चहुं ओर देखा और एक ठंडी सांस लेते हुए अपना सिर तकिए पर डाल दिया।

विशंभर समझ गया और अपना मुख उसके समीप लाते हुए कहने लगा, "पाठक, मैंने तुम्हारी मां को बुलाया है।"

पाठक फिर उसी प्रकार चिल्लाने लगा। कुछ घंटों के पश्चात् उसकी मां रोती हुई कमरे में आई। विशंभर ने उसको मौन रहने के लिए कहा, किंतु वह न मानी और अपने-आपको पाठक की चारपाई पर डाल दिया और चिल्लाते हुए कहने लगी, "पाठक, मेरे प्यारे बेटे पाठक!"

पाठक की सांस कुछ समय के लिए रुकी, उसकी नाड़ी हल्की पड़ी और उसने एक सिसकी ली।

उसकी मां फिर चिल्लाई, "पाठक, मेरे आंख के तारे, मेरे हृदय की कोयल!"

पाठक ने बहुत धीरे से अपना सिर दूसरी ओर किया और बिना किसी ओर देखते हुए कहा, "मां! क्या छुट्टियां आ गई हैं?"

❑❑

20

विद्रोही

लोग कहते हैं अंग्रेजी पढ़ना और भाड़ झोंकना बराबर है। अंग्रेजी पढ़ने वालों की मिट्टी खराब है। अच्छे-अच्छे एम.ए. और बी.ए. मारे-मारे फिरते हैं, कोई उन्हें पूछता तक नहीं। मैं इन बातों के विरुद्ध हूं। अंग्रेजी पढ़-लिखकर मैं डॉक्टर बना हूं। अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी तनिक आंख खोलकर मेरी दशा देखें।

सोमवार का दिन था। सवा नौ बजे मेरे मित्र बाबू संतोषकुमार बी. एस-सी. एक नवयुवक रोगी को साथ लिए मेरे दवाखाने में आए। उस रोगी की आयु अठारह-उन्नीस से अधिक न थी। गेहुआं रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, गठीला शरीर, कपड़े स्वदेशी, किंतु मैले थे। सिर के बाल लंबे और रूखे। उस युवक को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

संतोषकुमार ने युवक का परिचय कराते हुए कहा, "आप जिला नदिया के निवासी हैं, नाम ललित कृष्ण बोस है, किंतु ललित के नाम से प्रसिद्ध हैं। एम.ए. में पढ़ते थे; परंतु किसी कारणवश कॉलेज छोड़ दिया।"

मैंने मुस्कराते हुए पूछा, "आजकल आप क्या करते हैं?"

संतोषकुमार ने उत्तर दिया, "दो महीने पहले यह किरण प्रेस में प्रूफरीडर के काम पर थे परंतु इस काम में जी न लगने के कारण नौकरी छोड़ दी। परसों से ज्वर से पीड़ित हैं, कोई अच्छी औषधि दीजिए।"

आज से पहले भी मैंने इस युवक को कहीं देखा है, परंतु कहां देखा है और कब? यह स्मरण नहीं। रोग की छान-बीन के पश्चात् मैंने ललित से कहा, "मालूम होता है, आप आवश्यकता से अधिक परिश्रम करते हैं, खैर, कोई बात नहीं दो दिन में आराम हो जाएगा।"

ललित बहुत मधुर-भाषी था। मैं उसकी बातों पर लट्टू हो गया। मैंने कहा,

"हर तीन घंटे के अंतर से दवा पीजिएगा। दूध और साबूदाने के सिवाय कोई और चीज खाने की आवश्यकता नहीं। कल फिर आने का कष्ट कीजिएगा।"

ललित हंसने लगा। जाते समय मैंने उससे कल अवश्य आने के लिए कहा, परंतु ललित ने शाम को ही आने का वचन दिया।

ललित प्रतिदिन सुबह-शाम मेरे यहां आने लगा। मैं उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न था। घंटों इधर-उधर की बातें होती थीं। ललित वास्तव में ललित था। वह मनुष्य नहीं देखता था।

ललित अब मेरे घर पर ही रहने लगा। मेरा लड़का उमाशंकर आठवीं कक्षा में पढ़ता था। ललित ने कहा, "मैं इसको बंगला सिखाऊंगा बंगला बड़ी मधुर भाषा है।" मैं स्वयं भी यही चाहता था। उमाशंकर ने बंगला पढ़ना शुरू कर दिया, ललित आज से उमाशंकर का अध्यापक हो गया।

2

कलकत्ता जैसे बड़े नगर में यों तो प्रत्येक त्योहार पर बड़ी रौनक होती है किंतु दुर्गा-पूजा के अवसर पर असाधारण धूमधाम और चहल-पहल दिखाई देती है। दशहरा के दिन प्राय: सारे रास्तों पर जन-समूह होता है। बड़े-बूढ़ों में भी उस दिन एक विशेष हर्ष की भावना होती है, लड़कों और युवकों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी धुन में मस्त दिखाई देता है। जिस समय दुर्गा की सवारी सामने से आती है तो 'काली माई की जय' के उच्च जय-घोष से आकाश गूंज उठता है, हृदय में एक अनुपम आवेश उत्पन्न होता था।

उस दिन दुर्गा पूजा थी। हम सब व्यक्ति भी शोभा देखने गए थे। ललित साथ था। पहले की अपेक्षा ललित में आज अधिक प्रदर्शन था। प्रत्येक स्थान पर वह देवी की मूर्ति को नमन करता, कभी उसके नेत्र लाल हो जाते और कभी उनमें आंसू उमड़ आते। मैंने देखा, कभी वह हर्षातिरेक से नाचने-कूदने लगता और कभी सर्वथा मौन हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखता। मैंने बहुत प्रयत्न किया; परंतु उसकी इन चेष्टाओं को न समझ सका। उससे मालूम करने का साहस न हुआ।

हमारे पीछे एक गरीब बुढ़िया एक आठ-नौ साल के बच्चे को साथ लिए खंभे की आड़ में खड़ी थी। संभवत: अथाह जन-समूह के कारण उसको किसी ओर जाने का साहस न होता था। वह भिखारिन थी। गरीबी के कारण पेट पीठ

से लग गया था। उसने अपना दाहिना हाथ भीख के लिए पसार रखा था। बच्चा अनुनय-विनय करते हुए कह रहा था, "बाबा, भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।"

किंतु संसार में गरीबों की कौन सुनता है ? गरीब बुढ़िया की ओर किसी ने आंख उठाकर भी न देखा, प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रसन्नता में प्रसन्न था। बच्चे ने बुढ़िया से कहा, "घंटों बीत गए परंतु अब तक दो पैसे मिले हैं, सोचता था आज दुर्गा-पूजा है कुछ अधिक ही मिल जाएगा; किंतु खेद है कि चिल्लाते-चिल्लाते गला बैठ गया; कोई सुनता ही नहीं। जी में आता है यहीं प्राण त्याग दूं।" यह कहकर बच्चा रोने लगा।

बुढ़िया की आंखों में आंसू झलकते लगे। उसने कहा, "बेटा! अपना भाग्य ही खोटा है, कल सत्तू खाने के लिए छः पैसे मिल गए थे आज उसका भी सहरा दिखाई नहीं देता। आज भूखे पेट ही रहना होगा। हाय! यह हमारे पाप का फल है।"

बुढ़िया ने एक ठंडी उसांस ली और अपने फटे-मैले आंचल से अपनी और बच्चे की आंखें पोंछीं। बच्चा फिर उसी विनती से कहने लगा, "बाबा, भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।" परंतु नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता ? इतना अधिक जन-समूह था; किंतु इस विनती पर कोई कान देकर सुनने वाला न था।

ललित उस समय बुढ़िया की ओर देख रहा था। उसकी दुखित दशा देखकर उसका हृदय विकल हो गया। उसने अपनी जेब टटोली, उसमें फूटी कौड़ी भी नहीं थी, बहुत व्याकुल हुआ। उसने अपनी दूसरी जेब में हाथ डाला, कुछ आवश्यक कागजों के बीच में एक अठन्नी निकल आई। ललित की निराशा प्रसन्नता में परिवर्तित हो गई, मुखड़ा खिल गया। वह अठन्नी उसने बुढ़िया के हाथ पर रख दी।

जिस प्रकार दस-पांच रुपये लगाने वाले को लॉटरी में दस-बीस हजार रुपये मिल जाने पर प्रसन्नता होती है, जिस प्रकार एक युवती नए आभूषण पहनकर प्रसन्न होती है, जिस प्रकार एक सूखे हुए खेत में वर्षा हो जाने से किसान हर्ष से फूला नहीं समाता, जिस प्रकार कोई नया कवि अपनी कविता को किसी पत्रिका में छपा हुआ देखकर प्रसन्न होता है। उससे कहीं अधिक उस गरीब बुढ़िया को अठन्नी पाकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता के मारे उसकी आंखों में

आंसू भर आए, वह निर्निमेष ललित की ओर देखने लगी। उसका मग्न हृदय ललित को सहस्र आशीष दे रहा था।

यह दशा देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने अनेकों बार उस बुढ़िया को देखा था, उससे मुझे सहानुभूति भी थी किंतु कभी यह साहस न हुआ कि उसकी सहायता करूं। कभी हृदय में आता कि उसको कुछ देना चाहिए, कभी यह कहता कि इसमें क्या रखा है, संसार में लाखों गरीब हैं किस-किसकी सहायता करूंगा ? ललित, जिसे कभी-कभी भूखे तक रहना पड़ता, जिसको मैंने कभी एक पैसे का पान तक चबाते न देखा था और जो मेरी दृष्टि में बहुत कंजूस था, उसका यह दान देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।

स्वप्न में उस दिन मुझे ललित की बहुत-सी विशेषताएं दिखाई दीं। मालूम नहीं वे सत्य थीं या असत्य, किंतु ज्योतिषी के हिसाब से उनको सत्य ही समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि रात मुझे ढाई बजे नींद आई और वह स्वप्न मैंने रात के अंतिम पहर में देखा था।

3

ललित के सहयोग से उमाशंकर में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। कहां तो वह बिना मोटर के घर से बाहर न निकलता था पर अब यह दशा थी कि ललित के साथ वायु-सेवन के लिए प्रतिदिन कोसों पैदल निकल जाता, सिनेमा देखने का चस्का जाता रहा, व्यक्तिगत विलास सामग्री और प्रदर्शन के व्यसन को भी तिलांजलि दे दी। अंग्रेजी शिक्षा से अब उसे घृणा हो गई।

रविवार के दिन मेरे यहां कुछ मित्रों की गार्डन-पार्टी थी, खूब आनंद रहा। मैं अपने मित्रों के सत्कार में लगा हुआ था। उधर उपेंद्रकुमार, गोपाल, उमाशंकर और ललित में चुपके-चुपके बातें हो रही थीं। ये लोग क्या बातें कर रहे थे यह बताना कठिन है, क्योंकि प्रथम तो पार्टी की झंझटों में उलझा हुआ था, उनकी ओर अधिक ध्यान न था, दूसरे वे मेरे से दूर थे और धीरे-धीरे बातें कर रहे थे, बीच-बीच में जब ये लोग खिल-खिलाकर हंस पड़ते तो मुझे भी हंसी आ जाती।

गोपाल बाबू को मैं काफी समय से जानता हूं, रिश्ते में यह संतोषकुमार के बहनोई होते हैं। प्रथम श्रेणी के शौकीन प्रेमी स्वभाव के हैं। आज देखा तो कलाई रिस्टवाच से खाली थी, रेशम की कमीज में से सोने के बटन गायब थे,

होंठों की लाली गायब, बाल भी फैशन के न थे। मैंने संतोषकुमार से धीरे से कहा, "आज तो भाई साहब का कुछ और ही रंग है। वह पहली-सी चटक-मटक दिखाई नहीं देती, क्या बात है ? कुछ समझ में नहीं आता।"

संतोषकुमार ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "आजकल इन पर स्वदेशी भूत सवार है। कई महीने से यह इसी रंग में रंगे हुए हैं, क्या आपने आज ही इन्हें इस वेश में देखा है ?"

मैंने उत्तर दिया, "हां! और इसीलिए मुझे आश्चर्य भी हुआ।"

संतोषकुमार ने किसी सीमा तक उपेक्षा-भाव से कहा, "हमें क्या मतलब ? जो जिसके जी में आए करे, बार-बार समझाने पर भी यदि कोई न सुने तो क्या किया जाए। अधिक कहने-सुनने से अपनी प्रतिष्ठा पर आंच आती है। जैसी करनी वैसी भरनी प्रसिद्ध है। जब बंदी-गृह में चक्की पीसनी पड़ेगी तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा।"

मैंने कहा, "संतोषकुमार तुम बिल्कुल सत्य कहते हो, जमाने की हवा कुछ बदली हुई दिखाई देती है। ललित को भी कुछ स्वदेश की सनक है। यद्यपि मैं स्वदेशी का विरोधी हूं और देश-भक्त मुझे एक आंख नहीं भाते तब भी मैं ललित की स्पष्टवादिता और सात्विकता पर मुग्ध हूं। उसकी रुचि मुझे बहुत भाती है।"

संतोष कहने लगा, "किंतु आपकी भांति उसकी धाक नहीं बंध सकती। आप जब पाश्चात्य वस्त्र पहनकर बाहर निकलते होंगे तो अशिक्षित मनुष्य भय से कांप उठते होंगे और अशिक्षित व्यक्ति आपसे नमस्कार करके आकाश पर पहुंच जाते होंगे।"

मुझे हंसी आ गई, संतोषकुमार भी हंसने लगा।

उस दिन रात को मैं अचेत सोया हुआ स्वप्न देख रहा था कि किसी ने मुझे झंझोड़ा, मैं चौंक गया। आंखें खोलकर देखता हूं तो मेरा नौकर रामलाल हाथ में लालटेन लिये खड़ा है।

मुख पर हवाइयां उड़ रही हैं, शरीर थर-थर कांप रहा है। मैंने घबराकर मालूम किया, "क्यों रामलाल क्या बात है, तुम कांप क्यों रहे हो ?"

रामलाल ने उत्तर दिया, "बाबू, पुलिस ने सारा मकान घेर रखा है, कोई बात समझ में नहीं आती। मैं कोई चोर या बदमाश न था, पुलिस का नाम सुनकर घबरा गया। दो-एक बेईमानियां जो छिपकर की थीं वे आंखों के सामने फिरने लगीं। पूर्ण विश्वास हो गया कि पुलिस मुझे गिरफ्तार करने आई है।"

पुलिस की हलचल सुनकर मेरी चेतना जाती रही। साहस करके नीचे आया। रामलाल बोला, "आज्ञा हो तो दो-चार हाथ दिखाकर पुलिस वालों को पृथ्वी पर लिटा दूं?"

मैंने कहा, "सावधान! भूलकर भी ऐसा न करना, पुलिस से बिगाड़ करना अच्छा नहीं होता।"

द्वार खोल दिया। दो-तीन सार्जेंटों के साथ एक श्वेत वस्त्रधारी बंगाली और आठ-दस सिपाही कमरे के अंदर घुस आए।

बंगाली बाबू ने जेब से एक बादामी कागज निकालकर मुझे दिखाते हुए कहा, "यह गिरफ्तारी-वारंट है, आपके यहां विद्रोहियों की गुप्त मंत्रणा का स्थान है। विद्रोही तुरंत गिरफ्तार किया जाएगा।"

मुझ पर बिजली-सी टूट पड़ी। मैं समझा संभवत: मैं ही विद्रोही हूं और मेरी गिरफ्तारी का यह वारंट है, मुझको पुलिस गिरफ्तार करने आई है। आह! अब कुशल नहीं, यदि फांसी से बच रहा तो काला पानी अवश्य भेजा जाऊंगा।"

मैंने कंपकपाते हुए कहा, "विद्रोही और वह भी मेरे मकान में? आप क्या कह रहे हैं। मैं सरकार का शुभाकांक्षी हूं। इसी वर्ष मुझे राय साहस की उपाधि मिली है आपको भ्रम हुआ है।"

एक सार्जेंट ने त्योरी बदलकर कहा, "अम काला आदमी नहीं है, गोरा आदमी कभी झूठ नहीं बोल सकता।"

बंगाली बाबू ने तनिक रुष्टता की मुद्रा में कहा, "पुलिस का भ्रम नहीं हो सकता, भ्रम प्राय: डॉक्टरों को हुआ करता है।"

मैंने पूछा, "विद्रोही का नाम क्या है?"

कहा, "शरद्कुमार।"

"बंगाली है?"

"हां।"

"कहां का रहने वाला है?"

"श्री रामपुर का।"

मेरे सिर से जैसे विपत्ति-सी टल गई। नाम सुनते ही होंठों पर हंसी खेलने लगी। मैंने कहा, "महाशय, इस नाम का कोई व्यक्ति मेरे घर में नहीं है।"

"कोई और बंगाली आपके मकान में है?"

"हां, सीधा-साधा नवयुवक है जो उमाशंकर को बंगला भाषा पढ़ाता है।"

उस श्वेत वस्त्रधारी बंगाली ने कहा, "हां, उसकी ही खोज है। उसका असली नाम शरद्कुमार है। पुलिस महीनों से उसके पीछे परेशान है, हाथ ही न आता था।"

मैंने आश्चर्य से कहा, "वह तो जिला नदिया का रहने वाला है और आप कहते हैं कि अपराधी श्री रामपुर का निवासी है।"

"सब उसकी चालें हैं, वह श्री रामपुर का निवासी है। उसके पिता का नाम हृदयनाथ है जो एक प्रसिद्ध जमींदार हैं।"

मैंने फिर पूछा, "उस पर क्या अपराध है?"

इंस्पेक्टर ने उत्तर दिया, "विद्रोह, एक गुप्त संस्था से उसका संबंध है। बम बनाना, चोरी, डकैती, कत्ल, लूटमार यह उनकी देशसेवा है।"

यह सुनकर मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा, "आप महानुभाव एक सत्रह-अठारह वर्ष के बंगाली युवक को विद्रोही बना रहे हैं, यह भला कोई मानने की बात है। एक साधारण युवक की गिरफ्तारी के लिए इतने व्यक्ति!"

चार सिपाही दरवाजे पर खड़े किए गए, घर की तलाशी शुरू हुई। दालान, कोठरी, बैठक, रसोईघर, यहां तक कि दिशा-मैदान तक के स्थान को ढूंढ़ डाला किंतु ललित का कहीं पता न था। अलबत्ता उसके कमरे में एक कागज का टुकड़ा मिला; पढ़कर सब आश्चर्य से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। उसमें लिखा हुआ था—

"इंस्पेक्टर साहब,

नमस्ते!

मैं फिर भाग रहा हूं। आपके पुलिस वाले समझ गए होंगे कि मैं कितना भयानक व्यक्ति हूं, जरा बचते रहिएगा।

भारत माता का तुच्छ सेवक शरद्"

बंगाली बाबू ने अपने माथे पर हाथ मारकर कहा, "बना बनाया खेल बिगड़ गया, कमबख्त ने चक्मा दे दिया। महीनों की मेहनत पर पानी फिर गया।"

पुलिस निराश होकर वापस चली गई। हम सब भी उमाशंकर के साथ ललित के लिए आंसू बहाने लगे। ललित से हम सबको बहुत अधिक प्रेम था, उसका यह काम देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

महाशय! मैं वही डॉक्टर हूं, मेरी डॉक्टरी बहुत चमक गई है, उमाशंकर

मैट्रिक पास कर चुका है, उसकी दशा दिन-प्रतिदिन बदलती जा रही है। यह वही उमाशंकर है जो अपने हाथों गिलास में पानी भी नहीं डालता था, आज वही गरीबों की सेवा के लिए हर समय उद्यत रहता है। ललित के पश्चात् स्वयंसेवक का जीता-जागता चित्र मुझे उमाशंकर ही में दिखाई दिया।

एक दिन बैठे-बैठे ललित का ध्यान आ गया, आंखों में आंसू भर आए। उसकी स्मृति से पुराना प्रेम ताजा हो गया। इसी बीच उमाशंकर ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक अंग्रेजी का अखबार था। मुंह लाल हो रहा था, आंखें डबडबा रही थीं। उसने भर्राई हुई आवाज में कहा, "ललित को आजीवन देश-निकाले का दंड दिया गया है। वह कातिल नहीं था, वह देश का सच्चा सेवक, स्वतंत्रता का पुजारी, सहृदय और सबसे प्रेम का बर्ताव करने वाला मनुष्य था।

"ललित का उद्देश्य कत्ल या लूटमार करना रहा हो या विद्रोह, इसके विषय में मैं कुछ नहीं जानता, मैं उसके स्पष्टवादी स्वभाव और उसकी सादगी का कायल हूं। मुझे उस पर पूर्ण विश्वास था।" उमाशंकर के शब्द सुनकर मेरा हृदय दहल गया। उमाशंकर रोने लगा। मैं भी अधिक न सहन कर सका, मैंने अपने आंसू पोंछे। इसके पश्चात् मैंने कहा, "उमाशंकर ललित को देखने के लिए हृदय विकल है, वह कब तक वापस आएगा।"

उमाशंकर ने इसका कोई उत्तर न दिया, वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा। उसकी यह दशा देखकर मुझसे भी सहन न हो सका। दशा भिन्न हो गई, हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गए, चिंता और क्रोध से तिलमिलाने और छटपटाने लगा।

❑❑

21

नई रोशनी

बाबू अनाथ बंधु बी.ए. में पढ़ते थे। परंतु कई वर्षों से निरंतर फेल हो रहे थे। उनके संबंधियों का विचार था कि वह इस वर्ष अवश्य उत्तीर्ण हो जाएंगे, पर इस वर्ष उन्होंने परीक्षा देना ही उचित न समझा।

इसी वर्ष बाबू अनाथ बंधु का विवाह हुआ था। भगवान की कृपा से वधू सुंदर, सद्चरित्रा मिली थी। उसका नाम विंध्यवासिनी था। किंतु अनाथ बाबू को इस हिंदुस्तानी नाम से घृणा थी। पत्नी को भी वह विशेषताओं और सुंदरता में अपने योग्य न समझते थे।

परंतु विंध्यवासिनी के हृदय में हर्ष की सीमा न थी। दूसरे पुरुषों की अपेक्षा वह अपने पति को सर्वोत्तम समझती थी। ऐसा मालूम होता था कि किसी धर्म में आस्था रखने वाले श्रद्धालु व्यक्ति की भांति वह अपने हृदय के सिंहासन पर स्वामी की मूर्ति सजाकर सर्वदा उसी की पूजा किया करती थी।

इधर अनाथ बंधु की सुनिए! वह न जाने क्यों हर समय उससे रुष्ट रहते और तीखे-कड़वे शब्दों से उसके प्रेम-भरे मन को हर संभव ढंग पर जख्मी करते रहते। अपनी मित्र-मंडली में भी वह उस बेचारी को घृणा के साथ स्मरण करते।

जिन दिनों अनाथ बंधु कॉलेज में पढ़ते थे उनका निवास ससुराल में ही था। परीक्षा का समय आया, किंतु उन्होंने परीक्षा दिए बगैर ही कॉलेज छोड़ दिया। इस घटना पर अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा विंध्यवासिनी को अधिक दुःख हुआ। रात के समय उसने विनम्रता के साथ कहना आरंभ किया, "प्राणनाथ! आपने पढ़ना क्यों छोड़ दिया? थोड़े दिनों का कष्ट सह लेना कोई कठिन बात न थी। पढ़ना-लिखना कोई बुरी बात तो नहीं है।"

पत्नी की इतनी बात सुनकर अनाथ बंधु के मिजाज का पारा 120 डिग्री तक पहुंच गया। बिगड़कर कहने लगे, "पढ़ने-लिखने से क्या मनुष्य के चार हाथ-पांव हो जाते हैं ? जो व्यक्ति पढ़-लिखकर अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं उनकी दशा अंत में बहुत बुरी होती है।

पति का उत्तर सुनकर विंध्यवासिनी ने इस प्रकार स्वयं को सांत्वना दी जो मनुष्य गधे या बैल की भांति कठिन परिश्रम करके किसी-न-किसी प्रकार सफल भी हो गए, परंतु कुछ न बन सके तो फिर उनका सफल होना-न-होना बराबर है।

इसके दूसरे दिन पड़ोस में रहने वाली सहेली कमला विंध्यवासिनी को एक समाचार सुनाने आई। उसने कहा, "आज हमारे भाई बी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। उनको बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ा, किंतु भगवान की कृपा से परिश्रम सफल हुआ।"

कमला की बात सुनकर विंध्य ने समझा कि पति की हंसी उड़ाने को कह रही है। वह सहन कर गई और दबी आवाज से कहने लगी, "बहन, मनुष्य के लिए बी.ए. पास कर लेना कोई कठिन बात नहीं परंतु बी.ए. पास कर लेने से होता क्या है ? विदेशों में लोग बी.ए और एम.ए. पास व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।"

2

विंध्यवासिनी ने जो बातें कमला से कही थीं वे सब उसने अपने पति से सुनी थीं, नहीं तो उस बेचारी को विलायत का हाल क्या मालूम था। कमला आई तो थी हर्ष का समाचार सुनाने, किंतु अपनी प्रिय सहेली के मुख से ऐसे शब्द सुनकर उसको बहुत दुःख हुआ। परंतु समझदार लड़की थी। उसने अपने हृदयगत भाव प्रकट न होने दिए। उल्टा विनम्र होकर बोली, "बहन, मेरा भाई तो विलायत गया ही नहीं और न मेरा विवाह ऐसे व्यक्ति से हुआ है जो विलायत होकर आया हो, इसलिए विलायत का हाल मुझे कैसे मालूम हो सकता है ?"

इतना कहकर कमला अपने घर चली गई।

किंतु कमला का विनम्र स्वर होते हुए भी ये बातें विंध्य को अत्यंत कटु प्रतीत हुईं। वह उनका उत्तर तो क्या देती, हां एकांत में बैठकर रोने लगी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् एक अजीब घटना घटित हुई जो विशेषत: वर्णन करने योग्य है। कलकत्ता से एक धनवान व्यक्ति जो विंध्य के पिता राजकुमार

के मित्र थे, अपने कुटुंब-सहित आए और राजकुमार बाबू के घर अतिथि बनकर रहने लगे। चूंकि उनके साथ कई आदमी और नौकर-चाकर थे इसलिए जगह बनाने को राजकुमार बाबू ने अनाथ बंधु वाला कमरा भी उनको सौंप दिया और अनाथ बंधु के लिए एक और छोटा-सा कमरा साफ कर दिया। यह बात अनाथ बंधु को बहुत बुरी लगी। तीव्र क्रोध की दशा में वह विंध्यवासिनी के पास गए और ससुराल की बुराई करने लगे, साथ-ही-साथ उस निरपराधिनी को दो-चार बातें सुनाईं।

विंध्य बहुत व्याकुल और चिंतित हुई किंतु वह मूर्ख न थी। उसके लिए अपने पिता को दोषी ठहराना योग्य न था किंतु पति को कह-सुनकर ठंडा किया। इसके बाद एक दिन अवसर पाकर उसने पति से कहा कि, "अब यहां रहना ठीक नहीं। आप मुझे अपने घर ले चलिए। इस स्थान पर रहने में सम्मान नहीं है।"

अनाथ बंधु परले सिरे के घमंडी व्यक्ति थे। उनमें दूरदर्शिता की भावना बहुत कम थी। अपने घर पर कष्ट से रहने की अपेक्षा उन्होंने ससुराल का अपमान सहना अच्छा समझा, इसलिए आना-कानी करने लगे। किंतु विंध्यवासिनी ने न माना और कहने लगी, "यदि आप जाना नहीं चाहते तो मुझे अकेली भेज दीजिए। कम-से-कम मैं ऐसा अपमान सहन नहीं कर सकती।"

इस पर अनाथ बंधु विवश हो घर जाने को तैयार हो गए।

3

चलते समय माता-पिता ने विंध्य से कुछ दिनों और रहने के लिए कहा किंतु विंध्य ने कुछ उत्तर न दिया। यह देखकर माता-पिता के हृदय में शंका हुई। उन्होंने कहा, "बेटी विंध्य! यदि हमसे कोई ऐसी वैसी बात हुई हो तो उसे भुला देना।"

बेटी ने नम्रतापूर्वक पिता के मुंह की ओर देखा। फिर कहने लगी, "पिताजी! हम आपके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। हमारे दिन सुख से बीते और...।"

कहते-कहते विंध्य का गला भर आया, आंखों से आंसू से बहने लगे। इसके पश्चात् उसने हाथ जोड़कर माता-पिता से विदा चाही और सबको रोता हुआ छोड़कर पति के साथ चल दी।

कलकत्ता के धनवान और ग्रामीण जमींदारों में बहुत बड़ा अंतर है। जो व्यक्ति सर्वदा नगर में रहा हो उसे गांव में रहना अच्छा नहीं लगता। किंतु विंध्य ने पहली बार नगर से बाहर कदम रखने पर भी किसी प्रकार का कष्ट प्रकट न किया बल्कि ससुराल में हर प्रकार से प्रसन्न रहने लगी। इतना ही नहीं, उसने अपनी नारी-सुलभ चतुरता से बहुत शीघ्र अपनी सास का मन मोह लिया। ग्रामीण स्त्रियां उसके गुणों को देखकर प्रसन्न होती थीं, परंतु सब कुछ होते हुए भी विंध्य प्रसन्न न थी। अनाथ बंधु के तीन भाई और थे। दो छोटे, एक बड़ा। बड़े भाई परदेश में पचास रुपये के नौकर थे। इससे अनाथ बंधु के घर-बार का खर्च चलता था। छोटे भाई अभी स्कूल में पढ़ते थे।

बड़े भाई की पत्नी श्यामा को इस बात का घमंड था कि उसके पति की कमाई से सबको रोटी मिलती है, इसलिए वह घर के कामकाज को हाथ तक न लगाती थी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् बड़े भाई छुट्टी लेकर घर आए। रात को श्यामा ने पति से भाई और भौजाई की शिकायत की। पहले तो पति ने उसकी बातों को हंसी में उड़ा दिया, परंतु जब उसने कई बार कहा तो उन्होंने अनाथ बंधु को बुलाया और कहने लगे, "भाई, पचास रुपये में हम सबका गृहस्थ नहीं चल सकता, अब तुमको भी नौकरी की चिंता करनी चाहिए।"

यह शब्द उन्होंने बड़े प्यांर से कहे थे परंतु अनाथ बंधु बिगड़कर बोले, "भाई साहब! दो मुट्ठी-भर अन्न के लिए आप इतने रुष्ट होते हैं, नौकरी तलाश करना कोई बड़ी बात नहीं, किंतु हमसे किसी की गुलामी नहीं हो सकती।" इतना कहकर वह भाई के पास से चले आए।

इन्हीं दिनों गांव के स्कूल में थर्ड मास्टर का स्थान खाली हुआ था। अनाथ बंधु की पत्नी और उनके बड़े भाई ने उस स्थान पर उनसे काम करने के लिए बहुत कहा, किंतु उन्होंने ऐसी तुच्छ नौकरी स्वीकार न की। अब तो अनाथ बंधु को केवल विलायत जाने की धुन समाई हुई थी। एक दिन अपनी पत्नी से कहने लगे, "देखो, आजकल विलायत गए बिना मनुष्य का सम्मान नहीं होता और न अच्छी नौकरी मिल सकती है। इसलिए हमारा विलायत जाना आवश्यक है। तुम अपने पिता से कहकर कुछ रुपया मंगा दो तो हम चले जाएं।"

विलायत जाने की बात सुनकर विंध्य को बहुत दुःख हुआ, पिता के घर से रुपया मंगाने की बात से बेचारी की जान ही निकल गई।

4

दुर्गा-पूजा के दिन समीप आए तो विंध्य के पिता ने बेटी और दामाद को बुलाने के लिए आदमी भेजा। विंध्य खुशी-खुशी मैके आई। मां ने बेटी और दामाद को रहने के लिए अपना कमरा दे दिया। दुर्गा-पूजा की रात को यह सोचकर कि पति न जाने कब वापस आएं, विंध्य प्रतीक्षा करते-करते सो गई।

सुबह उठी तो उसने अनाथ बंधु को कमरे में न पाया। उठकर देखा तो मां का लोहे का संदूक खुला पड़ा था, सारी चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं और पिता का छोटा कैश-बॉक्स जो उसके अंदर रखा था, गायब था।

विंध्य का हृदय धड़कने लगा। उसने सोचा कि जिस बदमाश ने चोरी की है उसी के हाथों पति को भी हानि पहुंची है।

परंतु थोड़ी देर बार उसकी दृष्टि एक कागज के टुकड़े पर जा पड़ी। वह उठाने लगी तो देखा कि पास ही कुंजियों का एक गुच्छा पड़ा है। पत्र पढ़ने से मालूम हुआ कि उसका पति आज ही प्रातः जहाज पर सवार होकर विलायत चला गया है।

पत्र पढ़ते ही विंध्य की आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

वह दुःख के आघात से जमीन पर बैठ गई और आंचल से मुंह ढांपकर रोने लगी।

आज सारे बंगाल में खुशियां मनाई जा रही थीं किंतु विंध्य के कमरे का दरवाजा अब तक बंद था। इसका कारण जानने के लिए विंध्य की सहेली कमला ने दरवाजा खटखटाना आरंभ किया, किंतु अंदर से कोई उत्तर न मिला तो वह दौड़कर विंध्य की मां को बुला लाई। मां ने बाहर खड़ी होकर आवाज दी, "विंध्य! अंदर क्या कर रही है? दरवाजा तो खोल बेटी!"

मां की आवाज पहचानकर विंध्य ने झट आंसुओं को पोंछ डाला और कहा, "माताजी! पिताजी को बुला लो।"

इससे मां बहुत घबराई, अतः उसने तुरंत पति को बुलवाया। राजकुमार बाबू के आने पर विंध्य ने दरवाजा खोल दिया और माता-पिता को अंदर बुलाकर फिर दरवाजा बंद कर लिया।

राजकुमार ने घबराकर पूछा, "विंध्य, क्या बात है? तू रो क्यों रही है?"

यह सुनते ही विंध्य पिता के चरणों में गिर पड़ी और कहने लगी, "पिताजी! मेरी दशा पर दया करो। मैंने आपका रुपया चुराया है।"

राजकुमार आश्चर्य चकित रह गए। उसी हालत में विंध्य ने फिर हाथ जोड़कर कहा, "पिताजी, इस अभागिन का अपराध क्षमा कीजिए। स्वामी को विलायत भेजने के लिए मैंने यह नीच कर्म किया है।"

अब राजकुमार को बहुत क्रोध आया। डांटकर बोला, "दुष्ट लड़की, यदि तुझको रुपये की आवश्यकता थी तो हमसे क्यों न कहा?"

विंध्य ने डरते-डरते उत्तर दिया, "पिताजी! आप उनको विलायत जाने के लिए रुपया न देते।"

ध्यान देने योग्य बात है कि जिस विंध्य ने कभी माता-पिता से रुपये पैसे के लिए विनती तक न की थी आज वह पति के पाप को छिपाने के लिए चोरी का इल्जाम अपने ऊपर ले रही है।

विंध्यवासिनी पर चारों ओर से घृणा की बौछारें होने लगीं। बेचारी सब कुछ सुनती रही, किंतु मौन थी।

तीव्र क्रोधावेश की दशा में राजकुमार ने बेटी को ससुराल भेज दिया।

5

इसके बाद समय बीतता गया, किंतु अनाथ बंधु ने विंध्य को कोई पत्र न लिखा और न अपनी मां की ही कोई सुधबुध ली। पर जब आखिरकार सब रुपये, जो उनके पास थे खर्च हो गए तो बहुत ही घबराए और विंध्य के पास एक तार भेजकर तकाजा किया। विंध्य ने तार पाते ही अपने बहुमूल्य आभूषण बेच डाले और उनसे जो मिला वह अनाथ बाबू को भेज दिया। अब क्या था? जब कभी रुपयों की आवश्यकता होती वह झट विंध्य को लिख देते और विंध्य से जिस तरह बन पड़ता, अपने रहे-सहे आभूषण बेचकर उनकी आवश्यकताओं को पूरा करती रहती। यहां तक कि बेचारी गरीब के पास कांच की दो चूड़ियों के सिवाय कुछ भी शेष न रहा।

अब अभागी विंध्य के लिए संसार में कोई सुख शेष न रहा था। संभव था वह किसी दिन दुखी हालत में आत्महत्या कर लेती। किंतु वह सोचती कि मैं स्वतंत्र नहीं, अनाथ बंधु मेरे स्वामी हैं। इसलिए कष्ट सहते हुए भी वह जीवन के दु:ख उठाने पर विवश थी। अनाथ बंधु के लिए वह जीवित रहकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर रही थी किंतु अब चूंकि उसके लिए विरह का दु:ख सहना कठिन हो गया था इसलिए विवश होकर उसने पति के नाम वापस आने के लिए पत्र लिखा।

इसके थोड़े दिनों बाद अनाथ बंधु बैरिस्टरी पास करके साहब बहादुर बने हुए वापस लौट आए परंतु देहात में बैरिस्टर साहब का निर्वाह होना कठिन था इसलिए पास ही एक कस्बे में होटल का आश्रय लेना पड़ा। विलायत में रहकर अनाथ बंधु के रहन-सहन में बहुत अंतर आ गया था। वह ग्रामीणों से घृणा करते थे। उनके खान-पान और रहन-सहन के तरीकों से यह भी मालूम न होता था कि वह अंग्रेज हैं या हिंदुस्तानी।

विंध्य यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई कि स्वामी बैरिस्टर होकर आए हैं, किंतु मां उसकी बिगड़ी हुई आदतों को देखकर बहुत व्याकुल हुई। अंत में उसने भी यह सोचकर दिल को समझा लिया कि आजकल का जमाना ही ऐसा है, इसमें अनाथ बंधु का क्या दोष?

इसके कुछ समय पश्चात् एक बहुत ही दर्द से भरी घटना घटित हुई। बाबू राजकुमार अपने कुटुंब-सहित नाव पर सवार होकर कहीं जा रहे थे कि सहसा नौका जहाज से टकराकर गंगा में डूब गई। राजकुमार तो किसी प्रकार बच गए किंतु उनकी पत्नी और पुत्र का कहीं पता न लगा।

अब उनके कुटुंब में विंध्य के सिवाय कोई दूसरा शेष न रहा था। इस दुर्घटना के पश्चात् एक दिन राजकुमार बाबू विकल अवस्था में अनाथ बंधु से मिलने आए। दोनों में कुछ देर तक बातचीत होती रही, अंत में राजकुमार ने कहा, "जो कुछ होना था सो तो हुआ, अब प्रायश्चित करके अपनी जाति में सम्मिलित हो जाना चाहिए। क्योंकि तुम्हारे सिवाय अब दुनिया में हमारा कोई नहीं, बेटा या दामाद जो कुछ भी हो, अब तुम हो।"

6

अनाथ बंधु ने प्रायश्चित करना स्वीकार कर लिया। पंडितों से सलाह ली गई तो उन्होंने कहा, "यदि इन्होंने विलायत में रहकर मांस नहीं खाया है तो इनकी शुद्धि वेद-मंत्रों द्वारा की जा सकती है।"

यह समाचार सुनकर विंध्य हर्ष से फूली न समाई और अपना सारा दुःख भूल गई। आखिर एक दिन प्रायश्चित की रस्म अदा करने के लिए निश्चित किया गया।

बड़े आनंद का समय था, चहुं ओर वेद-मंत्रों की गूंज सुनाई देती थी। प्रायश्चित के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और इसके परिणामस्वरूप बाबू अनाथ बंधु नए सिरे से बिरादरी में सम्मिलित कर लिए गए।

परंतु ठीक उसी समय राजकुमार बाबू ब्राह्मणों को दक्षिणा दे रहे थे, एक नौकर ने कार्ड लिए हुए घर में प्रवेश किया और राजकुमार से कहने लगा, "बाबू जी! एक मेम आई हैं।"

मेम का नाम सुनते ही राजकुमार बाबू चकराए, कार्ड पढ़ा। उस पर लिखा था, 'मिसेज अनाथ बंधु सरकार।'

इससे पहले कि राजकुमार बाबू 'हां' या 'न' में कुछ उत्तर देते एक गोरे रंग की यूरोपियन युवती 'खट-खट' करती अंदर आ उपस्थित हुई।

पंडितों ने उसको देखा, तो दक्षिणा लेनी भूल गए। घबराकर जिधर जिसके सींग समाए निकल गए। इधर मेम साहिबा ने जब अनाथ बंधु को न देखा तो बहुत विकल हुई और उनका नाम ले-लेकर आवाजें देने लगी।

इतने में अनाथ बंधु कमरे से बाहर निकले। उन्हें देखते ही मेम साहिबा 'माई डीयर' कहकर झट उनसे लिपट गई।

यह दशा देखकर घर के पुरोहित भी अपना बोरिया-बंधना संभाल कर विदा हो गए। उन्होंने पीछे मुड़कर भी न देखा।

❑ ❑

22

कवि और कविता

राजमहल के सामने भीड़ लगी हुई थी। एक नवयुवक संन्यासी बीन पर प्रेम-राग अलाप रहा था। उसका मधुर स्वर गूंज रहा था। उसके मुख पर दया और सहृदयता के भाव प्रकट हो रहे थे। स्वर के उतार-चढ़ाव और बीन की झंकार दोनों ने मिलकर बहुत ही आनंदप्रद स्थिति उत्पन्न कर रखी थी। दर्शक झूम-झूमकर आनंद प्राप्त कर रहे रहे थे।

गाना समाप्त हुआ, दर्शक चौंक उठे। रुपये-पैसे की वर्षा होने लगी। एक-एक करके भीड़ छटने लगी। नवयुवक संन्यासी ने सामने पड़े हुए रुपये-पैसों को बड़े ध्यान से देखा और आप-ही-आप मुस्करा दिया। उसने बिखरी हुई दौलत को एकत्रित किया और फिर उसे ठोकर मारकर बिखरा दिया। इसके पश्चात् बीन उठाकर एक ओर चल दिया।

2

राजकुमारी माया ने भी उस नवयुवक संन्यासी का गाना सुना था। दर्शक प्रतिदिन वहां आते और संन्यासी को न पाकर निराश हो वापस चले जाते थे। राजकुमारी माया भी प्रतिदिन राजमहल के सामने देखती और घंटों देखती रहती। जब रात्रि को अंधकार सर्वत्र अपना आधिपत्य जमा लेता तो राजकुमारी खिड़की में से उठती। उठने से पहले वह सर्वदा एक निराशाजनक करुणामय आह खींचा करती थी।

इसी प्रकार दिन, हफ्ते और महीने बीत गए। वर्ष समाप्त हो गया, परंतु युवक संन्यासी फिर दिखाई न दिया। जो व्यक्ति उसकी खोज में आया करते थे, धीरे-धीरे उन्होंने वहां आना छोड़ दिया। वे उस घटना को भूल गए, किंतु राजकुमारी माया...!

राजकुमारी माया उस युवक संन्यासी को हृदय से न भुला सकी। उसकी आंखों में हर समय उसका चित्र फिरता। होते-होते उसने भी गाने का अभ्यास किया। वह प्रतिदिन अपने उद्यान में जाती और गाने का अभ्यास करती। जिस समय रात्रि की नीरवता में सोहनी की लय गूंजती तो सुनने वाले ज्ञान-शून्य हो जाते।

3

राजकवि अनंगशेखर युवक था। उसकी कविता प्रभावशाली और जोरदार होती थी। जिस समय वह दरबार में अपनी कविता गायन के साथ पढ़कर सुनाता तो सुनने वालों पर मादकता की लहर दौड़ जाती, शून्यता का राज्य हर ओर होता। राजकुमारी माया को कविता से प्रेम था। संभवतः वह भी अनंगशेखर की कविता सुनने के लिए विशेषतः दरबार में आ जाती थी।

राजकुमारी की उपस्थिति में अनंगशेखर की जुबान लड़खड़ा जाती। वह ज्ञान-शून्य सा खोया-खोया हो जाता, किंतु इसके साथ ही उसकी भावनाएं जाग्रत हो जातीं। व झूम-झूमकर और उदाहरणों को सम्मुख रखता। सुनने वाले अनुरक्त हो जाते। राजकुमारी के हृदय में भी प्रेम की नदी तरंगें लेने लगती। उसको अनंगशेखर से कुछ प्रेम अनुभव होता, किंतु तुरंत ही उसकी आंखें खुल जातीं और युवक संन्यासी का चित्र उसके सामने फिरने लगता। ऐसे मौके पर उसकी आंखों से आंसू छलकने लगते। अनंगशेखर आंसू-भरे नेत्रों पर दृष्टि डालता तो स्वयं भी आंसुओं के प्रवाह में बहने लगता। उस समय वह शस्त्र डाल देता और अपनी जुबान से आप ही कहता, ''मैं अपनी पराजय मान चुका।''

कवि अपनी धुन में मस्त था। चहुं ओर प्रसन्नता और आनंद दृष्टिगोचर होता था। वह अपने विचारों में इतना मग्न था जैसे प्रकृति के आंचल में रंगरेलियां मना रहा हो।

सहसा वह चौंक पड़ा। उसने आंखें फाड़-फाड़कर अपने चहुं ओर दृष्टि डाली और फिर एक उसांस ली। सामने एक कागज पड़ा था। उस पर कुछ पंक्तियां लिखी हुई थीं। रात्रि का अंधकार फैलता जा रहा था। वह वापस हुआ।

राजमहल समीप था और उससे मिला हुआ उद्यान था। अनंगशेखर बेकाबू हो गया। राजकुमारी की खोज उसको बरबस उद्यान के अंदर ले गई।

चंद्रमा की किरणें जलस्रोत की लहरों से अठखेलियां कर रही थीं, प्रत्येक दिशा में जूही और मालती की गंध प्रसारित थी, कवि आनंदप्रद दृश्य को देखने में तल्लीन हो गया। भय और शंका ने उसे आ दबाया। वह आगे कदम न उठा सका। समीप ही एक घना वृक्ष था। उसकी छाया में खड़े होकर वह उद्यान के बाहर का आनंद प्राप्त करने लगा। इसी बीच में वायु का एक मधुर झोंका आया। उसने अपने शरीर में एक कंपन अनुभव किया। इसके बाद उद्यान से एक मधुर स्वर गूंजा, कोई गा रहा था। वह अपने-आपे में न था, कुछ खो-सा गया। मालूम नहीं इस स्थिति में वह कितनी देर खड़ा रहा? जिस समय वह होश में आया, तो देखा कोई पास खड़ा है। वह चौंक उठा, उसके सामने राजकुमारी माया खड़ी थी।

अनंगशेखर का सिर नीचा हो गया। राजकुमारी ने मुस्कराते हुए होंठों से पूछा, "अनंगशेखर, तुम यहां क्यों आए?"

कवि ने सिर उठाया, फिर कुछ लजाते हुए राजकुमारी की ओर देखा, फिर मुख से कुछ न कहा।

राजकुमारी ने फिर पूछा, "तुम यहां क्यों आए?"

इस बार कवि ने साहस से काम लिया। हाथ में जो पत्र था वह राजकुमारी को दे दिया। राजकुमारी ने कविता पढ़ी। उस कविता को अपने पास रखना चाहा; किंतु वह छूटकर हाथ से गिर गई। राजकुमारी तीर की भांति वहां से चली गई। अब कवि से सहन न हो सका, वह ज्ञान-शून्य होकर चिल्ला उठा, "माया, माया!"

परंतु अब माया कहां थी।

4

राजदरबार में एक युवक आया, दरबारी चिल्ला उठे, "अरे, यह तो वही संन्यासी है जो उस दिन राजमहल के सामने गा रहा था।

राजा ने मालूम किया, "यह युवक कौन है?"

युवक ने उत्तर दिया, "महाशय, मैं कवि हूं।"

राजकुमारी उस युवक को देखकर चौंक उठी।

राजकवि ने भी उस युवक पर दृष्टि डाली, मुख फक हो गया। पास ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था, उसने कहा, "वाह! यह तो एक भिक्षुक है।"

राजकवि बोल उठा, "नहीं, उसका अपमान न करो, वह कवि है।"

चहुं ओर सन्नाटा छा गया। महाराज ने उस युवक से कहा, "कोई अपनी कविता सुनाओ।"

युवक आगे बढ़ा, उसने राजकुमारी को और राजकुमारी ने उसको देखा। स्वाभिमान अनुभव करते हुए उसने कदम आगे बढ़ाए।

राजकवि ने भी यह स्थिति देखी तो उसके मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं।

युवक ने अपनी कविता सुनानी आरंभ की। प्रत्येक चरण पर 'वाह-वाह' की ध्वनियां गूंजने लगीं, किसी ने ऐसी कविता आज तक न सुनी थी।

युवक का मुख स्वाभिमान और प्रसन्नता से दमक उठा। वह मस्त हाथी की भांति झूमता हुआ आया और अपने स्थान पर बैठ गया। उसने एक बार फिर राजकुमारी की ओर देखा और इसके पश्चात् राजकवि की ओर।

महाराज ने राजकवि से कहा, "तुम भी अपनी कविता सुनाओ।"

अनंगशेखर चेतना-शून्य सा बैठा था। उसके मुख पर निराशा और असफलता की झलक प्रकट हो रही थी।

महाराज फिर बोले, "अनंग शेखर! किस चिंता में निमग्न हो? क्या इस युवक-कवि का उत्तर तुमसे नहीं बन पड़ेगा?"

यह अपमान कवि के लिए असहनीय था! उसकी आंखें रक्तिम हो गईं, वह अपने स्थान से उठा और आगे बढ़ा। उस समय उसके कदम डगमगा रहे थे। आगे पहुंचकर वह रुका, हृदय खोलकर उसने अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया। चहुं ओर शून्यता और ज्ञान-शून्यता छा गई, श्रोता मूर्ति-से बनकर रह गए।

राजकवि मौन हो गया एक बार उसने चहुं ओर दृष्टिपात किया। उस समय राजकुमारी का मुख पीला था। उस युवक का घमंड टूट चुका था। धीरे-धीरे सब दरबारी नींद से चौंके, चहुं ओर से 'धन्य है, धन्य है' की ध्वनि गूंजी। महाराज ने राजसिंहासन से उठकर कवि को अपने हृदय से लगा लिया। कवि की यह अंतिम विजय थी।

महाराज ने निवेदन किया, "अनंग! मांगो क्या मांगते हो? जो मांगोगे दूंगा।"

राजकवि कुछ देर तक सोचता रहा। इसके बाद उसने कहा, "महाराज मुझे और कुछ नहीं चाहिए! मैं केवल राजकुमारी का इच्छुक हूं।"

यह सुनते ही राजकुमारी को गश आ गया। कवि ने फिर कहा, "महाराज, आपके कथनानुसार राजकुमारी मेरी हो चुकी, अब जो चाहूं कर सकता हूं।" यह कहकर उसने युवक-कवि को अपने समीप बुलाया और कहा, "मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य यह था कि राजकुमारी का प्रेम प्राप्त करूं। तुम नहीं जानते कि राजकुमारी की प्रसन्नता और सुख के लिए मैं अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार हूं। हां, युवक! तुम इनमें से किसी बात से परिचित नहीं हो; किंतु थोड़ी देर के पश्चात् तुमको ज्ञात हो जाएगा कि मैं ठीक कहता था या नहीं।"

कवि की जुबान रुक गई, उसका स्वर भारी हो गया, सिलसिला जारी रखते हुए उसने कहा, "क्या तुम जानते हो कि मैंने क्या देखा? नहीं। और इसका न जानना ही तुम्हारे लिए अच्छा है। सोचता था, जीवन सुख से व्यतीत होगा, परंतु यह आशा भ्रमित सिद्ध हुई। जिससे मुझे प्रेम है वह अपना हृदय किसी और को भेंट कर चुकी है। जानते हो अब राजकुमारी को मैं पाकर भी प्रसन्न न हो सकूंगा; क्योंकि राजकुमारी प्रसन्न न हो सकेगी। आओ, युवक आगे आओ! तुम्हें मुझसे घृणा हो तो बेशक हुआ करे, आओ आज मैं अपनी संपूर्ण संपत्ति तुम्हें सौंपता हूं।"

राजकवि मौन हो गया। किंतु उसका मौन क्षणिक था। सहसा उसने महाराज से कहा, "महाराज, एक विनती है और वह यह कि मेरे स्थान पर इस युवक को राजकवि बनाया जाए।"

राजकवि के कदम लड़खड़ाने लगे। देखते-देखते वह पृथ्वी पर आ रहा। अंतिम बार पथराई हुई दृष्टि मे उसने राजकुमारी की ओर देखा, यह दृष्टि अर्थमयी थी। वह राजकुमारी से कह रहा था, "मेरी प्रसन्नता यही है कि तुम प्रसन्न रहो विदा।"

इसके पश्चात् कवि ने अपनी आंखें बंद कर लीं और ऐसी बंद की कि फिर न खुलीं।

❑❑

23

सीमांत

उस दिन सवेरे कुछ ठंड थी; परंतु दोपहर के समय हवा गर्मी पाकर दक्षिण दिशा की ओर से बहने लगी थी। यतीन जिस बरामदे में बैठा हुआ था, वहां से उद्यान के एक कोने में खड़े हुए कटहल और दूसरी ओर के शिरीष वृक्ष के बीच से बाहर का मैदान दिखाई पड़ता है। वह सुनसान मैदान फाल्गुन की धूप में 'धू-धू' करके जल रहा था। उसी से सटा हुआ एक कच्चा रास्ता निकल गया है। उसी पर एक खाली बैलगाड़ी धीमी चाल से गांव की ओर लौट रही थी और गाड़ीवान धूप से बचने के लिए सिर पर लाल रंग का गमछा लपेटे मस्ती में किसी गीत की कड़ियां दोहराता हुआ जा रहा था?

ठीक इसी समय पीछे से किसी नारी का मधुर और हास्य स्वर फूट पड़ा, "क्यों यतीन, क्या बैठे-बैठे अपने पिछले जन्म की किसी बात को सोच रहे हो?" यतीन ने सुना और पीछे की ओर देखकर कहा, "क्या मैं ऐसा ही हतभागा हूं पटल, जो सोचते समय पिछले जन्म के विचारे बिना काम ही नहीं चलेगा।"

अपने परिवार में पटल नाम से पुकारी जाने वाली वह बाला बोल उठी, "झूठी शेखी मत मारो यतीन; तुम्हारे इस जन्म की सारी बातें मुझे मालूम हैं। छि: ! छि: ! इतनी उम्र हो गई, फिर भी एक बहू घर में न ला सके। हमारा जो धनेसर माली है, उसकी भी एक घरवाली है। रात-दिन उसके साथ लड़-झगड़कर मोहल्ले भर के लोगों को वह कम-से-कम इतना तो बता देती है कि उसका भी इस दुनिया में अस्तित्व है। तुम तो मैदान की तरफ मुंह करके ऐसे भाव दर्शा रहे हो, मानो किसी पूनम के चांद से सलोने मुखड़े का ध्यान करने के लिए बैठे हो? तुम्हारी इन चालाकियों को मैं खूब समझती हूं। यह सब लोगों

को दिखाने के लिए ढोंग रच रखा है। देखो यतीन, जाने-माने ब्राह्मण के लिए जनेऊ की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारा वह धनेसर माली तो कभी विरह का बहाना करके इस सुनसान मैदान की ओर दृष्टि गड़ाए बैठा नहीं रहता। जुदाई की लंबी घड़ियों में भी उसे वृक्ष के नीचे हाथों में खुरपी थामे समय काटते देखा है; किंतु उसकी आंखों में ऐसी खुमारी नहीं देखी। एक तुम हो, जिसने सात जन्म से कभी बहू का सलोना मुखड़ा नहीं निहारा। बस, अस्पताल में शव की चीर-फाड़ करके और मोटे-मोटे पोथे रट-रटकर उम्र के सुहावने दिन काट दिए। अब आखिर, इस चिलचिलाती दोपहरी में तुम इस प्रकार ऊपर की ओर टकटकी बांधे क्या देखते रहते हो, कुछ तो कहो? नहीं, ये सब व्यर्थ की चालाकियां मुझे अच्छी नहीं लगतीं। देख-देखकर सारा बदन अंतर की ज्वाला से जलने लगता है।"

यतीन ने सुना और हाथ जोड़कर कहा, "चलो, रहने भी दो। मुझे व्यर्थ में वैसे ही लज्जित मत करो। तुम्हारा वह धनेसर माली ही सब प्रकार से धन्य रहे। उसी के आदर्शों पर मैं चलने का यत्न करूंगा बस, अब देर नहीं, सवेरे उठते ही सामने लकड़ियां बीनने वाली जिस किसी बाला का मुंह देखूंगा उसी के गले में स्नेह से गुंथी हुई फूलों की माला डाल दूंगा। तुम्हारे ये कटाक्ष भरे शब्द अब मुझसे नहीं सहन होते।"

"बात निश्चित रही न..." पटल ने पूछा।

"हां।"

"तब चलो मेरे साथ।"

यतीन कुछ भी न समझ सका। उसने पूछा, "कहां?"

पटल ने उसे उठाते हुए कहा, "चलो तो सही।"

परंतु यतीन ने हाथ छुड़ाते हुए कहा, "नहीं, नहीं अवश्य तुम्हें कोई नई शरारत सूझी है। मैं अभी तुम्हारे साथ नहीं जाने का हूं।"

"अच्छा, तो यहीं पड़े रहो," पटल ने रोष-भरे शब्दों में कहा और शीघ्रता के साथ अंदर चली गई।

यतीन और पटल की आयु में बहुत थोड़ा अंतर है और वह है सिर्फ एक दिन का। पटल यतीन से बड़ी थी, चाहे उसे यह बड़प्पन एक ही दिन का मिला हो; लेकिन इस एक दिन के लिए यतीन को उसके लिए लोकाचार हेतु सम्मान दिखाना होगा, यह यतीन को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं। दोनों का संबंध चचेरे

भाई-बहन का है और बचपन एक साथ ही खेलकूद में बीता है। यतीन के मुख से 'दीदी' शब्द न सुनकर पटल ने अनेकों बार पिता और चाचा से उसकी शिकायत की; परंतु किसी प्रकार से भी इसका खास फल निकला हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। संसार में इस एक छोटे भाई के पास भी पटल का छोटा-सा मामूली नाम 'पटल' आज तक नहीं छिप सका।

पटल देखने में खासी मोटी-ताजी, गोल-मटोल लड़की है। उसके प्रसन्न मुख से किए जाने वाले आश्चर्यजनक हास-परिहासों को रोकने की ताकत समाज में भी नहीं थी। उसका चेहरा सास-मां के सामने भी गंभीरता का साम्राज्य स्थापित नहीं कर सका। पहले-पहल वह इन बातों के कारण इस नए घर में चर्चा का केंद्र बनी रही। अंत में स्वयं पराजित होकर परिजनों को कहना पड़ा, "इस बहू के तो ढंग ही अनोखे हैं।"

कुछ दिनों के बाद तो इसकी ससुराल में यहां तक नौबत आ गई, कि इसके हास्य के आघात से परिजनों का गांभीर्य भूमिसात हो गया; क्योंकि पटल के लिए किसी का भारी जी और मुंह लटकाना देखना असंभव है।

पटल के पति हरकुमार बाबू डिप्टी मजिस्ट्रेट हैं। बिहार के एक इलाके से उनकी तरक्की करके उन्हें कलकत्ते के आबकारी विभाग में उच्च पद पर ले लिया गया है। प्लेग के भय से कलकत्ता के बाहर उपनगर में एक किराये के मकान में रहते हैं और वहीं से अपने काम पर कलकत्ते आया-जाया करते हैं। मकान के चारों ओर बड़ी चारदीवारी है और उसी में एक छोटा-सा बगीचा है।

इस आबकारी के विभाग में हरकुमार बाबू को अक्सर दौरे के रूप में अनेक गांवों का चक्कर काटना पड़ता है। पटल इस मौके पर अकेली रह जाती है, जो उसे खलता है। वे इस बात को दूर करने के लिए किसी आत्मीयजन को घर से बुलाने की सोच रहे थे कि उसी समय हाल ही में डॉक्टरी की उपाधि से सुशोभित यतीन चचेरी बहन के निमंत्रण पर एक सप्ताह के लिए वहां आ पहुंचा।

कलकत्ते की प्रसिद्ध अंधेरी गलियों में से होकर पहली बार पेड़-पत्तों के बीच आकर आज यतीन इस सूने बरामदे में फाल्गुन की दुपहरिया से आत्मविभोर बैठा था कि पटल पीछे से आकर यह नई शरारत कर गई। पटल के चले जाने के बाद वह कुछ देर के लिए निश्चिंत होकर बैठ गया। लकड़ी बीनने वाली लड़कियों का जिक्र आ जाने के कारण यतीन का मन बचपन में सुनी परी-देश की रोचक कथाओं के गली-कूचों में चक्कर काटने लगा।

पर कहां ? अभी कुछ क्षण भी नहीं बीते होंगे, कि पटल का हास्य से भरा हुआ चिर-परिचित स्वर यतीन के कानों में पड़ा। उसे सुनकर वह चौंक पड़ा। उसने मुड़कर देखा पटल किसी बालिका को खींचे ला रही थी ? इतना देखकर यतीन ने मुख फेर लिया। तभी पटल ने उस बालिका को यतीन के सामने करके पुकारा, "चुनिया!" बालिका ने अपना नाम सुन करके कहा, "क्या है दीदी ?"

पटल ने चुनिया का हाथ छोड़ते हुए कहा, "मेरा यह भाई कैसा है ? देख तो भला।"

चुनिया जो अब तक गर्दन झुकाए हुए थी निःसंकोच यतीन के चेहरे की ओर निहारने लगी।

उसे ऐसा करते हुए देख, पटल ने पूछा, "क्यों री, देखने में तो अच्छा लगता है न ?"

चुनिया ने शांत स्वर से सिर हिलाते हुए कहा, "हां! अच्छा ही है।"

यतीन ने देखा और सुना, फिर लज्जावश कुर्सी से उठता हुआ बोला, "ओह पटल! यह क्या लड़कपन है ?"

"मैं लड़कपन कर रही हूं या तुम व्यर्थ में ही बुढ़ापा दिखला रहे हो।"— पटल ने यतीन के शब्दों को सुनकर निःसंकोच कहा।

'अब बचना मुश्किल है", यतीन के होंठों से शब्द निकले और वह वहां से भाग गया। पटल ने उसका पीछा किया और भागती हुई बोली, "अरे! सुनो तो, भय की कोई बात नहीं है, यकीन तनिक भी नहीं है। कौन तुम्हारे गले में अभी माला डाल रहा है ? फाल्गुन-चैत में तो इस बार कोई लगन ही नहीं पड़ती, अभी बहुत समय है।"

वे दोनों उस जगह से चले गए; परंतु चुनिया आश्चर्यचकित अवस्था में वहीं खड़ी रह गई। उसके इकहरे बदन ने तनिक भी जुंबिश न की। उसकी आयु लगभग 16 ही वर्ष की होगी। उसके सलोने मुख का वर्णन पूर्णतया लेखनी से नहीं किया जा सकता; पर इतना अवश्य लिखा जा सकता है, कि उसमें ऐसी आकर्षण शक्ति है, जो देखते ही वन की मृगी की याद दिला देती है। साहित्यिक भाषा में कहने की आवश्यकता पड़े तो उसे निर्बुद्धि भी कहा जा सकता है; किंतु मूर्ख के साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। हां, अपने समाधान के लिए यह अवश्य सोचा जा सकता है कि बुद्धि वृत्तिपूर्ण विकसित नहीं हुई है; लेकिन इन सब बातों से चुनिया का सौंदर्य घटा नहीं; अपितु उसमें एक विशेषता ही आ गई है।

संध्या को हरकुमार बाबू ने कलकत्ते से लौटकर यतीन को देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी मुद्रा में बोले, "तुम आ पहुंचे, चलो बड़ा ही अच्छा हुआ।"

और फिर दफ्तर के कपड़े बदलकर जल्दी से उसके पास बैठकर कुछ व्यस्त भाव बोले, "यतीन! तुम्हें जरा डॉक्टरी करनी होगी। अकाल के दिनों में जब हम पश्चिम की ओर रह रहे थे; तभी से एक लड़की को पाल रहे हैं। पटल उसे चुनिया कहकर पुकारती है। उसके मां-बाप और वह, सब बाहर मैदान के पास ही एक पेड़ के नीचे पड़े हुए थे। सूचना मिलते ही मैंने बाहर जाकर देखा, तो बेचारे मां-बाप दुनिया के झंझटों से मुक्ति पा चुके थे, सिर्फ लड़की के प्राण अभी बाकी थे। मैंने उस लड़की को वहां से उठाकर पटल को सौंप दिया। पटल ने अपना उत्तरदायित्व समझा और बड़ी सेवा-जतन के बाद उसे बचाने में समर्थ हुई।

उसकी जाति के विषय में कोई कुछ नहीं जानता? यदि उस ओर से कोई ऐतराज भी करता है तो पटल कहती है वह द्विज है। एक बार मरकर फिर से जो इस घर में जन्मी है। इसलिए इसकी मूल जाति तो कभी की मिट चुकी है।

पहले पहल उसने पटल को मां कहकर पुकारना शुरू किया था; पर पटल को इसमें लज्जा का भास होता था। अतः पटल ने उसे धमकाते हुए कहा, "खबरदार! मुझे अब से मां मत कहना। दीदी कहकर भले ही पुकार सकती हो, पटल कहती है, "अरे, इतनी बड़ी लड़की यदि मुझे मां कहेगी तो मैं अपने आपको बुढ़िया समझने लगूंगी।"

हरकुमार बाबू ने लंबी सांस खींचकर पुनः कहा, "यतीन एक बात और भी है। शायद उन अकाल के दिनों में या फिर किसी अन्य कारणवश चुनिया को रह-रहकर एक शूल की तरह पीड़ा उठा करती है। असल बात क्या है, सो तुम्हीं को अच्छी तरह डॉक्टरी परीक्षा करके समझना होगा—अरे, ओ तुलसी, चुनिया को तो बुला ला।"

हरकुमार बाबू के इस लंबे व्याख्यान की समाप्ति पर यतीन खुलकर सांस भी न ले सका था, कि चुनिया केश बांधती हुई, अपनी आधी बंधी बेणी को पीठ पर लटकाए कमरे में दाखिल हुई। अपनी बड़ी-बड़ी गोल आंखों को एक बार दोनों व्यक्तियों पर डालकर चुपचाप खड़ी हो गई।

हरकुमार बाबू सबकी चुप्पी को तोड़कर बोले, "तुम तो व्यर्थ में ही

संकोच कर रहे हो यतीन! यह तो देखने भर की बड़ी है। कच्चे नारियल की तरह इसके भीतर सिर्फ स्वच्छ तरल द्रव्य ही छलक रहा है; कठोर गरी की रेखा मात्र भी अभी तक फूटी नहीं है। यह बेचारी कुछ भी समझती-बूझती नहीं है। इसे तुम नारी समझने की भूल मत कर बैठना। यह तो जंगल की भोली-भाली मृगी-मात्र है।"

यतीन चुपचाप अपने डॉक्टरी फर्ज को पूरा करने में लग गया। चुनिया ने भी किसी प्रकार का संकोच नहीं किया और न आपत्ति ही उठाई ? यतीन ने थोड़ी देर तक चुनिया के शरीर की जांच-पड़ताल करके कहा, "शरीर यंत्र में कोई विकार पैदा हुआ हो ? ऐसा तो दिखाई नहीं देता।"

पटल ने उसी क्षण आंधी के समान वहां पहुंचकर कहा, "हृदय-यंत्र में भी कोई विकार पैदा नहीं हुआ। यतीन परीक्षा करना चाहते हो क्या....अच्छी बात है।"

और फिर वह चुनिया के पास जाकर उसकी ठोड़ी छूती हुई बोली, "चुनिया! मेरा यह भाई तुझे पसंद आया न ?"

चुनिया ने सिर हिलाकर कहा, "हां।"

पटल ने फिर पूछा, "मेरे इस भाई से विवाह करेगी ?"

चुनिया ने इस बार भी वैसे ही सिर हिलाकर कहा, "हां।"

पटल और हरकुमार बाबू दोनों ही हंस पड़े। चुनिया इस खेल के मर्म को समझकर भी इन्हीं का अनुकरण किए, हंसी से घिरा चेहरा लेकर एकटक ताकती रह गई।

यतीन का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। वह कुछ परेशान-सा होकर बोला, "ओह, पटल! तुम बहुत ज्यादती कर रही हो। यह तो सरासर अन्याय है। हरकुमार बाबू भी तो तुम्हें बढ़ावा दे रहे हैं।"

पटल के कुछ कहने से पूर्व हरकुमार बाबू बोले, "यदि ऐसा करूं तो मैं इससे प्रश्रय पाने की प्रत्याशा कैसे कर सकता हूं—तनिक बताओ तो सही ? लेकिन यतीन, चुनिया को तुम नहीं जानते इसी कारण तुम इतने हैरान हो रहे हो। दिखाई देता है, तुम स्वयं लजा-लजाकर चुनिया को भी लजाना सिखा दोगे। ज्ञान वृक्ष का फल उसे दया कर मत खिलाओ। आज तक हम सबने सरल भाव से उसके साथ खेल किया है। अब तुम यदि बीच में आकर गंभीरता दिखाने लगोगे तो उसके लिए बड़ा असंगत-सा मामला हो जाएगा...।"

तभी पटल बोल उठी, "इसी से तो यतीन के साथ मेरी कभी नहीं बनी। बचपन से लेकर आज तक सिर्फ झगड़ा ही हुआ है। यतीन आवश्यकता से अधिक गंभीर है।"

हरकुमार बाबू किसी रहस्य के मर्म को समझते हुए बोले, "शायद इसी कारण से यह वाक्‌युद्ध करना तुम्हारी आदत बन गई है। जब भाई साहब नौ दो ग्यारह हुए तो फिर मुझ गरीब...।"

पटल ने तुनककर कहा, "फिर वही झूठ! भला आपसे झगड़ा करने में कौन-सा सुख पा जाती हूं—इसलिए मैं उसकी चेष्टा ही नहीं करती?"

शुरू में ही हार मान लेता हूं। हरकुमार बाबू ने पटल को चिढ़ाने के अभिप्राय से उत्तर दिया।

"बड़ी बहादुरी दिखाते हो न शुरू में हारकर, यदि मेरी अंत में मान लेते, तो कितनी खुशी मुझे होती। आपने कभी समझने का भी प्रयत्न किया है इसे।" इतना कहकर पटल चुनिया को लेकर वहां से चली गई। उसके जाते ही कमरे में नीरवता का आवरण छा गया। वे दोनों एक-दूसरे को देखते हुए शांत बैठ रहे। थोड़ी देर के बाद तुलसी ने भोजन की सूचना दी। हरकुमार बाबू यतीन को लेकर तुलसी के पीछे रसोईघर में पहुंच गए। पटल वहां न थी। चुनिया ने ही खाना परोसने का काम किया। दोनों भोजन करने बैठ गए। खाते समय बातें करना सभ्यता के विरुद्ध समझकर हरकुमार बाबू ने बोलना उचित नहीं समझा—इस प्रकार वह वातावरण शांत ही बना रहा।

2

यतीन सारी रात अपने कमरे की खिड़कियां खोलकर जाने क्या-क्या सोचता रहा? जिस लड़की ने अपने मां-बाप को मरते देखा है। उसके जीवन पर कैसी भयंकर छाया आकर पड़ी होगी? ऐसी विदारक घटना के भीतर से आज वह इतनी बड़ी हुई है। उसे लेकर भला कहीं परिहास किया जा सकता है यही अच्छा हुआ, जो विधाता ने कृपा करके उसकी विकसित बुद्धि पर एक आवरण डाल दिया। यदि किसी कारणवश वह आवरण कभी उठ जाए, तो भाग्य की रुद्र लीला का कैसा भयंकर चिह्न लक्षित हो उठेगा?

यतीन जब फाल्गुन की दुपहरिया में वृक्षों के अंतराल से आकाश की ओर निहार रहा था और कटहल की कलियों की मादक सुगंध से मृदुतर होकर गंध-

शक्ति को चहुंओर से घेर रखा था, तो उस समय उसके मन ने सारी दुनिया को माधुर्य के कुहरे से ढके हुए देखा था, लेकिन अब इस बुद्धिहीन लड़की ने अपनी हिरनी जैसी आंखों द्वारा उस सुनहले कुहरे को मानो पानी की काई की तह के समान हटा डाला।

फाल्गुन के इस आवरण के पीछे जो विश्व भूख-प्यास से विकल, विषाद की भार-स्वरूप गठरी को देह पर लिए विराट प्रतिभा का रूप धरकर खड़ा है, आज वह उद्घाटित यवनिका के शिल्प-मधुरता के अंतराल से स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ है।

कब सवेरा हुआ और पूरा दिन बीतकर शाम होने को आई, यह यतीन को ठीक से याद ही नहीं रहा? वह तो पटल के बुलाने पर जब अंदर गया तो उसने देखा कि चुनिया को वही पीड़ा उठी हुई थी। उसके हाथ-पांव सुन्न हो गए थे और उसका कोमल शरीर अकड़ गया था। यतीन ने दवा लाने के लिए तुलसी को भेजकर बोतल में पानी मंगवाया, पर पटल झट से बोल उठी, "कैसे डॉक्टर बने हो जी? पांवों में तनिक गर्म-गर्म तेल की मालिश भी तो करनी होगी। देखते नहीं, इस बेचारी के तलुवे कैसे बर्फ हो रहे हैं?"

यतीन ने विस्मित नेत्रों से पटल की ओर देखा और उसके हाथ में से गर्म तेल का बर्तन लेकर रोगिणी के तलुओं में पूरी शक्ति से उस तेल की मालिश शुरू कर दी। इलाज करते हुए रात भी बीतने को आई पर...हरकुमार बाबू कलकत्ते से लौटने पर बार-बार चुनिया की अवस्था के विषय में पूछने लगे। यतीन समझ गया कि इस समय दफ्तर से लौटने पर पटल के बिना हरकुमार बाबू की अवस्था कुछ...इसीलिए बार-बार आकर चुनिया की अवस्था को पूछने का यही भेद है।

वह परिहास करता हुआ पटल से बोला, "हरकुमार बाबू छटपटा रहे हैं, तुम अब जाओ।"

उसी समय पटल ने मुंह बनाते हुए गंभीर मुद्रा में कहा, "दूसरों की दुहाई तो दोगे ही। कौन छटपटा रहा है, सो मैं अच्छी तरह जानती हूं? मेरे जाने से ही अब तुम्हें रिहाई मिलेगी न? इधर बात-बात में चेहरे का रंग उषा की तरह लाल हो उठता है। तुम्हारे पेट में भी यह सब छिपा हुआ है, आज से पहले इसे कौन जान सकता था?"

यतीन पटल के इस कटाक्ष से तिलमिला उठा। उसने हाथ जोड़ते हुए

कहा, "अच्छा, दुहाई तुम्हारी; तुम यहीं रहो। मुझे क्षमा करो। तुम्हारे मुंह पर गांभीर्य रहने से ही मेरी जान बचेगी, मैंने समझने में भूल की थी। हरकुमार बाबू शायद इस समय सुख और शांति में हैं। ऐसा सुयोग उनके भाग्य में हमेशा नहीं बदा होता है।"

चुनिया ने तनिक आराम पाकर जब आंखें खोलीं तो पटल ने प्यार भरे स्वर में कहा, "पगली! तेरी हिरनी जैसी आंखें खुलवाने के लिए तेरा वर बड़ी देर से तलुवे सहलाकर तुझे मना रहा है। इसीलिए तूने देर की, अब समझी। छिः! छिः! उठ उसके पवित्र चरणों की धूलि ले।"

चुनिया ने मानो अज्ञात प्रेरणा से उसी क्षण उठकर छुपी हुई श्रद्धा के साथ यतीन के चरणों की धूलि माथे में लगा ली।

और दूसरे ही दिन से यतीन के साथ नए-नए उपद्रवों का श्रीगणेश हो गया। यतीन जब भोजन के लिए बैठता तो चुनिया प्रसन्नचित्त विजन डुलाकर मक्खियों को दूर करने में जुट जाती। यतीन व्यस्त भाव से कह उठता, "रहने दो, रहने दो, इसकी आवश्यकता नहीं।"

चुनिया ऐसा सुनकर विस्मित नेत्रों से पार्श्व-कक्ष की ओर देखती और उसके बाद फिर से पंखा डुलाने लग जाती। यतीन कैसे खीज उठता और पटल को सुनाने के अभिप्रायः से कहता, "पटल! तुम यदि इसी प्रकार मुझे तंग करोगी तो मैं कदापि भोजन नहीं करूंगा। यह लो, मैं उठता हूं।"

लेकिन एक दिन यतीन के उठने का उपक्रम देखकर चुनिया ने विजन को एक ओर फेंक दिया। यतीन को उसी क्षण उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएं दृष्टिगोचर हुईं। खिन्नावस्था में उसी क्षण वह फिर बैठ गया। चुनिया कुछ भी नहीं समझती है, लजाना उसे आता नहीं है, विषाद का भार संभालने की उसमें क्षमता नहीं है—सबके समान इन बातों पर यतीन के हृदय ने भी विश्वास करना आरंभ कर दिया था।

किंतु आज मानो उसे सहसा दिखाई दिया कि सारे नियमों का व्यतिक्रम करके अकस्मात कब क्या घटित हो जाता है, इसे पहले से कभी नहीं जाना जा सकता है? चुनिया ने फिर विजन नहीं डुलाया। उसे वहीं फेंककर तत्काल ही दूसरे कमरे में चली गई।

यतीन बरामदे में बैठा था। आम के पत्तों के बीच में छिपी हुई कोयल ने उच्च स्वर में अपना तराना छेड़ दिया था। आम मंजरियों की सुगंध से सवेरे की

हवा भारी हो गई थी। तभी उसने देखा, चुनिया चाय का प्याला हाथ में लिए समीप आने से मानो कुछ झिझक-सी रही है। उसकी भोली और कजरारी आंखों के छोरों में कहां का एक सकरुण भय छुपकर आ बैठा है। उसके चाय लेकर आने से यतीन रीझेगा या खीझेगा, इसे जैसे वह ठीक-ठीक समझ ही नहीं पा रही थी।

यतीन ने सुस्थिर चित्त से उठकर आगे बढ़ते हुए उसके हाथ से चाय का प्याला ले लिया। भला इस हिरनी जैसी आंखों वाली मानवी को किसी क्षुद्र कारणवश कहीं वेदना दी जा सकती है! किंतु उसने चाय का प्याला हाथ में पकड़ा ही था, कि देखा बरामदे के दूसरे किनारे से सहसा प्रगट होकर पटल ने मौन हास्य द्वारा उंगली दिखाई। भाव बिल्कुल स्पष्ट थे, अब कैसे हारे तुम?

उसी संध्या को यतीन किसी पत्रिका के पृष्ठ पलट रहा था, कि पुष्पों की सुगंध से चकित होकर उसने सिर उठाया। देखा मौलसिरी के पुष्पों का हार हाथ में लिये चुनिया धीरे-धीरे उसके कमरे में प्रविष्ट हो रही है।

यतीन ने मन-ही-मन में सोचा। यह तो बहुत ज्यादती की जा रही है। पटल के इस निष्ठुर मनोरंजन को अब और अधिक बढ़ावा नहीं देना चाहिए। अतः उसने चुनिया से कहा, "छिः छिः! चुनी! तुम्हें बनाकर दीदी अपना मनोरंजन किया करती हैं, सो क्या तुम इतना भी नहीं समझ पातीं?"

बात समाप्त होने से पहले ही चुनिया ने त्रस्त मन और संकुचित भाव से अंदर की ओर लौट जाने का उपक्रम किया। यतीन ने तब शीघ्रता से उसे बुलाकर कहा, "देखूं तनिक! तुम्हारे इस हार को।"

हाथ आगे करके उसने हार ले लिया। चुनिया के मुख पर से विषाद के बादल फट गए और आनंद की उज्ज्वल रेखा-सी फूट पड़ी। ठीक उसी समय दूसरे कमरे में से किसी के अट्टहास की उच्छ्वसित ध्वनि सुनाई दी?

दूसरे दिन सवेरे उपद्रव करने के अभिप्रायः से पटल ने यतीन के कमरे में जाकर देखा, कि कमरा सूना पड़ा है। सिर्फ मेज पर पड़े कागज पर लिखा है, "भागा जा रहा हूं, यतीन।"

"अरी ओ चुनिया! तेरा वर तो भाग निकला। उसे तू रोक भी नहीं पाई।" बाहर जाकर पटल ने चुनिया की वेणी पकड़कर डुलाते हुए कहा और फिर घर के काम-धंधों में लग गई।

किंतु चुनिया को इस छोटी-सी बात समझने में कुछ समय लगा। वह

पाषाण प्रतिमा के समान खड़ी स्थिर दृष्टि से सामने की ओर देखती रही। इसके उपरांत धीरे-धीरे यतीन के कमरे में जाकर उसने देखा। कमरा खाली पड़ा है और पिछली शाम को उसका दिया हुआ हार उसी तरह मेज पर रखा है।

उस दिन फाल्गुन मास का सवेरा स्निग्ध एवं सुंदर दिखाई पड़ रहा था कंपित कृष्ण वृक्ष की शालाओं के भीतर से छनकर और छाया के साथ घुल-मिलकर सवेरे की धूप बरामदे में आ रही थी। गिलहरी अपनी मुलायम पूंछ को पीठ की ओर मोड़े हुए इधर-उधर कुछ पाने की आशा में दौड़ रही थी। पक्षियों को समूह संगठित रूप में अपने मधुर रागों द्वारा भी अपने वक्तव्य को मानो किसी तरह संपूर्ण नहीं कर पा रहे थे; किंतु महान विश्व के इस छोटे से कोने में इस पल्लव समूह काया और धूप के द्वारा बने विश्व के तनिक खंड के भीतर प्राणों का आनंद पूर्णरूप से खिल उठा था।

उसी एक कोने के बीच यह बुद्धिहीन लड़की अपने जीवन का अपने इर्द-गिर्द के संपूर्ण परिवेश का कोई समीचीन अर्थ नहीं खोज पा रही थी? उसके लिए सभी कुछ एक पहेली बन गया था। यह क्यों हो गया... ? और ऐसा हुआ क्यों? फिर उसके बाद यह सवेरा, यह घर, सब कुछ एक साथ ही भला इतने सूने क्यों हो गए? जिसके अंतर में समझने की शक्ति इतनी कम दी थी, उसी को अकस्मात एक दिन हृदय की अतुल वेदना के रहस्य-गर्भ के गाढ़ अंधकार में बिना ज्योति सहसा किसने उतार दिया? विश्व के इस सहज उच्छ्वसित जीवमय समाज में इन तरुपल्लवों, मृग-खगों के आत्म-विस्मृत कलरव के भीतर इस प्रगाढ़ अंधकार से उसे फिर कौन खींचकर बाहर लाएगा।

पटल ने एकाएक पहुंचकर विस्मित स्वर में कहा, "यह क्या हो रहा है, चुनिया?"

चुनिया ने सुना मात्र लेकिन उठी नहीं, कुछ बोली भी नहीं, जैसी थी वैसी ही रही। पटल ने समीप पहुंचकर स्पर्श किया तो उच्छ्वसित हो वह फूट-फूट कर रोने लगी। अश्रु आंखों के बांध को लांघकर अविरल गति से बहने लगे।

पटल ने आश्चर्यचकित-सी अवस्था में कहा, "अरी कलमुंही तूने तो बिल्कुल ही सत्यानाश कर लिया। तू क्यों भला मरने गई थी?"

और फिर चुनिया की इस अवस्था से अवगत करने के अभिप्राय: से पटल ने अपने पति के समीप जाकर कहा, "यह तो, अच्छी मुसीबत बैठे-बिठाए गले से बांध ली। आखिर! आपकी अक्ल पर भी क्या पत्थर पड़ गए थे, जो मुझे उस समय रोका नहीं।"

हरकुमार बाबू ने पटल की खीझपूर्ण बात को सुनकर कहा, "तुम्हें रोकने की मेरी कभी आदत ही नहीं रही, फिर रोकने से ही ऐसा कौन-सा हल निकल आता?"

"आप कैसे हो जी, "पटल ने तुनककर कहा, "मैं यदि गलती करूं तो आप जबर्दस्ती नहीं रोक सकते क्या?"

फिर वह उत्तर पाए बिना ही दौड़ती हुई आकर यतीन के कमरे में विरह-व्यथा से पीड़ित लड़की को आलिंगनबद्ध करती हुई बोली, "मेरी रानी बहन! तू क्या चाहती है; सो एक बार तो दिल खोलकर मुझसे कह?"

परंतु चुनिया के पास ऐसी कौन-सी भाषा है, जिससे वह अपने हृदय के व्याघात को वाणी के द्वारा सुना सके। वह हृदय की सारी वेदना लिए मानो किसी अनिर्वचनीय वेदना पर जा पड़ी है। यह कैसी वेदना है? विश्व में और भी किसी को क्या ऐसी ही अनुभूति होती है? संसार उसके विषय में क्या सोचता होगा? किसी भी विषय में चुनिया कुछ भी तो नहीं जानती। वह तो केवल अपने इन आंसुओं के द्वारा ही कुछ कह सकती है। मन की पीड़ा को दर्शाने का और तो कोई उपाय उसका जाना हुआ नहीं है।

फिर पटल के ही ओष्ठ हिले, "चुनिया, तेरी दीदी बड़ी उच्छृंखल है, लेकिन स्वप्न में भी नहीं सोचा था। कोई भी कभी उसकी बात पर भरोसा नहीं करता, फिर तूने ही ऐसी भयंकर भूल क्यों की? चुनिया! एक बार बस एक बार अपनी दीदी की ओर मुंह उठाकर तो देख, उसे क्षमा कर दे बहन!"

किंतु चुनिया का मन इस अकस्मात घटना से बिल्कुल ही विमुख हो चुका था। इसलिए वह किसी भी तरह पटल के मुख की ओर न देख सकी। सारी बातें अच्छी प्रकार से नहीं समझने पर भी उसने एक प्रकार के गूढ़ भाव से पटल पर क्रोध प्रकट किया था। वह उसी अवस्था में अपने हाथों में जोरों से सिर गड़ाए रही।

पटल तब धीरे-धीरे अपनी लंबी भुजाओं को हटाकर चुपचाप उठकर चली आई। पाषाण प्रतिमा की तरह खिड़की के किनारे स्तब्ध भाव से आकर खड़ी हो गई। फाल्गुन की धूप से चिकनी चमकीली सुपारी वृक्ष की पल्लव को निहारते-निहारते उसके दोनों नेत्रों से अश्रु बहने लगे।

और अगले दिन चुनिया उसे बिल्कुल दिखाई नहीं दी। पटल उसे बड़े प्यार से अच्छे-अच्छे आभूषणों और वस्त्रों से अलंकृत किया करती थी। वह स्वयं बड़ी बेतरतीबी से रहती, अपनी स्वयं की सजावट के विषय में कोई यत्न

नहीं करती थी; लेकिन सजावट की अपनी आकांक्षा को वह चुनिया को सजाकर ही पूरा कर लेती थी। आज बहुत दिनों के संचित वह सारे आभूषण और वस्त्र चुनिया के कमरे में पड़े हुए थे। अपने हाथों के कंगन और चूड़ियां तथा नाक की लोंग तक वह उतारकर डाल गई थी। अपनी पटल दीदी के इतने दिनों के लाड़-प्यार को मानो उसने अपनी देह से बिल्कुल ही चिह्न-रहित कर डालने का भरसक प्रयत्न किया है।

हरकुमार बाबू ने पता लगाने के लिए पुलिस में सूचना भेजी। उन दिनों प्लेग की महामारी से भयभीत होकर इतने आदमी इतनी विभिन्न दिशाओं में जीवन की साध लेकर भाग रहे थे। उन भगोड़ों के समूह में से किसी खास व्यक्ति को ढूंढ़ निकालना पुलिस के लिए कठिन कार्य बना गया था। दो-चार बार गलत व्यक्ति का पता पाने पर हरकुमार बाबू को काफी दु:खी और लज्जित होना पड़ा।

अंत में उन्होंने चुनिया के मिलने की आशा को त्याग दिया। एक दिन जिसे अज्ञात की गोद में पड़ा पाया था, वही आज फिर किसी अज्ञात में ही अंतर्धान हो गई थी?

सरकारी प्लेग अस्पताल का डॉक्टर यतीन दोपहर का भोजन करके अस्पताल पहुंचा ही था कि सूचना मिली, जनाने वार्ड में कोई नई रोगिनी आई है। पुलिस उसे रास्ते से उठाकर लाई है।

यतीन देखने गया। लड़की के मुंह का अधिकांश भाग चादर से ढका हुआ था। यतीन ने हाथ उठाकर नाड़ी को टटोला। ज्वर अधिक नहीं था, लेकिन कमजोरी अधिक थी। विशेष परीक्षा के अभिप्राय: से जब उसने मुख पर से चादर हटाकर देखा तो चकित रह गया, वह चुनिया थी।

यतीन अब तक पटल से चुनिया के विषय में सब-कुछ सुन चुका था। मरीजों की भीड़ से फुर्सत पाते ही यतीन के मानस पटल पर, अव्यक्त हृदय तरंग के घूंघट से ढकी हुई चुनिया की मृगी जैसी दोनों सुंदर आंखें प्राय: सदा एक प्रकार की अश्रुहीन कातरता को बिखरा दिया करती थी...

आज रोगी के नेत्रों की बड़ी-बड़ी पलकें चुनिया के क्षीर्ण कपोलों पर गहरी छाया रेखा खींच रही हैं। देखते ही यतीन के वक्षस्थल के भीतर मानो किसी ने सहसा मेरु जैसे कोई बोझ दबाकर रख दिया है। इस एक लड़की को भगवान ने स्वयं ही फूल की तरह कोमल रूप में गढ़कर फिर दुनिया से खींचकर प्लेग जैसी महामारी के स्रोत में कैसे बहा दिया? आज उसके क्षीण-

मृदु प्राण इस रोग से ग्रसित होकर बिस्तरे पर पड़े हैं। उसकी इस छोटी-सी आयु ने विपदाओं के इतने बड़े आघात, वेदना का इतना भारी बोझ, आखिर कैसे सह लिया? यह सब समा कैसे गए? यतीन ही भला उसके जीवन में तीसरे संकट की तरह कहां से आकर लग गया था?

रुद्ध दीर्घ सांसें यतीन के रुद्ध द्वार पर निरंतर धक्के देने लगीं; किंतु उसी आघात की वेदना से उसके हृदय के तार में किसी अज्ञात सुख की होड़-सी लग गई? जो स्नेह विश्व में मिलना कठिन होता है, वही फाल्गुन की किसी दोपहरिया में पूर्ण विकसित बसंती मंजरी के समान अयाचित और अकस्मात ही उसके चरणों के निकट खिसककर जा पड़ी है। जो निश्चल स्नेह इस प्रकार यम के द्वार तक आकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है, ऐसे दैवयोग नैवेद्य का सच्चा अधिकारी दुनिया में इस तरह अनायास ही भला और कौन हो सकता है?

यतीन दुनिया के पार्श्व में बैठकर उसे थोड़ा-थोड़ा गर्म दूध पिलाने लगा, पीते-पीते काफी देर के बाद चुनिया ने दीर्घ सांस लेकर नेत्र खोले। यतीन के चेहरे की ओर देखकर किसी सुंदर स्वप्न की तरह उसने उसे याद करने का प्रयत्न किया, किंतु यतीन ने जैसे ही उसके ललाट पर हाथ रखकर हिलाते हुए कहा, 'चुनिया!' वैसे ही उसकी बेहोशी की आखिरी खुमारी भी अकस्मात टूट गई। यतीन को उसने पहचान लिया और उसी के साथ उसकी दृष्टि पर किसी सुकुमार मोह का आवरण आ पड़ा। पहले कजरारे बादलों के समागम के साथ आषाढ़ के सुगंभीर गगन में जैसी गहरी छाया अंकित हो जाती है, चुनिया की काली आंखों पर वैसी ही सुदूर व्यापी सजल स्निग्धता घनीभूत हो गई।

स्नेह और करुण मिश्रित स्वर में यतीन ने कहा, "यह थोड़ा-सा दूध और पी लो।"

उसी क्षण चुनिया उठकर बैठ गई, फिर प्यार से यतीन के मुख की ओर दृष्टि रखे हुए धीरे-धीरे दूध का शेष भाग भी खत्म कर दिया।

अस्पताल का विशेष डॉक्टर यदि एक ही रोगी के सिरहाने बराबर बैठा रहे, तो काम भी नहीं चले और अच्छा भी प्रतीत नहीं होता। इसलिए दूसरी जगहों भी अपना फर्ज निभाने के लिए यतीन जब उठा तो भय और निराशा से चुनिया की दोनों आंखें व्याकुल हो उठीं। यतीन ने उसका हाथ थामकर दिलासा देते हुए कहा, "मैं अभी वापस आता हूं चुन्नी! भय की कोई बात नहीं है?"

यतीन ने अस्पताल के अधिकारी को सूचित किया, कि इस नई रोगिनी को प्लेग नहीं है। यह केवल क्षुधा से पीड़ित होने के कारण ही इतनी क्षीण हो गई

है। यहां प्लेग के अन्य रोगियों के साथ रखने से इस पर प्लेग के कीटाणु का आक्रमण हो सकता है। इस प्रकार समझा-बुझाकर उसे वहां से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए यतीन ने विशेष तौर से इजाजत ले ली और अपने आवास-गृह में ले आया। फिर इस समाचार से सूचित करने के लिए उसने उसी दिन पटल के पास एक पत्र डाल दिया।

3

उस दिन संध्या को घर में रोगिनी और डॉक्टर के सिवा कोई नहीं था। सिरहाने के पास रंगीन कागज के आवरण से घिरा हुआ मिट्टी के तेल का लैंप धीमी रोशनी फैला रहा था। कॉर्नस पर रखी हुई टाइमपीस निस्तब्ध कमरे में 'टिक-टिक' शब्द का सुंदर राग अलाप रही थी।

यतीन ने चुनिया के ललाट पर हाथ फेरते हुए पूछा, "अब कैसा लगता है चुन्नी?"

चुनिया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया; परंतु यतीन का वह हाथ अपने क्षीण हाथों से ललाट पर ही दबा रखा।

यतीन ने पुन: पूछा, "अच्छा लगता है।"

चुनिया ने सुंदर आंखों पर पलकों के तनिक कपाट बंद करते हुए कहा, "हां।"

यतीन ने उससे उंगली से संकेत करके पूछा, "चुन्नी, तुम्हारे गले में यह क्या है?"

चुनिया ने शीघ्रता के साथ साड़ी का पल्लू खींचकर उसे ढकने का यत्न किया। यतीन ने देखा, उसके गले में मौलसिरी के फूलों का सूखा हुआ हार पड़ा है। टाइमपीस के 'टिक-टिक' शब्द के बीच यतीन चुपचाप बैठा सोचने लगा। अपनी हृदय की बात को छिपाने का यह प्रथम प्रयास है। चुनिया मानो पहले एक मृगछौना थी। मालूम नहीं किस घड़ी हृदय भार से आतुर हो यौवन की मादकता का रूप धारण कर बैठी? किस धूप के उजाले में उसकी ज्वाला की तीक्ष्ण लपटों से चुनिया की समझ पर आच्छादित कुहरा हट गया। उसकी लज्जा, शंका, वेदना, सभी एकदम प्रकाशित हो उठे।

और इन्हीं विचारों में खोए चौकी पर बैठे ही बैठे, न जाने कब यतीन की पलकें नींद के बोझ से दब गईं। वह रात्रि के अंतिम पहर में अचानक द्वार खुलने की आवाज से चौंककर उठ गया। उसकी आंखों ने देखा पटल और हरकुमार बाबू बड़ा-सा बैग लिए कमरे में दाखिल हो रहे हैं।

हरकुमार बाबू ने बैग को कमरे में रखकर और यतीन के पास पहुंचकर कहा, "तुम्हारा पत्र पाकर सवेरे ही चल देने का मैंने विचार किया था; लेकिन जब रात को सो रहा था तो करीब ग्यारह-बारह बजे पटल ने जगाकर कहा, "अजी, सुनते हो, कल सवेरे जाने पर चुनिया को नहीं देख पाएंगे। हमें इसी समय पहुंचना होगा।" उसे मैं किसी प्रकार भी समझा नहीं पाया। तब चटपट एक गाड़ी पर लेकर हम लोग उसी क्षण घर से निकले।"

पटल ने तभी अपने पति से कहा, "चलो, यतीन के बिछौने पर आप आराम करें।"

हरकुमार बाबू तनिक-सी आपत्ति का भान करते हुए यतीन के कमरे में जाकर लेट गए और फिर पलक बंद करते हुए तनिक भी देर नहीं लगी।

रोगिनी के कमरे में वापस आने पर पटल ने यतीन को एक कोने में बुलाकर पूछा, "कुछ आशा है।"

यतीन ने चुनिया की नाड़ी को टटोल सिर हिलाते हुए जताया, "नहीं।"

पटल ने चुनिया के निकट अपने को प्रगट किए बिना ही यतीन को फिर ओट में करके पूछा, "यतीन! सच कहना तुम क्या चुनिया को नहीं चाहते?" इस बार यतीन ने पटल के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह वहां से हटकर चुनिया के बिछौने के छोर पर बैठ गया। उसका हाथ अपने हाथों में धीरे से दबाता हुआ बोला, "चुन्नी! चुन्नी! चुन्नी!"

चुनिया ने आंखों पर से पलकों का आवरण हटाकर चेहरे पर शांत मधुर हंसी का आभास लाते हुए कहा, "क्या है?"

यतीन आशातीत स्वर में बोला, "चुन्नी! अपना यह हार मेरे गले में पहना दो।"

वह निर्निमेष एवं विमूढ़ नेत्रों से केवल यतीन के चेहरे की ओर ताकती रह गई।

यतीन ने फिर कहा, "अपना यह हार क्या मुझे नहीं पहनाओगी चुन्नी?"

यतीन के निकट इस तनिक से दुलार का सहारा पाकर चुनिया के मन में पहले किए गए अनादर का थोड़ा-सा अभिमान जाग उठा, बोली, "इससे क्या होगा?"

यतीन ने उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में समेटते हुए कहा, "मैं तुम्हें प्यार करता हूं चुन्नी!"

यतीन के इस वाक्य को सुनकर पलभर के लिए चुनिया स्तब्ध रह गई।

फिर उसके दोनों नेत्रों से अविरल खारा जल बहने लगा। यतीन बिछौने से उतरकर भूमि पर घुटने टेककर बैठ गया और चुनिया के हाथों के पास उसने अपना सिर रख दिया। चुन्नी ने अपने गले का हार उतारकर यतीन के गले में पहना दिया।

तब पटल ने चुनिया के पास आकर पुकारा, "चुनिया!"

स्वर को पहचानते ही चुनिया का कांतिहीन मुख चमक उठा, बोली, "क्या है, दीदी?"

पटल उसके क्षीण हाथों को अपने हाथों में थामकर बोली, "अब तो तू मुझसे नाराज नहीं है बहन!"

चुनिया ने स्निग्ध कोमल दृष्टि पटल के चेहरे पर फेंकते हुए कहा, "मैं नाराज कहां थी, दीदी?"

पटल की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। वह मुड़कर यतीन से बोली, "यतीन! तुम थोड़ी देर के लिए उधर वाले कमरे में जाकर बैठो।"

यतीन बिना किसी संकोच के चुपचाप चला गया। पटल ने उसके जाते ही बैग खोलकर उसमें से सारे आभूषण और वस्त्र निकाले। फिर रोगिनी को बिना हिलाए-डुलाए खूब सावधानी से उसके कमजोर हाथों में कुछ चूड़ियों को पिरोकर दो कंगन भी पहना दिए। इसके बाद आवाज दी, "यतीन!"

यतीन आ गया। तब उसे शैया पर बिठाकर पटल ने उसके हाथों में चुनिया का एक सोने का हार थमा दिया। यतीन ने धीरे-धीरे चुनिया का सिर ऊंचा करके हार उसके गले में पहना दिया।

उषा की लाली में जब सूर्य की प्रथम किरण चुनिया के चेहरे पर पड़ी, तब उसे देखने के लिए वह वहां नहीं थी। उसके अम्लान मुख की कांति देख कर ऐसा प्रतीत नहीं होता था, कि वह मरी पड़ी है। यही जान पड़ता था, मानो किसी अतलस्पर्शी सुखद स्वप्न में वह पूर्ण रूप से लीन हो चुकी है?

जब उसके शव को लेकर चलने का समय आया। तब पटल चुनिया की छाती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी और क्रंदन स्वर में बोली, "बहन! तेरे भाग्य अच्छे थे जीवन की अपेक्षा तेरा मरण ही अधिक सुखद हुआ।" और चुनिया की शांत-स्निग्ध मृत्यु छवि की ओर निहारते हुए यतीन के अंतर में बारंबार यही भाव उठने लगा—जिसका यह धन था, उसी ने ही वापस ले लिया; किंतु उसने मुझे भी उससे वंचित नहीं रखा।

श्मशान घाट पर पहुंचकर शव जल उठा। शोकातुर अवस्था में यतीन ने अज्ञात प्रेम की सीमा का अंत कर दिया।

❑❑

24

पाषाणी

अपूर्वकुमार बी.ए. पास करके ग्रीष्मावकाश में विश्व की महान नगरी कलकत्ता से अपने गांव को लौट रहा था।

मार्ग में छोटी-सी नदी पड़ती है। वह बहुधा बरसात के अंत में सूख जाया करती है; परंतु अभी तो सावन मास है। नदी अपने यौवन पर है, गांव की हद और बांस की जड़ों का आलिंगन करती हुई तीव्रता से बहती चली जा रही है।

लगातार कई दिनों की घनघोर बरसात के बाद आज तनिक मेघ छटे हैं और नभ पटल पर सूर्यदेव के दर्शन हो रहे हैं।

नौका पर बैठे हुए अपूर्वकुमार के हृदय में बसी हुई प्रतिमा यदि दिखाई देती तो देखते कि वहां भी इस नवयुवक की हृदय-सरिता नव वर्षा से बिल्कुल तट तक भर गई है और सरिता का जल ज्योति से 'झिल-मिल' 'झिल-मिल' और वायु से 'छप्-छप्' कर रहा है।

नौका यथास्थान घाट पर लगी है। नदी के उस तट पर से वृक्षों की आड़ में से अपूर्व के घर की छत स्पष्ट दिखाई दे रही है। घर पर किसी को खबर तक नहीं कि अपूर्व शहर से लौट रहा है, अतः घर पर से लिवाने के लिए कोई नहीं आया? नाविक सूटकेस उठाने के लिए तैयार हुआ तो अपूर्व ने उसे इंकार कर दिया। वह स्वयं ही सूटकेस हाथ में उठाकर आनंद की लहर से झटपट नौका से उतर पड़ा।

उतरते ही, घाट पर थी फिसलन, सूटकेस सहित वह दल-दल में गिर पड़ा, और ज्योंही गिरा, त्योंही न जाने किधर से मोटी ऊंची हास लहरी ने आकर समीप के पीपल पर बैठी हुई चिड़ियों को उड़ा दिया।

अपूर्व बहुत ही लज्जित हुआ और झटपट स्वयं को संभाल कर चहुं ओर

देखने लगा, देखा कि घाट के एक छोर पर जहां महाजन की नौका से नई ईंटें उतारकर इकट्ठी की गई हैं उन्हीं पर बैठी हुई एक नवयौवना हंसते-हंसते लोट पोट हो रही है।

अपूर्व ने पहचान लिया कि वह उसी के पड़ोसी की लाड़ली बेटी मृगमयी है। पहले इनका घर यहां से बहुत दूरी पर बड़ी नदी के तट पर था। दो-तीन साल गुजरे, नदी की बाढ़ के कारण उन्हें वह स्थान छोड़कर वहां चला आना पड़ा। मृगमयी के विषय में बहुत कुछ अपवाद सुनने के लिए मिलता है। ग्रामीणवासी पुरुष तो इसे स्नेह के स्वर में पगली कहकर पुकारते हैं; लेकिन उनकी घरवालियां इसके उद्दंड स्वभाव से सर्वदा त्रस्त, चिंतित और शंकित रहा करती हैं। गांव के छोकरों के साथ ही उसका खेल होता है; क्योंकि समवयस्क लड़कियों के प्रति उसकी अवज्ञा की सीमा नहीं। बालकों के राज्य में यह लड़की एक प्रकार से शत्रु-पक्ष की सेना के उपद्रव के समान-सी प्रतीत होती है।

पिता की लाड़ली बिटिया ठहरी और इसीलिए वह इतनी निर्भय रहती है। वास्तव में इस विषय मृगमयी की मां अपनी सहेलियों के आगे हर समय अपने पति के विरुद्ध फरियाद किया ही करती, मगर फिर भी यह सोचकर कि पिता बेटी को लाड़ करते हैं और जब ये अवकाश के समय घर रहते हैं तो मृगमयी के नेत्रों के अश्रु उनके हृदय-पटल पर बहुत ही आघात पहुंचाते हैं, वे प्रवासी पति का स्मरण करके लड़की को किसी भी तरह पीड़ा नहीं पहुंचा सकती?

मृगमयी का रंग देखने में अधिक साफ नहीं है। छोटे-छोटे घुंघराले केश पीठ पर आच्छादित रहते हैं। चेहरे पर बिल्कुल बचपना छाया रहता है। बड़ी-बड़ी कजरारी आंखों में न तो लज्जा है, न भय और न हाव-भाव में किसी प्रकार का संशय? वह लंबी, परिपुष्ट, स्वस्थ और सबल है। उसकी आयु अधिक है या कम, यह प्रश्न किसी के मन में उठता ही नहीं। यदि उठता तो ग्रामीण पड़ोसी इस बात पर मां-बाप की निंदा करते कि अभी तक यह कुंवारी ही फिर रही है।

जब कभी गांव के विदेशी जमींदार की नौका आकर घाट पर लगती है, तो उस दिन ग्रामीणवासी, उनकी आवभगत में घबरा से जाते हैं, गृहणियों की मुख-रंग-भूमि पर अकस्मात नाक के नीचे तक अवगुंठन खिंच जाता है; परंतु मृगमयी न जाने कहां के किसी के वस्त्रों से हीन बच्चे को उठाए हुए घुंघराले केशों को पीठ पर बिखेरे जा खड़ी होती है। जिस देश में कोई शिकारी नहीं,

कोई मुसीबत नहीं, उस देश की मृगी शावक की तरह निडर खड़ी हुई आश्चर्यचकित-सी देखा करती और अंत में बाल-संगियों के पास जाकर इस नए मानव के आचार-व्यवहार के विषय में विस्तार के साथ भूमिका बांधती।

हमारे अपूर्वकुमार ने अवकाश के दिनों में घर आकर इससे पहले और भी दो-चार बार इस सीमाहीन नवयौवना को देखा है और फालतू समय में, यहां तक कि काम के समय में भी इसके विषय में विचार किया है। इस धरा पर बहुत से चेहरे देखने में आते हैं; पर कोई-कोई चेहरा ऐसा होता है कि न कुछ कहना न सुनना, चट से मन के भीतर जाकर ऐसा बस जाता है कि उसे निकालना मुश्किल हो जाता है। केवल सौंदर्य के कारण ही ऐसा होता है। सो बात नहीं, वह तो कुछ और ही है, संभवत: वह है स्वच्छता।

अधिकांश चेहरों पर मानव प्रकृति पूरी तौर से अपनी ज्योति से नहीं जगमगा पाती; जिस चेहरे पर हृदय के कोने में छिपा हुआ वह रहस्यमय व्यक्ति बिना रुकावट के बाहर निकलकर दिखाई देता है, वह चेहरा सैकड़ों-हजारों में छिपता नहीं; पल-भर में हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है। इस लड़की के चेहरे पर, आंखों पर एक चंचल और उद्दंड नारी प्रकृति सदैव स्वच्छंद और वन के दौड़ते हुए हिरन की तरह दिखाई देती रहती है, भागती-फिरती रहती है और इसलिए ऐसे सलोने चंचल मुख को एक बार देख लेने पर फिर सहज में वह भुलाए नहीं भूला।

पाठकगण को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मृगमयी की कौतुहलता से भरी हास्य-ध्वनि चाहे कितनी ही मृदु क्यों न हो, लेकिन अभागे अपूर्व के लिए वह तनिक कछ दुखदायी ही साबित हुई? मारे लज्जा के उसका चेहरा सुर्ख हो उठा और हाथ का सूटकेस झट-पट नाविक के हाथ में सौंपकर वह शीघ्रता से अपने घर की ओर चल दिया।

नदी का किनारा, वृक्षों की छाया, पक्षियों का मृदु कलरव, प्रभाव की मीठी-मीठी धूप और बीस वर्ष की अवस्था। कतिपय ईंटों का ढेर ऐसा कुछ खास उल्लेख योग्य नहीं; पर उस पर जो मानवी बैठी थी, उसने उस शुष्क और नीरस आसन पर भी एक प्रकार का मूक सौंदर्य का भाव फैला रखा था। छि:! छि:! ऐसे दृश्य के मध्य में प्रथम पग उठाते ही, जिसका सारा का सारा व्यक्तित्व प्रहसन में परिवर्तित हो जाए तो उसके भाग्य की इससे बढ़कर निष्ठुरता और क्या हो सकती है?

2

ईंटों के ढेर से बहती हुई हंसी की तरंग सुनते-सुनते वृक्षों की छाया के नीचे दलदल में सनी निम्न दुकुल सूटकेस लिये हुए श्रीयुत अपूर्वजी किसी तरह अपने घर पहुंचे ?

अकस्मात ही बेटे के पहुंच जाने से विधवा मां मारे उल्लास के फूली न समाई। उसी समय खोया, दही, दूध और बढ़िया मछली की तलाश में दूर-पास सब स्थानों पर आदमी दौड़ाए गए और पास-पड़ोस में भी एक प्रकार की हलचल-सी पैदा हो गई।

भोजन की समाप्ति पर मां ने बेटे के आगे ब्याह का प्रस्ताव छेड़ा। अपूर्व इसके लिए तैयार था ही। कारण यह प्रस्ताव बहुत पहले से ही पेश था, केवल अपूर्व तनिक कुछ नई रोशनी के चक्कर में आकर हठ कर बैठा था कि बी.ए. पास किए बिना विवाह हर्गिज नहीं कर सकता इत्यादि। अब तक उसकी मां उसके पास होने की ही राह देख रही थी; सो अब किसी प्रकार की आपत्ति उठाने के मायने हैं कि झूठी बहानेबाजी। अपूर्व ने कहा, "पहले लड़की तो देखो, फिर देखा जाएगा।"

मां ने उत्तर दिया, "लड़की-वड़की सब देखी जा चुकी है, उसके लिए तुझे फिक्र करने की जरूरत नहीं।"

किंतु अपूर्व उसके लिए स्वयं ही फिक्र करने के लिए उद्यत हो गया, बोला, "लड़की बिना देखे मैं विवाह नहीं कर सकता।"

मां सोच में पड़ गई। ऐसी अनोखी बात तो आज तक नहीं सुनी थी। फिर भी वह राजी हो गई।

रात को अपूर्व दीपक बुझाकर बिस्तर पर जा पड़ा। पड़ते ही बरसात यामिनी की सारी-की-सारी स्वर लहरी और पूर्व निस्तब्धता के उस पार से उसकी सेज पर एक उच्छ्वसित उच्च मृदु कंठ की हास-ध्वनि आ-आकर उसके कानों में झंकरित होने लगी। उसका अशांत मन स्वयं को बार-बार निरंतर यह कह-कहकर व्यथित करने लगा कि सवेरे वह जो पैर फिसलकर गिर पड़ा था उसका किसी-न-किसी युक्ति से सुधार कर लेना ही चाहिए? उस नवयौवना को यह मालूम ही नहीं कि मैं अपूर्वकुमार हूं, अचानक फिसलन पर पांव पड़ जाने से दलदल में गिर जाने पर भी मैं कोई उपेक्षणीय गांव का वासी नहीं।

अगले दिन अपूर्व को लड़की देखने जाना था। अधिक दूर नहीं, पड़ोस ही

लड़की वालों का घर है। तनिक कुछ कोशिश करने के बाद ही कपड़े बदन पर डाले। निम्न दुकुल (धोती) और दुपट्टा जोड़कर रेशमी अचकन, सिर पर अमीरी रंग की गोल पगड़ी और पैरों में बढ़िया चमकते हुए जूते पहनकर, रेशमी कपड़े की बढ़िया छतरी हाथ में लटकाए वह सवेरे ही चल दिया।

भावी सुसराल में घुसते ही वहां कोलाहल-सा मच गया। अंत में यथा समय कंपित हृदय को झाड़-पोंछकर, रंग-वंग कर, जूड़े में गोटे आदि लगाकर, एक पतली रंगीन साड़ी में लपेटकर उसे भावी पति के सामने लाया गया। आगंतुका एक कोने में लगभग घुटनों तक माथा झुकाए चुपचाप जड़-वस्तु सी बैठी रही और उसके पीछे धैर्य बंधाए रखने के लिए खड़ी एक अधेड़ अवस्था की दासी। उसका एक भाई, जोकि अभी बच्चा ही था, अपने परिवार में अनधिकार प्रवेश करने वाले इस नए व्यक्ति की पगड़ी, घड़ी की चैन और उठती हुई मूंछों की ओर बड़े ध्यान से टकटकी लगाए देखने लगा। अपूर्व ने कुछ देर मूंछों पर हाथ फेरने के बाद अंत में गंभीरता के साथ पूछा, "तुम क्या पढ़ती हो?"

आभूषणों के भार से दबी हुई लज्जा की गठरी में से उसे अपने प्रश्न का कोई भी उत्तर नहीं मिला। दो-चार बार पूछे जाने और अधेड़ दासी द्वारा पीठ पर बारंबार धैर्य की थपकियां पड़ने के बाद लड़की ने बहुत ही धीमे स्वर में शीघ्रता के साथ एक ही सांस में कहकर छुट्टी पा ली, "कन्या बोधिनी दूसरा भाग, व्याकरण सार, भूगोल, अंकगणित और भारत का इतिहास।"

इतने में बाहर किसी की तेज चलने की 'धम-धम' की आवाज सुनाई दी और दूसरे ही क्षण दौड़ती-हांफती और पीठ पर केशों को हिलाती हुई मृगमयी वहां पर आ धमकी। उसने अपूर्व की ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं, सीधी उस भावी वधू के भाई राखाल के पास पहुंची और उसके कोमल हाथ को पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। राखाल उस समय भावी वधू को देखने में लीन था; वहां से वह किसी भी तरह टस से मस नहीं हुआ? दासी अपने संयत कंठ की मृदुता की भरसक रक्षा करती हुई यथासाध्य तीव्रता के साथ मृगमयी को धिक्कारने लगी। अपूर्व अपनी सारी-की-सारी मौनता और यश को एकत्रित करके पगड़ी बंधे माथे को ऊंचा करके बैठा रहा और उदर के पास लटकती हुई घड़ी की चैन को हिलाने लगा।

अंत में मृगमयी ने जब देखा कि उसका साथी किसी भी तरह विचलित

नहीं हो रहा, तब उसने उसकी कमर पर जोर का मुक्का जमा दिया और लगे हाथों भावी वधू के माथे का अवगुंठन उघाड़कर वह आंधी के वेग के समान जिस प्रकार आई थी, उसी प्रकार भाग गई। दासी मन मारकर रह गई और भीतर-ही-भीतर घुमड़कर गरजने लगी। राखाल अचानक अवगुंठन के हट जाने से एकाएक खिलखिला पड़ा। इस खुशी में कमर पर पड़े मुक्के की चोट को भी उसने महसूस नहीं किया कारण, ऐसा लेन-देन अक्सर हुआ ही करता था, इससे किसी प्रकार की आज नवीनता नहीं थी। इसके लिए एक दृष्टांत ही बहुत है।

एक दिन की बात है, मृगमयी के केश तब पीठ तक बढ़े थे; राखाल ने अचानक पीछे से आकर कैंची से उसके बाल काट दिए; इस पर मृगमयी को बहुत क्रोध आया और उसने चट से राखाल के हाथ से कैंची छीनकर अपने शेष केश बड़ी निर्दयता से कतर-कतरकर उसके मुंह पर दे मारे। मृगमयी के घुंघराले केशों के गुच्छे डाली से गिरे हुए काले अंगूरों के गुच्छों की तरह धरा पर गिर पड़े। इन दोनों में शुरू से ही इस प्रकार की प्रणाली प्रचलित थी।

इसके बाद वह शांत सभा अधिक देर तक न चल सकी। गठरी-सी बनी भावी वधू अपने को बड़ी कठिनता से लंबी बनाकर दासी के साथ घर के भीतर चली गई। अपूर्व अपनी मूंछों पर हाथ फेरता हुआ उठ खड़ा हुआ। बाहर जाकर देखा कि उसके बढ़िया नए जूते वहां से गायब हैं। बहुत प्रयत्न करने पर भी इस बात का पता नहीं लगा कि जूते कौन ले गया और कहां गए?

घर वाले सभी बड़े परेशान से हुए और अपराधी के नाम पर अपशब्दों की बौछार होने लगी। जब किसी प्रकार भी जूतों का पता नहीं लगा, तो अंत में विवश होकर घर के मालिक की फटी-पुरानी ढीली चट्टी पहनकर पतलून पगड़ी से सुसज्जित अपूर्व गांव के कीचड़ वाले रास्ते को बहुत सावधानी के साथ पार करता हुआ घर की ओर चल दिया।

तालाब के किनारे सुनसान पथ पर पहुंचते ही सहसा फिर उसे वही जोर का परिहासात्मक स्वर सुनाई दिया। मानो वृक्ष और पल्लवों की ओट में से कौतुकप्रिया बन देवी ही अपूर्व की उन पुरानी चट्टियों को देखकर एकाएक हंस पड़ी हो।

अपूर्व कुछ लज्जित-सा होकर ठिठक गया और इधर-उधर दृष्टि फेंककर देखने लगा। इतने में सघन झाड़ियों में से निकलकर किसी निर्लज्ज अपराधिनी

ने उसके सामने नए जूते रख दिए और चट से बाहर जाने के लिए उद्यत हुई कि अपूर्व ने उसके दोनों हाथ पकड़कर अपनी कैद में ले लिया?

मृगमयी ने यथा-शक्ति टेढ़ी-तिरछी होकर पूरी शक्ति का प्रयोग करके भागने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन सब व्यर्थ। घुंघराले केशों से घिरे हुए उसके गोल-चेहरे पर सूर्य की किरणें, वृक्षों की डालियों और पल्लवों में छन-छनकर पड़ने लगीं। कौतूहलता से वशीभूत होकर कोई पथिक, जिस प्रकार दिवाकर की किरणों से चमकती हुई स्वच्छ चंचल निर्झरणी की ओर झुककर टकटकी लगाए उसकी तली को देखता रहता है, ठीक उसी तरह अपूर्व ने मृगमयी के ऊपर उठे चेहरे पर तनिक झुककर उसकी खंजन-सी चंचल आंखों के भीतर गहरी दृष्टि फेंककर देखा और फिर बहुत धीमे से उसे अपनी मुट्ठियों के बंधन से मुक्त कर दिया। अपूर्व क्रोधित मुद्रा में मृगमयी को पकड़कर मारना—सजा का वह कुछ अर्थ ही न समझ सकी।

नर्त्तन करती हुई प्रकृति नटी के नूपुरों की झंकार की भांति फिर वही हास्य-ध्वनि उस नीरव पथ में गूंज उठी और चिंतातुर अपूर्व धीरे-धीरे पग उठाता हुआ घर की ओर चल दिया।

3

अपूर्व उस दिन अनेक प्रकार के बहाने बना-बनाकर न तो घर के अंदर गया और न मां से भेंट की। किसी के यहां भोज का निमंत्रण था; वहीं खा आया। अपूर्व जैसा पढ़ा-लिखा और भावुक नवयुवक एक मामूली पढ़ी-लिखी लड़की के मुकाबले अपने छिपे हुए गौरव का बखान करने और उसे आंतरिक महत्ता का पूर्व परिचय देने के लिए क्यों इतना आतुर हो उठा; यह समझना बहुत कठिन है? एक निरी गांव की चंचल बाला ने उसे मामूली नवयुवक समझ ही लिया, तो क्या हो गया? और उसने पल भर के लिए अपूर्व का परिहास करके और फिर उसके अस्तित्व को किसी ताक पर रखकर, राखाल नाम के अबोध बच्चे के साथ खेलने के लिए इच्छा प्रकट की, तो उसमें अपूर्व का बिगड़ा ही क्या गया?

इन बच्चों के सामने उसे प्रमाणित करने की आवश्यकता ही क्या है कि वह विश्वदीप मासिक पत्र में पुस्तकों की समालोचना लिखा करता है और उसने सूटकेस में एसंस, जूते, रूबिनी के कैंफर, पत्र लिखने के रंगीन कागज

और हारमोनियम शिक्षा, पुस्तक के साथ एक पूरी लिखी हुई प्रेस कॉपी, यामिनी के गर्भ में भावी उषा की तरह, प्रज्वलित होने की राह देख रही है; पर मन को समझाना कठिन है, कम-से-कम इस देहाती चंचल लड़की के सामने श्री अपूर्वकुमार बी.ए. हार मानने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नहीं।

संध्या को अपूर्व जब घर के भीतर पहुंचा, तो उसकी मां ने पूछा, "क्यों रे, लड़की देख आया? कैसी है, पसंद है न?'

अपूर्व ने कुछ लजाते हुए उत्तर दिया, "हां, देख तो आया मां, उनमें से मुझे एक ही लड़की पसंद है।"

मां ने तनिक कुछ आश्चर्यचकित स्वर में पूछा, "तूने कितनी लड़कियां देखी थीं वहां?"

अंत में दो-चार प्रश्नोत्तर के बाद मां को मालूम हुआ कि उसके लड़के ने पड़ोसिन शारदा की लड़की मृगमयी पसंद की है। इतना पढ़-लिखकर भी यह पसंद।

परिणाम यह निकला कि कमबख्त अड़ियल टट्टू की तरह गर्दन टेढ़ी करके, कुछ पीछे को उठकर कह बैठी, "मैं ब्याह नहीं करूंगी, जाओ।"

4

इस पर भी उसे ब्याह करना ही पड़ा।

उसके बाद अध्ययन शुरू हुआ। अपूर्व की मां के घर जाकर एक ही रात में मृगमयी की अपनी सारी दुनिया ने बेड़ियां पहन लीं।

सास ने वधू का सुधार करना आरंभ कर दिया। बहुत ही कठोर मुद्रा बनाकर उससे बोली, "देखो बेटी, अब तुम नन्ही बच्ची नहीं रहीं...हमारे घर में ऐसी बेहाई नहीं चल सकेगी।"

सास ने यह बात जिस भाव से कही, मृगमयी ठीक उसे उसी रूप में न समझ सकी। उसने विचारा कि इस घर में यदि न चले, तो शायद कहीं दूसरी जगह जाना पड़ेगा। मध्याह्न के बाद वह घर में नहीं दिखाई दी। 'कहां गई? कहां गई?' शोर मच गया। ढूंढ़ शुरू हुई। अंत में विश्वासघातक राखाल ने उसके गुप्त स्थान का पता बताकर, उसे कैद करवा ही दिया। वह बड़-वृक्ष के नीचे श्री राधाकांतजी के टूटे रथ में जाकर छिप गई थी।

सब ही के सामने मां ने और पास-पड़ोस की गृह-स्त्रियों ने उसे कितना

डांटा-फटकारा और लज्जित किया, इसकी कल्पना स्वयं आप ही बना लें तो अच्छा हो ?

रात्रि को खूब घनघोर घटाएं छा गईं और रिमझिम-रिमझिम मेह बरसने लगा। अपूर्व ने धीरे-से मृगमयी के पास शैया पर जाकर उसके कान में धीमे स्वर में कहा, "मृगमयी, क्या तुम मुझे प्यार नहीं करतीं ?"

मृगमयी ने तत्काल ही कड़क उत्तर दिया, "नहीं, मैं तुम्हारे से हर्गिज प्यार नहीं कर सकती।" मानो उसने सारी गुस्से की पोटली अपूर्व के माथे पर दे मारी।

अपूर्व ने खिन्न स्वर में पूछा, "क्यों, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?" इस दोष की संतोषजनक कैफियत देना तो कठिन है। अपूर्व ने मन-ही-मन कहा, 'इस विद्रोह-मन को जैसे भी बने वश में करना ही होगा।'

अगले रोज सास ने मृगमयी में विद्रोह भाव के सब लक्षण देखकर उसे अंदर के कोठे में बंद कर दिया। पिंजड़े में फंसी नई चिड़िया की तरह पहले तो वह कोठे के अंदर फड़फड़ाती रही। अंत में जब कहीं से भी भागने का कोई मार्ग दिखाई न दिया तो हताश, क्रोध से उन्मत्त हो बिछौने की चादर की दांत से धज्जियां उड़ा दीं और धरा पर औंधी गिर पड़ी और मन-ही-मन पिता की याद करके रोने-चिल्लाने लगी।

ठीक इस समय धीरे-से कोई उसके समीप जाकर बैठ गया। बड़े स्नेह से उसके धूल-धूसरित केशों को कपोलों पर से एक ओर हटा देने का प्रयत्न करने लगा। मृगमयी ने बड़े जोर से अपना सिर हिलाकर उसका हाथ हटा दिया। अपूर्व ने उसके कानों के पास अपना मुंह ले जाकर बहुत ही कोमल स्वर में कहा, "मैंने चुपके से द्वार खोल दिया है, चलो, अपने पीछे के बगीचे में चलते हैं।"

मृगमयी ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं।"

अपूर्व ने उसकी ठोड़ी पकड़कर उसका मुंह ऊपर को उठाना चाहा और बोला, "एक बार देखो तो सही कौन आया है ?" राखाल धरा पर औंधी लेटी हुई मृगमयी को घूरता हुआ हतबुद्धि ही द्वार पर खड़ा था। मृगमयी ने बिना मुंह उठाए ही अपूर्व का हाथ झटककर अलग कर दिया। अपूर्व ने कहा, "देखो राखाल तुम्हारे साथ खेलने आया है; इसके साथ खेलने नहीं जाओगी।"

उसने कुपित स्वर में कहा, "नहीं।"

राखाल ने भी देखा कि मामला कुछ संगीन है। वह किसी प्रकार वहां से

निकल, जान बचाकर भाग गया? अपूर्व चुपचाप बैठा रहा। अब मृगमयी अश्रु बहाकर सो गई, तब वह चुपके से उठा और द्वार की सांकल चढ़ा दबे पांव वहां से चल दिया।

इसके अगले ही रोज मृगमयी को पिता की एक चिट्ठी मिली। उसमें उन्होंने प्राणप्यारी बेटी मृगमयी के ब्याह में न आने के कारण विलाप करके अंत में नव दंपति को शुभ आशीष दिया था।

मृगमयी ने सास मां के पास जाकर कहा, "मैं पिताजी के पास जाऊंगी।" सास मां ने अनायास ही वधू की इस असंभव प्रार्थना को सुनकर उसे फटकार दिया, बोली, "पिता का कहीं ठौर-ठिकाना भी है कि ऐसे ही पिताजी के पास जाएगी। तेरा तो हर काम दुनिया से निराला ही है। लाड़ मुझे पसंद नहीं।"

वधू ने कोई उत्तर नहीं दिया? अपने कमरे में जाकर उसने भीतर से द्वार बंद कर लिया और बिल्कुल निराश मानव, जिस प्रकार देवी-देवताओं से प्रार्थना करता है, उस तरह वह कहने लगी, "पिताजी, तुम मुझे ले जाओ यहां से। यहां मेरा कोई नहीं है? मैं यहां जीवित न रह सकूंगी।"

अधिक रात चले जाने पर, जब उसके पति निद्रा में खो गए तब वह चुपके से द्वार खोलकर बाहर चल दी। वास्तव में बीच-बीच में मेघों की गर्जन सुनाई देती थी, फिर भी बिजली की रोशनी में रास्ता दिखाई देने लायक काफी रोशनी थी। पिताजी के पास जाने के लिए कौन से रास्ते को पकड़ना चाहिए, मृगमयी को कुछ भी पता न था। उसे तो केवल इतना ही विश्वास था कि जिस रास्ते में पत्रवाहक डाक लेकर जाते हैं, उसी मार्ग से दुनिया के किसी भी ठिकाने पर पहुंचा जा सकता है? मृगमयी भी उसी रास्ते पर चलती रही। चलते-चलते उसके शरीर का चूरा हो गया, रात्रि का लगभग अंतिम पहर भी खत्म हो चला। सुनसान वन में, जबकि दो-चार पक्षी पंख हिला-हिलाकर अनिश्चित स्वर में बोलना चाहते थे और समय का पूर्ण निर्णय न कर सकने के कारण दुविधा में फंस चुप रह जाते थे, उस समय मृगमयी सड़क के किनारे नदी के तट पर के बाजार में पहुंची। इसके बाद, वह विचार कर रही थी कि अब किस और चलना चाहिए, इतने में उसे परिचित 'झमझम' शब्द सुनाई दिया? थोड़ी देर में कंधे पर चिट्ठियों का थैला लटकाए हांफता हुआ पत्रवाहक 'खट' आ पहुंचा। मृगमयी जल्दी से उसके पास जाकर करुण स्वर में बोली,

" 'कुशीगंज' में पिताजी के पास जाऊंगी, तुम मुझे साथ ले चलो न।"

उसने उत्तर दिया, "कुशीगंज कहां है, इसका मुझे नहीं मालूम।" छोटा-

सा उत्तर देकर वह घाट पर जा पहुंचा और घाट पर बंधी हुई डाक की नौका में बैठकर नाविक को जगाकर नौका खुलवा दी। उस समय उसे किसी पर दया करने या पूछ-ताछ करने की फुर्सत नहीं थी।

देखते-देखते बाजार और घाट सजग हो गए। मृगमयी ने घाट पर पहुंचकर एक नाविक से कहा, "मुझे कुशीगंज पहुंचा सकोगे।"

उस नाविक के उत्तर देने से पहले ही, बगल की नौका पर से कोई बोल उठा, "अरे कौन है ? मृगी बिटिया, तू यहां कैसे आई ?"

मृगमयी ने व्यग्रता से उत्तर दिया, "बनमाली ! मैं पिताजी के पास कुशीगंज जाऊंगी, तू अपनी नौका पर मुझे ले चल।"

बनमाली उसके गांव का ही नाविक था। वह उस उच्छृंखल मानवी को भली-भांति पहचानता था। उसने पूछा, "बाबूजी के पास जाएगी बिटिया ! बड़ी अच्छी बात है। चल मैं तुझे पहुंचा दूं।"

मृगमयी नौका पर जा बैठी।

नाविक ने नौका छोड़ दी। मेघों ने अश्रु बहाना शुरू कर दिया। सावन-भादों के समान पूरी चढ़ी हुई नदी के थपेड़े नौका को जोर से हिलाने लगे। मृगमयी का सारा शरीर थकावट और नींद के मारे टूटने-सा लगा, आंखें नींद से बोझिल हो गईं और वह आंचल बिछाकर लेट रही और लेटते ही वह चंचल नवयौवना नदी के हिंडोले में प्रकृति की स्नेह-छाया में पालित शिशु की तरह बेधड़क सो गई।

आंख खुली, तो देखा कि वह अपनी ससुराल में पड़ी सो रही है। उसे जगते देख, महरी बड़बड़ाने लगी। उसका बड़बड़ाना सुनकर सास मां भी आ पहुंचीं और जो मन में आया वह कहा। मृगमयी आंखें फाड़-फाड़कर शांत हो उनके मुख की ओर देखती रही। अंत में सास मां ने भी जब उसके पिता की शिक्षा पर व्यंग्य करना शुरू कर दिया तब मृगमयी ने जल्दी से उठ, बगल की कोठरी में घुसकर अंदर से द्वार बंद कर लिया।

अपूर्व ने लाज को बिल्कुल ही ताक पर रखकर मां से कहा, "मां ! वधू को दो-चार दिन के लिए उसके घर ही भेज देने में कोई हर्ज की बात नहीं ?"

मां ने अपूर्व को बुरी तरह आड़े हाथों लिया, बोली, "नपूते ! दुनिया में इतनी लड़कियां होते हुए भी न जाने, कहां से छांट-छांट के ऐसी हड़जाल को मेरी छाती पर डाल दिया।"

इस प्रकार के कटु शब्द अपूर्व को निर्दोष होते हुए भी सुनने पड़े।

5

उस रोज सारे दिन घर के बाहर बूंदा-बांदी और अंदर अश्रु की वर्षा होती रही।

अगले रोज अर्धरात्रि को अपूर्व ने मृगमयी को धीरे-से जाकर पूछा, "मृगमयी, क्या तुम अपने पिताजी के पास जाना चाहती हो?"

मृगमयी ने चौंककर जल्दी से अपूर्व का हाथ पकड़कर कृतज्ञ कंठ से उत्तर दिया, "हां।"

तब अपूर्व ने चुपके से कहा, "तो चलो, हम दोनों चोरी-चोरी भाग चलें। मैंने घाट पर नौका प्रबंध कर रखा है।"

मृगमयी ने इस बार कृतज्ञ दृष्टि से अपूर्व की ओर देखा और उसके बाद तत्काल ही उठ, कपड़े बदल, चलने के लिए उद्यत हो गई। अपूर्व ने मां को किसी प्रकार की फिक्र न हो, इसलिए एक पत्र लिखकर रख दिया और रात्रि के नीरव पहर में घर से निकल पड़े।

मृगमयी ने उस नीरव और शांत अंधेरी में पहली ही बार अपने मन से पूर्ण अवस्था एवं विश्वास के साथ पति का हाथ पकड़ा; उसके अपने ही हृदय का उद्वेग उसे स्पर्श मात्र से अपूर्व की नसों में भी संचारित होने लगा।

नौका उसी रात्रि के नीरव पहर में वहां से चल दी। अकस्मात् खुशी के होते हुए भी मृगमयी को बहुत जल्दी ही नींद ने आ दबाया। अगले रोज आनंद-ही-आनंद था। दोनों ओर कितने ही बाजार, खेत और जंगल दिखाई दे रहे थे। इधर-उधर कितनी ही नौकाएं आ-जा रही थीं। मृगमयी उन्हें देखकर पूछने लगी, "उस नौका पर क्या है? ये लोग कहां से आ रहे हैं, इस स्थान को क्या कहते हैं?" ये सवाल ऐसे पेचीदा थे जो अपूर्व ने कभी कॉलिज की किताबों में कहीं नहीं पढ़े थे और उसके कलकत्ता जैसी महानगरी के तजुर्बे के बाहर थे। फिर भी उसके मन को संतुष्ट करने के लिए जो भी उत्तर दिए थे, वे सब मृगमयी को बहुत अच्छे लगे थे।

दूसरी संध्या को नौका कुशीगंज के घाट पर जा लगी। पास में ही टीन के एक छोटे से झोंपड़े में मैली-सी धोती बांधे, कांच की भद्दी लालटेन जला, छोटे से डेस्क पर एक चमड़े की जिल्द वाला बड़ा-सा रजिस्टर रखकर, नंगे बदन, स्टूल पर बैठे, ईशानचंद्र कुछ लिख-पढ़ रहे थे। इसी समय इस नव दंपति ने

झोंपड़े में प्रवेश किया। मृगमयी ने पुकारा, "पिताजी!" उस झोंपड़ी में आज तक ऐसी मृदु ध्वनि इस प्रकार से पहले और कभी नहीं सुनाई दी थी।

ईशान के नेत्रों से 'टप-टप' आंसू गिरने लगे। उस समय वे निश्चय न कर सके कि उन्हें क्या करना चाहिए। उनकी बिटिया और दामाद मानो साम्राज्य के युवराज और युवराज्ञी हैं। यहां पटसन के ढेर के बीज में उनके बैठने लायक स्थान कैसे बनाया जा सकता है? इसी के निर्णय हेतु उनकी भटकती हुई बुद्धि और भी भटक गई और खाने-पीने का प्रबंध? यह भी दूसरी चिंता की बात थी। निर्धन बाबू अपने हाथ से दालभात पकाकर किसी प्रकार पेट भर लेता है, पर आज इस खुशी के अवसर पर क्या खिलाए और क्या करे?

मृगमयी पिता को असमंजस में देखकर फौरन बोली, "पिताजी, आज हम सब मिलकर रसोई तैयार करेंगे।"

अपूर्व ने इस नवीन प्रस्ताव पर उत्साह प्रगट किया। उस छोटी-सी झोंपड़ी में स्थान की कमी, आदमी की कमी और अन्न की बहुत कमी थी। लेकिन छोटे से छिद्र में से जिस प्रकार फौव्वारा चौगुने वेग से छूटता है, उसी प्रकार निर्धनता के सूक्ष्म सुराख से खुशी का फौव्वारा तीव्रता से छूटने लगा।

इसी प्रकार तीन दिन बीत गए। दोनों समय नियमित रूप से स्टीमर आता, यात्रियों का आना-जाना और शोरगुल सुनाई देता था, लेकिन संध्या के समय नदी का तट बिल्कुल सुनसान हो जाता था तब अपूर्व एक अनोखी स्वतंत्रता का अनुभव किया करता था। तीनों मिलकर रसोई तैयार किया करते थे। उसके बाद नई-नई चूड़ियों से भरे हाथों से उसका परोसा जाना, श्वसुर और जामाता का सम्मिलित रूप से भोजन करना और नई गृहिणी के भोजन की त्रुटियों पर परिहास किया जाना, इस पर मृगमयी का अभिमान करना, इन सब बातों से सबका मन पुलकित हो उठता था।

अंत में अपूर्व ने कहा कि अधिक दिन ठहरना उचित नहीं। मृगमयी ने कुछ और दिन ठहरने की प्रार्थना की। लेकिन ईशान बाबू ने कहा, "नहीं, अब नहीं।"

विदा बेला पर बिटिया को छाती से लगा, उसके माथे पर स्नेहसिंचित हाथ को रखकर अश्रुमिश्रित स्वर में ईशानचंद्र ने कहा, "बिटिया, तू अपनी ससुराल में ज्योति जगाना, लक्ष्मी बनकर रहना...जिससे मेरी भी नू में कोई दोष न निकाल सके।"

मृगमयी अश्रु बहाती हुई अपने पति के साथ विदा हो गई और ईशान बाबू अपनी उसी झोंपड़ी में लौटकर उसी पुराने नियम के अनुसार माल तोलकर दिन पर दिन और मास पर मास बिताने लगे।

6

दोनों अपराधियों की युगल जोड़ी अब घर पहुंची तो मां गंभीर बनी रही, किसी से कुछ बात नहीं की ? मां की ओर से किसी के व्यवहार में कोई दोष ही प्रदर्शित नहीं किया गया कि जिसकी सफाई के लिए दोनों में से कोई कुछ प्रयत्न करता ? इस शांत अभियोग ने, इस मूक अभियान ने, पर्वत की तरह सारी घर-गृहस्थी को अटल होकर दबा रखा।

जब यह सहन शक्ति से बाहर की बात हो गई तो अपूर्व ने कहा, "मां, कॉलेज खुल गया है, अब मुझे कानून पढ़ने जाना है।" मां ने कुछ उदासीनता प्रकट करते हुए कहा, "बहू का क्या करोगे ?" अपूर्व ने कहा, "यहीं रहेगी।"

मां ने उत्तर दिया, "ना बेटा, यहां पर उसकी जरूरत नहीं। उसे तुम अपने साथ ही लेते जाओ।"

अपूर्व ने अभिमान पीड़ित स्वर में कहा, "जैसी इच्छा।"

कलकत्ता लौटने की तैयारी मां करने लगी। लौटने के एक दिन पहले रात को अपूर्व जब अपने कमरें में विश्राम के लिए गया, तो देखा कि मृगमयी शैया पर पड़ी रो रही है।

अनयास ही उसके हृदय को चोट पहुंची। व्यक्ति स्वर में बोला, "मृगमयी ! मेरे साथ महानगरी चलने को मन नहीं चाहता क्या ?"

मृगमयी ने उत्तर दिया, "नहीं।"

अपूर्व ने पुनः पूछा, "क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करतीं ?"

इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर न मिला। विशेषतया इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल हुआ करता है; किंतु कभी-कभी इसके अंदर मन:स्तर की इतनी जटिलता होती है कि कन्या से ठीक वैसे उत्तर की आशा नहीं की जा सकती।

अपूर्व ने प्रश्न किया, "राखाल को छोड़कर यहां से चलने की इच्छा नहीं होती है क्या ?"

मृगमयी ने बड़ी सुगमता से उत्तर दिया, "हां।"

इसे सुनकर बी.ए. पास अपूर्व के हृदय में सुई के बराबर बालक राखाल की ओर से ईर्ष्या का अंकुर उठ खड़ा हुआ। बोला, "बहुत दिनों तक गांव नहीं लौट सकूंगा। शायद दो-ढाई साल या इससे भी अधिक समय लग जाए।"

इसके विषय में कुछ न कहकर मृगमयी बोली, "वापस आते समय राखाल के लिए एक बढ़िया-सा राजस का चाकू लेते आना।"

अपूर्व लेटे हुए था; तनिक उठकर बोला, "तो तुम यहीं रहोगी।"

मृगमयी ने उत्तर दिया, "हां, अपनी मां के पास जाकर रहूंगी।"

अपूर्व ने ठंडी-सी उच्छ्वास छोड़ी, बोला, "अच्छा, वहीं रहना। अब जब तक बुलाने की चिट्ठी नहीं लिखोगी, मैं नहीं आऊंगा। अब तो खुश हो न।"

मृगमयी ने इस प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ समझा और सोने लगी; किंतु अपूर्व को नींद नहीं आई, तकिया ऊंचा किए उसके सहारे बैठा रहा।

रात्रि के अंतिम पहर में सहसा चंद्रमा दिखाई दिया और उसकी चांदनी बिस्तर पर आकर फैल गई। अपूर्व ने उस रोशनी में मृगमयी के चेहरे की ओर देखा। देखते-देखते उसे ऐसा महसूस हुआ कि रूप कथा की शहजादी को किसी ने चांदी की छड़ी छुआकर अचेत कर दिया हो। एक बार फिर सोने की छड़ी छुआते ही इस सोती हुई आत्मा को जगाकर उससे बदली की जा सकती है। चांदी की छड़ी परिहास है और सोने की छड़ी कुंदन।

भोर से पहले ही अपूर्व ने मृगमयी को जगा दिया, बोला, "मृगमयी, मेरे चलने का समय आ गया है। चलो, मैं तुम्हारी मां के पास छोड़ आऊं।"

मृगमयी बिस्तर से उठकर चलने के लिए तैयार हो गई। अपूर्व ने उसके दोनों हाथों को हाथों में लेकर कहा, "अब एक विनती और है, मैंने कितने ही अवसरों पर तुम्हारी सहायता की है, आज परदेश जाते समय तुम मुझे उसका इनाम दे सकोगी।"

मृगमयी ने आश्चर्य के साथ पूछा, "क्या?"

अपूर्व ने कहा, "स्वेच्छा से केवल एक चुंबन दे दो।"

अपूर्व की इस अनोखी विनती और शांत चेहरे को देखकर मृगमयी हंसने लग गई, और फिर बड़ी कठिनाई से हंसी को रोककर वह चुंबन देने के लिए आगे बढ़ी। अपूर्व के मुंह के पास मुंह ले जाकर उससे न रहा गया, खिलखिलाकर हंस पड़ी। इस प्रकार दो बार किया और अंत में शांत होकर आंचल से मुंह ढंककर हंसने लगी। जब कुछ न बन पड़ा तब अपूर्व ने डांटने के बहाने उसके कान खींच लिए।

अपूर्व ने भी बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह जबर्दस्ती से कभी भी मृगमयी से कुछ नहीं लेगा; क्योंकि इसमें वह अपना अपमान समझता था। उसकी इच्छा थी कि देवताओं के समान सगौरव रहकर स्वेच्छा से भेंट किए हुए उपहार को पाए, और अपने हाथ से उठाकर कुछ भी न ले।

मृगमयी फिर न हंसी। अपूर्व उसे उषा की प्रथम किरणों में निर्जन पथ से उसकी मां के घर छोड़ आया फिर लौटकर मां से बोला, "मां! बहुत सोच-विचार कर इस निर्णय पर पहुंचा कि वधू को कलकत्ता ले जाने से पढ़ाई में बहुत नुकसान होगा और फिर उसकी वहां कोई साथिन भी तो नहीं है...तुम तो उसको अपने पास रखना नहीं चाहतीं। इसलिए मैं उसे उसके घर छोड़ आया हूं।"

7

इस प्रकार गर्व के चूर्ण में ही मां-पुत्र का विच्छेद हुआ।

मां के घर पहुंचकर मृगमयी को पता लगा कि अब यहां उसका किसी प्रकार मन ही नहीं लगता है ? उस घर में जाने कौन-सा परिवर्तन आ गया है कि समय काटे नहीं कटता। क्या करे, कहां जाए, किससे मिले, उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया ?

थोड़े ही दिनों में मृगमयी को कुछ ऐसा लगने लगा, कि घरबार और गांव भर में कोई आदमी ही नहीं है ? अब कलकत्ता जाने को उसका मन इतना आतुर क्यों है, पहले ऐसा क्यों नहीं था ? यह उलझन उसकी समझ में नहीं आई। उसने वृक्ष के शुष्क पत्ते के समान ही डंठल से गिरे हुए उस अतीत जीवन को आज अपनी इच्छा से अनायास ही दूर फेंक दिया।

प्राचीन कथाओं से सुना जाता है कि पहले निपुण अस्त्रकार ऐसी बारीक खड्ग बना सकते थे, कि जिससे आदमी को काटकर दो टुकड़े कर देने पर भी उसे मालूम नहीं पड़ता और जब उसे हिलाया जाता था तो उसके दो टुकड़े हो जाते थे। विधाता की खड्ग ऐसी ही सूक्ष्म है, कि कब उन्होंने मृगमयी के बचपन और जवानी के बीच वार किया, वह जान ही न सकी। आज न जाने कैसे तनिक हिल जाने से उसका बचपना जवानी से अलग जा गिरा, और तब वह आश्चर्यचकित होकर देखती ही रह गई।

मायके में उसकी वह चिर-परिचित कोठरी उसे अपनी नहीं मालूम पड़ी। जो मृगमयी वहां काम करती थी, अब मालूम हुआ कि यहां रही ही नहीं। अब उसके हृदय की सारी स्मृति एक-दूसरे ही घर में, दूसरे ही कमरे में, दूसरी ही शैया के आस-पास गूंजती हुई उड़ने लगी। मृगमयी अब बाहर नहीं दिखाई

पड़ती, उसकी हास्य-ध्वनि अंदर ही घुटकर रह जाती। उसका बचपन का साथी राखाल तो उसे देखकर त्रस्त हो भाग जाता, खेलकूद की बात तो अब उनके मन में ही नहीं आती।

मृगमयी ने अपनी मां से कहा, ''मां, मुझे सास मां के घर ले चल।''
उधर कलकत्ते जाते समय बेटे की उदासीनता को याद करके मां का हृदय विदीर्ण हो रहा था। क्रोध में आकर वधू को वह अपनी ससुराल छोड़ आया, यह बात उसके मन में सुई की तरह चुभने लगी थी।

इतने में एक दिन अवगुंठन डाले मृगमयी आ पहुंची। चेहरा उसका मुर्झा-सा गया था और उसने सास मां के चरणों का स्पर्श किया। आशीष देने के स्थान पर सास मां की आंखों में अश्रु भर आए और उसी क्षण मृगमयी को उठाकर कलेजे से लगा लिया। उसी क्षण दोनों का मिलाप हो गया। मृगमयी के चेहरे की ओर निहारकर सास मां को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह पहली जैसी मृगमयी नहीं रही थी, ऐसा परिवर्तन तो कतिपय सबके लिए संभव नहीं। ऐसे परिवर्तनों के लिए बड़ी ताकत की आवश्यकता होती है। सास मां ने बहुत सोच-समझकर निश्चय किया था कि वधू के सारे दोषों को धीरे-धीरे से सुधारेगी, किंतु यहां तो पहले से ही किसी विशेष सुधारक ने उसे नव-जीवन दे डाला था।

अब वधू ने सास मां को अच्छी तरह पहचान लिया था; और सास मां ने उसको। मृगमयी के हृदय में आषाढ़ माह के सजल मेघों के समान अश्रुओं से पूर्ण गर्व उमड़ने लगा। उस गर्व से उसकी बड़ी-बड़ी आंखों की छायादार घनी पलकों पर और भी गहरा आवरण डाल दिया। वह मन-ही-मन अपूर्व से कहने लगी, मैं अब तक अपने को न समझ सकी तो न सही पर तुमने मुझे क्यों नहीं समझने का प्रयत्न किया? तुमने मुझे दंड क्यों नहीं दिया? तुमने अपनी इच्छा के वशीभूत ही क्यों नहीं चलाया? मुझ डाइन ने जब तुम्हारे साथ महानगरी चलने को इंकार किया, तो तुम मुझे जबर्दस्ती पकड़कर क्यों नहीं ले गए? तुमने मेरा कहना क्यों पूरा किया? मेरे हठ के आगे क्यों झुके? मेरी अवज्ञा को क्यों सहन किया?

इसके उपरांत, फिर उसे उस दिन की याद आई, पहले पहल जिस दिन अपूर्व सवेरे तालाब के किनारे सुनसान रास्ते में उसे बंदी बना कर मुंह से कुछ न कहकर केवल उसके मुख की ओर निहारता रहा था। उस दिन के उस तालाब की, उस पथ की, वृक्ष की नीचे उस छाया की, भोर की उस सुनहली धूप की,

हृदय भार से झुकी हुई उस गहरी चितवन की उसे स्मृति छा गई और सहसा उसका पूरा-पूरा अर्थ अब उसकी समझ में आ गया था।

इसके उपरांत विदा की बेला पर जिस चुंबन को वह अपूर्व के होंठों तक ले जाकर लौटा आई थी वह अधूरा चुंबन अब मरु-मरीचिका की ओर तृषित मृग की तरह उत्तरोत्तर तीव्रता के साथ उन बीते हुए दिनों की ओर उड़ान भरने लगा किंतु तृष्णा उसकी किसी प्रकार भी न मिट सकी। अब रह-रहकर उसके मन में यही बातें उठा करतीं; उस समय तू ऐसा करती, उनकी बात का यदि ऐसा उत्तर देती, तब ऐसा करती।

अपूर्व के मस्तिष्क में इस बात का बड़ा दुःख रहा कि मृगमयी ने उसे अच्छी तरह पहचाना नहीं और मृगमयी ने भी आज बैठे-बैठे यही सोचा कि उन्होंने उसे क्या समझा होगा, क्या सोचते होंगे? अपूर्व ने उसे पाषाणी, चंचल, उद्दंड, नादान लड़की समझ लिया होगा। तबालब भरे हुए तरलामृत की धारा से अपनी प्रेम तृष्णा मिटाने में उसे समर्थ नवयौवना नहीं जाना। इस वेदना से धिक्कार के मारे लज्जा से वह धरा में धंसी जा रही थी और प्रियतम के चुंबन और सुहाग के उस ऋण को वह अपूर्व के तकिए को दे-देकर उऋण होने का प्रयत्न करने लगी।

इसी प्रकार काफी दिन बीत गए।

चलते समय अपूर्व कंह गया था, जब तक तुम्हारा पत्र नहीं आएगा, तब तक मैं नहीं आऊंगा। मृगमयी इसी बात को याद कर, कमरे का द्वार बंद कर, एक दिन पत्र लिखने के लिए बैठी। अपूर्व ने जो सुनहरी किरणों के कागज दिए थे उन्हें निकालकर बैठी, बैठी विचारने लगी, क्या लिखे? बड़े यत्न के बाद हाथ जमा कर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं अंकित कर उंगलियों में स्याही पोत कर छोटे-बड़े अक्षरों में ऊपर संबोधन बिना किए ही एकदम लिख दिया—तुम मुझे चिट्ठी क्यों नहीं भेजते? तुम कौन हो? घर चले आओ और क्या होना चाहिए? वह सोचकर भी किसी निर्णय पर न पहुंच सकी? अंत में उसने कुछ विचार कर लिया, "अब मुझे चिट्ठी लिखना और कैसे रहते हो सो लिखना; जल्दी आना सब अच्छी तरह हैं और कल हमारी काली गाय के बछड़ा हुआ है।" इतना लिखकर चिट्ठी लिफाफे में बंद कर दी और फिर हृदय के प्यार से सिंचित शब्दों में लिख दिया श्रीयुत अपूर्वकुमार राय। प्यार चाहे कितना ही उड़ेला गया हो, किंतु तो भी रेखा सीधी, अक्षर सुंदर और लिखावट सही नहीं हुई।

लिफाफे पर नाम के सिवा और कुछ लिखना भी आवश्यक है, मृगमयी इस बात से परिचित न थी।

कहीं सास मां या कोई और न देख ले, इस भय से लिफाफे को विश्वस्त दासी के हाथ डाक में डलवा दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उस पत्र का कुछ फल नहीं निकला और अपूर्व घर नहीं लौटा।

8

मां ने देखा कि कॉलेज बंद हो गया, फिर भी अपूर्व घर नहीं आया। सोचा, अब भी वह उनसे गुस्से है। मृगमयी ने भी समझ लिया कि अपूर्व उससे गुस्सा कर रहा है और तब वह अपने पत्र की याद करके, मारे लज्जा के गड़ जाने लगी। वह पत्र उसका कितना तुच्छ और छोटा था। उसमें तो कोई बात ही नहीं लिखी गई, उसने अपने मन के भाव तो उसमें लिखे ही नहीं...फिर उनका ही क्या दोष? यह सोच-सोचकर वह तीर बिंधे शिकार की तरह भीतर-ही-भीतर तड़पने लगी। दासी से उसने बार-बार पूछा, "उस पत्र को तू डाक में डाल आई थी?" दासी ने उसे कितनी ही बार समझाया, "हां, बहूजी, मैं खुद चिट्ठी को डिब्बे में डाल आई हूं। बाबूजी को वह मिल भी गई होगी।"

अंत में अपूर्व की मां ने मृगमयी को पास बुलाकर पूछा, "बहू, वह बहुत दिनों से घर नहीं आया, मन चाहता है कि कलकत्ता जाकर उसे देख आऊं, क्या तुम साथ चलोगी?"

मृगमयी जबान से कुछ न कह सकी; परंतु स्वीकृति रूप में सिर हिला दिया और अपने कमरे में जाकर, तकिए को छाती से लगाकर, इधर से उधर करवटें बदलकर, हृदय के आवेश को दबाकर हल्की होने का प्रयत्न करने लगी और इसके बाद भावी आशंका के विषय में सोचकर रोने लगी।

अपूर्व को सूचित किए बिना ही दोनों उसकी शुभकामना चाहती हुई कलकत्ता को चल दीं।

अपूर्व की मां कलकत्ते में अपने दामाद के यहां ठहरी। उसी दिन संध्या को अपूर्व मृगमयी के पत्र की आस छोड़कर और वचन को भंग करके स्वयं ही पत्र लिखने के लिए बैठा था। तभी उसे जीजाजी का पत्र मिला कि तुम्हारी मां आई हैं। जल्दी आकर मिलो और रात को भोजन यहीं करना, समाचार सब ठीक

है। इतना पढ़ने पर भी उसका मन किसी अमंगल सूचना की आशंका कर घबरा उठा। वह तुरंत ही कपड़े बदल, जीजाजी के घर की ओर चल दिया। मिलते ही उसने मां से पूछा, "मां, सब मंगल तो है।"

मां ने कहा, "सब देवी की कृपा है। छुट्टियों में तू घर क्यों नहीं आया, इसीलिए मैं तुझे लेने आई हूं?"

अपूर्व ने कहा, "मेरे लिए इतनी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत थी मां! मैं तो कानून की परीक्षा के कारण..."

ब्यालू करते समय दीदी ने पूछा, "भइया! उस समय भाभी को तुम साथ ही क्यों नहीं लेते आए।"

भइया ने गंभीरता के साथ कहा, "कानून की पढ़ाई थी दीदी!"

जीजा ने हंसकर कहा, "यह सब तो बहाना है, असल में हमारे डर से लाने की हिम्मत नहीं पड़ी।"

दीदी बोली, "बड़े डरपोक निकले भइया। कहीं इस डर से बुखार तो नहीं चढ़ा।"

इस तरह हंसी-मजाक चलने लगा, परंतु अपूर्व वैसे ही उदासीन बना रहा। मां जब कलकत्ते आई, तब मृगमयी भी चाहती तो वह भी कलकत्ते आ सकती थी, पाषाणी कहीं की। इस प्रकार सोचते-सोचते उसे सारा मानव-जीवन व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा।

ब्यालू के बाद बड़ी जोर की आंधी आई और बहुत तेज वर्षा होने लगी। दीदी ने कहा, "भइया, आज यहीं रह जाओ।"

अपूर्व ने कहा, "नहीं दीदी, मुझे जाना ही होगा, बहुत-सा काम पड़ा है।"

जीजा ने कहा, "ऐसी रात में तुम्हें क्या काम है? एक रात को ठहर ही जाओगे तो कौन-सा काम बिगड़ जाएगा?"

बहुत कहने-सुनने के उपरांत अनिच्छा से अपूर्व को उस रात दीदी के पास ठहरना पड़ा।

राजी हो जाने पर दीदी ने कहा, "भइया, तुम थके हुए दिखाई देते हो, अब चलकर आराम कर लो।

अपूर्व की यही इच्छा थी कि शैया पर अंधेरे में अकेले जाकर सो रहे तो उसकी जान बचे। बातें करना भी तो उसे बुरा लगता था।

सोने के लिए जिस कमरे के द्वार तक उसे पहुंचाया गया, वहां जाकर देखा कि भीतर अंधकार छाया था। दीदी ने कहा, "डरो मत भइया, हवा से बत्ती बुझ गई मालूम होती है, दूसरी बत्ती लिए आती हूं।"

अपूर्व ने कहा, "नहीं दीदी, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। मुझे अंधेरे में ही सोने की आदत है।"

दीदी के चले जाने पर अपूर्व अंधकार से भरे कमरे में सावधानी के साथ शैया की ओर बढ़ा।

शैया पर बैठना चाहता था कि इतने में चूड़ियों के खनकने की आवाज सुनाई दी और कोमल बाहुपाश में वह बुरी तरह जकड़ गया। उन्हीं क्षणों पुष्प से कोमल व्याकुल ओष्ठों ने डाकू के समान आकर अविरल अश्रु धारा के भीगे हुए चुंबनों के मारे उसे आश्चर्य प्रकट करने तक का अवसर न दिया।

अपूर्व पहले तो चौंक पड़ा। इसके बाद उसकी समझ में आया कि जो काम वह पाषाणी को मनाने के लिए अधूरा छोड़ आया था, उसे आज अश्रुओं के वेग ने पूर्ण कर दिया है।

❑❑

25

भाई-भाई

दम्मी-छदामी कोरी दोनों भोर होते ही जब हंसिया-गंडासा हाथ में पकड़े काम पर निकले, तब उन दोनों की घरवालियों में खूब जोर की जंग शुरू हो गई थी। आस-पास के लोग कुदरत, अनेक प्रकार की खटपट और शोर की भांति इस घर के झगड़े और उससे पैद. हुए कोलाहल के आदी बन गए थे। जोर की चीख-पुकार और औरतों की गाली-गलौज कान में पड़ते ही लोग आपस में कहने लगते, "लो, हो गई शुरू।" यानी जैसी कि आशा थी, आज भी उस कुदरती सिद्धांत में कोई अंतर नहीं पड़ा।

भोर होते ही पूरब में दिवाकर के उदय होने पर जैसे कोई उसका कारण पूछने की धृष्टता नहीं करता, ठीक वैसे ही कोरियों के इस घर में जब दोनों गृहणियों में जंग और गाली-गलौज शुरू हो जाती तो फिर उसका कारण जानने के लिए आस-पास के किसी भी व्यक्ति को किंचित मात्र भी आश्चर्य नहीं होता।

हां, इतना अवश्य है कि यह कलह या रोज-रोज का झगड़ा आस-पास के लोगों की अपेक्षा दोनों भाइयों को बहुत परेशान करता है; इस घर पर भी वे इसे विशेष परेशानियों में नहीं गिनते। उनके मानसिक भाव ऐसे हैं, मानो दोनों विश्व यात्रा का लंबा सफर किसी इक्के में बैठकर काट रहे हैं और उसके बिना कमानी के पहियों के निरंतर 'घड़घड़' शब्द को उन्होंने जीवन-यात्रा के विधि-विहित सिद्धांतों में ही मिला लिया है, अपितु घर में जिस दिन कोई शोरगुल नहीं होता, चारों ओर नीरवता-सी ही छाई रहती है। उस दिन किस प्रकार की मुसीबत आ जाए, इस बात का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता?

हमारी कहानी का कथानक जिस दिन से आरंभ होता है, उस दिन संध्या

को दोनों भाई मेहनत-मजदूरी करके थके-मांदे जब घर लौटे तो देखा कि घर में सन्नाटे का साम्राज्य है।

बाहर काफी गर्मी है। दुपहरिया-भर खूब जोर की वर्षा हुई और अब भी मेघ गरज रहे हैं। हवा का चिह्न तक भी नहीं। वर्षा से घर के चारों ओर का जंगल और घास आदि बहुत ऊंचे-ऊंचे हो गए हैं; वहां से पानी में डूबे हुए पटसन के खेत में से दुर्गंध-सी निकल रही है और उसने चारों ओर मानो एक चारदीवारी-सी खड़ी कर दी है। गुहाल के पास वाली छोटी-सी तलैया में मेढक टर्रा रहे हैं और संध्या का निस्तब्ध गगन मानो झींगुरों की ध्वनि से बिल्कुल पूर्ण-सा हो गया है।

समीप में बरसाती नदी पद्मा नए-नए बादलों से घिरकर और भयानक रूप धारण करके आजादी का रसास्वादन कर रही है। अधिकांश खेती को डुबोकर बस्ती की ओर मुंह बनाए बढ़ रही है। यहां तक कि उसने आस-पास के दो-चार आम, कटहल के वृक्षों को उखाड़कर धरा पर लिटा दिया है और उनकी जड़ें उसके पानी में से झलक रही हैं। मानो वे अपनी अंगुलियों को गगन में फैलाकर किसी अंतिम अवलंब को पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों।

दम्मी और छदामी, उस दिन गांव के जमींदार के यहां गार में गए थे। उस पार की रेती पर धान पक गए हैं। वर्षा के पूर्व ही धान काट लेने के लिए देश के निर्धन किसान और मजदूर सब कोई अपने-अपने खेतों के काम पर पटसन काटने में लग गए हैं। केवल इन दोनों कोरियों को जमींदार के कारिंदे जबर्दस्ती बेगारी में पकड़कर ले गए थे। जमींदार की कचहरी के छप्परों में से पानी टपक रहा था। उसकी मरम्मत के लिए और कुछ टट्टियां बनाने के लिए वे दोनों सारा दिन परिश्रम करते रहे हैं। दो टूक पेट में डालने तक का मौका नहीं मिला। कचहरी की ओर से थोड़े से चने खाने को मिल गए थे। इसके अलावा हक की मजूरी मिलनी तो दूर की बात, वहां उन्हें गालियां और फटकार ही मिलीं, वे उनकी मजूरी से कहीं अधिक ज्यादा थीं।

कीच-गारे में से किसी प्रकार निकल और पानी में होकर बड़ी मुश्किल से दोनों भाई संध्या समय घर पहुंचे? देखा तो, छोटी बहू चंदा छाती पर आंचल बिछाए चुपचाप औंधी पड़ी है। सावन की बदली की तरह उसने भी दिन-भर अश्रु बहाकर आंखों को हल्का किया है और अब शांत होकर हृदय को खूब गरम कर रखा है और बड़ी बहू अपना मुंह फैलाए द्वार पर बैठी थी, उसका डेढ़

साल का बच्चा बिलख रहा था। दोनों भाइयों ने जब घर में पैर रखा तो देखा कि बच्चा नंगा-धड़ंगा चौक में एक ओर औंधा पड़ा सो रहा है।

भूख से व्याकुल दम्मी ने घुसते ही कहा, "उठ, परोस खाने को।" बड़ी बहू राधा एक साथ जोर से बोल उठी, मानो कागज के ढेर में कोई चिनगारी पड़ गई हो, बोली, "खाने को है क्या, जो परोस दूं? चावल तू दे गया था, मैं क्या खुद जाकर कमा लाती।"

सारे दिन की थकान और डांट-फटकार सहने के बाद निराहार निरानंद अंधेरे में जलती हुई जेठाग्नि पर घरवाल के रूखे शब्द, विशेषकर आखिरी वाक्य का छिपा हुआ बुराश्तोष दम्मी को सहसा न जाने कैसे सहन न हुआ? क्रोधित सिंह की तरह वह चिल्लाकर बोला, "क्या कहा?"

इतना कहकर उसी क्षण हंसिया उठाकर घर वाली के सिर पर दे मारा। राधा अपनी देवरानी के पास जाकर गिर पड़ी और वहीं पर दम तोड़ दिया।

चंदा के वस्त्र खून से लथपथ हो गए; वह हाय अम्मा, क्या हो गया, कहकर क्रंदन कर उठी। छदामी ने आगे बढ़कर उसका मुंह दाब लिया। दम्मी हंसिया फेंककर गाल पर हाथ रखे भौंचक्के की तरह पृथ्वी पर बैठ गया। बेटा जग गया और भय के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

बाहर का वातावरण तब तक पूर्णरूप से शांत था। अहीरों के बालक गाय-भैंस चराकर गांव को· लौट रहे थे। उस पार की रेती पर जो लोग धान काटने गए थे। वे पांच-पांच सात-सात की टोली में एक छोटी-सी नाव पर बैठकर, इस पार आकर अपनी मेहनत से दो-चार पूला धान का सिर पर लादे अपने-अपने घर में जा पहुंचे थे।

गांव के रामलोचन चाचा डाकखाने में पत्र डालकर घर लौट आए थे और सब कामों से निबटकर चुपचाप बैठे तंबाकू का मजा ले रहे थे। एकाएक उन्हें याद आया कि उनके किसान दम्मी पर लगान के कुछ रुपये बाकी हैं, आज के दिन वह देने का वायदा कर गया था। यह सोचकर कि अब वह काम से लौट आया होगा, रामलोचन कंधे पर दुपट्टा डालकर और हाथ में छतरी ले उसके घर की ओर चल दिए।

दम्मी और छदामी के घर में घुसते ही उनके रोंगटे खड़े हो गए। देखा तो घर में दीया तक नहीं जल रहा था। आंगन अंधेरे से भरा हुआ था और उस अंधेरे में दो-चार काली छाया-सी अस्पष्ट रूप में दिखाई दे रही थीं। रह-रहकर

बरामदे में से किसी के रोने की आवाज आ रही थी और कोई उसे रोकने का प्रयत्न कर रहा था।

रामलोचन ने तनिक शरमाते हुए पूछा, "दम्मी है क्या ?"

दम्मी अब तक पाषाण प्रतिमा के समान चुपचाप बैठा था। अपना नाम सुनते ही वह सिसक-सिसककर अबोध बालक की तरह रोने लगा। छदामी झटपट बरामदे में से उतरकर रामलोचन चाचा के पास आंगन में आ खड़ा हुआ। रामलोचन ने पूछा, "औरतें कलह करके मुंह फुलाए पड़ी होंगी, इसी से अंधेरा है, क्यों ? आज तो दिन-भर चिल्लाती ही रही हैं।"

छदामी अभी तक क्या करना चाहिए, इस निर्णय पर नहीं पहुंच पाया था। अनेक प्रकार की असंभव कल्पनाएं उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं। अभी तक वह इसी निश्चय पर पहुंचा था कि कुछ रात बीते लाश को कहीं गायब कर देगा। इसी बीच में चौधरी चाचा आन टपके, जिसकी उसे स्वप्न में भी आशा न थी। तुरंत ही उसे कोई जवाब न सूझा, कह बैठा, "हां, आज बहुत झगड़ा हो गया।"

चौधरी रामलोचन बरामदे की ओर बढ़ते हुए बोले, "इसके लिए दम्मी क्यों आंसू बहा रहा है ?"

छदामी ने देखा कि अब बचने की कोई आशा नहीं तो कह उठा, "लड़ते-लड़ते छोटी बहू ने बड़ी बहू के माथे पर हंसिया मार दिया है।"

इंसान आई हुई मुसीबत को ही बड़ा समझता है, उसके अलावा और भी कोई मुसीबत आ सकती है—यह बात शीघ्र ही उसके दिमाग में नहीं घुस पाती। छदामी उस समय इसी सोच में पड़ा हुआ था कि इस भयानक सजाई के पंजे से कैसे छुटकारा मिले ? लेकिन झूठ उससे भी बढ़कर मुसीबत खड़ी कर सकता है, इस बात का उसे तनिक भी ध्यान न था। रामलोचन के पूछते ही तुरंत ही उसके दिमाग में जो उत्तर सूझा वही उसने कह डाल रामलोचन ने चौंककर पूछा, "ऐं, क्या कहा! मरी तो नहीं ?"

छदामी ने उत्तर दिया, "मर गई!" इतना कहकर उनके पांवों पर गिर पड़ा।

चौधरी महाशय बड़े असमंजस में फंस गए। सोचा कि भगवान ने न जाने संध्या समय कौन-सा मुसीबत में फंसा दिया ? कचहरी में गवाही देते-देते प्राण शुष्क हो जाएंगे। छदामी ने किसी प्रकार भी उनके चरणों को नहीं छोड़ा, बोला, "चौधरी चाचा, अब मैं बहू के बचाने के लिए क्या करूं ?"

अभियोग के विषय में परामर्श देने में चौधरी रामलोचन गांव भर के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने तनिक विचारकर कहा, देख एक काम कर, तू अभी दौड़ जा थाने में, कहना कि मेरे बड़े भाई दम्मी ने शाम पीछे घर आकर खाने को मांगा था। खाना तैयार नहीं था, सो उसने अपनी बहू के माथे पर हंसिया मार दिया है। मैं ठीक बता रहा हूं। ऐसा करने से तेरी बहू बच जाएगी।"

छदामी का कंठ सूखने लगा, उठकर बोला, "चौधरी चाचा, बहू तो और मिल जाएगी, लेकिन भाई को फांसी हो जाने पर फिर भाई नहीं मिल सकेगा। जब उसने अपनी घर वाली के माथे पर दोष मढ़ा था तब उसने यह बातें नहीं सोची थीं। भय के कारण एक बात मुंह से निकल गई, तब अलक्षित विचारों से उसका मन अपने लिए युक्तियां एकत्रित करने लगा।

चौधरी ने भी उसकी बात को युक्तिसंगत माना, बोले, "तब फिर जैसा हुआ है वैसा ही कहना, सब ओर से बचाव होना तो बहुत कठिन है छदामी!" इतना कहकर रामलोचन वहां से चल दिए और देखते-देखते सारे गांव में इस बात की चर्चा हो गई कि कोरियों के घर की छोटी बहू ने गुस्से में बड़ी बहू के हंसिया दे मारा है।

बांध टूटने पर जैसे ही बाढ़ आ जाती है उसी प्रकार कोरियों के घर पुलिस आ धमकी। अपराधी और निरपराधी उन्हें देखकर घबरा उठे।

2

छदामी ने निर्णय किया कि जिस राह को अपनाया है उसे उसी पर चलना ठीक होगा, क्योंकि उसने चौधरी चाचा के सामने जो बात कह डाली है उसे गांव का बच्चा-बच्चा जान गया है। अब यदि और कोई बात कही जाए तो न जाने उसका नतीजा क्या निकले?

उसकी बुद्धि मारी गई। उसने अपनी बहू से अनुरोध किया कि वह इस बात को अपने ऊपर ले ले। सुनते ही उस पर मानो ज्वालामुखी पहाड़ फट पड़ा। उसने धीरज बंधाते हुए कहा, "अरी पगली! ऐसा करने में किसी बात का डर नहीं है, हम लोग तुझे जरूर बचा लेंगे।" धीरज बंधा तो सही पर उसका गला सूख गया और चेहरे का रंग पीला पड़ गया।

चंद की आयु सत्रह-अठारह वर्ष के लगभग होगी। चेहरा भरा हुआ और गोल-मटोल, बदन मंझोला और गठा हुआ, अंग-प्रत्यंग सौष्ठव से परिपूर्ण, चाल

अति सुंदर, आस-पास के लोगों के घर जाकर गप-शप करना उसकी दिनचर्या है और बगल में पानी की गागर लिए पनघट जाते समय वह दो अंगुलियों से अवगुंठन में तनिक-सा छिद्र करके चमकीली चंचल काली आंखों से जो कुछ देखने लायक वस्तु होती है, उसे देख लिया करती है।

बड़ी बहू ठीक इससे उल्टी थी। आलसिन, फूहड़ और बेशऊर सिर का कपड़ा गोद का बच्चा, घर का काम कुछ भी उससे न संभलता था। हाथ में न तो कोई खास काम-काज होता और न फुर्सत। छोटी बहू उससे अधिक कुछ कहती-सुनती न थी। हां, मीठे स्वर में ही दो-एक पैने दांत गड़ा देती और हाय-हाय ही-ही करके क्रोध में बकती-झकती रहती और इस प्रकार मुहल्ले भर की नाक में दम करती रहती।

पर इन दो गृहस्थियों में भी स्वभाव की आश्चर्यजनक एकता थी। दम्मी देह में कुछ लंबा चौड़ा, हट्टा-कट्टा है, चौड़ी हड्डियां, भद्दी नासिका, दुनिया से अनभिज्ञ आंखें! ऐसा भोला-भाला किंतु भयानक आदमी कोई बिरला ही होगा।

और छदामी ऐसा लगता था जैसे किसी काले पत्थर को बड़ी मेहनत से कोंदकर कोई प्रतिमा तैयार की गई हो।

तनिक भी कहीं बाहुल्य एवं समानता नहीं, उसका प्रत्येक अंग स्थूल एवं शक्ति से परिपूर्ण था। चाहे तो ऊंची से ऊंची चट्टान से नीचे कूद पड़े, चाहे किसी पेड़ की टहनियों को एकदम खाक कर दे। हरेक कार्य में उसके चातुर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। वह बड़े-बड़े काले बालों को तेल में डुबो बड़े जतन से कंधे तक लटकाए रहता था। इससे स्पष्ट था कि वह अपनी देह की सजावट में विशेष ध्यान रखता है।

और...और ग्रामवासियों के सौंदर्य की ओर से वास्तव में वह उदासीन न था, फिर भी अपनी घरवाली को बहुत चाहता था। दोनों में झगड़ा भी होता और मेल-जोल भी कोई किसी को हरा नहीं पाता था? दोनों ही अनेक दावों को खेलते हुए जीवन की डगर में आगे बढ़े चले जा रहे थे।

इस दुर्घटना के कई दिन पहले से दंपति में बहुत अधिक तनातनी चल रही थी। बात यह थी कि चंदा ने देखा कि उसका घरवाला काम के बहाने कभी-कभी दूर चला जाता है, यहां तक कि दो-एक दिन बाहर बिताकर घर लौटता है और कुछ कमा-धमाकर लाता नहीं। उसके बुरे लक्षणों के कारण वह उस पर कड़ी नजर रखने लगी और ज्यादती भी करने लगी। उसने भी पनघट पर चक्कर

काटने शुरू कर दिए और मोहल्ले भर में अच्छी तरह घूम-फिरकर घर आकर काशीप्रसाद के मंझले बेटे की बहुत प्रशंसा करने लगी।

इससे परिणाम यह निकला कि छदामी के दिन और रातों में मानो किसी ने विष घोल दिया? काम-धंधों में उसे पल-भर के लिए चैन नहीं पड़ता। इसके लिए उसने एक बार भाभी को खूब डांटा-फटकारा। जवाब में भाभी ने खूब हाथ हिलाकर, झमक-झमककर उसके स्वर्गीय बाप को संबोधन करके कहना शुरू कर दिया, "वह औरत आंधी के आगे-आगे भागती है, उसे मैं सम्हालूं। मैं तो सब कुछ समझती हूं, किसी दिन खानदान की आबरू मिट्टी में मिला देगी!"

बगल के कोठे में चंदा बैठी थी। उसने बाहर आकर धीमे स्वर में कहा, "दीदी, तुम्हें इतना डर क्यों?" बस फिर क्या था, दोनों में महाभारत छिड़ गई।

छदामी ने गुर्राकर कहा, "देख, अबकी अगर सुना कि तू अकेली पनघट पर गई है तो तेरी हड्डी-पसली एक कर दूंगा।"

चंदा ने भभककर रहा, "तब तो मेरा कलेजा ही ठंडा हो जाएगा।" और कहती हुई वह बाहर जाने को तैयार हो गई।

छदामी ने उसकी चुटिया घसीटकर उसे कोठे के भीतर धकेल दिया और बाहर से दरवाजे में ताला डाल दिया।

संध्या समय जब छदामी घर लौटा तो देखा कि कोठा खुला पड़ा है, उसमें कोई भी नहीं है। चंदा तीन गांव लांघकर सीधी अपनी नानी के घर पहुंच गई है।

छदामी बड़ी मुश्किल से घरवाली को मनाकर वहां से घर वापस ले आया और अबकी बार उसने हार मान ली और फिर उसने किसी प्रकार की उससे जबर्दस्ती नहीं की, लेकिन उसका मन अशांत रहने लगा। घरवाली के प्रति शंका के भाव उसके हृदय में शूल बनकर गड़ने लगे और जब कभी वह उसकी तीव्र पीड़ा से अधिक बेचैन हो जाता तो उसकी इच्छा होती कि काश, यह मर जाए तो पिंड छूटे। इंसान से इंसान को जितनी ईर्ष्या या जलन होती है उतनी संभवत: यमराज को भी नहीं।

इसी बीच घर में यह दुर्घटना घट गई।

चंदा से जब उसके घरवाले ने हत्या का दोष ले लेने के लिए कहा तो वह भौंचक्की होकर देखती रह गई, उसकी कजरारी आंखें अग्नि के समान छदामी को जलाने लगीं। उसका सारा शरीर और मन संकुचित होकर इस राक्षस के पंजे से निकलकर भागने का प्रयत्न करने लगा। उसकी अंतर्रात्मा विमुख होकर अपने ही घरवाले के प्रति विद्रोह कर बैठी।

छदामी ने बहुतेरा उसको ढाढस बंधाया कि तेरे डरने की कोई बात नहीं है। इसके बाद उसने थाने में और अदालत में जज के सामने उसे क्या कहना होगा, बार-बार सिखा-पढ़ाकर सब ठीक-ठाक कर दिया; लेकिन चंदा ने लंबा-चौड़ा उसका व्याख्यान बिल्कुल भी नहीं सुना, वह पाषाण-प्रतिमा के समान वहां चुपचाप बैठी रही।

सभी कामों में दम्मी छदामी के भरोसे रहता है। छदामी ने जब चंदा पर सारा दोष मढ़ने की बात कही, तो दम्मी ने पूछा, "फिर बहू का क्या होगा?"

छदामी ने कहा, "उसे मैं बचा लूंगा।"

भाई की बात सुनकर 'हां-हां' कर दम्मी निश्चिंत हो गया।

छदामी ने चंदा को सिखा दिया था कि तू कहना दीदी मुझे हंसिया लेकर मारने आई थी, सो मैं भी हंसिया ले उसे रोकने लगी, अचानक वह उसके लग गया। ये सब बातें चौधरी रामलोचन की बनाई हुई थीं। इनके अनुकूल जिन-जिन बातों और सबूतों की आवश्यकता थी, वे सब बातें भी उन्होंने विस्तार से छदामी को समझा दी थीं।

पुलिस ने आकर जोरों से तहकीकात करनी शुरू कर दी। लगभग सभी आस-पास के लोगों के मन में यह बात घर कर गई थी कि चंदा ने ही जिठानी की हत्या की है। सभी गांव वालों के बयानों से ऐसा ही सिद्ध हुआ। पुलिस की ओर से चंदा से जब पूछा गया तो उसने कहा, "हां, मैंने ही खून किया?"

"क्यों खून किया?"

"मुझसे वह डाह रखती थी।"

"कोई झगड़ा हुआ था?"

"नहीं।"

"वह तुम्हें पहले मारने आई थी?"

"नहीं।"

"तुम पर किसी किस्म का अत्याचार किया था?"

"नहीं।"

इस प्रकार का उत्तर सुनकर सब देखते रह गए।

छदामी एकदम घबरा गया, बोला, "यह ठीक नहीं कह रही है। पहले बड़ी बहू..."

थानेदार ने उसे डांटकर चुप करा दिया। अंत तक अनेक बार जिरह करने

पर भी वही एक प्रकार का उत्तर मिला। बड़ी बहू की ओर से किसी प्रकार का हमला होना चंदा ने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया?

ऐसी जिद्दी औरत शायद ही कहीं देखने में आती हो। वह तो जी-जान से कोशिश करके फांसी के तख्ते की ओर झुकी जा रही है, किसी भी तरह रोके नहीं रुकती? यह कैसा रूठना है? चंदा शायद मन-ही-मन कह रही थी कि मैं तुम्हें छोड़कर अपनी इस जवानी को लेकर फांसी के तख्ते पर चढ़ जाऊंगी, फांसी की रस्सी को गले लगाऊंगी, मेरे इस जन्म का आखिरी बंधन उसी के साथ है।

बंदिनी होकर चंदा, फिर परिचित गांव के रास्ते से, जगन्नाथ जी के शिवालय के पास से, बीच बाजार से, घाट के तट से, मजूमदारों के घर के सामने से डाकखाना और स्कूल के बगल से, सभी परिचित लोगों की आंखों के सामने से कलंक का दाग माथे पर लगाकर सदैव के लिए घर छोड़कर चली गई। गांव के बालकों का एक झुंड पीछे-पीछे चला जा रहा था और गांव की औरतें, उसकी सखी-सहेलियां, कोई घूंघट की सेंध में से, कोई दरवाजे की बगल में से और कोई वृक्ष की ओट में से सिपाहियों से घिरी चंदा को जाती देख लज्जा से, घृणा से और भय से रोमांचित हो उठीं।

डिप्टी मजिस्ट्रेट के सामने चंदा ने अपना ही दोष स्वीकार किया और दुर्घटना से पहले बड़ी बहू ने उस पर किसी प्रकार की ज्यादती या जुल्म किया था। यह बात उसके मुंह से किसी भी प्रकार निकली ही नहीं।

पर छदामी उस दिन गवाह के कचहरी पहुंचते ही रो दिया; और हाथ जोड़कर बोला, "दुहाई है हुजूर, मेरी बहू का कोई कसूर नहीं।" हाकिम ने रोबीले स्वर में उसे रोककर प्रश्न पर प्रश्न करना शुरू किया। उसने एक-एक करके सारी की सारी वारदात कह सुनाई।

पर हाकिम ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया। कारण, गांव के चौधरी रामलोचन ने गवाह रूप में कहा, "खून होने के थोड़ी देर बाद मैं इनके घर पहुंचा था। गवाह छदामी ने सब बातें कबूल करके मेरे पैरों में गिरकर कहा था कि बहू को किस प्रकार बचाऊं, कोई सलाह दीजिए। गवाह ने मुझसे कहा कि मैं यदि कहूं कि मेरे बड़े भाई ने खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं, इस पर गुस्से में आकर भाई ने अपनी घरवाली पर हंसिया का वार किया, जिससे उसने उसी समय दम तोड़ दिया, तो वह बच जाएगा।"

मैंने कहा, "खबरदार हरामजादे, अदालत में एक कथन भी झूठ का न बोलना, इससे बढ़कर महापाप और नहीं है...."

रामलोचन ने पहले चंदा को बचाने के लिए बहुत-सी बातें बना ली थीं, किंतु जब देखा कि चंदा खुद ही अड़कर फंस रही है, तब सोचा कि कहीं मुझे ही झूठे जुल्म की गवाही में न फंसना पड़े। इससे जितना जानता हूं उतना ही कहना अच्छा है। यह सोचकर उन्होंने ही कहा और उसे कहने में किसी प्रकार की कोई कसर उठाकर न रखी।

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने इस केस को सेशन के सुपुर्द कर दिया।

इस बीच में खेतीबारी, हाट बाजार, रोना-हंसना आदि संसार के सभी काम चलने लगे। पहले के समान सारे धान के खेतों में सावन के मेघ बरस उठे।

पुलिस मुल्जिम और गवाहों को लेकर सेशन जज की अदालत में पहुंची। इजलास लगा हुआ था। बहुत से लोग अपने-अपने मुकदमे की पेशी की इंतजारी में बैठे थे। कोई मुकदमा चल रहा था। छदामी ने खिड़की से झांककर रोजमर्रा की इस आकुल-व्याकुल दुनिया को एक नजर से देखा। सब कुछ उसे सपना मालूम हुआ। अदालत के अहाते के भीतर के वटवृक्ष पर से एक कोयल कूक उठी।

अपनी पेशी पर चंदा ने झुंझला कर जज के सामने कहा, "तुम जिस दोष को अपने सिर पर ले रही हो, उसकी सजा जानती हो, क्या है?"

चंदा ने कहा, "नहीं।"

जज ने मुस्कराते हुए कहा, "फांसी यानी मौत।"

उसे सुनते ही चंदा के होश उड़ गए। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "साहब, आपके पैरों पड़ती हूं, मुझे यही सजा दो, मुझसे अब दुनिया की बातें सही नहीं जातीं।"

जब छदामी को अदालत में पेश किया गया तो चंदा ने उसकी ओर से मुंह फेर लिया।

जज ने पूछा, "गवाह की ओर देखकर बताओ, यह तुम्हारा कौन लगता है?"

चंदा ने अपने मुंह को हाथों से ढककर कहा, "यह मेरा घरवाला है साहब?"

जज, "तुम्हें यह चाहता है?"

चन्दा, "बहुत ज्यादा हजूर!"

जज, "तुम उसे नहीं चाहतीं हजूर!"

तभी छदामी ने बीच में ही कहा, "हजूर, खून तो मैंने किया है।"

जज ने प्रश्न किया, "क्यों ?"

छदामी ने कहा, "खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं।" दम्मी जब गवाही देने आया बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश आने पर उसने कहा, "हजूर! खून तो मैंने किया है।

"क्यों ?"

"खाने को मांगा था, सो उसने दिया ही नहीं।"

बहुत जिरह और गवाहों के बयान के बाद जज ने साफ-साफ समझ लिया कि घर की बहू को फांसी से बचाने के लिए दोनों भाई कसूर मंजूर कर रहे हैं। लेकिन चंदा थाने से लेकर सेशन अदालत तक एक ही बात बराबर कहती आ रही थी। उसकी बात में तनिक भी कहीं अंतर नहीं पड़ा। दो वकीलों ने स्वत: प्रवृत्त होकर उसे फांसी के फंदे से बचाने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन अंत में हार माननी पड़ी।

जिन दिन तनिक-सी आयु में एक काली-काली छोटी-मोटी लड़की अपना गोल-मोल चेहरा लिए, गुड्डा-गुड़िया फेंककर अपने माता-पिता का संग छोड़कर ससुराल आई थी। उस दिन रात को शुभ लग्न के वक्त आज दिन की कौन सोच सकता था? उसके पिता ने अंतिम समय में यह कहा था कि खैर, कुछ भी हो मेरी लड़की तो ठीक-ठिकाने से लग गई।

फांसी से पूर्व, जेलखाने में सिविल सर्जन ने चंदा से पूछा, "किसी को देखने की इच्छा हो तो बोलो!"

चंदा ने उत्तर दिया, "बस एक बार अपनी मां को देखना चाहती हूं।"

सिविल सर्जन ने पुन: कहा, "तुम्हारा घरवाला तुम्हें मिलना चाहता है, उसे बुलवा लिया जाए।"

चंदा ने उद्विग्न होकर कहा, "उहूं हूं, मौत भी नहीं आई।"

❑❑

26

विदा

कन्या के पिता के लिए धैर्य धरना थोड़ा-संभव भी था; परंतु वर के पिता पल भर के लिए भी सब्र करने को तैयार न थे। उन्होंने समझ लिया था कि कन्या के विवाह की आयु पार हो चुकी है; परंतु किसी प्रकार कुछ दिन और भी पार हो गए तो इस चर्चा को भद्र या अभद्र किसी भी उपाय से दबा रखने की क्षमता भी समाप्त हो जाएगी? कन्या की आयु अबाध गति से बढ़ रही थी, इसमें किसी को शंका करने की आवश्यकता पड़ी नहीं; किंतु इससे भी बड़ी शंका इस बात की थी कि कन्या की तुलना में दहेज की रकम अब भी काफी अधिक थी। वर के पिता इसी हेतु इस प्रकार से जल्दी मचा रहे थे।

मैं ठहरा वर अपितु विवाह के विषय में मेरी राय से अवगत होना नितांत व्यर्थ समझा गया। अपनी कर्त्तव्यपरायणता में मैंने भी किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने दी, यानी एफ.ए. पास करके छात्रवृत्ति का अधिकारी बन बैठा। परिणाम यह निकला कि मेरे संबंध में श्री प्रजापति के दोनों ही पक्ष, कन्या पक्ष और वर पक्ष बार-बार बेचैन होने लगे।

हमारी जन्म-भूमि में जो पुरुष एक बार विवाह कर लेता है, उसके मन में दूसरी बार विवाह करके रचनात्मक कार्यों में कोई जिज्ञासा या उद्वेग नहीं होता। एक बार नर-मांस का स्वाद लेने पर उसके प्रति बाघ की जो मन की दशा होती है, नारी के विषय में बहुत कुछ वैसी ही हालत एक बार विवाह कर लेने वाले पुरुष के मन की भी होती है।

एक बार नारी का अभाव घटित हुआ, कि फिर सबसे पहला प्रयत्न उस अभाव को पूर्ण करने के लिए किया जाता है। ऐसा करते हुए इस बार उसका मन दुविधा में नहीं रहता, कि भावी पत्नी की आयु क्या है और कैसी है उसकी अवस्था?

मैं देखता हूं कि सारी दुविधा और दुश्चिंता का ठेका आजकल के लड़कों के ही नाम छूटा है। लड़कों की ओर से बारंबार विवाह का प्रस्ताव होने पर उनके पिता पक्ष के चांदी के समान श्वेत केश खिजाब की महिमा से बारंबार श्याम-वर्ण को अपना लेते हैं और उधर बातचीत की तप्ताग्नि से ही लड़कों के श्याम केश मारे चिंता, परेशानी के रात के कुछ घंटों में ही उठने का उपक्रम करते हैं।

आप विश्वास कीजिए, मेरे मन में ऐसा कोई विषय या उद्वेग का श्रीगणेश नहीं हुआ; अपितु विवाह के प्रस्ताव से मन मयूर बसंत की दक्षिण पवन की शीतलता में नृत्य कर उठा। कौतूहल से उलझी हुई कल्पना की नई आई हुई कोंपलों के बीच मानो गुपचुप कानाफूसी होने लगी। जिस विद्यार्थी को एडमंड वर्क की फ्रांसीसी क्रांति की घोर टीकाओं के पांच-सात पोथे जबानी घोटने हों, उसके मन में इस जाति के भावों का उठना निरर्थक ही समझा जाएगा। यदि टेक्स्ट बुक कमेटी के द्वारा मेरे इस लेख के पास होने की लेशमात्र भी शंका होती, तो संभवत: ऐसा कहने से पूर्व ही सचेत हो जाता।

परंतु मैं यह क्या ले बैठा? क्या यह भी ऐसी कोई घटना है? जिसे लेकर उपन्यास लिखने की योजना बना रहा हूं। मेरी योजना इतनी शीघ्र आरंभ हो जाएगी, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। प्रबल आकांक्षा थी कि वेदना के जो कजरारे मेघ गत कई वर्षों से मन में छा रहे हैं उन्हें किसी बैशाखी संध्या की तूफानी वर्षा के वेग द्वारा बिल्कुल ही निष्प्राण कर दूंगा।

पर न तो बच्चों की पाठ्य-पुस्तक ही लिखी गई, क्योंकि संस्कृत का व्याकरण मेरे मस्तिष्क से अछूता रह गया था और न काव्य ही रचा जा सका; क्योंकि मातृभाषा मेरे जीवन युग में ऐसी फली-फूली नहीं थी जिसके द्वारा मैं अपने हृदय के राज को बाहर प्रकट कर पाता। अत: देख रहा हूं कि मेरे अंतर का संन्यासी आज अपने अट्टहास से अपना ही परिहास करने के लिए बैठा है। इसके अतिरिक्त वह करे भी तो क्या? उसके अश्रु शुष्क जो हो गए हैं। जेठ की कड़कड़ाती धूप वस्तुत: जेठ का अश्रु शून्य क्रंदन ही तो है।

जिसके साथ विवाह हुआ था, उसका वास्तविक नाम नहीं बताऊंगा, क्योंकि आज ब्रह्मांड के पुरातत्त्व-वेत्ताओं में उसके ऐतिहासिक नाम के विषय में विशेष विवाद होने की शंका नहीं है। जिस ताम्र-पत्र पर उसका नाम अंकित हैं, वह मेरा ही हृदय है। वह पट और पत्नी का नाम किसी युग में भी विलुप्त

होगा, यह सोचना मेरी कल्पना से बाहर है। परंतु जिस सुनहरी दुनिया में वह अक्षय बना रहा, वहां इतिहास के विद्वानों का आना-जाना नहीं होता है। इस पर भी मेरे इस लेख में उसका कुछ-न-कुछ नाम तो चाहिए ही, अच्छा तो समझ लीजिए शबनम उसका नाम था, क्योंकि शबनम में मुस्कान और रुदन दोनों घुल-मिलकर एकाकार हो जाती है और भोर का संदेश प्रभाव बेला तक आते ही चुक जाता है।

शबनम मुझसे केवल दो ही वर्ष छोटी थी। मेरे पिता गौरी दान से विमुख हो, सो यह बात नहीं थी। उनके पिताजी कट्टर समाज-विद्राही थे? देश में प्रचलित किसी भी धर्म के प्रति उनमें श्रद्धा न थी। उन्होंने खूब कसकर बांगला भाषा का अध्ययन किया था। मेरे पिता उग्र भाव से समाज के अनुयायी थे। जिसे अंगीकार करते हुए किंचित-मात्र भी अड़चन हो, ऐसी किसी भी वस्तु की हमारे समाज की विशाल ड्योढ़ी या अंत:पुर में या पिछली राह पर झलक देख पाना संभव न था। इसका भी कारण यही कि उन्होंने भी कसकर बांगला भाषा का अध्ययन किया था। पितामह और पिताजी के विभिन्न रूप क्रांति की दो विभिन्न मूर्तियां थीं। कोई भी सरल स्वभाव का नहीं।

फिर भी बड़ी आयु वाली कन्या के साथ मेरा विवाह करना पिता ने इसलिए स्वीकार कर लिया कि उसकी इस बड़ी-सी आयु की दोनों मुट्ठियों में दहेज की रकम भी बहुत बड़ी थी। शबनम मेरे श्वसुर की एकमात्र कन्या थी। पिताजी को पूर्ण विश्वास था कि कन्या के पिता का सारा धन भावी दामाद के भविष्य के उदर को परिपूर्ण करने वाला है।

मेरे श्वसुर को किसी मत-मतांतर का झमेला नहीं था? पश्चिम की किसी पहाड़ी रियासत के नरेश के यहां किसी उच्च पद पर थे? शबनम जब गोद में ही थी, तभी उसकी मां के प्यार का आंचल उस पर से उठ गया था। इस बात की ओर उसके पिता का ध्यान भी नहीं गया कि पुत्री प्रतिवर्ष एक-एक वर्ष करके बड़ी होती जा रही है। वहां उनके समाज का कोई ऐसा ठेकेदार नहीं था, जो उनके नेत्रों में अंगुली डालकर इस सच्चाई को उनके हृदय में बिठा देता।

शबनम ने यथा समय उम्र के 16 वर्ष पार किए; किंतु वे स्वाभाविक 16 वर्ष थे, सामाजिक नहीं। किसी ने उसे यौवन के प्रति सचेत होने का परामर्श नहीं दिया और न ही उसने स्वयं उस ओर देखा? मैंने उन्नीसवें वर्ष में कॉलिज के तृतीय वर्ष में पग रखा। ठीक तभी मेरा विवाह हो गया। समाज या समाज के

ठेकेदार के मत से वह आयु विवाह के उपयुक्त है या नहीं, इस विषय में दोनों पक्ष लड़-भिड़कर चाहे खून खराबा कर बैठे; किंतु मैं तो निवेदन के साथ यही कहना चाहता हूं कि परीक्षा पास करने के हेतु यह आयु जिस प्रकार ठीक है, विवाह करने के लिए भी उससे किसी प्रकार कम नहीं।

विवाह का सूत्रपात एक चित्र के द्वारा हुआ था। उस दिन मैं पढ़ाई-लिखाई में सिर गड़ाए बैठा था कि मेरे साथ परिहास का संबंध रखने वाली किसी आत्मीया ने मेरे सम्मुख टेबुल पर शबनम का चित्र लाकर रख दिया और कुछ पल शांति के साथ बिताकर कहा, "लो, अब झूठ-मूठ की पढ़ाई को बंद करके सचमुच की पढ़ाई करो। एकदम जी तोड़कर परिश्रम में लगाने वाली पढ़ाई।" चित्र किसी अनाड़ी चित्रकार द्वारा खींचा गया था। कन्या के मां नहीं थी, अतः उस दीर्घ श्याम केशों को बांध-संवार कर जूड़े में जरी गूंथकर कलकत्ते की प्रसिद्ध शाह या मालिक कंपनी की भद्दी, तंग जैकेट पहनाकर दूसरे पक्ष के नेत्रों में धूल झोंकने का बरबस प्रयत्न नहीं किया गया था। केवल एक सरल भरा हुआ चेहरा था, मृगी-सी दो आंखें और सीधी-सादी एक साड़ी। तब भी पता नहीं क्यों कोई अपूर्व महिमा, सौंदर्य उसे घेरे हुए था।

किसी भी एक चौकोर चौकी पर वह बैठी हुई थी। पीछे आवरण के स्थान पर एक धारीदार शतरंजी झूल रही थी। पास में तनिक-सी ऊंची तिपाई पर ही फूलदानी में फूलों के सुंदर गुलदस्ते दीख रहे थे। ईरानी कालीन पर साड़ी की तिरछी किनार के किंचित अनाबद्ध दो कोमल खाली पैर। चित्र की उस रूप-सुधा को जैसे ही मेरे मन के जादू का स्पर्श मिला कि वह मेरे अंतरतम में जाग उठी। वे दोनों कजरारी आंखें मेरे सारे चिंतन को चीरकर मुझ पर जाने कैसे अनोखे भाव से आकर स्थित हो गईं और उस तिरछी किनार के निम्न भाग के दोनों अनावृत्त पगों ने मेरे अंतर पद्मासन पर बरबस अपना घर बना लिया।

पत्रे की तिथियां आई-गई हो गईं। विवाह के दो-तीन लग्न भी बीत गए; किंतु मेरे श्वसुर को छुट्टी मिलने का नाम भी नहीं। इधर कुछ मास से मेरे देखते-देखते एक अकाल मेरी इतनी बड़ी अविवाहित उम्र को फिजूल ही उन्नीसवें वर्ष की ओर धकेलने का प्रयास कर रहा था। श्वसुर और उनके अधिकारियों पर मुझे खीझ होने लगी।

विवाह का दिन ठीक अकाल की पूर्व लग्न पर ही आकर पड़ा। उस दिन की शहनाई की हर तान आज मुझे स्मरण हो रही है। उस दिन के प्रति मुहूर्त को

मैंने चेतनता के साथ स्पर्श किया था। मेरी यह उन्नीस वर्ष की आयु मेरे जीवन में सदैव रहे, मैं उसे कदापि नहीं भुला सकूंगा।

विवाह-मंडप में चहुं ओर कोलाहाल-सा फैला हुआ था। उसी के बीच कन्या का कोमल हाथ मैंने अपने हाथों में पाया। मुझे स्पष्ट तरीके से याद है कि यही मेरे जीवन की एक परम आश्चर्यजनक घटना है। मेरे मन ने बारंबार यही कहा, "इसे मैंने पाया है, हासिल किया है; किंतु किसे? यह तो दुर्लभ है। यह नारी है, इसके रहस्य का क्या कभी ओर-छोर पाया जा सकता है?"

मेरे श्वसुर का नाम गौरीशंकर था। जिस हिमाचल पर वे उच्च पदाधिकारी थे, उसी हिमाचल के मानो गोती थे। उनके गंभीरता के शिखर पर क्षेत्र में कोई प्रशांत स्वच्छ हंसी उज्ज्वल होकर छाई हुई थी। उनके हृदय के स्नेह-स्रोत का संधा जिसने भी एक बार लिया, उसने फिर कभी उनसे संबंध-विच्छेद करने की चेष्टा नहीं की।

काम पर लौटने से पूर्व उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, "बेटा, अपनी बच्ची को 17 वर्ष से जानता हूं और तुम्हें अभी कुछ दिनों से, इस पर भी सौंपा तुम्हारे ही हाथों में है। जो निधि आज तुम्हें मिली है, किसी दिन उसका मूल्य भी परख सको, इससे बढ़कर आशीर्वाद मेरे पास नहीं।"

मेरे माता-पिता ने उन्हें बारंबार आशा भरे शब्दों में कहा, "समधीजी! कुछ चिंता न करना। तुम्हारी पुत्री जैसे पिता को छोड़कर आई है। वैसे ही यहां माता-पिता दोनों पाए ऐसा ही समझिए।"

शबनम से विदा होते समय वे हंसकर बोले, "बिटिया चल दिया। इस बूढ़े पिता को छोड़ तेरा कौन अपना रहा है? आज से यदि इसका कुछ भी गुम हो जाए, तो इसके लिए मुझे जिम्मेवार न ठहराना।" शबनम ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं, यदि कभी इतनी-सी चीज भी गुम हो गई तो आपको सारी हानि भरनी पड़ेगी।"

अंत में घर रहते हुए जिन विषयों पर बहुधा ही झंझट खड़े हो जाते थे, उनसे उसने पिता को बार-बार सचेत कर दिया। भोजन के विषय में अनियम का उन्हें खासा अभ्यास था। कुछ विशेष प्रकार के अपथ्य भोजन पर उनकी विशेष रुचि थी। पिता को उन सारे प्रलोभनों से यथासंभव दूर रखना बेटी का विशेष कर्त्तव्य था। इसी से वह पिता का हाथ पकड़कर बोली, "बाबूजी! क्या मेरी एक बात रखेंगे?" पिता ने प्रफुल्लित मन से कहा, "मानव इसलिए वचन

देता है, कि एक दिन उसे भंग कर चैन की सांस ले सके। इससे बचपन न देना ही श्रेयस्कर है।''

फिर वह कुछ न बोली और पिता के चले जाने पर उसने कमरे के द्वार बंद कर लिए इसके बाद की घटना का बखान अंतर्यामी ही कर सकते हैं। पिता-पुत्री की अश्रुहीन विदाई का दृश्य पार्श्व के कक्ष की चिर-कौतूहली अंत:पुरिकाओं ने देखा, सुना और आलोचना की, ''कैसी अजीब बात है भला? रूखी-सूखी जमीन पर रहते-रहते इन लोगों का हृदय भी सूखकर कांटा हो गया है। माया-ममता का चिह्न लेशमात्र भी नहीं रहा। राम! राम! राम!''

मेरे श्वसुर के मित्र बनमाली बाबू ने ही हमारी बातचीत पक्की की थी। वे हम लोगों के परिवार से भलीभांति परिचित थे। वे मेरे श्वसुर से बोले, ''बेटी को छोड़कर तो तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं है। यहीं इनके पास ही कोई मकान लेकर जिंदगी के शेष दिन काट डालो।''

उत्तर मिला, ''जब दान दिया है, तो नि:शेष करके ही दे डाला है। फिर लौट-लौटकर निहारने से उसकी पीड़ा बढ़ेगी। जिस अधिकार को एक बार त्याग चुका, उसे बार-बार बनाए रखने के प्रयत्न से बढ़कर विडंबना और क्या होगी?''

अंत में मुझे एकांत में ले जाकर किसी अपराधी की तरह सकुचाते हुए बोले, ''बिटिया को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव है और लोगों को खिलाना-पिलाना उसे बहुत अच्छा लगता है। यदि बीच-बीच में तुम्हें रुपये-पैसे भेज दिया करूं, इससे वे नाराज तो नहीं होंगे?''

सुनकर मुझे तनिक आश्चर्य हुआ। कारण जीवन में कभी किसी भी ओर से धनराशि मिलने पर पिताजी नाराज हुए हों, उनका ऐसा बिगड़ा मिजाज तो मैंने कभी नहीं देखा? जो हो, मेरे श्वसुर मानो मुझे घूंस दे रहे हों, कुछ ऐसे ही भाव से मेरे हाथों में सौ रुपये का एक नोट थमा कर वे वहां से चटपट चल दिए। मैंने देखा, इस बार जेब से रूमाल निकलाने की बारी आ ही गई। स्तब्ध होकर मैं विचारों में खो गया। मैंने अनुभव किया कि ये लोग बिल्कुल ही अन्य जाति के मानव हैं।

अपने सहपाठियों में कितनों ही को तो विवाह करते हुए देखा है। विवाह मंत्रों के उच्चारण के साथ-ही-साथ को एकबारगी कंठ के निम्न भागों में उतार लेते हैं। हजम करने के यंत्र तक पहुंचने पर थोड़ी देर के बाद वह पदार्थ अपने

गुणों एवं अवगुणों का हल कर सकता है और इसके फलस्वरूप हृदय के भीतर चिंता बनकर हलचल भी आरंभ हो सकती है। सो होती रहे; परंतु निगलने के रास्ते में इससे कोई रुकावट नहीं पड़ती।

किंतु मैंने विवाह-मंडप में ही समझ लिया था कि पाणिग्रहण के मंत्र द्वारा जिसे प्राप्त किया जाता है, उससे घर-गृहस्थी तो भली-भांति चल जाती है; परंतु उसके हृदय को पूर्णरूपेण पाना पंद्रह आना बाकी रह जाता है। मुझे संदेह है कि विश्व के अधिकांश पुरुष पत्नी को ठीक-ठाक पाते हैं या उनको समझते हैं। वे स्त्री को ब्याह कर ले आते हैं, किंतु उपलब्ध नहीं कर पाते और न कभी उन्हें इस बात का एहसास हो पाता है कि उन्होंने पाया कुछ भी नहीं। उनकी पत्नियां भी मृत्यु काल तक इस कटु सत्य से अवगत नहीं हो पातीं। लेकिन मैंने ऐसा अनुभव किया कि वह मेरी साधना की निधि है। वह अचल संपत्ति नहीं, संपदा है, अगाध रत्नराशि है।

शबनम, नहीं इस नाम से काम नहीं चलेगा। एक तो यह कि वह उसका वास्तविक नाम नहीं और न यह उसका यथार्थ परिचय है। वह तो दिवाकर की प्रथम रश्मि है, क्षयकालीन उषा की विदा बेला के अश्रुओं का बिंदु नहीं। नाम को गोपनीय रखकर ही आखिर क्या होगा? उसका वास्तविक नाम था...हेमंती!

मैंने देखा, सत्रह वर्ष की इस सुंदरी पर यौवन का पूरा आलोक बिखरा हुआ है। तब भी इस अवस्था की गोद में उसे चेतनता नहीं मिली है। हिमाच्छादित शिखर पर भोर का उजाला तो झलक उठा है; किंतु हिम अभी तक गल नहीं पाया है। कैसी निष्कलंक शुभ्र है वह, कैसी पवित्रता की प्रतिमा, यह मैं ही जानता हूं, मेरे मन में बराबर यह शंका बनी रहती थी कि इतनी पढ़ी शिक्षित लड़की का मन पता नहीं, क्योंकर पा सकूंगा? किंतु कुछ ही दिवसों के उपरांत मैंने जान लिया कि उसके मन की राह और शिक्षा की राह आपस में कहीं कटी ही नहीं है। कब उसके सरल-शुभ्र मन पर हल्की-सी रंगीनी छा गई, नेत्र आलसतंद्रा में झूम उठे और देहमन मानो उत्सुक हो उठे, सो निश्चिंतता के साथ कह देना मेरे लिए कठिन ही नहीं, अपितु असंभव है?

यह तो हुई एक पक्ष की बात; लेकिन अब दूसरा पक्ष भी है। वह और उसके विषय में पूर्णरूप से कहने का समय अब आ पहुंचा है?

मेरे श्वसुर राज दरबार में उच्च पदाधिकारी थे। इसलिए उनकी कितनी धनराशि बैंक के खातों में है, इस संबंध में जनश्रुति ने बहुत तरह के अनुमान

बिठाए थे। इनमें से किसी भी अनुमान की संख्या लाख के आंकड़ों से नीचे नहीं पड़ती थी। फलस्वरूप एक ओर पिता के प्रति सम्मान बढ़ता गया, तो दूसरी ओर इकलौती बेटी की ओर स्नेह।

हमारी घर-गृहस्थी का काम-धंधा और तौर-तरीका जानने के लिए हेम खूब उत्सुकता दिखला रही थी। किंतु मां ने उसे अगाध स्नेह दिखाने के अभिप्राय: से किसी काम में हाथ नहीं लगाने दिया ? यहां तक कि मायके से हेम के साथ जो पहाड़िन मेहरी आई थी, उसे उन्होंने वास्तव में अपने कक्ष में नहीं घुसने दिया, फिर भी उसकी जाति-पांति के बारे में किसी प्रकार का अपवाद नहीं किया ? वे डरती थीं कि विशेष छान-बीन करने पर कहीं कोई अरुचिकर सत्य न सुनना पड़े।

दिन इसी तरह कट जाते; लेकिन एक दिन पिताजी का मुंह घोर गंभीर दिखाई दिया। बात यही थी कि मेरे श्वसुर ने मेरे विवाह में पंद्रह सहस्र रुपये नकद और पांच सहस्र के आभूषण दिए थे। इधर पिताजी को किसी कृपापात्र दलाल से पता चला कि यह धनराशि कर्ज लेकर जुटाई गई थी; जिसका ब्याज भी कुछ मामूली न था और लाख रुपये की अफवाह तो बिल्कुल उड़ाई हुई थी।

वास्तव में मेरे विवाह के पूर्व श्वसुर की संपत्ति के परिणाम के विषय में पिताजी ने भी उनकी कोई आलोचना नहीं की थी। तब भी न जाने किसी तर्क-पद्धति से आज उन्होंने यह बिल्कुल पक्का निश्चय कर लिया था कि उनके समधी ने जान-बूझकर यह धोखा उनके साथ किया है। इसके अलावा पिताजी की यह धारणा थी कि मेरे श्वसुर राजा के मुख्यमंत्री या उसी समान किसी उच्च पद के अधिकारी हैं। पीछे पता चला कि वे वहां के शिक्षा विभाग के अध्यक्ष हैं। पिताजी ने टीका की—अर्थात् विद्यालय के मुख्याध्यापक, विश्व में जितने भी भद्र पद हैं, उनमें सबसे ऊंचा है। पिताजी ने बड़ी-बड़ी आशाएं कर रखी थीं कि आज नहीं तो कल, श्वसुर के अवकाश प्राप्त करने पर राज मंत्री के पद पर वे स्वयं ही प्रतिष्ठित होंगे।

इन्हीं दिनों के कार्तिक मास में रामलीला के उपलक्ष्य में हमारा जन्मभूमि का सारा परिवार कलकत्ते वाली हवेली में आ जुटा है। वधू को देखते ही उनमें एक छोर से दूसरे छोर तक कानाफूसी की लहर दौड़ गई। क्रमश: अस्फुट हुई। दूर के नाते से संबंधित नानी ने कहा, "आग लगे मेरे भाग्य को, नई बहू ने तो उम्र में मुझे भी हरा दिया।"

सुनकर नानी की समवयस्का बोल उठी, "अरे हमें न हराएगी, तो हमारा बच्चा विदेश से बहू लाने ही क्यों जाएगा?"

मां ने उग्रता के साथ उत्तर दिया, "भैया रे! यह क्या बात हो रही है? बहू ने अभी ग्यारह पार नहीं किए, यही अगले फाल्गुन में बारह में पांव धरेगी। पछहुआ देस में दाल-भात खा-खाकर बड़ी हुई है बेचारी, सो देह तनिक अधिक संभल गई है।"

वृद्धाओं ने शांत अविश्वास के साथ उत्तर दिया, "सो बिटिया रानी, इतनी कमजोर तो हमारी निगाह अभी नहीं हुई है। हमारे ख्याल में तो लड़की वालों ने जरूर उमर कुछ दबाकर बताई है।"

मां ने कहा, "हम लोगों ने तो जन्म-पत्री देखी है।"

"बात सच है, किंतु जन्म-पत्री से ही तो प्रमाणित होता है कि बहू की उम्र सत्रह है।"

वृद्धाओं ने कहा, "सो जन्म-पत्री में क्या धोखा-धड़ी नहीं चलती?" इस बात पर घोर वाद-विवाद छिड़ गया। यहां तक कि संघर्ष की नौबत आ गई। उसी क्षण वहां हेम आ पहुंची। उन दोनों वृद्धाओं में से एक ने उसी से पूछा, "बहू रानी! तुम्हारी उमर क्या है, बताओ तो भला?" मां ने आंखों से संकेत किया; परंतु हेम उनका मतलब नहीं समझी, बोली, "सत्रह।" मां तिलमिला उठी। उसने उसी अवस्था में कहा, "तुम्हें मालूम नहीं है।" हेम विरोध का प्रदर्शन करती हुई बोली, "मुझे ठीक मालूम है। मेरी उम्र सत्रह है।"

वृद्धाओं ने गुपचुप एक-दूसरे के हाथ दबाए। बहू की मूर्खता पर खीझ कर मां बोली, "तुम्हें तो सब मालूम है। लेकिन तुम्हारे बाबूजी ने हमसे खुद कहा है कि तुम्हारी उमर ग्यारह है।"

सुनकर हेम चौंक उठी, बोली, "बाबूजी ने! कभी नहीं।"

मां ने कहा, "तुमने तो चकित कर दिया है। समधीजी स्वयं मेरे सामने कह गए थे और बिटिया कहती है, कभी नहीं।" यह कहकर मां ने आंख से फिर संकेत किया। अबकी बार हेम संकेत समझ गई; लेकिन उसने कंठ को और भी मजबूत करके कहा, "बाबूजी! ऐसी बात कभी नहीं कह सकते।"

मां ने स्वर को धीमा करके कहा, "तू क्या मुझे झूठा ठहराना चाहती है?" हेम ने फिर वही दुहराया, "बाबूजी कभी झूठ नहीं बोलते।"

इसके बाद मां जितना भी अपवाद फैलाने लगी, उतनी ही कालिमा

फैलकर सबको एकाकार लीपने-पोतने लगी। इतना ही नहीं, मां ने नाराज होकर पिताजी के सम्मुख अपनी बहू की मूढ़ता और जिद्दीपन की शिकायत रखी। पिताजी ने उसी क्षण हेम को बुलाकर धमकाते हुए कहा, "इतनी बड़ी अविवाहित कन्या की अवस्था सत्रह वर्ष की थी, वह कन्या के लिए कोई बड़प्पन की बात है, जो उसका ढिंढोरा पीटती फिरोगी? हमारे घर में यह सब नहीं चलेगा, कहे देता हूं।"

हाय रे भाग्य, बहूरानी के प्रति पिताजी का यह मधु मिश्रित पंचम स्वर इस प्रकार उस्ताद बाजखां के घोर षडज तक कैसे उतर आया?

हेम ने व्यथित होकर पूछा, "यदि कोई उम्र जानना चाहे तो क्या उत्तर दूं?"

पिताजी बोले, "झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं। कह दिया करो, मुझे नहीं पता, मेरी सास मां जानती हैं।" इसके बाद झूठ किस तरह बताया जाता है, इसका सारा उपदेश सुनने के बाद, हेम कुछ इस तरह चुप हो गई कि पिताजी को यह समझना बाकी न रहा कि उसका सारा सदुपदेश बिल्कुल चिकने घड़े पर पानी की तरह पड़ा।

हेम की दुर्गति पर दु:ख क्या प्रकट करूं, उसके समक्ष तो मेरा मस्तक ही नत हो गया। मैंने देखा शारदीया प्रभात के आकाश की तरह उसके नेत्रों की वह सरल उदार दृष्टि मानो किसी संशय की छाया से म्लान हो उठी? भीत मृगी की तरह मानो उसने मेरे मुख की ओर देखा और सोचा, मैं कदाचित इन्हें नहीं पहचानता।

उस दिन मैं सुंदर जिल्द वाली अंग्रेजी कविताओं की एक पुस्तक क्रय करके उसके लिए ले आया था। उसने पुस्तक को अपने सुंदर हाथों से थामा, फिर धीमे-से गोद में रखकर एक बार भी खोलकर नहीं देखा। मैंने उसके दाएं हाथ को अपने हाथों में लेकर कहा, "हेम, मुझ पर नाराज न होना, मैं तो तुम्हारे सत्य के बंधन में बंधा हुआ हूं।"

सुनकर वह कुछ न बोली, केवल तनिक मुस्करा दी। सृष्टिकर्ता ने वैसी ही मुस्कान जिसे दी है उसे और भी कुछ कहने की आवश्यकता ही कहां?

इधर पिताजी की आर्थिक तरक्की के कुछ दिनों बाद से सृष्टिकर्ता के उस अनुग्रह को चिर-स्थायी कर रखने के स्वार्थ से हमारे यहां नए उत्साह से पूजा-पाठ चल रहा था। आज तक कभी भी पूजा-अर्चना में बहू की कभी भी बुलाहट

नहीं हुई। अचानक नई वधू को पूजा का थाल सजाने का आदेश मिला। वह बोली, "मां! मुझे समझा दो, कैसे क्या करना होगा?"

प्रश्न कुछ ऐसा न था, जिसे सुनकर किसी के सिर पर आसमान टूट पड़ता, यह तो सब लोग भली प्रकार जानते थे कि मातृहीना हेम प्रवास में ही इतनी बड़ी हुई है। तब भी इस उद्देश्य का आशय तो केवल हेम को लज्जित करना ही था। सो सभी ने अपने गाल पर हथेली रखकर कहा, "हाय मैया, यह भला कैसी बात है? आखिर किस नास्तिक के घर की बेटी है? बहू! घर की लक्ष्मी अब इस गृहस्थी से विदा होने ही वाली है? देरी मत समझना" और इसी प्रसंग में हेम के पिता को लक्ष्य करके न जाने कितनी अकथनीय बातें की गईं?

कटु आलोचना की हवा जब से चलनी आरंभ हुई थी, तब से हेम आज तक बराबर चुप रहकर सब सहन करती आ रही थी। कभी पल भर के लिए भी उसने किसी के सामने अश्रु न बहाए? परंतु आज तो उसकी बड़ी-बड़ी आंखों को प्लावित करती हुई अश्रुओं की झड़ी लग गई। वह खड़ी होकर बोल उठी, "आपको मालूम है, वहां मेरे बाबूजी को सब लोग ऋषि कहते हैं।"

ऋषि मानते हैं, सुनकर उपस्थित लोगों ने पेट भरकर दिल के गुबार निकाले। इस घटना के उपरांत जब कभी उसके पिता का उल्लेख करना होता, तो सब लोग यही कहते, "तुम्हारे ऋषि बाबूजी।" इस बहू का सबसे मर्म का स्थान कौन न सा है? इसे हमारे यहां सबने अच्छी प्रकार समझ लिया था। वास्तव में मेरे श्वसुर न ब्राह्मण थे और न ईसाई, और बहुत करके नास्तिक भी नहीं, पूजा-अर्चना की बात कभी उनके ध्यान में ही नहीं। बेटी को उन्होंने शिक्षित बनाने का प्रयत्न अवश्य किया था। कितने ही उपदेश भी दिए थे; किंतु सृष्टिकर्ता के संबंध में कोई उपदेश नहीं दिया? इसी बारे में पूछने पर उन्होंने इतना ही कहा, "जिस विषय को मैं स्वयं नहीं जानता उसे सिखलाना केवल कपट ही होगा।"

ससुराल में हेम की एक सचमुच की भक्तिन थी, मेरी छोटी भगिनी नारायणी, वह अपनी भाभी को बहुत स्नेह करती थी, उसके लिए उस बेचारी को काफी प्रताड़ना सहनी पड़ती थी। घर में हेम के अपमान की कहानी मुझे उसी से सुनने को मिलती थीं। हेम के मुंह से कभी किसी दिन भी सुनने को नहीं मिला? लज्जा का आवरण उसके अपने लिए नहीं था, अपितु मेरे लिए ही था। बाबूजी के पास से वह जो पाती वह मुझे पढ़ने के लिए दे देती। ये पत्र छोटे होने

पर भी रस से भरपूर होते थे। वह स्वयं भी उनको जब कभी पत्र लिखती तो मुझे अवश्य दिखा देती। बाबूजी के साथ उसका जो नाता था, उसमें अपने साथ मुझे भी बराबर का भागी बनाए बिना उसका दांपत्य पूर्ण जो नहीं हो पाता। उसके इन पन्नों में ससुराल के संबंध में किसी प्रकार की शिकायत का आभास मात्र भी नहीं ?

यदि होता, भावी आशंका की संभावना थी, कारण नारायणी से मैंने सुन लिया था कि जांच के लिए बीच में उसके पत्र गोपनीय रीति से खोल लिए जाते हैं। इन पत्रों में उसका कोई भी दोष सिद्ध न होने से ऊपर वालों का मन शांत हो, सो बात नहीं; बल्कि आशा टूटने का दुःख ही संभवतः उन्हें ज्यादा टीसा करता था। इसलिए उन्होंने चिढ़कर कहना शुरू कर दिया कि आखिर इतनी जल्दी-जल्दी पत्र डालने की ही भला कौन-सी जरूरत है ? मानो बाबा ही सब कुछ हैं। हम लोग क्या कोई नहीं ?'' और इसी प्रकार की अनेक अरुचिकर बातों का तांता शुरू हो गया। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा, ''तुम बाबूजी को पत्र लिखती हो, वह किसी और को न देकर मुझे ही दे दिया करो, कॉलिज जाते समय राह में छोड़ दिया करूंगा।''

चकित होकर हेम ने कहा, ''क्यों ?''

मैंने संकोचवश कोई उत्तर नहीं दिया। किंतु हवेली में सबने कहना आरंभ कर दिया कि अब लड़के के सिर चढ़ना शुरू हुआ है। बी.ए. की उपाधि अब ताक पर धरी रहेगी। आखिर उस बेचारे का भला दोष ही क्या है ?

सो तो है ही ! दोष किसी का है तो वह बेचारी हेम का। उसकी उम्र सत्रह वर्ष की है; वह उसका पहला दोष है। सृष्टिकर्ता का विधान ही ऐसा है, यह भी हेम का तीसरा दोष है। इसलिए तो मेरे हृदय के अणु-अणु में समस्त आकाश इस तरह की बांसुरी की तान साधे हुए है।

बी.ए. की उपाधि को निर्विकार भाव से मैं चूल्हे में फूंक सकता था; किंतु हेम के कल्याण के लिए मैंने प्रण किया कि मैं अवश्य उत्तीर्ण होऊंगा और अच्छे अंकों से। दो कारणों से मुझे अपने प्रण को पूरा कर पाने का भरोसा था। एक तो हेम के अगाध स्नेह में ऐसा आकाशव्यापी विस्तार था कि वह मन को संकीर्ण, आसक्ति में फंसाकर नहीं रहती। उस स्नेह के आस-पास कोई खूब ही स्वास्थ्यवर्द्धक वायु बहा करती थी। दूसरे परीक्षा की पुस्तकें कुछ ऐसी थीं; जिन्हें हेम के साथ-साथ पढ़ना असंभव न था। सो मैं कमर कसकर परीक्षा पास करने के उद्योग में जुट गया।

एक दिन रविवार की दुपहरिया में बाहर के कमरे में बैठा हुआ मैं मार्टिन की आचार शास्त्रावली पुस्तक की खास-खास पंक्तियों के मध्य के पथ को चीरते हुए लाल पेंसिल का हल चलाए जा रहा था कि अचानक सामने की ओर मेरी दृष्टि जा पहुंची। कमरे के सामने आंगन के उत्तर की ओर अंत:पुर को जाने के लिए एक जीना था इसी बंद जीने में बाहर की तरफ सींकचेदार खिड़कियां थीं। मैंने देखा कि हेम उन्हीं में किसी एक खिड़की के पास पश्चिम की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी है। उस ओर मल्लिक की बगिया है जिसमें कचनार का पेड़ गुलाबी पुष्पों के भार को संभाले खड़ा हुआ है।

इस भाषाहीन गहरी वेदना के रूप को आज तक इतने सुस्पष्ट भाव से मैंने नहीं देखा था। खास कुछ भी नहीं, अपने कमरे में से मैं किंचित पीछे की ओर दीवार के सहारे टिके उसके सिर के भंगी भाव भली-भांति देख पा रहा था। मेरा अपना जीवन इस तरह लबालब भर गया था कि किसी प्रकार की भी कोई शून्यता मैंने आज तक देखी ही नहीं थी। आज अकस्मात अपने बिल्कुल ही पार्श्व में मैंने किसी बहुत निराशा का घना गढ़ा देखा था। इस तलहीन गर्त को मैं क्योंकर, कैसे पूरा कर सकूंगा? मुझे तो जीवन में कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ा। न घर, न द्वार और न आज तक किसी प्रकार का अभ्यास ही; लेकिन हेम को तो सभी कुछ छोड़कर और दूर चल कर मेरे पास आना पड़ा। इसका परिणाम कितना अधिक है, सो मैंने भली-भांति सोचा भी नहीं?

हमारे घर में अपमान के कांटों की सेज पर वह बैठी है। उसको हमने आपस में विभक्त कर लिया है। उस वेदना के आसव को हम दोनों ने एक साथ ही पिया था। इसलिए हम दोनों एक-दूसरे के निकट थे। परंतु हिमाचल में पली हुई यह गिरि नंदिनी सत्रह वर्ष की लंबी अवधि तक अपने बाह्य और अंत:जीवन में कैसी विशाल युक्ति के मध्य पली थी? कैसे कठोर सत्य और उदार आलोक में उसकी छवि एवं प्रकृति इस प्रकार स्वच्छ और सबल हो चुकी है? उस सारे वैभव से आज हेम का नाता किस प्रकार निष्ठुरता के साथ तोड़ दिया गया है, इस बात का, आज से पूर्व मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया था?

कारण उस स्थान पर हेम के साथ मेरा आसन बराबरी का न था। वह तो अंदर ही-अंदर पल-पल तिल-तिल करके मृतप्राय-सी होती जा रही थी। उसे मैं सब दे सकता था; किंतु मुक्ति नहीं, मुक्ति मेरे अपने अंतर में ही कहां है? इसी हेतु कलकत्ता की इस संकरी गली में खिड़की के सींकचों के भीतर से मूक

आकाश के साथ उसके मूक मन की बातचीत हुआ करती। किसी दिन रात को उठकर मैंने देखा, वह बिछौने पर नहीं है। हाथों पर सिर को थामकर तारों से भरपूर आकाश की ओर मुंह उठाए वह छत पर लेटी है।

मार्टिन का चरित्रता का बखान वहां पड़ा रहा गया। मैं सोचने लगा कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? बाल्यकाल से ही पिताजी के साथ मेरे संबंध में मेरे संकोच की सीमा न थी। समक्ष होकर कभी उनसे किसी वस्तु के लिए प्रार्थना करने की न तो मेरी आदत ही थी और न साहस ही; किंतु आज मुझसे न रहा गया। लाज और संकोच को ताक पर धरकर मैं उनसे कह ही बैठा, "उसकी तबीयत आजकल कुछ अच्छी नहीं है, सो एक बार बाबूजी के यहां भेज देना ही अच्छा होगा।"

सुनकर पिताजी चकित रह गए। उनके मन में इस बात का तनिक भी संदेह न रहा कि हेम ने ही मुझ में इस अभूतपूर्व साहस का बीजारोपण किया है और अच्छी प्रकार से सिखा-पढ़ा कर यहां भेजा है। वे तत्काल ही उठकर अंत:पुर में गए और हेम से पूछा, "बहू! तुम्हें क्या नई बीमारी है, बताना तो भला?"

हेम ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, "कहां, बीमारी तो कुछ भी नहीं है।"

पिता ने सोचा, उत्तर तेज दिखाने के लिए है। किंतु हेम जो प्रतिदिन सूखती जा रही थी, सो नित्यप्रति देखते रहने के कारण हम लोग समझ नहीं पाते थे।

एक दिन बनमाली बाबू ने उसे देखा तो चौंक पड़े। वे बोले, "ऐं, यह क्या? तेरा मुख ऐसा कैसा हो गया है हेम? बीमार तो नहीं है?"

हेम ने कहा, "नहीं।"

परंतु इस घटना के दस दिन बाद ही अकस्मात मेरे श्वसुर आ पहुंचे। अवश्य ही बनमाली बाबू ने हेम की तबीयत की बात लिखी होगी?"

विवाह के उपरांत पिता से विदा लेते हुए हेम ने अपने अश्रु रोक लिए थे; किंतु आज जैसे ही उन्होंने उसकी ठोड़ी छूकर मुंह ऊपर को उठाया तो अश्रुओं का बांध टूट गया। उसकी भीगी पलकों ने सब-कुछ बता दिया। वह बाबूजी को मुख से आधी बात भी न कह सकी। वे इतना भी न पूछ पाए कि तू कैसी है? बेटी की क्षीण गति, म्लान मुख और पलकों को देखते ही उनकी छाती टूक-टूक हो गई।

हेम बाबूजी का हाथ पकड़कर उन्हें शयन-कक्ष में ले गई। कितनी बातें तो पूछने की हैं, बाबूजी की तबीयत भी तो ठीक नहीं दिखाई देती।

हेम बाबूजी के साथ मायके जाने के लिए उद्यत हो गई। बनमाली बाबू ने भी समधीजी से इस बात का संकेत किया। लेकिन अंततः बात पिताजी की हो रही और उसके आगे हेम की आकांक्षा कुचल दी गई।

बाप-बेटी को विदा करने की बेला फिर एक बार आ पहुंची। बेटी ने नीरव और शुष्क मुस्कान को पीले मुख पर डालते हुए कहा, "बाबूजी! यदि फिर कभी आपने मेरे लिए पागलों की भांति बेतहाशा दौड़ते हुए इस हवेली में कदम रखा तो मैं दरवाजा बंद कर लूंगी।"

बाबूजी ने उसी मुद्रा में उत्तर दिया, "बेटी! भाग्य में फिर आना लिखा तो साथ में सेंध लगाने के औजार भी लेता आऊंगा।"

इसके बाद हेम के मुख की वह मुस्कान फिर कभी देखने को नहीं मिली।

फिर क्या हुआ सो मुझसे कहा नहीं जाएगा।

सुनता हूं, मां फिर उपयुक्त वधू की खोज में है। संभव है किसी दिन मां के अनुरोध की अवहेलना मुझसे न हो सके। यही मुमकिन है; क्योंकि खैर छोड़िए इन भेद भरी बातों को।

❑❑

27

हालदार परिवार

इस परिवार में किसी प्रकार का झगड़ा होने का कोई संगत कारण नहीं था। अवस्था भी अच्छा थी, लोग भी अच्छे थे। पर फिर भी झगड़ा खड़ा हो गया। क्योंकि संगत कारण होने पर ही मनुष्य का सब-कुछ घटित होता तब तो मानवजगत गणित की कॉपी के समान होता। जरा-सी सावधानी बरतते ही हिसाब में कहीं कोई भूल न होती; और यदि हो भी जाती तो उसे रबर से मिटाकर संशोधन करने से ही काम चल जाता।

किंतु मनुष्य के भाग्यदेवता को रस का बोध है; पता नहीं गणितशास्त्र में उनका पांडित्य है या नहीं, किंतु अनुराग नहीं है, मानव-जीवन की जोड़-बाकी का विशुद्ध परिणाम निकालने में वे मनोयोग प्रकट नहीं करते। इसीलिए अपनी व्यवस्था में उन्होंने एक वस्तु जोड़ा दी है वह है असंगति। जो हो सकता है उसे वह अचानक आकर अस्त-व्यस्त कर देती है। इसी से नाट्य-लीला जम उठती है, संसार के दोनों कूलों को डुबाकर हास्य-रुदन का तूफान चलता रहता है।

इस प्रसंग में भी वही घटा—जहां कमल-वन था वहां मस्त हाथी आ उपस्थित हुआ। पंक के साथ पंकज का बेमेल सम्मिश्रण हो गया। ऐसा न होता तो इस कहानी की रचना न हो पाती।

जिस परिवार की कहानी प्रस्तुत की है उसमें निसंदेह सबसे योग्य व्यक्ति बनवारीलाल था। इसे वह स्वयं भी अच्छी तरह जानता था और इसी बात ने उसे अशांत कर डाला था। इंजन की स्टीम के समान योग्यता उसे भीतर से ठेलती थी; सामने यदि उसे रास्ता मिलता तो ठीक, यदि न मिलता तो जो आ जाता उसे ही धकेल देता।

उसके पिता मनोहरलाल का ढंग पुरानी परिपाटी के बड़े आदमियों जैसा

था। अपने समाज के मस्तक पर आसन पाकर वे उसके शिरोभूषण होकर रहें यही उनकी इच्छा थी। फलस्वरूप समाज के हाथ-पैरों के साथ वे कोई संपर्क न रखते थे। साधारण व्यक्ति काम-काज करता है, चलता-फिरता है; वे काम-काज न करने और न चलने-फिरने के अनेक आयोजनों के केंद्रस्थल में ध्रुववत् विराजमान रहते।

प्राय: देखा जाता है कि इस प्रकार के आदमी बिना प्रयत्न के अपने पास कम-से-कम दो-एक बड़े और खरे व्यक्तियों को चुंबक के समान खींच लेते हैं। इसका और कोई कारण नहीं, धरती पर एक ऐसे वर्ग का भी जन्म होता है जिसका धर्म ही है सेवा करना। ये स्वयं प्रकृति की चरितार्थता के लिए ही ऐसे अक्षम मनुष्यों को चाहते हैं जो अपना सोलह आना भार उनके ऊपर छोड़ सकें। इन सहज सेवकों को अपने काम में कोई सुख नहीं मिलता; किंतु और किसी व्यक्ति को निश्चिंत करना, उसको पूरी तरह से आराम पहुंचाना, उसको सब प्रकार के संकटों से बचाकर ले चलना, लोक तथा समाज में उसके सम्मान की वृद्धि करना, इन्हीं बातों में उनको परम उत्साह मिलता है। ये मानो एक प्रकार के पुरुष-मां हैं, सो भी अपने लड़कों के नहीं, पराए लड़कों के।

मनोहरलाल का जो नौकर था रामचरण, उसकी अपनी शरीर-रक्षा और स्वास्थ्य-हानि का एकमात्र लक्ष्य था बाबू की देह की रक्षा करना। यदि उसके सांस लेने से बाबू के सांस लेने की मेहनत बच जाती तो वह दिन-रात लुहार की धौंकनी के समान हांफने के लिए राजी था। बाहर के आदमी प्राय: सोचते कि मनोहरलाल अपने नौकर से व्यर्थ परिश्रम कराकर अन्यायपूर्वक कष्ट देते हैं। क्योंकि यदि हाथ से छूकर हुक्के की नली जमीन पर गिर पड़े तो उसे उठाना कठिन काम नहीं है, उसके लिए पुकारकर दूसरे कमरे से रामचरण को दौड़ाना अत्यंत अनुचित-सा प्रतीत होता है, किंतु, इन सब नितांत अनावश्यक कामों में अपने को अत्यावश्यक समझवाने में ही रामचरण को अपार आनंद मिलता था।

जिस प्रकार रामचरण था, उसी प्रकार एक और अनुचर था नीलकंठ। धन-संपत्ति की रक्षा का भार इस नीलकंठ के ऊपर था। बाबू के प्रसाद से परिपुष्ट रामचरण खूब चिकना था, किंतु नीलकंठ की देह के अस्थि कंकाल के ऊपर किसी प्रकार की आब नहीं थी, यह कहना ही ठीक होगा। बाबू के ऐश्वर्य भंडार के दरवाजे पर वह साक्षात् दुर्भिक्ष के समान पहरा देता था। संपत्ति तो थी मनोहरलाल की, किंतु उस पर सारी ममता थी नीलकंठ की।

नीलकंठ के साथ बनवारीलाल की खट-पट बहुत दिनों से चल रही थी। मान लो, पिता के यहां दरबारदारी करके बनवारी ने बड़ी बहू के लिए एक नया गहना बनवाने का हुक्म प्राप्त किया। उसकी इच्छा थी कि वह रुपया लेकर अपनी रुचि के अनुसार चीज तैयार करावे। किंतु ऐसा होने की गुंजायश न थी। आय-व्यय का सारा काम नीलकंठ के हाथ से ही होना चाहिए। फल यह हुआ कि गहना बना तो सही, किंतु किसी के माफिक नहीं बना। बनवारी को दृढ़ विश्वास हो गया कि सुनार के साथ नीलकंठ का हिस्सा-बंटवारा चलता है। खरे आदमियों के शत्रुओं की कमी नहीं होती। ढेरों लोगों से बनवारी यही बात सुनता आ रहा था कि नीलकंठ दूसरे लोगों को जिस मात्रा में वंचित रखता है उसके अपने घर में उतनी ही अधिक मात्रा में संचित होता जा रहा है।

और इन दो पक्षों में यह जो इतना विरोध जम गया था वह मामूली दस-पांच रुपये लेकर। नीलकंठ में व्यावहारिक बुद्धि का अभाव नहीं था, यह बात समझना उसके लिए कठिन नहीं था कि बनवारी के साथ मेल रखकर न चलने से किसी-न-किसी दिन उस पर संकट आने की संभावना हो सकती है। किंतु मालिक के धन के संबंध में नीलकंठ को कृपणता का रोग था। जिस खर्च को वह अनुचित समझता था उसे मालिक का हुक्म पाने पर भी वह किसी भी प्रकार नहीं रुक सकता था।

दूसरी ओर बनवारी को प्राय: अनुचित खर्चे की आवश्यकता पड़ती रहती। पुरुषों के अनेक अनुचित कार्यों के मूल में जो कारण रहता है वही कारण यहां भी पर्याप्त प्रबल भाव से उपस्थित था। बनवारी की पत्नी किरणलेखा के सौंदर्य के संबंध में नाना मत हो सकते थे, उसको लेकर आलोचना करना अनावश्यक है। उसमें जो मत बनवारी का था, प्रस्तुत प्रसंग में एकमात्र वही काम का है। वस्तुत: पत्नी के प्रति बनवारी के मन में जिस मात्रा में आकर्षण था उसे घर की अन्य स्त्रियां अति ही मानती थीं। अर्थात् वे अपने पति से जितना प्यार चाहतीं किंतु पाती न थीं, यह उतना था।

किरणलेखा की आयु जितनी भी रही हो, देखने में वह बच्ची-सी लगती थी। घर की बड़ी बहू की आकृति-प्रकृति जैसी मालकिन के ढंग की होनी चाहिए वैसी उसकी तनिक भी न थी। सब मिलाकर वह जैसे बहुत थोड़ी हो।

बनवारी उसे प्यार से अणु कहता। जब इससे भी पूरा न पड़ता तो कहता परमाणु। रसायन-शास्त्र की जिनको जानकारी है वे जानते हैं कि विश्व के निर्माण में अणु-परमाणुओं की शक्ति ऐसी कम नहीं है।

किरण ने किसी भी दिन पति से किसी चीज की मांग नहीं की। उसका कुछ ऐसा उदासीन भाव था मानो उसे विशेष किसी से प्रयोजन न हो। घर में उसकी बहुत-सी छोटी-बड़ी ननदें थीं, उसका मन सदा उन्हीं में लगा रहता। नवयौवन के नवजाग्रत प्रेम में जो एक एकांत तपस्या होती है, वह उसे उतनी आवश्यक प्रतीत न होती थी। इसी कारण बनवारी से जो कुछ उसे मिलता उसे वह शांतभाव से ग्रहण करती। आगे बढ़कर कुछ नहीं चाहती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पत्नी जहां स्वयं अपने मुख से फर्माइश करती है वहां उसे तर्क द्वारा कुछ-न-कुछ करना संभव होता है, किंतु स्वयं अपने साथ मोल-भाव नहीं चल सकता। ऐसे स्थल पर अयाचित दान में याचित दान की अपेक्षा खर्च अधिक पड़ जाता है।

फिर पति के प्रेम का उपहार पाकर किरण को कितनी खुशी हुई, इसे ठीक से समझने का कोई उपाय न था। इस संबंध में प्रश्न करने पर वह कहती, "बढ़िया है, अच्छा है!" किंतु बनवारी के मन का खटका किसी भी तरह दूर न होता। क्षण-क्षण में उसे लगता, शायद पसंद नहीं आया। फिर पति को कुछ डांटकर कहती, "तुम्हारा तो स्वभाव ही ऐसा है। न जाने नुक्ताचीनी क्यों करते रहते हो, क्यों, यह तो खूब अच्छा बना है।"

बनवारी ने पाठ्य-पुस्तक में पढ़ा था—संतोष मनुष्य का महत् गुण है। किंतु पत्नी के स्वभाव में एक महत् गुण उसे कष्ट पहुंचाता था। उसकी पत्नी ने न उसे केवल संतुष्ट ही नहीं किया था; अभिभूत भी किया था। वह भी पत्नी को अभिभूत करना चाहता था। उसकी पत्नी को तो कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता था—यौवन का लावण्य अपने-आप उछल पड़ता था, सेवा का नैपुण्य स्वयं प्रकाशित हो जाता। किंतु पुरुष को ऐसा सहज सुयोग प्राप्त नहीं है; पौरुष का परिचय देने के लिए उसे कुछ-न-कुछ करना पड़ता है। उसमें कोई एक विशेष शक्ति है इसका प्रमाण दिए बिना पुरुष का प्रेम म्लान बना रहता है। यदि और कुछ न भी रहे; धन जो शक्ति का एक निदर्शन है, मोर के पंखों के समान पत्नी के समीप उस धन की सारी वर्णच्छटा प्रदर्शित कर सकने पर मन को सांत्वना मिलती है।

नीलकंठ ने बनवारी की प्रेमनाट्यलीला के इस आयोजन में बराबर बाधा पहुंचाई। बनवारी घर का बड़ा लड़का था, तो भी उसकी किसी बात में नहीं चलती थी, मालिक का प्रश्रय पाकर भृत्य होते हुए भी नीलकंठ उस पर

आधिपत्य जमाता—उससे बनवारी को यही असुविधा और अपमान का अनुभव होता। वह किसी कारण उतना नहीं होता था जितना कामदेव के तूणीर में मनोनुकूल बाण जुटाने की अक्षमता के कारण होता था।

एक दिन इस घर-संपत्ति पर उसी का तो अबाध अधिकार होगा। किंतु, यौवन क्या चिर-काल रहेगा? वसंत के रंगीन प्याले में फिर यह सुधा-रस अपने-आप इस प्रकार नहीं भर उठेगा; तब रुपया विषयी का धन होकर खूब कठोर होकर जम पाएगा, गिरि-शिखर के हिम-संघात के समान उसमें बात-बात में असावधान मन की अपव्यय की लहरें क्रीड़ा नहीं करेंगी। रुपये की जरूरत तो इसी समय है, जब आनंद के लिए उसे खर्च करने की शक्ति नष्ट नहीं हुई।

बनवारी के तीन शौक थे—कुश्ती, शिकार और संस्कृत चर्चा। उसकी कॉपी संस्कृत की उद्भट कविताओं से लबालब भरी थी। बादल के दिन, चांदनी रात में, दक्षिण पवन के चलने पर बड़े काम आती थी। सुविधा यह थी कि नीलकंठ इन कविताओं की अलंकार बहुलता को कम नहीं कर सकता था। अतिशयोक्ति चाहे जितनी अतिशय हो, कोई मुनीम सरिश्तेदार उसके लिए उत्तरदायी न थे। किरण के कान के सोने में कृपणता की जाती थी किंतु उसके काम के समीप जो मंदाक्रांता गुंजरित होता था उसके छंद में एक भी मात्रा कम न होती, और उसके भाव में कोई सीमा ही नहीं रहती, ऐसा कहने से अत्युक्ति न होगी।

बनवारी का चेहरा पहलवान की तरह लंबा-चौड़ा था। जब वह क्रोधित होता तब उसके डर से लोग घबरा जाते। किंतु इस जवान व्यक्ति का मन बहुत ही कोमल था। उसका छोटा भाई वंशीलाल जब छोटा था तब उसने उसे मातृ स्नेह से पाला था। उसके हृदय में मानो प्यार-दुलार करने की भूख हो।

अपनी पत्नी को जो वह प्यार करता था उसके साथ यह चीज भी जुड़ी थी—प्यार-दुलार करने की यह इच्छा। किरणलेखा तरुच्छाया के नीचे पथ-भूली रश्मिरेखा के समान ही छोटी थी, छोटी होने के कारण ही उसने अपने पति के मन में एक बड़ी भारी संवेदना जगा रखी थी; इस पत्नी को वस्त्राभूषणों से अनेक प्रकार से सजाकर देखने की उसकी बड़ी इच्छा थी। वह भोग करने का आनंद नहीं, वह रचना करने का आनंद था, वह एक को अनेक करने का आनंद था, किरणा लेखा को नाना वर्णों में, नाना आवरणों में, नाना प्रकार के रूपों में देखने का आनंद था।

किंतु केवल संस्कृत के श्लोकों का पाठ करने से ही बनवारी का यह शौक किसी भी प्रकार पूरा नहीं हो पाता था। उसके अपने भीतर एक पुरुषोचित प्रभुशक्ति है, यह भी वह प्रकट न कर सका, और प्रेम की सामग्री को नाना उपकरणों से ऐश्वर्यपूर्ण बनाने की उसकी जो इच्छा है वह भी पूरी नहीं हो पाती।

इस प्रकार धनी की यह संतान अपनी मान-मर्यादा, अपनी सुंदरी पत्नी, उसका भरा यौवन-साधारणत: लोग जिसकी अभिलाषा करते हैं वह सब-कुछ लिए हुए भी संसार में एक दिन एक उत्पात के समान उठ खड़ी हुई।

सुखदा मधुकैवर्त की पत्नी थी, जो मनोहरलाल का असामी था। वह एक दिन घर के भीतर आकर किरणलेखा के पैर पकड़कर रोने लगी। बात यही थी कि कुछ वर्ष पूर्व नदी में मछली पकड़ने का जाल फैलाने के काम के लिए हर बार की भांति मछुओं ने एक साथ मिलकर कर्जनामा लिखकर मनोहरलाल की कचहरी से हजार रुपया उधार लिया था। अच्छी मछली मिलने पर असल रुपया ब्याज सहित चुका देने में कोई असुविधा न होती, इसलिए ऊंची ब्याज-दर पर रुपया उधार लेने में ये लोग आगा-पीछा नहीं करते थे। उसे वर्ष वैसी मछली नहीं मिली, और संयोग से एक के बाद एक तीन वर्ष तक नदी की धारा में इतनी कम मछलियां आईं कि मछुओं का खर्च भी न निकल पाया; यहां तक कि वे बड़े ऋण के जाल में फंस गए।

जो मछुए अन्य इलाकों के थे वे तो फिर दिखाई ही नहीं दिए किंतु मधुकैवर्त वहीं का असामी था, जहां उसका पुश्तैनी मकान था। उसके भागने का उपाय न होने के कारण कर्जे चुकाने का सारा उत्तरदायित्व उसके ऊपर आ पड़ा। सर्वनाश से रक्षा पाने का अनुरोध लेकर वह किरण की शरण में आई थी। किरण की सास के पास जाने से कोई लाभ न होता, इसे सभी जानते थे, क्योंकि नीलकंठ की व्यवस्था में कोई नुक्स निकाल सकता था। इस बात की वे कल्पना भी न कर सकती थीं। नीलकंठ के प्रति बनवारी के मन में खूब आक्रोश था, यह जानकर ही मधुकैवर्त ने अपनी पत्नी को किरण के पास भेजा था।

बनवारी चाहे जितना क्रोध एवं चाहे जितनी आत्मश्लाघा करे, किरण निश्चयपूर्वक जानती थी कि नीलकंठ के काम में हस्तक्षेप करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। इसलिए किरण ने सुखदा को बार-बार समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "बेटी, क्या करूं बताओ। तुम जानती हो, इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। मालिक हैं, मधु से कहो, उनको जाकर पकड़े।"

यह प्रयत्न तो पहले ही किया जा चुका था। मनोहरलाल के पास किसी बात की फरियाद करते ही वे उसके विचार का भार नीलकंठ के ही ऊपर छोड़ देते थे, इसमें कभी कोई हेर-फेर नहीं होता था। इससे प्रार्थी की विपत्ति और भी बढ़ जाती थी। दूसरी बार यदि कोई उनके पास अपील करना चाहता तो मालिक क्रोध से आग-बबूला हो उठते थे। अगर जमीन-जयादाद का झंझट ही उन्हें उठाना पड़ गया तो फिर उसका भोग करने में सुख ही क्या रहा।

सुखदा जब किरण के पास रो-पीट रही थी तभी बनवारी बगल के कमरे में बैठा अपनी बंदूक की नली में तेल लगा रहा था। बनवारी ने सारी बातें सुनीं। किरण करुण स्वर में बार-बार कह रही थी वह इसका कोई भी प्रतिकार करने में असमर्थ हैं। यह बात बनवारी की छाती में शूल के समान चुभ गई।

उस दिन माघी पूर्णिमा फाल्गुन के आरंभ में आकर पड़ी थी। दिन के समय की ऊमस को मिटाकर संध्या समय अचानक एक मतवाली हवा चल पड़ी थी। कोकिल कूक-कूककर अधीर हुई जा रही थी, बार-बार एक ही सुर की चोट से वह न जाने कहां से कि,स औदासीन्य को विचलित करने की चेष्टा कर रही थी, और आकाश में फूलों की सुगंधि का मेला लग गया था, जैसे खचाखच भीड़ हो। जंगले के बिल्कुल पास अंतःपुर के बागीचे से मुचकुंद फूल की गंध ने वसंत के आकाश को नशे में बेसुध कर दिया था।

किरण ने उस दिन लटकन (लटकन नामक वृक्ष के फल के बीज का लाल रंग) रंग की साड़ी तथा जूड़े में बेलाफूलों की माला पहनी थी। इस दंपति के प्रचलित नियमानुसार उस दिन बनवारी के लिए भी फाल्गुन-ऋतु का उत्सव मनाने के योग्य एक लटकन रंग की चद्दर और बेला के फूलों का गजरा तैयार किया गया था। रात का पहला पहर बीत गया तो भी बनवारी नहीं दिखा। यौवन का भरा प्याला आज उसे किसी प्रकार भी अच्छा नहीं लगा। प्रेम के बैकुंठलोक में इतनी बड़ी कुंठा लेकर वह कैसे प्रवेश करता। मधुकैवर्त का दुःख दूर करने की क्षमता उसमें नहीं थी, वह क्षमता नीलकंठ में थी! ऐसे का पुरुष के गले में पहनाने के लिए माला किसने गूंथी थी।

पहले उसने अपने बाहर के कमरे में नीलकंठ को बुलवाया और कर्ज चुकाने के उत्तरदायित्व के लिए मधुकैवर्त को बर्बाद करने से मना किया। नीलकंठ ने कहा, ''मधु को यदि प्रश्रय दिया जाएगा तो फिर इस तिमाही के प्रारंभ में ढेरों रुपया बाकी रह जाएगा; सभी उज्र करना शुरू कर देंगे।'' बनवारी

जब तर्क में न जीत सका तो जो मुंह में आया बकने लगा। बोला, "नीच!" नीलकंठ ने कहा, "नीच न होता तो बड़े आदमी की शरण क्यों लेता।" उसने कहा, "चोर!" नीलकंठ ने कहा, "सो तो है ही, भगवान् जिसे अपना कुछ नहीं देते, दूसरे के धन से ही तो वह प्राण बचाता है।" सारी गालियां उसने अपने सिर पर ले लीं; अंत में कहा, "वकील बाबू बैठे हैं, उनके साथ काम की बात समाप्त कर लूं। यदि आवश्यकता समझे तो फिर आऊंगा।"

बनवारी ने छोटे भाई वंशी को अपने दल में खींचकर उसी समय पिता के पास जाने का निश्चय किया। वह जानता था, अकेले जाने से कोई फल न होगा। क्योंकि, इस नीलकंठ को लेकर पिता के साथ उसकी पहले ही खटपट हो चुकी थी। पिता उसके ऊपर अप्रसन्न थे ही। एक दिन था जब सभी सोचते थे कि मनोहरलाल अपने बड़े लड़के को सबसे अधिक चाहते हैं। किंतु अब लगता था, वंशी के ऊपर ही उनका पक्षपात था। इसीलिए बनवारी ने वंशी को भी अपनी नालिश में सम्मिलित करना चाहा।

वंशी अत्यंत भला लड़का था। इस परिवार में अकेले उसी ने दो परीक्षाएं पास की थीं। इस बार वह कानून की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। दिन-रात जगकर पढ़ते-पढ़ते उसके अंतर में कुछ जमा हो रहा था या नहीं, यह अंतर्यामी ही जानें, किंतु शारीरिक दृष्टि से खर्च के सिवा और कुछ भी नहीं था। इस फाल्गुन की संध्या को उसके कमरे के जंगले बंद थे। ऋतु-परिवर्तन के समय से वह बहुत डरता था। हवा पर उसे तनिक भी श्रद्धा न थी। टेबिल पर कैरोसीन का एक लैंप जल रहा था; कुछ पुस्तकें जमीन पर तख्त की बगल में जमा थीं, कुछ टेबिल पर; दीवार के ताक पर औषधियों की कुछ शीशियां रखी थीं।

बनवारी के प्रस्ताव से वह किसी भी तरह सहमत न हुआ। बनवारी क्रुद्ध होकर गरज उठा, "तू नीलकंठ से डरता है?" वंशी इसका कोई उत्तर न देकर चुप रह गया। वास्तव में उसकी चेष्टा सदा नीलकंठ को अनुकूल रखने की होती थी। वह प्रायः पूरा वर्ष कलकत्ता के घर में ही बिताता, वहां निर्धारित रुपये की अपेक्षा उसे ज्यादा की आवश्यकता पड़ ही जाती। इस सिलसिले में नीलकंठ को प्रसन्न रखने का उसे अभ्यास हो गया था।

वंशी को भीरु, कापुरुष, नीलकंठ का चरण-चारण चक्रवर्ती कहकर गालियों की बौछार करके बनवारी अकेला ही पिता के पास जा उपस्थित हुआ। मनोहरलाल अपने बाग की पुष्करिणी के घाट पर नंगे बदन आराम से हवा खा

रहे थे। पार्षदगण पास बैठे कलकत्ता के बैरिस्टर की जिरह से जिला-कोर्ट में दूसरे गांव के जमींदार अखिल मजूमदार किस प्रकार हैरान हो गए उसी की कहानी श्रुतिमधुर बनाकर मालिक से कह रहे थे। उस दिन वसंत-संध्या की सुगंधि के सहयोग से वह वृत्तांत उनके लिए अत्यंत रमणीय हो उठा था।

सहसा बनवारी ने बीच में आकर रस-भंग कर दिया। भूमिका बांधकर अपनी बात को धीरे-धीरे प्रकट करने योग्य उसकी अवस्था नहीं थी। उसने गला चढ़ाकर एकदम; शुरू कर दिया, नीलकंठ के द्वारा उनकी क्षति हो रही है। वह चोर है, मालिक का रुपया मारकर अपना पेट भरता है इस बात का कोई प्रमाण न था और यह सत्य भी नहीं था। नीलकंठ के द्वारा संपत्ति की वृद्धि हुई थी और वह चोरी भी नहीं करता था। बनवारी ने सोचा था, नीलकंठ के सत्स्वभाव के प्रति अटल विश्वास होने के कारण ही मालिक सब मामलों में उसके ऊपर इस प्रकार आंख करके निर्भर रहते हैं। यह उसका भ्रम था। मनोहरलाल के मन में दृढ़ धारणा थी कि नीलकंठ नौका लगने पर चोरी करता है। किंतु, इस कारण उसके प्रति उनके मन में किसी प्रकार की अश्रद्धा नहीं थी। क्योंकि, अनादिकाल से संसार इसी प्रकार चला आ रहा है।

अनुचरगण की चोरी की बचत से ही तो सदा बड़े घर पलते हैं। चोरी करने की चतुराई जिनमें नहीं है, मालिक की संपत्ति की रक्षा करने की बुद्धि ही उनमें कहां से आएगी। धर्मपुत्र युधिष्ठिर से तो जमींदारी का काम नहीं चल सकता। मनोहर ने अत्यंत खीझकर कहा, ''अच्छा, नीलकंठ क्या करता है या नहीं करता है इस बात की चिंता तुम्हें नहीं होगी,'' साथ ही यह भी कहा, ''देखो न, वंशी का तो झंझट नहीं है। वह कैसा पढ़-लिख रहा है! वह लड़का फिर भी थोड़ा-बहुत आदमी सरीखा है।''

इसके पश्चात् अखिल मजूमदार की दुर्गति की कहानी में रस नहीं आया। परिणामस्वरूप मनोहरलाल के लिए उस दिन वसंत की वायु व्यर्थ ही चली और पुष्करिणी के काले जल के ऊपर चंद्र-ज्योत्स्ना के झिलमिलाने की कोई उपयोगिता न रही। उस दिन की संध्या व्यर्थ नहीं गई तो केवल वंशी और नीलकंठ के लिए। जंगला बंद करके वंशी बहुत रात तक पढ़ता रहा और वकील के साथ परामर्श करते हुए नीलकंठ ने आधी रात काट दी।

कमरे का दरिया बुझाकर किरण जंगले के पास बैठी थी। काम-काज आज उसने बहुत जल्दी समाप्त कर लिया था। रात्रि का भोजन करना बाकी था,

किंतु अभी तक बनवारी ने खाना नहीं खाया था, इसीलिए वह प्रतीक्षा कर रही थी। मधुकैवर्त की बात उसे याद भी न थी। बनवारी मधु के दु:ख का कोई प्रतिकार नहीं कर सकता, इस संबंध में किरण के मन में लेशमात्र भी क्षोभ न था। अपने पति से कभी वह किसी विशेष क्षमता का परिचय पाने के लिए उत्सुक नहीं थी। परिवार के गौरव में ही उसके पति का गौरव था। उसका पति उसके ससुर का बड़ा लड़का था, उसे इससे भी ज्यादा बड़ा होना चाहिए, इस प्रकार की बात कभी उसके मन में भी न आई। आखिर ये तो गोसाईगंज के प्रसिद्ध हालदार के वंशज थे।

बनवारी बहुत रात तक बाहर के बरामदे में टहलने के बाद कमरे में आया। वह भूल गया था कि उसने भोजन नहीं किया है। किरण उसकी प्रतीक्षा में बिना खाए बैठी थी—इस घटना ने उस दिन जैसे उसको विशेष रूप से चोट पहुंचाई हो। किरण के इस कष्ट को स्वीकार करने के साथ उसकी अपनी अकर्मण्यता का मानो मेल न बैठ पाया हो। भोजन का कौर उसके गले में अटकने लग गया। बनवारी ने अत्यंत उत्तेजना के साथ पत्नी से कहा, "जैसे भी हो, मैं मधुकैवर्त की रक्षा करूंगा।" किरण ने उसकी इस अनावश्यक उग्रता पर विस्मित होकर कहा, "लो और सुनो! तुम उसे किस तरह बचाओगे।"

मधु का ऋण बनवारी स्वयं शोध कर देगा, यही उसका प्रण था, किंतु बनवारी के हाथ में कभी रुपया जमा नहीं रहता। निश्चय किया कि अपनी तीन नली बंदूकों में से एक बंदूक और एक कीमती हीरे की अंगूठी बेचकर वह धन इकट्ठा करेगा। किंतु गांव में इन सब चीजों का उचित मूल्य नहीं मिलेगा और बेचने का प्रयत्न करने पर चारों ओर लोग कानाफूसी करेंगे। इस कारण कोई-न कोई बहाना करके बनवारी कलकत्ता चला गया। जाते समय मधु को बुलाकर आश्वासन दे गया कि उसके लिए भय की कोई बात नहीं है।

इधर बनवारी का शरणापन्न हुआ समझकर, नीलकंठ मधु पर क्रोध से आगबबूला हो उठा। चपरासियों के अत्याचार से कैवर्त मुहल्ले की इज्जत संकट में पड़ गई।

जिस दिन बनवारी कलकत्ता से लौटकर आया उसी दिन मधु का लड़का स्वरूप दौड़ा-हांफता हुआ आया और सहसा बनवारी के पैर पकड़कर 'हाय-बाप!' करके रोने लग गया। "क्या है रे, मामला क्या है?" स्वरूप ने कहा, "मेरे पिता को नीलकंठ ने कल रात से कचहरी में बंद कर रखा है।" बनवारी

का सारा शरीर क्रोध से कांपने लगा। कहा, "अभी जाकर थाने में खबर कर आ।"

'मारे गए! थाने में खबर! नीलकंठ के विरुद्ध!' उसके पैर उठना नहीं चाहते थे। अंत में बनवारी के धमकाने पर उसने थाने में जाकर खबर कर दी। पुलिस ने तुरंत कचहरी में आकर मधु को बंधन से छुड़ाया और नीलकंठ तथा कचहरी के कई चपरासियों को अभियुक्त बनाकर मजिस्ट्रेट के पास चालान कर दिया।

मनोहर बड़े परेशान हो उठे। उनके मुकदमे के मंत्री घूस के बहाने पुलिस के साथ मिलकर रुपया लूटने लगे। कलकत्ता से एक बैरिस्टर आया, वह बिल्कुल कच्चा था, नया पासशुदा। सुविधा इतनी ही थी कि जितनी फीस उसके नाम खाते में लिखी जाती थी उतनी फीस उसकी जेब में नहीं पहुंचती थी। दूसरी ओर मधुकैवर्त के पक्ष में जिला अदालत का एक कुशल वकील नियुक्त हुआ। उसका खर्च कौन दे रहा था पता नहीं चला। नीलकंठ को छः महीने की सजा हुई। हाईकोर्ट की अपील में भी वह बहाल रही।

घड़ी और बंदूक का उचित मूल्य में बिकना व्यर्थ नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप मधु बच गया और नीलकंठ को जेल हो गई। किंतु इस घटना के बाद मधु अपने घर में टिके कैसे। बनवारी ने उसको आश्वासन देकर कहा, "तू रह, तुझे कोई डर नहीं है।" किसके बल पर आश्वासन दिया था यह वही जाने- शायद, केवल अपने पौरुष के बल पर।

इस मामले के मूल में बनवारी था। इसको छिपा रखने का विशेष प्रयत्न उसने नहीं किया। बात प्रकट भी हो गई, यहां तक कि मालिक के कानों तक पहुंची। उन्होंने नौकर के द्वारा कहला भेजा, "बनवारी कभी मेरे सामने न आवे।" बनवारी ने पिता का आदेश अमान्य नहीं किया।

किरण अपने पति का व्यवहार देखकर अवाक् रह गई। यह क्या मजाक है! घर का बड़ा लड़का—पिता के साथ बातचीत बंद? तिस पर अपने कर्मचारियों को जेल में भेजकर दुनिया के लोगों के सामने परिवार का सिर नीचा कर देना! वह भी इस एक साधारण मधुकैवर्त को लेकर!

विचित्र बात थी। इस वंश में कितने बड़े बाबू जन्मे एवं नीलकंठों का भी कभी अभाव न रहा। नीलकंठ अर्थ-व्यवस्था का सारा भार स्वयं लेते रहे और बड़े बाबू पूरी तरह निश्चेष्ट भाव से वंश-गौरव की रक्षा करते रहे। ऐसी उल्टी गंगा तो कभी नहीं बही।

आज इस परिवार के बड़े बाबू के पद की अवनति होने पर बड़ी बहू के सम्मान को धक्का लगा। इससे इतने दिन बाद आज पति के प्रति किरण की वास्तविक अश्रद्धा का कारण आ जुटा। इतने दिन बाद उसकी वसंत काल की लटकन रंग की साड़ी एवं जूड़े की बेल फूलों की माला लज्जा से म्लान हो गई।

किरण की उम्र हो गई थी फिर भी कोई संतान न हुई थी। इस नीलकंठ ने ही एक दिन मालिक की अनुमति लेकर पात्री देखकर बनवारी का एक और विवाह प्राय: पक्का करा दिया था। बनवारी हालदारवंश का बड़ा लड़का था, सब बातों के पहले यह बात तो ध्यान में रखनी ही थी। वह पुत्रहीन रहे यह तो हो ही नहीं सकता था। इस बात से किरण की छाती धक्-धक् करके कांप उठी। किंतु, इसे वह मन-ही-मन स्वीकार किए बिना भी न रह सकी कि बात संगत थी। तब भी उसने नीलकंठ पर तनिक भी क्रोध न किया, अपने भाग्य को ही दोषी ठहराया।

उसका पति यदि क्रोधित होकर नीलकंठ को मारने न जाता एवं विवाह-संबंध तोड़कर पिता-माता के साथ लड़ाई-झगड़ा न करता तो किरण उसको अन्याय न मानती। यहां तक बनवारी ने अपने वंश की बात नहीं सोची, इससे अत्यंत गोपन भाव से किरण के मन में बनवारी के पौरुष के प्रति अश्रद्धा हो गई। बड़े घर का उत्तरदायित्व का क्या साधारण उत्तरदायित्व है? उसको निष्ठुर होने का अधिकार है। उसके समीप किसी तरुणी स्त्री का अथवा किसी दुखी कैवर्त के सुख-दु:ख का मूल्य ही कितना है।

साधारणत: जो घटित होता रहता है, कभी-कभी उसके घटित न होने पर कोई उसे क्षमा नहीं कर सकता, यह बात बनवारी किसी भी प्रकार न समझ सका। उसके लिए पूर्ण रूप से घर का बड़ा बाबू होना ही उचित था, अन्य किसी प्रकार के उचित-अनुचित की चिंता करके यहां की धारावाहिकता नष्ट करना उसके लिए अकरणीय था, यह उसे छोड़कर और सबसे लिए अत्यंत सुस्पष्ट था। इसको लेकर किरण ने अपने देवर से कितना दु:ख प्रकट किया था।

वंशी बुद्धिमान था; उसे खाना हजम न होता और थोड़ी-सी हवा लगते ही वह जुकाम खांसी से व्याकुल हो जाता, किंतु वह स्थिर, धीर और विचक्षण था। वह अपनी कानून की किताब का जो अध्याय पढ़ रहा था उसे टेबिल पर उलटकर रखते हुए उसने किरण से कहा, "यह पागलपन के अलावा और कुछ नहीं है।" किरण ने अत्यंत उद्वेग से सिर हिलाकर कहा, "जानते हो, देवरजी,

तुम्हारे भैया जब तक ठीक रहते हैं तब तक ठीक हैं, किंतु यदि एक बार बिगड़ जाएं तो फिर उन्हें कोई नहीं संभाल पाता। मैं क्या करूं बताओ तो सही।''

जब परिवार के सब समझदार लोगों के साथ किरण का मत पूर्ण रूप से मिल गया तो बनवारी के मन में यही बात सबसे अधिक खटकी। यह एक जरा सी स्त्री, अधखिले चंपा फूल के समान कोमल, इसके हृदय को अपनी वेदना के समीप खींच लाने में पुरुष की समस्त शक्ति परास्त हो गई। आज के दिन किरण यदि बनवारी के साथ पूर्ण रूप में मिल सकती तो उसके हृदय-क्षत देखते-ही-देखते इस प्रकार न बढ़ जाते।

मधु की रक्षा करनी होगी यह मामूली कर्त्तव्य की बात चारों ओर की ताड़ना के कारण बनवारी के पक्ष में वास्तव में एक सनक बन गई। इसकी तुलना में अन्य सब बातें उसके लिए तुच्छ हो गईं। दूसरी ओर जेल से नीलकंठ ऐसे स्वस्थ भाव से लौट आया मानो वह जमाई षष्ठी (बंगाल में जेठ के महीने में षष्ठी के दिन दामाद को बुलाकर खूब आदर-सत्कार से खिला-पिलाकर पैसे-कपड़े आदि भेंट में देते हैं) की दावत पर गया था। वह फिर से यथारीत अम्लान मुख से अपने काम में जुट गया।

मधु को गृह-विहीन किए बिना प्रजा के सामने नीलकंठ के मान की रक्षा नहीं थी। मान की तो उसे अधिक चिंता न थी, किंतु असामियों के उसे न मानने पर उसका काम नहीं चल सकता था, इसी कारण उसको सावधान होना पड़ा। अत: मधु को तिनके के समान उखाड़ने के लिए उसने अपने हंसिये पर शान चढ़ाना शुरू किया।

इस बार बनवारी छिपा नहीं रहा। उसने नीलकंठ को स्पष्ट बता दिया कि चाहे जो हो वह मधु को नष्ट नहीं होने देगा। पहले तो उसने मधु का जो कर्ज था वह अपने पास से पूरा चुकाया। उसके बाद और कोई उपाय न देखकर वह स्वयं जाकर मजिस्ट्रेट को सूचना दे आया कि नीलकंठ अन्यायपूर्वक मधु को विपद् में डालने का उद्योग कर रहा है।

सभी हितैषियों ने बनवारी को समझाया, जिस प्रकार की घटनाएं घट रही थीं, उनसे मनोहर किसी दिन उसको त्याग देगा। त्याग करने पर जो-जो कष्ट भुगतने होते हैं वे यदि न होते तो अब तक मनोहर ने उसको कब का विदा कर दिया होता। किंतु, बनवारी की मां मौजूद थीं एवं आत्मीय-स्वजन नाना लोगों के नाना प्रकार के मत थे, उसे लेकर कोई समस्या खड़ी करने के वे एकदम अनिच्छुक थे, अत: अभी तक मनोहर चुप थे।

होते-होते एक दिन सुबह अचानक दिखाई पड़ा, मधु के घर में ताला लगा है। रात-ही-रात में वह न जाने कहां चला गया था। मामला अत्यंत अशोभन होते देखकर नीलकंठ ने जमींदार-सरकार से रुपया दिलवाकर उसको सपरिवार काशी भेज दिया था। पुलिस यह जानती थी, इसलिए कोई हंगामा नहीं हुआ। नीलकंठ ने चतुराई से अफवाह उड़ा दी कि मधु को उसकी स्त्री-पुत्र-कन्या समेत अमावस्था की रात्रि को काली पर बलि चढ़ाकर मृत देहों को थैले में भरकर गंगा की मझधार में डुबा दिया गया है। भय से सबका शरीर सिहर उठा और नीलकंठ के प्रति जनसाधारण की श्रद्धा पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गई।

बनवारी जिस बात को लेकर मत्त था फिलहाल उसकी शांति हो गई; किंतु संसार उसके लिए पहले-जैसा न रहा।

एक दिन बनवारी वंशी को बहुत चाहता था, आज देखा, वंशी उसका कोई नहीं, वह हालदार परिवार का था। और, उसकी किरण, जिसके रूप में ध्यान ने यौवनारंभ के पहले से ही क्रमशः उसके हृदय के लता-वितान को लपेट-लपेटकर आच्छन्न कर रखा था, वह भी पूर्ण रूप से उसकी नहीं थी, वह भी हालदार परिवार की थी। एक दिन था, जब नीलकंठ की फर्माइश से बना गहना उसकी इस हृदयविहारिणी किरण के शरीर पर अच्छी तरह से शोभित न होने के कारण बनवारी असंतोष प्रकट करता था। आज देखा, कालिदास से आरंभ करके अमरु और चोर कवियों की जिन समस्त कविताओं के सुहाग से प्रेयसी को मंडित करता आ रहा था वह हालदार परिवार की इस बड़ी बहू को किसी भी प्रकार शोभा नहीं दे रहा था।

हाय रे! वसंत की हवा अब भी बहती थी, रात में श्रावण की वर्षा अब भी मुखरित हो उठती थी एवं अतृप्त प्रेम की वेदना शून्य हृदय के पथ-पथ पर रोती हुई फिर रही थी।

प्रेम की गहनता की सभी को तो आवश्यकता नहीं है; संसार अधिकांश लोगों का काम थोड़े से निश्चित संबल से ही अच्छी तरह चल जाता है। इस नपी-तुली व्यवस्था से विशाल जगत के क्रम में कोई व्यतिक्रम नहीं घटता, किंतु कई लोगों का इससे पूरा नहीं पड़ता। वे अजात पक्षीशावक के सामने केवल अंडे में प्राप्त अल्प खाद्य-रस लेकर ही जीवित नहीं रहते, वे अंडा फोड़कर बाहर निकल आते हैं, उन्हें अपनी शक्ति से खाद्य-संग्रह करने का विस्तृत क्षेत्र

चाहिए। बनवारी वैसी ही भूख लेकर पैदा हुआ था, अपने प्रेम को अपने पौरुष द्वारा सार्थक करने के लिए उसका चित्त उत्सुक था, किंतु वह जिस ओर दौड़ना चाहता था उसी ओर हालदार परिवार की पक्की दीवार थी; हिलते-डुलते ही उसका सिर टकरा जाता था।

दिन फिर पहले की ही तरह बीतने लगे। पहले की अपेक्षा बनवारी शिकार में अधिक मन लगाने लगा, इसके अतिरिक्त बाहर से उसके जीवन में और कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखता था। घर में वह भोजन करने जाता, भोजन के पश्चात् पत्नी के साथ काफी बातचीत भी होती थी। मधुकैवर्त को किरण ने आज भी क्षमा नहीं किया था क्योंकि, इस परिवार में उसके पति ने अपनी प्रतिष्ठा जो खो दी थी उसका मूल कारण था मधु। इसीलिए क्षण-क्षण में न जाने क्यों उस मधु की बात अत्यंत कटु होकर किरण के मुंह पर आ जाती।

मधु की नस-नस में शैतानी भरी थी, वह शैतानों में अग्रगण्य था, और मधु पर दया करने का अर्थ था पूरी तरह ठगा जाना; इस बात को बार-बार विस्तार से कहने पर भी वह न थकती थी। पहले दो-एक दिन बनवारी ने प्रतिवाद का प्रयत्न करके किरण की उत्तेजना को और बढ़ा दिया था, उसके बाद से वह कोई प्रतिवाद न करता। इस प्रकार वह अपने नियमित गृहधर्म की रक्षा कर रहा था; किरण इसमें किसी अभाव या कमी का अनुभव न करती, किंतु भीतर-ही-भीतर बनवारी का जीवन विवर्ण, रसहीन एवं चिरमुक्त होता जा रहा था। इसी बीच पता लगा कि परिवार की छोटी बहू, वंशी की स्त्री गर्भवती है। सारा परिवार आशा से प्रफुल्लित हो उठा। इस महद्वंश के प्रति कर्त्तव्य-पालन में किरण से जो त्रुटि हो गई थी, इतने दिन बाद उसके पूरे होने की संभावना दिखी; अब षष्ठी देवी की कृपा से कन्या न होकर पुत्र होने में ही कुशल थी।

पुत्र ही पैदा हुआ। छोटे बाबू कॉलेज की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, और वंश की परीक्षा में भी उन्होंने प्रथम स्थान पाया। उनका सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। अब उनके सम्मान की सीमा न रही।

सभी का ध्यान इस बच्चे पर केंद्रित हो गया। किरण तो उसको क्षण-भर के लिए भी गोद से न उतारना चाहती थी। उसकी ऐसी दशा हो गई कि मधुकैवर्त के स्वभाव की कुटिलता की बात भी वह प्रायः भूल-सी गई थी।

बनवारी बच्चों को बहुत प्यार करता था। छोटों, असमर्थों, सुकुमारों के प्रति उसमें गंभीर स्नेह एवं करुणा के भाव थे। हर आदमी को विधाता कोई ऐसा

गुण देते हैं जो उसकी प्रकृति के विरुद्ध होता है, यदि ऐसा न होता तो बनवारी पक्षियों का शिकार कैसे करता था, समझ में नहीं आता।

किरण की गोद में एक शिशु को देखने की इच्छा बनवारी के मन में बहुत समय से अतृप्त बनी हुई थी। इस कारण वंशी के लड़का होने पर पहले तो उसके मन में एक ईर्ष्याजनित वेदना उत्पन्न हुई, पर उसको दूर करने में उसे देर न लगी। इस शिशु को बनवारी खूब स्नेह कर सकता था, किंतु व्याघात का कारण यह हो गया कि जैसे-जैसे दिन बीतने लगे किरण उसको लेकर बहुत अधिक रत रहने लगी। पत्नी के साथ बनवारी के मिलन में बहुत व्यवधान पड़ने लगा।

बनवारी स्पष्ट रूप से समझ गया कि इतने दिन बाद किरण को कुछ ऐसा मिल गया है जो उसके हृदय को वास्तव में पूर्ण कर सकता है। बनवारी जैसे अपनी पत्नी के हृदय हरम का एक किराएदार मात्र हो; जितने दिन घर का मालिक अनुपस्थित था उतने दिन सारे घर का वह उपभोग करता था, कोई बाधा नहीं देता था। अब घर का स्वामी आ गया था। इससे किराए का आदमी बाकी सब छोड़कर केवल अपने कोने के कमरे पर ही दखल करने का अधिकारी था।

किरण स्नेह में कहां तक तन्मय हो सकती थी, उसकी आत्म-विसर्जन की शक्ति कितनी प्रबल थी, यह बनवारी ने जब देखा तब उसका मन सिर हिलाकर बोला, 'इस हृदय को मैं जगा तो नहीं पाया किंतु जितना मुझसे साध्य था उतना तो कर ही दिया।'

केवल इतना ही नहीं, इस लड़के के माध्यम से मानो किरण के लिए वंशी का कमरा ही ज्यादा अपना हो गया। उसकी सारी मंत्रणा, आलोचना वंशी के साथ ही अच्छी तरह जमती। उस सूक्ष्म, सूक्ष्म शरीर, रसरक्तहीन, क्षीणजीवी भीरु आदमी के प्रति बनवारी की अवज्ञा क्रमशः गंभीरतर हो रही थी। संसार के सब आदमी बनवारी की अपेक्षा उसी को सब मामलों में योग्य समझें, यह तो बनवारी ने सहन कर लिया, किंतु आज जब उसने बार-बार देखा कि मनुष्य के रूप में उसकी पत्नी के लिए भी वंशी का मूल्य अधिक था, तब अपने भाग्य एवं जगत् के प्रति उसका मन प्रसन्न नहीं हुआ।

इसी बीच परीक्षा जब निकट थी कलकत्ता के घर से खबर आई कि वंशी ज्वर से पीड़ित है और डॉक्टर रोग को असाध्य समझकर आशंका कर रहे हैं। बनवारी ने कलकत्ता जाकर दिन-रात जगकर वंशी की सेवा की किंतु उसको बचा नहीं पाया।

मृत्यु ने बनवारी की स्मृति से सारा कांटा निकाल दिया। वंशी उसका छोटा भाई था एवं शिशु अवस्था में भैया की गोद उसके स्नेह का आश्रय थी। यह बात उसके मन में आंसुओं से धुलकर उज्ज्वल हो गई।

इस बार लौटकर वह संपूर्ण मनोयोग से शिशु का पालन-पोषण करने के लिए कृतसंकल्प हुआ। किंतु इस शिशु के संबंध में किरण का उसके प्रति विश्वास खो गया था। उसके प्रति अपने पति के विराग को उसने पहले से ही लक्ष्य किया था। पति के संबंध में किरण के मन में न जाने कैसी एक धारणा बन गई थी कि दूसरे साधारण लोगों के लिए जो स्वाभाविक था अपने पति के पक्ष में ठीक उसका उल्टा था।

उनके वंश का यही तो एकमात्र कुल-प्रदीप था, इसका मूल्य क्या था यह सभी समझते थे, किंतु इसीलिए उसके पति इसे नहीं समझते थे। किरण के मन में हमेशा भय बना रहता था कि कहीं बनवारी की विद्वेष-दृष्टि के कारण बच्चे का अमंगल न हो। उसका देवर नहीं बचा, किरण के संतान होने की संभावना है यह कोई आशा नहीं करता था, अतएव इस शिशु को किसी तरह सब प्रकार के अकल्याणों से बचाकर रख सकने में ही कुशल थी। इस कारण वंशी के पुत्र की देख-भाल करने का रास्ता बनवारी के लिए बहुत सुगम नहीं हुआ।

घर के सब लोगों के स्नेह के बीच लड़का बड़ा होने लगा। उसका नाम रखा गया हरिदास। इतने अधिक लाड़-प्यार की छाया में उसने जाने कैसा दुबला-पतला और नाजुक रूप पाया। तागा-तावीज-कवच से उसका सारा शरीर ढका था, रक्षकों के दल से वह सदा घिरा रहता।

बीच-बीच में, समय-समय पर बनवारी के साथ उसकी भेंट होती। ताऊ का घोड़े को चाबुक मारना उसे बड़ा अच्छा लगता था। देखते ही कहता था, 'चाबु।' बनवारी कमरे से चाबुक लाकर हवा में सांय-सांय शब्द करता रहता, उसे बड़ा आनंद आता। बनवारी कभी-कभी उसे अपने घोड़े पर बैठा देता, इससे घर के सब लोग एकदम 'वाह-वाह' करके दौड़े आते। बनवारी कभी-कभी अपनी बंदूक लेकर उसके साथ खेलता, किरण देख पाती तो दौड़कर बालक को हटा ले जाती। किंतु, इन सब निषिद्ध मनोरंजनों में ही हरिदास का सबसे अधिक अनुराग था। इससे सब प्रकार के विघ्न रहते हुए भी ताऊ के साथ उसकी खूब मित्रता हो गई।

दीर्घकालीन निर्विघ्नता के पश्चात् एक बार अचानक इस परिवार में मृत्यु

का आगमन हुआ। पहले मनोहर की पत्नी की मृत्यु हुई। उसके बाद नीलकंठ जब मालिक के लिए विवाह की बातचीत और पत्री की खोज कर रहा था तभी विवाह की लग्न के पहले ही मनोहर की मृत्यु हो गई। उस समय हरिदास की आयु आठ साल थी। मृत्यु के पहले मनोहर विशेष रूप से अपने इस छोटे वंशधर को किरण और नीलकंठ के हाथों समर्पित कर गए थे, बनवारी से कोई बात ही न की थी।

बक्स से जब वसीयतनामा बाहर निकला तब पता चला, मनोहर अपनी संपत्ति हरिदास को दे गए हैं। बनवारी यावज्जीवन दौ सौ रुपये के हिसाब से मासिक वृत्ति पाएंगे। नीलकंठ वसीयतनामे का एक्जिक्यूटर था; उसके ऊपर यह भार था कि वह जितने दिन जीवित रहे, हालदार परिवार की संपत्ति एवं गृहस्थी की व्यवस्था वही करे।

बनवारी समझ गए कि इस परिवार में उन्हें न कोई लड़का सौंपकर ही निश्चिंत हो सकता है और न संपत्ति सौंपकर ही। वे कुछ कर नहीं सकते सब कुछ नष्ट कर देते हैं, इस संबंध में इस परिवार के किसी भी व्यक्ति में मतभेद न था। अतएव, वे व्यवस्था के अनुसार भोजन करके कोने के कमरे में सोएंगे, उनके लिए इसी तरह का विधान था।

उन्होंने किरण से कहा, "मैं नीलकंठ की पेंशन खाकर जीवित नहीं रहूंगा। यह घर छोड़कर मेरे साथ कलकत्ता चलो!"

"मैया री, यह भी कोई बात है! यह तो तुम्हारे ही बाप की संपत्ति है, और हरिदास तो तुम्हारे अपने ही लड़के के समान है। उसके नाम जायदाद लिख दी गई है इस पर तुम क्रोध क्यों करते हो।"

हाय, हाय! उसके पति का हृदय कैसा कठोर है! इस दुधमुंहे बच्चे के प्रति भी उनके मन में ईर्ष्या जगी है! उसके ससुर ने जो वसीयतनामा लिखा था किरण मन ही-मन उसका पूर्ण समर्थन करती थी। उसका दृढ़ विश्वास था कि यदि जायदाद बनवारी के हाथ में पड़ जाती तो राज्य के जितने छोटे आदमी थे, जितने यदु, मधु, जितने कैवर्त एवं कोलियां का दल था वह उनको ठगकर कुछ भी बाकी न छोड़ता एवं हालदार वंश की यह भावी आशा एक दिन बीच में ही डूब जाती। ससुर के कुल में रोशनी करने के लिए दिया तो घर में आ गया था; अब उसका तैल-संचय नष्ट न हो इसके लिए नीलकंठ ही तो उपयुक्त प्रहरी था।

बनवारी ने देखा, नीलकंठ अंत:पुर में आकर हर कमरे के सारे सामान की

सूची बना रहा है और जहां जितने संदूक-बक्स हैं उनमें ताला लगा रहा है। अंत में किरण के सोने के कमरे में आकर वह बनवारी के नित्य व्यवहार में आने वाली सारी चीजों की सूची बनाने लगा। नीलकंठ का अंत:पुर में आना-जाना था इसलिए किरण उससे पर्दा नहीं करती थी। किरण ससुर के शोक में क्षण-क्षण में आंसू पोंछते हुए रुंधे गले से विशेष रूप से सारी चीजें समझाने लगी।

बनवारी ने सिंह-गर्जना करते हुए नीलकंठ से कहा, "तुम इसी समय मेरे कमरे से बाहर निकल जाओ!"

नीलकंठ ने नम्र होकर कहा, "बड़े बाबू, मेरा तो कोई दोष नहीं। मालिक के वसीयतनामे के अनुसार मुझे तो सब-कुछ समझ-बूझ लेना होगा। माल-असबाब सभी तो हरिदास का है।"

किरण ने मन-ही-मन कहा, 'देखो जरा इनका हाल। हरिदास क्या पराया है! अपने लड़के की जायदाद का उपभोग करने में लज्जा कैसी! और, माल-असबाब आदमी के साथ जाएगा क्या! आज नहीं तो कल, बाल-बच्चे ही तो भोग करेंगे।'

इस घर की जमीन बनवारी के पैरों में कांटे के समान चुभने लगी, इस घर की दीवार मानो उसके नेत्रों को जलाने लगी। उसे किस बात का दु:ख है यह पूछने वाला व्यक्ति भी इस बड़े परिवार में कोई न था।

बनवारी का मन उसी क्षण घर-बार सब छोड़कर बाहर चले जाने के लिए व्याकुल हो उठा। किंतु उसके क्रोध की ज्वाला शांत नहीं होना चाहती थी। वह चला जाए और नीलकंठ आराम से एकाधिपत्य करे, यह कल्पना वह सहन न कर सका। तत्काल कोई गुरुतर अनिष्ट किए बिना उसका मन शांत नहीं हो पा रहा था। वह बोला, "देखता, हूं, नीलकंठ कैसे संपत्ति की रक्षा करता है।"

बाहर अपने पिता के कमरे में जाकर देखा, वहां कोई न था। सभी अंत:-पुर के बर्तन-बासन और गहने आदि देख-भाल करने गए थे। अत्यंत सावधान व्यक्तियों से भी सावधानी में त्रुटि रह जाती है। नीलकंठ को यह होश न था कि मालिक का बक्स खोलकर वसीयतनामा निकालने के बाद बक्स में ताला नहीं लगाया गया। उस बक्स में एक बंडल में बंधी समस्त मूल्यवान दलीलें थीं। उन प्रमाण-पत्रों पर ही इस हालदार वंश की संपत्ति भी प्रतिष्ठित थी।

बनवारी इन प्रमाण-पत्रों का कुछ भी विवरण न जानता था, किंतु ये बड़े काम के थे और इनके अभाव में मामले-मुकदमे में पग-पग पर अटकना पड़ेगा

यह वह समझता था। कागज-पत्र लेकर एक रूमाल में बांधकर वह अपने बाहर के बाग में चंपा के नीचे बंधे चबूतरे पर बैठकर बहुत देर तक सोचता रहा।

दूसरे दिन श्राद्ध के विषय में बातचीत करने के लिए नीलकंठ बनवारी के पास उपस्थित हुआ। नीलकंठ की देह की भंगिमा अत्यंत विनम्र थी, किंतु उसके चेहरे पर ऐसा भाव था, अथवा नहीं था, जिसे देखकर अथवा कल्पना करके बनवारी का सर्वांग जल उठा। उसे लगा, नीलकंठ नम्रता द्वारा उस पर व्यंग्य कर रहा है।

नीलकंठ बोला, "मालिक के श्राद्ध के संबंध में—"

बनवारी ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी, बीच में ही बोल उठा, "सो मैं क्या जानूं?"

नीलकंठ ने कहा, "यह क्या कहते हैं! आप ही तो श्राद्धाधिकारी हैं।"

"क्या कहने हैं अधिकार के! श्राद्ध का अधिकार! संसार में केवल इतने ही के लिए मेरी जरूरत है, मैं और किसी काम का नहीं!" बनवारी गरज उठा, "जाओ, जाओ! मुझे तंग मत करो!"

नीलकंठ चला गया, किंतु उसे पीछे से देखकर बनवारी को लगा कि वह हंसता हुआ गया। बनवारी को लगा, घर के सब नौकर-चाकर इस अश्रद्धेय, परित्यक्त को लेकर आपस में हंसी-मजाक कर रहे हैं। जो व्यक्ति घर का होते हुए भी घर का नहीं होता उसके समान भाग्य द्वारा विडंबित और कौन हो सकता है! रास्ते का भिखारी भी नहीं।

बनवारी प्रमाण-पत्रों का बंडल लेकर बाहर निकला। हालदार-परिवार के प्रतिवेशी और प्रतिद्वंद्वी जमींदार थे प्रतापपुर के वॉडूज्ये (बनर्जी) जमींदार। बनवारी ने निश्चय किया, "इन प्रमाण-पत्र दस्तावेजों को उनके हाथ दे दूंगा, सब संपत्ति सब खाक में मिल जाए।'

बाहर निकलते समय हरिदास ने ऊपरी मंजिल से अपने सुमधुर बालक-कंठ से पुकारते हुए कहा, "ताऊजी, तुम बाहर जा रहे हो, मैं भी तुम्हारे साथ जाऊंगा!"

बनवारी को लगा, बालक के अशुभ ग्रह यह बात उससे कहलवा रहे थे। "मैं तो सड़क पर निकल ही पड़ा हूं, इसे भी अपने साथ निकाल ले चलूं। जाएगा, जाएगा, सब खाक में मिल जाएगा।"

बाहर बागीचे तक पहुंचते ही बनवारी को जोरों का शोर-गुल सुनाई

दिया। पास ही हाट से लगी एक विधवा की कुटी में आग लग गई थी। अपने पुराने स्वभाव के अनुसार इस दृश्य को देखकर बनवारी चुप न रह सका। प्रमाण-पत्रों का अपना बंडल चंपा के पेड़ के नीचे रखकर आग की ओर दौड़ा।

जब लौटकर आया तो देखा उसका वह कागजों का बंडल वहां न था। तत्काल हृदय में शूल-सा चुभा और यह बात मन में आई, 'नीलकंठ से फिर मेरी हार हुई। विधवा का घर जलकर राख हो जाने में क्या हानि थी।' उसे लगा, वह बंडल दुबारा चालाक नीलकंठ के ही हाथ में जा पहुंचा।

तूफान की तरह एकदम आकर वह कचहरी के कमरे में उपस्थित हुआ। नीलकंठ ने तुरंत बक्स बंद करके सम्मान के साथ उठकर खड़े होकर बनवारी को प्रणाम किया। बनवारी को लगा, उस बक्स में ही उसने कागज छिपा लिए हैं। बिना कुछ कहे तुरंत उस बक्स को खोलकर वह उसमें रखे कागज टटोलने लगा। उसमें हिसाब का खाता और उसी से संबंधित कागज नत्थी थे। बक्स को उल्टा करके झाड़ दिया, पर कुछ नहीं मिला।

रुद्धप्राय स्वर से बनवारी ने कहा, "तुम चंपा के नीचे गए थे?"

नीलकंठ बोला, "जी हां, गया क्यों नहीं था। देखा, आप घबराकर दौड़ रहे हैं, क्या बात है, यही जानने गया था।"

बनवारी, "रूमाल में बंधे मेरे कागज तुम्हीं ने लिए हैं।"

नीलकंठ ने अत्यंत भले आदमी की तरह कहा, "जी नहीं।"

बनवारी, "झूठ बोल रहे हो। तुम्हारा भला नहीं होगा, अभी लौटा दो।"

बनवारी ने झूठ-मूठ झूठी डांट-डपट की। उसकी क्या चीज खो गई थी सो भी वह नहीं बता सका और उस चोरी के माल के संबंध में अपना कोई जोर नहीं था, यह जानकर वह असावधान मूढ़ मन-ही-मन जैसे अपने को ही धिक्कारने लगा।

कचहरी में इस प्रकार पागलपन करके वह फिर चंपा के नीचे ढूंढ़ने लगा। मन-ही-मन माता की शपथ लेकर उसने प्रतिज्ञा की, "जैसे भी हो मैं फिर से इन कागजों का उद्धार करके ही रहूंगा।" किस प्रकार उद्धार करेगा वह सोचने की उसमें शक्ति न थी, केवल क्रुद्ध बालक के समान बार-बार जमीन पर पैर पटकते हुए बोला, "जरूर उद्धार करूंगा, जरूर करूंगा।

थककर वह पेड़ के नीचे बैठ गया। कोई नहीं, उसका कोई नहीं था और उसका कुछ नहीं था। अब से उसको नि:संबल अपने भाग्य से और संसार से

जूझना पड़ेगा। उसके लिए मान-प्रतिष्ठा, शिष्टता, प्रेम, स्नेह, कुछ भी नहीं रह गया था। केवल मरने और मारने का काम शेष था।

इस प्रकार मन में छटपटाते हुए अत्यंत थकावट के कारण चबूतरे पर लेटते ही उसे न जाने कब नींद आ गई। जब जागा तो एकाएक समझ न सका वह कहां है। अच्छी तरह सजग होकर उठकर रेखा उसके सिरहाने हरिदास बैठा था। बनवारी को जागते हुए देखकर हरिदास बोल उठा, "ताऊ, तुम्हारा क्या खो गया था, बताओ तो।"

बनवारी स्तब्ध रह गया। हरिदास के इस प्रश्न का उत्तर न दे सका।

हरिदास ने कहा, "अगर मैं ला दूं तो मुझे क्या दोगे?"

बनवारी को लगा, शायद और कुछ था। उसने कहा, "मेरे पास जो-कुछ है सब तुझे दूंगा।"

यह बात उसने हंसी में कही थी। वह जानता था, उसका कुछ नहीं था।

तब हरिदास ने अपने कपड़ों में से बनवारी के रूमाल में लिपटा कागज का वह बंडल निकाला। इस रंगीन रूमाल के ऊपर बाघ की तस्वीर बनी थी; यह तस्वीर उसके ताऊ ने उसे कई बार दिखाई थी। इस रूमाल के प्रति हरिदास का विशेष लोभ था। इसी कारण आग लगने के शोर-गुल में नौकर जब बाहर दौड़ गए थे। तभी बागीचे में आकर हरिदास ने चंपा के नीचे दूर से ही इस रूमाल को देखकर पहचान लिया था।

बनवारी हरिदास को खींचकर छाती से लगा चुपचाप बैठा रहा; कुछ देर बाद –उसकी आंखों से 'टप-टप' करके आंसू टपकने लगे। उसे याद आया, बहुत दिन पहले वह अपने एक खरीदे हुए कुत्ते को सजा देने के लिए बार-बार उसे चाबुक मारने के लिए बाध्य हुआ था। एक बार उसका चाबुक खो गया, कहीं मिलता ही न था। जब वह चाबुक की आशा छोड़ बैठा तभी देखा, वही कुत्ता कहीं से चाबुक मुंह में दबाकर मालिक के सामने बड़े आनंद से पूंछ हिला रहा है। इसके बाद वह फिर कभी कुत्ते को चाबुक नहीं मार पाया।

झटपट आंखों से आंसू पोंछकर बनवारी ने कहा, "हरिदास, तू क्या चाहता है, मुझे बता!"

हरिदास ने कहा, "ताऊजी, मैं तुम्हारा वह रूमाल चाहता हूं।"

बनवारी बोला, "आ हरिदास, तुझे कंधे पर चढ़ाऊं।"

हरिदास को कंधे पर चढ़ाकर बनवारी तत्क्षण अंतःपुर में गया। शयन-

कक्ष में जाकर देखा, किरण सारे दिन धूप में सुखाए गए कंबल को बरामदे से उठाकर कमरे में जमीन पर बिछा रही थी। बनवारी के कंधे पर हरिदास को देखकर वह उद्विग्न होकर बोली, "उतार दो। तुम गिरा दोगे इसे।"

बनवारी ने किरण के चेहरे पर दृष्टि घुमाते हुए कहा, "अब मुझसे मत डरना, मैं नहीं गिराऊंगा।"

यह कहकर हरिदास को कंधे से उतारकर किरण की गोद की ओर बढ़ा दिया। उसके बाद उन कागजों को लेकर किरण के हाथ में देकर कहा, "यह हरिदास की धन-संपत्ति के प्रमाण-पत्र हैं। यत्न से रखना!"

किरण ने आश्चर्य से कहा, "तुम्हें कहां मिले?"

बनवारी ने कहा, "मैंने चोरी की थी।"

उसके बार हरिदास को छाती से लगाकर कहा, "यह ले बेटा, अपने ताऊ की जिस मूल्यवान संपत्ति के प्रति तुझे लोभ हुआ है, उसे ले!"

और यह कहते हुए रूमाल उसके हाथ में दे दिया।

उसके बाद फिर एक बार अच्छी तरह से किरण की ओर ताककर देखा। देखा, वह तन्वी नहीं रह गई है, कब मोटी हो गई थी यह उसने लक्ष्य नहीं किया था। इसी बीच हालदार परिवार की बड़ी बहू के उपयुक्त उसका चेहरा भर गया था। अब क्या होगा, और अमरुशतक की कविताओं को भी अन्य संपूर्ण संपत्ति के साथ विसर्जित कर देना ही बनवारी के लिए अच्छा होगा।

उस रात के बाद बनवारी फिर नहीं दिखाई दिया। वह केवल एक पंक्ति की एक चिट्ठी लिखकर रख गया था कि वह नौकरी ढूंढ़ने बाहर जा रहा है।

पिता के श्राद्ध की भी वह प्रतीक्षा न कर सका! गांव-भर के लोग इस बात पर उसे धिक्कराने लगे।

❑❑

28

पात्र और पात्री

इसके पूर्व प्रजापति (विवाह के देवता) कभी मेरे भाग्य पर तो नहीं बैठे, किंतु एक बार मेरे मानस-कमल पर जरूर बैठे थे; उस समय मेरी आयु सोलह की थी। इसके बाद कच्ची नींद में सहसा जगा देने से जैसे फिर नींद नहीं आती, वही दशा मेरी हुई।

मेरे बंधु-बांधवों में से कोई-कोई नारी-परिग्रह के मामले में दूसरा, यही नहीं, तीसरा प्रमोशन तक पा चुके थे, पर मैं कौमार्य की आखिरी बैंच पर बैठा-बैठा सूने संसार की कड़ियां गिनते जीवन बिताता रहा।

मैंने चौदह वर्ष की अवस्था में मैट्रिक पास किया था। उस समय विवाह अथवा एंट्रेंस परीक्षा में आयु का कोई विचार न होता था। मैंने पाठ्य-पुस्तकें कभी नहीं घोटीं, इसलिए मुझे कभी भी शारीरिक या मानसिक अजीर्ण नहीं भोगना पड़ा। जैसे चूहा दांत गड़ाने लायक चीज पाते ही उसे काट डालता है, चाहे वह खाद्य हो या अखाद्य हो, वैसे ही छपी पुस्तक देखते ही पढ़ डालना बचपन से ही मेरा स्वभाव था। संसार में पाठ्य-पुस्तकों की अपेक्षा अपाठ्य पुस्तकों की संख्या बहुत ज्यादा है, इसीलिए मेरे पुस्तक-सौरजगत में स्कूल-पाठ्य-पृथ्वी की अपेक्षा स्कूलातीत पाठ्य-पुस्तकों का सूर्य चौदह लाख गुना बड़ा था। फिर भी, अपने संस्कृत के पंडितजी की कठोर भविष्यवाणी के बावजूद मैं परीक्षा में पास हो गया।

मेरे पिता डिप्टी-मजिस्ट्रेट थे। उस समय हम सातक्षीरा अथवा जहानाबाद या ऐसे ही किसी स्थान में थे। प्रारंभ में ही कह देना अच्छा है, देश, काल एवं पात्र के संबंध में मेरे इस इतिहास में जो भी स्पष्ट उल्लेख होंगे वे सभी स्पष्ट रूप से कल्पित होंगे, जिनके लिए रस-बोध की अपेक्षा कौतूहल बड़ा है, वे ठगे

जाएंगे। पिताजी उस समय तहकीकात के लिए बाहर गए हुए थे। मां का कोई व्रत था, दक्षिणा तथा भोजन के लिए उन्हें ब्राह्मण की आवश्यकता थी। इस प्रकार के पारमार्थिक कार्यों के लिए हमारे पंडितजी मां के प्रधान सहायक थे। इसी कारण मां उनके प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ थीं, यद्यपि पिता के मन का भाव इससे बिल्कुल उल्टा था।

आज भोजनोपरांत दान-दक्षिणा की व्यवस्था हुई थी उसकी तालिका में मुझे भी रखा गया था। उस संबंध में जो विचार-विमर्श हुआ उसका सार यह है—मेरा तो कलकत्ता कॉलेज में जाने का समय आ गया। ऐसी स्थिति में पुत्र-विच्छेद दुःख को दूर करने के लिए किसी सदुपाय का अवलंबन लेना आवश्यक था। यदि एक शिशु-वधू मां की गोद के समीप रहे तो उसका पालन-पोषण करने, देख-भाल करने में उनके दिन कट सकते हैं। पंडितजी की लड़की काशीश्वरी इस काम के लिए उपयुक्त थी—कारण, वह शिशु भी थी, सुशील भी थी, कुलशास्त्र के गणित में उसका और मेरा एक-एक अंक मिलता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के कन्याभारमोचन का पारमार्थिक फल भी लोभ की चीज थी।

मां का मन विचलित हो गया। लड़की को एक बार देखने की आवश्यकता का आभास देते ही पंडितजी बोले, 'मेरी पत्नी कल रात ही लड़की को लेकर घर आ गई हैं।' मां को पसंद आने में देर न लगी; क्योंकि रुचि के साथ पुण्य के बंटवारों का योग होने के कारण सहज में ही वजन भारी हो गया। मां बोलीं, लड़की सुलक्षणा है, अर्थात् पूर्ण रूप से सुंदरी न होने पर भी सांत्वना का कारण थी। बात धीरे-धीरे मेरे कानों तक पहुंची। जिन पंडितजी के धातुरूप से मैं बराबर डरता आया था उन्हीं की कन्या के साथ मेरा विवाह-संबंध—इसकी असंगति ने मेरे मन को सबसे पहले बड़े जोर से आकर्षित किया। काल्पनिक कहानी की भांति सहसा-सुवंत-प्रकरण मानो अपने सारे अनुस्वार-विसर्ग झाड़कर एकाएक राजकन्या बन गया हो।

एक दिन शाम को मां ने अपने कमरे में बुलाकर मुझसे कहा, "सुनू पंडित जी के घर से आम और मिठाई आई हैं, खाकर देख!"

मां जानती थीं, मुझे पच्चीस आम खाने के लिए देने पर और पच्चीस आमों द्वारा उसकी पादपूर्ति करने पर ही मेरा छंद मिलता था। अतः उन्होंने रसना के सरस पथ द्वारा मेरे हृदय का आह्वान किया। काशीश्वरी उनकी गोद में बैठी थी।

स्मृति बहुत-कुछ अस्पष्ट हो गई है, किंतु याद है—उसके जूड़े में पन्नी लिपटी हुई थी और देह पर कलकत्ता की दुकान की एक साटिन की जाकेट थी—नीले और लाल रंग का, लेस और फीते का वह मानो प्रत्यक्ष प्रलाप था। जहां तक याद है—रंग सांवला था, भौंहें खूब घनी थीं; और आंखें पालतू जानवर की तरह बिना संकोच के ताक रही थीं। चेहरे का बाकी अंश तनिक भी याद नहीं आ रहा था। केवल उसका थोड़ा-सा हिस्सा ही तैयार हुआ था और जो हो, देखने में निहायत भलीमानस-जैसी लगती थी।

मेरी छाती भीतर-ही-भीतर फूल उठी। मन-ही-मन सोचा, यह पन्नी-जटित वेणी वाली जाकेट घिरी वस्तु सोलहों आने मेरी है—मैं इसका प्रभु हूं, मैं इसका देवता हूं। अन्य सभी दुर्लभ वस्तुओं के लिए साधना करनी पड़ती है, बस इसी एक वस्तु के लिए नहीं; अपनी कन्नी उंगली उठाने की देर थी, विधाता यह वर देने के लिए मेरी खुशामद करते फिर रहे थे। मां को मैं बराबर देखता आ रहा था, स्त्री शब्द का क्या अर्थ है, यह मुझे इसी सूत्र से ज्ञात हुआ था। मैंने देखा था, पिता, अन्य संपूर्ण व्रतों से अप्रसन्न थे, किंतु सावित्री-व्रत के समय वे मुंह से चाहे जो कहें, मन-ही-मन बड़े आनंद का अनुभव करते। मां उन्हें प्यार करती थीं, यह जानता हूं। पर पिताजी न जाने किस बात पर रुष्ट हो जाएं, किस पर झल्ला उठें, मां के मन में इसका जो डर सदा बना रहता, पिताजी अपने सारे पौरुष द्वारा इसी के रस का सबसे ज्यादा उपभोग करते।

पूजा से देवताओं का तो शायद कुछ ज्यादा नहीं आता-जाता, क्योंकि वह उनका उचित प्राप्य है, पर शायद मनुष्य के लिए वह अवैध प्राप्य है, इसीलिए उसका लोभ उसे आपे से बाहर कर देता है। उस बालिका के रूप-गुण के आकर्षण ने उस दिन मुझे प्रभावित नहीं किया था, किंतु पूजनीय हूं, यह बात उस चौदह वर्ष की अवस्था में ही मेरे पुरुष-रक्त में समा गई। उस दिन बड़े गौरव के साथ आम खाए, यही नहीं, मैंने गर्व से तीन आम थाली में ही छोड़ दिए, जो मेरे जीवन में पहले कभी नहीं हुआ; और सारा अपराह्न-काल उसी की अनुशोचना में बीता।

उस दिन काशीश्वरी को पता नहीं चला कि मेरे साथ उसका संबंध किस भांति का था, किंतु घर जाते ही शायद वह जान गई थी। उसके बाद जब भी मुझसे भेंट होती, उसे घबराहट के मारे छिपने की भी जगह न मिलती थी। मुझे देखकर उसकी यह घबराहट मुझे बड़ी अच्छी लगती। मेरा आविर्भाव विश्व की

किसी जगह में किसी एक रूप में बड़े प्रबल प्रभाव का संचार करता है, यह प्राणी-विषयक रासायनिक तथ्य मुझे बड़ा मनोरम लगता था। मुझे देखकर भी कोई भयभीत या लज्जित हो सकता है, या कुछ कर सकता है, यह बड़ा अपूर्व था। काशीश्वरी अपने पलायन द्वारा ही मुझे जता जाती कि वह संसार में विशेष रूप से, संपूर्ण रूप से एवं घनिष्ठ रूप से मेरी ही थी।

इतने समय की अकिंचनता के पश्चात् अचानक क्षण-भर में ऐसे महत्त्वपूर्ण गौरव का पद पा जाने के कारण कुछ दिन तक मेरे सिर में रक्त सनसनाता रहा। पिताजी जिस तरह कर्त्तव्य की या रसोई की या व्यवहार की त्रुटियों को लेकर सर्वदा मां को परेशान किए रहते थे, मैं भी मन-ही-मन उसी के चित्र पर हाथ फेरने लगा। पिताजी की इच्छा के विरुद्ध कोई काम करते समय मां जिस प्रकार सावधानी से नाना प्रकार की सुंदर युक्तियों द्वारा कार्य संपन्न करतीं, अपनी कल्पना में मैंने काशीश्वरी को भी उसी पथ पर प्रवृत्त होते देखा।

बीच-बीच में मन-ही-मन मैं उसको स्वच्छंद भाव से अकस्मात् बड़ी संख्या वाले बैंक-नोटों से लेकर हीरों के गहने तक भेंट करने लगा। किसी-किसी दिन भोजन करने के लिए बैठने पर भी उसका खाना नहीं हुआ एवं जंगले के पास बैठकर आंचल के छोर से आंसू पोंछती रही। यह करुण दृश्य भी मैंने कल्पना की आंखों से देख लिया और यह मुझे अत्यंत खेदजनक लगा था, यह नहीं कह सकता। छोटे बच्चों की आत्म-निर्भरता के संबंध में पिताजी बहुत सतर्क थे। अपना कमरा ठीक करना, अपने कपड़े आदि रखना, सब मुझे अपने हाथों करना पड़ता। किंतु, मेरे मन में गृहस्थी के जो चित्र स्पष्ट खिंच गए थे, उनमें से एक नीचे लिखता हूं।

कहना व्यर्थ है, मेरे पूर्वजों के इतिहास में ठीक इसी प्रकार की घटना एक बार पहले भी घटित हुई थी; इस कल्पना में मेरी कोई ओरिजिनैलिटी नहीं है। चित्र यह है—रविवार को दोपहर के भोजन के पश्चात् मैं खाट पर तकिया लगाए, पैर फैलाए अधलेटी अवस्था में अखबार पढ़ रहा था। हाथ में हुक्के की नली थी। हल्के तंद्रावेश में नली नीचे गिर गई। बरामदे में बैठी काशीश्वरी धोबी को कपड़े दे रही थी; मैंने उसे बुलाया; उसने झटपट आकर नली उठाकर मेरे हाथ में दे दी। मैंने उससे कहा, "देखो, मेरे बैठने के कमरे में बाईं ओर की आल्मारी के तीसरे खाने में नीली जिल्द वाली मोटी-सी अंग्रेजी की एक पुस्तक है, उसे ले तो आओ!"

काशी नीले रंग की कोई किताब ले आई; मैं बोला, "अरे, यह नहीं; वह इससे मोटी है, और उसकी पीठ पर सुनहरे अक्षरों में नाम लिखा है।" इस बार वह एक हरे रंग की किताब ले आई—मैं उसे 'धम' से जमीन पर पटककर क्रोध से उठ खड़ा हुआ। यह देखकर काशी का मुंह उतर गया और उसकी आंखें छलछला आईं। मैंने जाकर देखा, पुस्तक तीसरे खाने में नहीं थी, पांचवें खाने में थी। हाथ में पुस्तक लिए चुपचाप आकर बिस्तर पर लेट गया, किंतु काशी से अपनी भूल की कोई चर्चा न की। वह सिर झुकाए उदास होकर धोबी को कपड़े देने लगी और मूर्खता के कारण पति के विश्राम में व्याघात डाला है, इस अपराध को किसी भी तरह नहीं भूल सकी।

पिताजी डकैती की तहकीकात कर रहे थे और मेरे दिन इस प्रकार बीत रहे थे। इधर मेरे संबंध में पंडितजी का व्यवहार और वार्तालाप क्षण-भर में कर्तृवाच्य से भाववाच्य में आ पहुंचा एवं वह अत्यंत सद्‌भाववाच्य था।

तभी डकैती की तहकीकात खत्म हो गई, पिताजी घर लौट आए। मैं जानता हूं, मां ने तय किया था कि वे धीरे-धीरे मौका देखकर घुमा-फिराकर पिताजी की विशेष प्रिय तरकारी बनाने के साथ-साथ क्रमशः सह्य बनाते हुए, बात छेड़ेंगी। पिताजी पंडितजी को अर्थलोलुप समझकर घृणा करते थे; मां अवश्य ही पहले पंडितजी की हल्की-सी निंदा, साथ ही उनकी पत्नी तथा कन्या की पर्याप्त प्रशंसा करके बात आरंभ करतीं।

किंतु, दुर्भाग्य से पंडितजी की उत्फुल्ल प्रगल्भता के कारण बात चारों ओर फैल चुकी थी। विवाह पक्का है, मुहूर्त देखा जा रहा है, किसी को यह बताना उन्होंने बाकी नहीं छोड़ा। यहां तक कि विवाह के दिनों में उनको कुछ दिनों के लिए सरिस्तेदार बाबू के पक्के दालान की जरूरत पड़ेगी, यथास्थान यह बात भी उन्होंने तय कर रखी थी। शुभकर्म में यथासाध्य सभी उनकी सहायता करने को राजी हो गए थे।

पिताजी की अदालत में वकीलों का दल चंदा करके विवाह का खर्च वहन करने के लिए राजी था। स्थानीय इंट्रेंस स्कूल के सेक्रेटरी वीरेश्वर बाबू का तीसरा लड़का तीसरे दर्जे में पढ़ता था, उसने चांद और कुमुद के रूपक का सहारा लेकर इसी बीच में विवाह के संबंध में त्रिपदी छंद में एक कविता लिख डाली। सेक्रेटरी साहब ने वह कविता गली कूचे में जहां जो मिला उसी को घेर-घेरकर सुनाई। लड़के के संबंध में गांव के लोग खूब आशान्वित हो उठे थे।

अतएव, लौटने पर पिताजी ने यह शुभ संवाद बाहर ही सुन लिया। उसके बाद मां का रोना-धोना और भोजन-त्याग, घर-भर की घबराहट, नौकरों पर अकारण जुर्माना, इजलास में बड़ी तेजी से मामले डिसमिस करना और बड़ी कड़ाई से दंड देना, पंडितजी की पद-च्युति एवं पन्नी-जटित वेणी समेत काशीश्वरी को लेकर उनका अंतर्धान होना—और छुट्टी समाप्त होने के पहले ही मातृसंग से विच्छिन्न करके मेरा जबर्दस्ती कलकत्ता निर्वासन। मेरा मन फटी फुटबाल के समान बैठ गया—आकाश में, उसकी उछल-कूद बिल्कुल बंद हो गई।

2

प्रारंभ में ही मेरे परिणाम-पथ में यह विघ्न आ पड़ा—उसके बाद मेरे प्रति प्रजापति का व्यर्थ पक्षपात बार-बार होता रहा है। उसका विस्तृत विवरण देने की इच्छा नहीं है—अपने इस विफलता के इतिहास के एक-दो संक्षिप्त नोट छोड़ जाऊंगा। बीस वर्ष की अवस्था होने के पहले ही मैं पूर्ण रूप से एम.ए. परीक्षा पास करके आंखों पर चश्मा लगाकर और मूंछों की रेखा को तार देने योग्य बनाकर बाहर निकला था। पिताजी उस समय रामपुर हाट या नोआखाली या बारासत अथवा ऐसी ही किसी जगह में थे। इतने दिन तक तो शब्द-सागर का मंथन करके डिग्री-रत्न प्राप्त किया: अब अर्थसागर-मंथन की बारी आई।

पिताजी ने अपने बड़े-बड़े पेट्रन साहब लोगों का स्मरण किया तो देखा कि उनके जो सबसे बड़े सहायक थे वे परलोक में थे, उनसे जो कम थे वे पेंशन लेकर विलायत चले गए थे, जो और भी कम थे उनकी पंजाब बदली हो गई थी, और जो बंगाल में बाकी रह गए थे उनमें से अधिकांश प्रार्थी को प्रारंभ में आश्वासन देते, किंतु उपसंहार के समय उसका संहरण कर लेते। मेरे पितामह जब डिप्टी थे तब पृष्ठपोषकों का बाजार ऐसा ठंडा नहीं था, अतएव उस समय नौकरी से पेंशन एवं पेंशन से नौकरी एक ही वंश में नदी के इस पार-उस पार आने-जाने वाली खेप की तरह चलती रहती। अब दिन खराब थे। इसलिए पिताजी जब चिंतित होकर सोच रहे थे कि उनके वंशधर को गवर्नमेंट ऑफिस के उच्च आसन से सौदागरी के कार्यालयों में नीचे पलड़े पर उतरना चाहिए या नहीं, तभी एक धनी ब्राह्मण की एकमात्र कन्या उनके ध्यान में आई।

ब्राह्मण ठेकेदार था, उनके अर्थागम का पथ प्रत्यक्ष भूतल की अपेक्षा

अदृश्य रसातल की ओर से ही प्रशस्त था। वे जिस समय बड़े दिन के उपलक्ष्य में नारंगियां तथा अन्य उपहार सामग्री यथायोग्य पात्रों को वितरित करने में व्यस्त थे, उसी समय उनके मुहल्ले में मेरा पदार्पण हुआ। पिताजी का मकान उनके घर के सामने था, बीच में एक सड़क थी। कहना व्यर्थ है, डिप्टी का एम.ए पास लड़का लड़की वाले पक्ष के लिए अत्यंत 'प्रांशुल्भय फल' था। अत: कंट्रेक्टर महाशय मेरे प्रति 'उद्वाहु' हो उठे। उनके बाहु आधूलि लंबे थे यह पहले ही बता दिया है—अंतत: वे बाहू डिप्टी महाशय के हृदय तक अनायास ही पहुंच गए। किंतु मेरा हृदय उस समय उससे भी काफी ऊंचे पर था।

क्योंकि मेरी आयु उस समय बीस पार करने पर थी, उस समय खरे स्त्री-रत्न के अतिरिक्त अन्य किसी रत्न के प्रति मेरा लोभ नहीं था। केवल यही नहीं, उस समय भी भावुकता की दीप्ति मेरे मन में स्पष्ट थी। अर्थात् सहधर्मिणी शब्द का जो अर्थ मेरे मन में था वह अर्थ बाजार में प्रचलित नहीं था। वर्तमान समय में हमारे देश में संसार चारों ओर संकुचित हो गया है; मनन, साधन के अवसर पर मन को ज्ञान और भाव के उदार क्षेत्र में लगाए रखना और व्यवहार के समय उसको उस जगत के अत्यंत छोटे आकार के अनुरूप छोटा बनाना, यह मैं मन में भी सहन नहीं कर पाता था। जिस स्त्री को आइडियल के पथ की संगिनी बनाना चाहूं वही स्त्री घर-गृहस्थी की कैद में पैरों की बेड़ी बन जाए एवं प्रत्येक पदक्षेप में झंकार करके पीछे खींचती रहे, इस प्रकार के दुराग्रह को स्वीकार कर लेने के लिए मैं तैयार न था। असल बात यह थी, हमारे देश में प्रहसन आधुनिक बन गया था। हमारे समय में इस हाल ही में कॉलेज से निकलकर मैं उसी प्रकार का पूर्ण आधुनिक बन गया था। इन आधुनिकों का दल आज की अपेक्षा बहुत बड़ा था। आश्चर्य यह है कि वे वास्तव में विश्वास करते थे कि समाज को मानकर चलना दुर्गति है और उसको घसीटे लिए चलना ही उन्नति है।

सो यों मैं श्रीयुक्त सनत्कुमार, एक बलशाली कन्या-दाय-ग्रस्त व्यक्ति के रुपयों की खुली थैली के मुंह के सामने आ पड़ा। पिताजी बोले, 'शुभस्य शीघ्रम्' मैं चुप लगाए रहा; सोचा कि कुछ देख-सुन, सोच-समझ तो लूं। आंख, कान खुले रखे थोड़ा-सा देखा और बहुत-सा सुना। लड़की गुड़िया के समान छोटी और सुंदर थी—उसको देखकर यह नहीं लगता था कि वह स्वाभाविक नियमों द्वारा निर्मित है, उसका एक-एक बाल संभालकर उसकी भौंहें आंककर न जाने किसने उसे अपने हाथों से गढ़ा था। वह संस्कृत का गंगास्तव मुंहजुबानी

सुना सकती थी। उसकी मां पत्थर के कोयले तक को गंगा-जल से धोकर भोजन पकाती थीं; जीवधात्री वसुंधरा के नाना जातियों को धारण कराने के कारण उसका स्पर्श करने में वे हमेशा संकोच करती थीं, वे अधिकांशत: जल का ही व्यवहार करती थीं; क्योंकि जलचर मत्स्यादि मुसलमान-वंशीय नहीं हैं और जल में प्याज नहीं होता।

उनके जीवन का मुख्य काम अपनी देह, घर, कपड़े-लत्ते, हांड़ी-बटलोई, खाट-पलंग, बर्तनादि को साफ करना और मांजना था। सारा काम पूरा करने में लगभग ढाई बज जाते। अपनी लड़की को उन्होंने अपने हाथ से एड़ी से चोटी तक एक प्रकार से परिमार्जित कर दिया था कि उसका अपना मन या अपनी इच्छा नाम की कोई बला नहीं रह गई थी। किसी व्यवस्था में कितनी भी असुविधा क्यों न हो, उसका पालन करना उसके लिए सहज होता, यदि उसका कोई संगत कारण उसको न समझा दिया जाता।

भोजन करते समय अच्छे कपड़े न पहनती कि कहीं सखरा न हो जाए, उसने छाया तक का विचार करना सीखा था। वह जिस प्रकार पालकी के भीतर बैठककर ही गंगास्नान करती थी, उसी प्रकार अठारह पुराणों से घिरी रहकर गृहस्थी में चलती-फिरती। विधि-विधानों में मेरी मां की भी पर्याप्त श्रद्धा थी, किंतु उनसे भी अधिक श्रद्धा किसी और को हो और उसको लेकर वह मन-ही-मन घमंड करे यह वे नहीं सह सकती थीं। इसलिए जब मैंने उनसे कहा, "मां, इस लड़की के योग्य पात्र मैं नहीं हूं," तो उन्होंने हंसकर कहा, "ठीक है, कलियुग में ऐसा पात्र मिलना मुश्किल है!"

मैं बोला, "तो मैं विदा लूं!"

मां बोलीं, "यह क्या, सुनु, क्या तुझे पसंद नहीं आई? क्यों, लड़की देखने में तो अच्छी है।"

मैंने कहा, "मां, पत्नी केवल निहारने के लिए तो होती नहीं, उसमें बुद्धि भी तो होनी चाहिए।"

मैंने कहा, "देखो जरा, इसी बीच तुझे उसकी कम बुद्धि की ऐसा क्या परिचय मिल गया।"

मां का मुंह सूख गया। वे जानती थीं, इस विवाह के संबंध में पिताजी ने दूसरे पक्ष से प्राय: बात पक्की कर ली है। वे यह भी जानती थीं कि पिताजी प्राय: यह भूल जाते थे कि दूसरे व्यक्तियों में भी इच्छा नामक बला हो सकती है। वस्तुत: पिताजी यदि बहुत ज्यादा क्रोध या जबर्दस्ती न करते तो शायद

कालांतर में मैं भी उस पौराणिक गुड़िया के साथ विवाह करके एक दिन प्रबल भक्ति-भाव से स्नान, दैनिक कर्म, व्रत-उपवास करते-करते गंगा के किनारे सद्गति-लाभ कर लेता। अर्थात्, मां के ऊपर यदि यह विवाह करने का भार रहता तो वे हाथ में समय लेकर धैर्यपूर्वक सुयोगानुसार क्षण-क्षण कान में मंत्र देकर हर क्षण आंसू बहाकर कार्य संपन्न करा सकती थीं।

पिताजी जब बार-बार डांटने फटकारने लगे तो मैंने उनसे निराश होकर कहा, "आपने मुझे बचपन से ही खाने-पीने, चलने-फिरने में आत्म-निर्भरता का उपदेश दिया है, केवल विवाह के समय ही क्या आत्म-निर्भरता नहीं चलेगी।"

कॉलेज में लॉजिक में पास होने के अलावा न्याय-शास्त्र के बल पर किसी ने कभी सफलता प्राप्त की हो, यह मैंने नहीं देखा। संगत युक्ति कुतर्क की अग्नि के सामने कभी जल का कार्य नहीं करती, बल्कि तेल का ही काम करती है।

पिताजी ने सोच रखा था कि उन्होंने दूसरे पक्ष को वचन दे दिया है। अतः विवाह के औचित्य के संबंध में इससे बड़ा प्रमाण और कुछ नहीं हो सकता और यदि मैं उनको स्मरण करा देता कि पंडितजी को एक दिन मां ने भी वचन दिया था फिर भी उसी बात के कारण केवल मेरा विवाह ही भंग नहीं हुआ, साथ ही पंडितजी की जीविका भी चली गई—तो इसको लेकर फौजदारी हो जाती। बुद्धि-विचार एवं रुचि की अपेक्षा शुचिता, मंत्र-तंत्र, क्रिया-कर्म कहीं अधिक अच्छे हैं, उनका कवित्व गंभीर और सुंदर होता है, उनमें निष्ठा रखना बहुत श्रेष्ठ और उनका फल अति उत्तम होता है, सिंबोलिज्म ही आइडियलिज्म है—आदि बातें पिताजी आजकल मुझे सुना-सुनाकर अवसर-कुअसवर आलोचना करते। मैंने जीभ रोक रखी थी, किंतु मन को तो मौन नहीं रख सकता था। जो बात मुंह तक आकर लौटे जाती थी कि, यदि आप यह सब मानते हैं तो जब पालते हैं तो मुर्गी क्यों पालते हैं।' और भी एक बात मन में आती।

पिताजी ने ही एक दिन दिन-मुहूर्त, व्रत-पर्व, विधि-निषेध, दान-दक्षिणा को लेकर अपनी असुविधा या क्षति होने पर मां को कठोर भाषा में इन सब अनुष्ठानों की निरर्थकता पर फटकारा था। मां ने तब दीनता स्वीकार की थी, अबला-जाति को स्वभाव से ही नासमझ मान सिर झुकाकर खीझ का आघात सहते हुए ब्राह्मण-भोजन के विस्तृत आयोजन में प्रवृत्त हुई थी। किंतु विश्वकर्मा ने जीव को लॉजिक के पक्के सांचे में ढालकर नहीं बनाया है। अतएव अमुक व्यक्ति की बात या कार्य में संगति नहीं है, यह कहकर उसको वश में नहीं

किया जा सकता, केवल अप्रसन्न किया जा सकता है। न्याय-शास्त्र की दुहाई देने में अन्याय की प्रचंडता का वेग बढ़ जाता है—जो लोग पॉलिटिकल या गार्हस्थ्य एजिटेशन में श्रद्धा रखते हैं उनको यह बात याद रखनी चाहिए।

जब घोड़ा अपने पीछे की गाड़ी को अन्याय समझकर उस पर दुलत्ती झाड़ता है तो अन्याय तो बना ही रहता है, ऊपर से उसके पैर भी जख्मी हो जाते हैं। यौवन के आवेग में थोड़ा-सा तर्क करने पर मेरी भी वैसी ही दशा हुई। पौराणिकी लड़की के हाथों से मुक्ति तो अवश्य मिली, किंतु पिता के आधुनिक युग के तहबील का आश्रय भी खो दिया। पिता ने कहा, "जाओ, तुम आत्मनिर्भर रहो!"

मैंने प्रणाम करके कहा, "जो आज्ञा।"

मां बैठी-बैठी रोने लगीं।

पिता का दाहिना हाथ तो जरूर विमुख हो गया, किंतु बीच में मां होने के कारण कभी-कभी मनीऑर्डर के हरकारे के दर्शन हो जाते थे। बादलों ने वर्षा बंद कर दी, किंतु छिपे-छिपे स्निग्ध रात्रि में ओस-जल का अभिषेक चलने लगा। उसी के बल पर व्यवसाय शुरू कर दिया। ठीक उन्नासी रुपये से प्रारंभ किया था। अब उस कारोबार में जितना मूलधन लगा था वह ईर्ष्यापूर्ण जजश्रुति से बहुत कम होने पर भी बीस लाख रुपये से कम न था।

प्रजापति का प्यादा मेरे पीछे-पीछे फिरने लगा। पहले जो सब द्वार बंद थे अब उनमें अर्गला न रही। मुझे याद है, एक दिन यौवन की अदम्य दुराशा में एक षोडशी के प्रति (आयु का अंक अब के निष्ठावान् पाठकों के भय से कुछ सहनीय बनाकर कहा है) अपने हृदय को उन्मुख किया था, किंतु पता लगा कि कन्या के मातृपक्ष की निगाह सिविलियनों की ओर थी—कम-से-कम बैरिस्टर के नीचे उनकी निगाह नहीं जाती थी। मैं उनके मनोयोग-मीटर के जीरो प्वाइंट से भी नीचे था। किंतु, बाद में उसी घर में एक दिन केवल चाय ही नहीं, लंच खाया, रात में डिनर के बाद लड़कियों के साथ टिवस्ट(ताश का एक खेल) खेला, उनके मुंह से एकदम ठेठ विलायती अंग्रेजी में बातें सुनीं।

मेरी कठिनाई यह थी कि मैंने रसेल्स, डेजर्टेड विलेज एवं एडीसन स्टील पढ़कर अपनी अंग्रेजी पक्की की थी, इस लड़की से होड़ बदना मेरे वश का न था। ओ माइ, ओ डियर, ओ डियर आदि शब्द मेरे मुंह से ठीक स्वर में निकलना ही न चाहते थे। मेरा जितना ज्ञान था उससे मैं बिल्कुल सरल अंग्रेजी भाषा में बड़ी कठिनाई से हाट-बाजार में खरीद-बिक्री कर सकता था, किंतु बीसवीं शताब्दी की अंग्रेजी में प्रेमालाप करने की बात याद आते ही मेरा प्रेम ही भाग

खड़ा होता और उसके मुंह में बंगला भाषा का जिस प्रकार दुर्भिक्ष था उससे उसके साथ शुद्ध बंकिमी भाषा में मधुरालाप करने का प्रयत्न करने पर घाटा ही रहता। उससे पूरी मजूरी वसूल न होती।

खैर, जो हो, ऐसी मुलम्मेदार लड़की भी एक दिन मेरे लिए सुलभ थी। किंतु बंद दरवाजे के छेद से जो माया-नगरी देखी थी दरवाजा खुलने पर फिर उसका पता न चला। उस समय मुझे बार-बार लगने लगा कि मेरी वह व्रतचारिणी निरर्थक नियमों की निरंतर पुनरावृत्ति के चक्र में अहोरात्रि चक्कर लगाती हुई अपनी जिस जड़बुद्धि को तृप्त करती थी, ये लड़कियां भी ठीक वैसी ही बुद्धि से विलायती चाल-चलन, अदब-कायदों के सारे तुच्छातितुच्छ उपसर्गों की प्रदक्षिणा करके दिन-पर-दिन, वर्ष के बाद वर्ष अनायास अक्लांतचित्त से काट देती हैं। जिस प्रकार वह छूत-स्नान की लेश-मात्र त्रुटि देखते ही अश्रद्धा से रोमांचित हो उठती, ये भी एक्सेंट में थोड़ी त्रुटि होने अथवा कांटे-चम्मच के प्रयोग में थोड़ी भूल देखते ही ठीक उसी प्रकार अपराधी व्यक्ति के मनुष्यत्व के संबंध में संदेह करने लगतीं।

वे देशी गुड़ियां थीं, ये विदेशी गुड़ियां। ये मन की गति वेग के अनुसार नहीं चलती, अभ्यास की चाबी या कल ही इनको चलाती है। परिणाम यह हुआ कि मुझे मन-ही-मन स्त्री जाति पर ही अश्रद्धा हो गई; मेरी धारणा हो गई कि जब उनमें बुद्धि की ही कमी है तब वे स्नान-आचमन-उपवास, अकर्म-कांड की अधिकता के बिना जिएं भी कैसे! पुस्तकों में पढ़ा था कि ऐसे प्राणी भी होते हैं जो बराबर चक्कर काटते रहते हैं। किंतु, मनुष्य चलता है। उन जीवाणुओं के परिवर्धित संस्करणों के साथ ही क्या विधाता ने हतभागे पुरुषों के विवाह का संबंध निश्चित किया है!

दूसरी ओर जैसे-जैसे आयु बढ़ने लगी वैसे-वैसे विवाह के संबंध में द्विधा भी बढ़ने लगी। मनुष्य की एक अवस्था होती है जब वह चिंता किए बिना ही विवाह कर सकता है। वह अवस्था पार हो जाने पर विवाह करने में दु:साहस की आवश्यकता होती है। मैं उन बेपरवाहों के दल में नहीं था। इसके अतिरिक्त कोई अच्छी-भली लड़की बिना कारण एकदम मेरे साथ क्यों विवाह कर लेगी, यह मैं किसी तरह नहीं समझ पाता था।

सुना था प्रेम अंधा होता है, किंतु यहां उस अंधे के ऊपर तो कोई भार था नहीं। संसारी बुद्धि के पास तो दो से भी ज्यादा नेत्र होते हैं—वे नेत्र जब बिना पलक मेरी ओर ताकने लगते तब मुझमें क्या देख पाते थे, मैं यही सोचा करता

था। मुझमें अवश्य ही अनेक गुण थे, पर उनको पहचानने में तो देर लगती, एक ही नजर में तो समझे नहीं जा सकते थे। मेरी नाक में जो छोटाई है उसको बुद्धि की प्रखरता ने पूरा कर दिया है, यह मैं जानता था; किंतु नाक तो रहती है प्रत्यक्ष और बुद्धि को भगवान् ने निराकार कर डाला है। जो हो, जब देखता कि कोई वय:प्राप्त लड़की अत्यल्प समय के नोटिस पर भी मुझसे विवाह करने में जरा-सी आपत्ति न करती, तब लड़कियों के प्रति मेरी श्रद्धा और भी घट जाती। यदि मैं लड़की होता तो श्रीयुत सनत्कुमार की छोटी नाक की लंबी सांस से उसकी आशा और अहंकार धूल में मिल जाते।

इस प्रकार विवाह के बोझ से मुक्त मेरी नाव बीच-बीच में किनारे को तो छू आती किंतु घाट पर आकर नहीं लगी। पत्नी के अलावा संसार के अन्यान्य उपकरण व्यवसाय की उन्नति के साथ बढ़ते चले गए। एक बात भूल गया था, आयु भी बढ़ती जा रही है। सहसा एक घटना ने इसका स्मरण करा दिया।

अभ्रक की खान खोजते-खोजते छोटा नागपुर के एक शहर में जाकर देखा, पंडित जी वहां शालवन की छाया में एक छोटी-सी नदी के किनारे अच्छा-खासा घर बनाए बैठे हैं। उनका लड़का वहां काम करता था। इसी शालवन में मेरा तंबू लगा था। उन दिनों देश-भर में मेरे वैभव की ख्याति थी। पंडितजी ने कहा कि कालांतर में मैं असाधारण व्यक्ति बनूंगा यह वे पहले ही जानते थे। हो सकता है, किंतु यह बात उन्होंने आश्चर्यपूर्ण ढंग से छिपा रखी थी। इसके अतिरिक्त किन लक्षणों से उनको यह ज्ञात हुआ था, यह मैं नहीं कह सकता। कदाचित असाधारण लोगों को छात्रावस्था में पत्वणत्व ज्ञान ('प' और 'ण' की व्यवहार-विधि का ज्ञान) नहीं होता।

काशीश्वरी ससुराल में थी। अत: बिना बाधा के मैं पंडितजी के घर का आदमी हो गया। कई वर्ष पहले उनका पत्नी-वियोग हो चुका था—किंतु वे नातिनों से घिरे थे। सब उनकी अपनी नहीं थीं, उनमें से दो उनके स्वर्गवासी बड़े भाई की थीं। वृद्ध ने इनसे अपनी वृद्धावस्था के अपराह्न को नाना रंगों से रंगीन बना लिया था। उनके 'अमरुशतक', 'आर्या सप्तशती' 'हंसदूत', 'पदांकदूत' के श्लोकों की धारा शिलाओं के चारों ओर पर्वतीय नदी के फेनोच्छल प्रवाह के समान इन बालिकाओं को घेरकर सहास्य ध्वनित हो रही थीं।

मैंने हंसते हुए कहा, "पंडितजी, मामला क्या है।"

उन्होंने कहा, "बेटा, तुम्हारे अंग्रेजी शास्त्र में कहा है कि शनि ग्रह चांद की माला पहने रहते हैं—यह मेरी वही चांद की माला है।"

उस दरिद्र परिवार का यह दृश्य देखकर अचानक मुझे याद आया कि मैं अकेला हूं। मुझे अनुभव हुआ मैं अपने बोझ से स्वयं थक गया हूं। पंडितजी नहीं जानते थे कि वे वृद्ध हो गए हैं, किंतु मैं हो गया था यह मैंने स्पष्ट रूप से जान लिया था। वृद्ध हो गया हूं कहने का तात्पर्य यह था कि अपने चारों ओर के जगत को पार कर आया हूं, चारों ओर से ढील पड़ जाने के कारण दरारें हो गई हैं। ये दरारें रुपयों से, ख्याति से नहीं भरी जा सकतीं। धरती से रस नहीं मिल रहा था। केवल वस्तु संग्रह कर रहा था, इसकी व्यर्थता को अभ्यासवश भूले हुए रहा जा सकता था। किंतु जब पंडितजी का घर देखा तब समझा, मेरे दिन शुष्क थे, रातें शून्य।

पंडितजी पूर्ण रूप से तय किए बैठे थे कि मैं उनकी अपेक्षा भाग्यवान पुरुष था—यह बात सोचकर मुझे हंसी आई। इस वस्तु जगत को एक अदृश्य आनंद-लोक घेरे हुए है। उस आनंद-लोक के साथ हमारे जीवन का योगसूत्र न रहने पर हम त्रिशंकु के समान शून्य में घूमते रहते है। पंडितजी के साथ वह योग था, मेरे साथ यहीं अंतर था। मैं आराम कुर्सी के दोनों बाजुओं पर दोनों पैर रखकर सिगरेट पीते-पीते सोचने लगा, पुरुष के जीवन के चार आश्रमों के चार अधिदेवता हैं। बाल्यावस्था में मां, यौवनावस्था में पत्नी, प्रौढ़ावस्था में कन्या, पुत्रवधू, वृद्धावस्था में नातिनी, नात-बहू। इस प्रकार स्त्री के द्वारा पुरुष अपनी पूर्णता प्राप्त करता है।

इस तत्त्व ने मुझे उस मर्मरित शाल-वन में अभिभूत कर लिया। मन के सामने अपनी भावी वृद्धावस्था के अंतिम छोर तक झांककर देखा—देखकर उसकी निरतिशय नीरसता से हृदय हाहाकार करने लगा। उस मरु-पथ में होकर मुनाफे के बोझ को सिर पर लादे न जाने कहां जाकर मुंह के बल गिरकर मर जाऊंगा! अब और देर करना ठीक न होगा। इस समय चालीस पार कर गया हूं-यौवन की बाकी थैली झटक लेने के लिए पचासवीं रास्ते के किनारे बैठी हुई है, उसकी लाठी का सिरा यहां से दिखाई दे रहा है। अब जेब की बात छोड़कर थोड़ी जीवन की बात सोच देखूं। किंतु, जीवन का जो भाग स्थगित रह गया है उसमें तो लौटकर जाया नहीं जा सकता। तो भी उसके छेद में पैबंद लगाने का सारा समय अब भी नहीं बीता है।

कार्यवश यहां से पछांह के एक शहर में जाना पड़ा। वहां विश्वपति बाबू नामक धनी बंगाली महाजन थे। उसके साथ मुझे काम के बारे में बातें करनी थीं। आदमी बड़े होशियार थे, अतः उनके साथ कोई बात पक्की करने में काफी

समय लगता था। एक दिन खीझकर जब सोच रहा था कि इनके साथ काम करने में मुझे सुभीता नहीं होगा, यही नहीं, नौकर को अपना सामान पैक करने के लिए कह चुका था, तभी विश्वपति बाबू संध्या-समय मुझसे आकर बोले, "आपकी तो निश्चय ही अनेक प्रकार के लोगों से जान-पहचान होगी, अगर आप जरा ध्यान दें तो एक विधवा बच सकती है।"

घटना यह है—

नंदकृष्ण बाबू बरेली में पहले एक बंगाली-अंग्रेजी स्कूल में हेडमास्टर होकर आए थे। खूब अच्छा काम करते थे। सभी को अचंभा हुआ था—ऐसा सुयोग्य सुरक्षित व्यक्ति घर छोड़कर, इतनी दूर, साधारण वेतन पर नौकरी करने क्यों आया! केवल परीक्षा पास कराने के लिए ही उनकी ख्याति हो ऐसा नहीं, सभी भले कामों में वे हाथ लगाते थे। इस बीच न जाने कैसे बात फैल गई कि उनकी स्त्री रूपवती अवश्य है किंतु कुलीन नहीं, किसी मामूली जाति की लड़की है। यहां तक कि उनके स्पर्श करने पर जल पीने योग्य नहीं रहता और अन्यान्य भीतरी सात्विक गुण नष्ट हो जाते हैं।

जब उनको सभी ने धर दबाया तो वे बोले, 'हां, जात की छोटी है, किंतु फिर भी मेरी पत्नी है।' तब प्रश्न उठा, ऐसा विवाह वैध कैसे हुआ?' जिन्होंने प्रश्न किया उनसे नंदकृष्ण बाबू ने कहा, "आपने तो शालग्राम को साक्षी करके एक के बाद एक दो स्त्रियों के साथ विवाह किया है, और द्विवचन से भी संतुष्ट नहीं हैं, इसके अनेक प्रमाण दिए हैं। शालग्राम की बात नहीं कह सकता किंतु अंतर्यामी जानते हैं, मेरा विवाह आपके विवाह की अपेक्षा अधिक वैध है—प्रतिदिन प्रति-क्षण वैध है—आपके साथ मैं इससे अधिक चर्चा करना नहीं चाहता।"

जिनसे नंदकृष्ण ने यह बात कही वे खुश नहीं हुए। तिस पर उनमें लोगों का अनिष्ट करने की असामान्य क्षमता भी थी। फलस्वरूप इस उपद्रव के कारण नंदकृष्ण ने बरेली छोड़कर इस वर्तमान शहर में आकर वकालत शुरू की। आदमी अत्यंत कट्टर प्रकृति के थे—भूखे रहने पर भी झूठा मुकद्दमा वे किसी तरह न लेते थे। पहले उनको इससे चाहे जितनी असुविधा हुई हो, अंत में उन्नति होने लगी। क्योंकि हाकिम उनका पूरा विश्वास करते थे। एक घर बनाकर जरा जमकर बैठे ही थे कि देश में दुर्भिक्ष पड़ा। देश उजाड़ हो रहा था। जिनके ऊपर सहायता वितरण करने का भार था उनमें से किसी-किसी ने चोरी की थी। मजिस्ट्रेट से उनके यह कहने पर मजिस्ट्रेट ने उनसे कहा, "सच्चे आदमी मिलें कहां?"

उन्होंने कहा, "यदि मुझ पर विश्वास करें तो इस काम का कुछ भार मैं ले सकता हूं।"

उनको भार सौंप दिया गया और यह भार ढोते हुए ही एक दिन दोपहर को मैदान में पेड़ के नीचे वे मर गए। डॉक्टर ने कहा, "उनके हृदय की गति बंद होने के कारण मृत्यु हुई।"

इतनी कहानी मेरी पहले से ही जानी हुई थी। न जाने कैसे किसी ऊंचे आदर्श की झोंक में मैंने अपने क्लब में उन्हीं की बात चलाकर कहा था, "इन नंदकृष्ण के समान जो आदमी संसार में असफल होकर सूखकर मर गए हैं— न नाम छोड़ने की चिंता की, न रुपया जमा किया— वे ही भगवान् के सहयोगी होकर संसार को ऊपर की ओर— "

इतना कह पाया था कि पालें तनी हुई नौका के अकस्मात किनारे से छू जाने के समान, मेरी बात बीच में ही बंद हो गई। क्योंकि, हममें से एक खूब संपत्ति और प्रतिष्ठावान व्यक्ति अखबार पढ़ रहे थे—वे अपने चश्मे के ऊपर से मेरी ओर दृष्टि डालकर बोल उठे, "हियर, हियर!"

जाने दो। सुना गया कि नंदकृष्ण की विधवा स्त्री अपनी इकलौती लड़की के साथ इसी मुहल्ले में रहती हैं। दीवाली की रात को पैदा होने के कारण बाप ने उसका नाम दीपालि रखा था। विधवा को किसी समाज में स्थान न मिलने के कारण उन्होंने बिल्कुल अकेली रहकर इस लड़की को लिखना-पढ़ना सिखाकर पाला-पोसा। उस समय लड़की की आयु पच्चीस से ऊपर होगी। मां का शरीर रुग्ण था और आयु भी कम न थी—किसी दिन वे मर जाएंगी, इस लड़की का कहीं कोई ठिकाना न होगा। विश्वपति ने मुझसे विशेष अनुनय करते हुए कहा, "यदि इसके लिए कोई पात्र ढूंढ़ दें तो बड़ा पुण्य हो।"

विश्वपति को शुष्क स्वार्थपरायण मूर्खतापूर्ण कामों में रत व्यक्ति समझकर मैंने मन-ही-मन उसकी कुछ अवज्ञा की थी। विधवा की अनाथ लड़की के लिए उनका ऐसा आग्रह देखकर मेरा मन विगलित हो गया। सोचा, पुरानी दुनिया के मृत मैमथ के पेट में से खाद्य बीज निकालकर, बोकर देखा गया है कि उसमें से अंकुर निकले हैं—उसी प्रकार मनुष्य का मनुष्यत्व विपुल-मृत-स्तूप के बीच रहते हुए भी पूर्ण रूप से मरना नहीं चाहता।

मैंने विश्वपति से कहा, "पात्र मेरा परिचित है, कोई बाधा न पड़ेगी। आप लोग बात एवं दिन पक्का करें।"

"किंतु लड़की को देखे बिना तो और— "

"बिना देखे ही हो जाएगा।"

"किंतु, पात्र को यदि संपत्ति का लोभ हो तो बहुत ज्यादा नहीं है।" मां के मरने पर केवल यह घर मिलेगा, शायद थोड़ा-बहुत और मिल जाए।"

"पात्र की अपनी संपत्ति है, उसके लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।"

"उनका नाम, विवरण आदि—"

"यह अभी नहीं बताऊंगा, क्योंकि चर्चा फैलने पर विवाह में बाधा पड़ सकती है।"

"लड़की की मां को तो उसका कुछ विवरण देना पड़ेगा।"

"कह दें, व्यक्ति अन्य साधारण मनुष्यों के समान गुण-दोषों से युक्त है। दोष इतने अधिक नहीं हैं, जिनके लिए चिंतित होना पड़े; गुण भी इतने अधिक नहीं हैं कि लोभ हो। जहां तक मैं जानता हूं इन बातों में कन्याओं के माता-पिता उसे विशेष रूप से पसंद करते हैं; स्वयं कन्याओं के अपने मन की बात का ठीक पता नहीं चल पाया।"

विश्वपति बाबू इस मामले से जब अत्यंत कृतज्ञ हुए तो उनके प्रति मेरी भक्ति बढ़ गई। उसके पहले जिस कारोबार में उनके साथ मेरी दरें तय नहीं हो रही थीं, उसमें नुकसान सहकर भी मैं रजिस्ट्री प्रमाण-पत्र सही कराने के लिए उत्सुक था। जाते समय वे कह गए, "पात्र से कहिएगा, अन्य बातों में जैसी भी हो, ऐसी गुणवती लड़की कहीं नहीं मिलेगी।"

जो कन्या समाज के आश्रय और आदर से वंचित है उसे यदि हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया जाए तो क्या वह अपने-आपको उत्सर्ग करने में तनिक भी कृपणता करेगी? जिस लड़की की आशाएं बड़ी होती हैं उसी की आशा का अंत नहीं होता। किंतु इस दीपालि का दीपक मिट्टी का था, अतः मेरे मिट्टी के घर के कोने में उसकी ज्योति की हेठी न होगी।

संध्या समय रोशनी जलाकर विलायती अखबार पढ़ रहा था कि सूचना मिली, एक लड़की मुझसे मिलने आई है। घर में कोई महिला न थी, इसलिए मैं परेशान हो उठा। कोई शिष्ट उपाय सोच पाऊं इसके पहले ही लड़की ने कमरे में आकर प्रणाम किया। बाहर से किसी को विश्वास न होगा, किंतु मैं बहुत ही लजीला आदमी हूं। न मैंने उसके मुंह की ओर देखा, न कोई बात कही। वह बोली, "मेरा नाम दीपालि है।"

गला बड़ा मीठा था। साहस करके मुंह की ओर देखा, वह चेहरा बुद्धि

और कोमलता से सिक्त था। सिर पर पल्ला न था—सादी देसी धोती आजकल के फैशन के अनुसार पहने हुए थी। क्या बात करूं यही सोच रहा था कि इतने में वह बोली, "मेरे विवाह के लिए आप कोई प्रयत्न न करें।"

और जो हो, दीपालि के मुंह से इस प्रकार की आपत्ति की मैंने प्रत्याशा नहीं की थी। मैंने सोच रखा था, "विवाह के प्रस्ताव से उसके देह मन, प्राण, कृतज्ञता से भर उठेंगे।"

पूछा, "ज्ञात-अज्ञात किसी भी व्यक्ति से तुम विवाह नहीं करोगी?"

उसने कहा, "नहीं, किसी व्यक्ति से नहीं।"

यद्यपि मनस्तत्त्व की अपेक्षा वस्तुतत्त्व की मेरी अभिज्ञता अधिक है—विशेष रूप से नारी का मन मेरे लिए बंगला हिज्जों से भी कठिन है, तो भी बात का सीधा अर्थ मुझे सच्चा अर्थ प्रतीत नहीं हुआ। मैंने कहा, "जो पात्र मैंने तुम्हारे लिए चुना है वह अवज्ञा करने योग्य नहीं है।"

दीपालि बोली, "मैंने उनकी अवज्ञा नहीं की, किंतु मैं विवाह नहीं करूंगी।"

मैंने कहा, "वह व्यक्ति भी सच्चे मन से तुम पर श्रद्धा करता है।"

"किंतु, नहीं मुझसे विवाह करने के लिए न कहें।"

"अच्छा, नहीं कहूंगा, किंतु क्या मैं तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता।"

"मेरे लिए यदि लड़कियों के किसी स्कूल में पढ़ाने का काम जुटाकर मुझे यहां से कलकत्ता ले चलें तो बड़ा उपकार हो।"

मैं बोला, "काम मौजूद है, जुटा सकूंगा।"

यह बात पूरी तौर पर सच नहीं। लड़कियों के स्कूल के बारे में मैं क्या जानूं। किंतु लड़कियों का स्कूल स्थापित करने में तो दोष नहीं है।

दीपालि ने कहा, "आप मेरे घर जाकर एक बार मां से इस बात पर चर्चा करना चाहेंगे?"

मैंने कहा, "मैं कल सवेरे ही आऊंगा।"

दीपालि चली गई। मेरा अखबार पढ़ना समाप्त हो गया। छत पर जाकर कुर्सी पर बैठ गया। तारागणों से प्रश्न किया, "कोटि-कोटि योजन दूर स्थित तुम क्या सचमुच चुपचाप बैठे-बैठे मनुष्य के जीवन के संपूर्ण कर्म-सूत्र एवं संबंध-सूत्र बुनते रहते हो।"

इसी बीच बिना कोई सूचना दिए विश्वपति का मंझला लड़का श्रीपति अचानक छत पर आ उपस्थित हुआ। उसके साथ जो बातचीत हुई, उसका सार यह है—

श्रीपति दीपालि से विवाह करने के हठ में समाज छोड़ने के लिए प्रस्तुत था। पिता कहते थे, ऐसा दुष्कार्य करने पर वे उसे त्याग देंगे। दीपालि कहती, उसके लिए इतना बड़ा दु:ख, अपमान और त्याग कोई स्वीकार करे इतनी योग्यता उसमें नहीं। है इसके अतिरिक्त श्रीपति बचपन से ही धनी घर में पला है; दीपालि के मत में वह समाजच्युत एवं निराश्रित होकर दारिद्र्य का कष्ट नहीं सह सकेगा। इसी को लेकर बहस छिड़ रही थी, किसी भी प्रकार इसका निर्णय नहीं हो पा रहा था। ठीक इस संकट के समय मैंने बीच में पड़कर उनके बीच और एक पात्र को खड़ा करके समस्या की जटिलता अत्यंत विषम कर दी। इसी हेतु श्रीपति मुझसे इस नाटक में से प्रूफ-शीट के कटे अंश के समान निकल जाने के लिए कह रहा था।

मैं बोला, "जब आ ही पड़ा हूं, तो फिर निकलूंगा नहीं। और यदि निकलूंगा तो ग्रंथि काटकर ही निकलूंगा।"

विवाह का दिन नहीं बदला गया, केवल पात्र बदल गया। मैंने विश्वपति का आग्रह पूरा कर दिया, किंतु वे उससे संतुष्ट न हुए। दीपालि का अनुरोध मैं पूरा न कर पाया, किंतु उसके भाव से लगा, वह संतुष्ट थी। पता नहीं स्कूल में काम खाली था या नहीं, किंतु मेरे घर में कन्या का स्थान खाली था, वह भर गया। मुझ-जैसा फालतू आदमी निरर्थक नहीं है, यह मेरे अर्थ ने ही श्रीपति के समक्ष प्रमाणित कर दिया। उसका गृह-दीप मेरे कलकत्ता के घर में ही जला। सोचा था कि समय पर न किए गए स्थगित विवाह की पूर्ति असमय में विवाह करके करनी पड़ेगी, किंतु देखा ऊपर वाला प्रसन्न हो तो दो-एक क्लास लांघकर प्रमोशन मिल जाता है। आज पचपन वर्ष की अवस्था में मेरा घर नातिनियों से भर गया है, ऊपर से एक नाती भी आ धमका है। किंतु, विश्वपति बाबू के साथ मेरा कारोबार बंद हो गया है—क्योंकि, उन्हें पात्र पसंद नहीं आया।

❑❑

29

व्यवधान

रिश्ता मिलाकर देखने से वनमाली और हिमांशुमाली दोनों ममेरे-फुफेरे भाई हैं; वह भी बहुत हिसाब करने पर मिला। लेकिन ये दोनों ही परिवार काफी समय से पड़ोसी हैं, बीच में केवल एक बगीचे का व्यवधान है, इसलिए इनका रिश्ता बहुत पास का न होने पर भी इनमें घनिष्ठता का अभाव नहीं है।

वनमाली हिमांशु से बहुत बड़ा है। हिमांशु के जब दांत भी नहीं निकले थे और न बोली ही फूटी थी तभी से वनमाली ने उसे गोद में लेकर सांझ-सवेरे बगीचे की खुली हवा में घुमाया है, खिलाया है, चुप कराया है, सुलाया है; और शिशु का मनोरंजन करने के लिए परिणत बुद्धि-वयस्क लोगों के जल्दी-जल्दी सिर हिलाने और ऊंचे स्वर में बातचीत करने की जो सारी अवस्थानुचित चपलताएं और भारी उछल-कूद दिखानी होती है, वनमाली ने उन सबको करने में भी कोई कमी नहीं की।

वनमाली ने कुछ विशेष पढ़ाई-लिखाई नहीं की। उसे बगीचे का शौक था और था दूर के रिश्ते का यह छोटा भाई, जिसे एक दुर्लभ दुर्मूल्य लता के समान वनमाली अपने हृदय के संपूर्ण स्नेह-सिंचन से पाल रहा था, फिर जब वह उसके भीतर-बाहर को आच्छन्न करती पल्लवित होने लगीं तब वनमाली ने अपने को धन्य माना।

अक्सर ऐसा देखने में नहीं आता, लेकिन कोई-कोई ऐसे स्वभाव के होते हैं, जो किसी छोटी सनक या छोटे शिशु अथवा किसी अकृतज्ञ मित्र के लिए अपने को सहज ही पूर्णरूप से विसर्जित कर देते हैं और इस विशाल धरा पर एकमात्र छोटे स्नेह के कारोबार में जीवन का सारा मूलधन समर्पण कर निश्चिंत बने रहते हैं, फिर शायद सामान्य स्वल्प अधिकार में ही परम संतोष के साथ

दिन काट लेते हैं या तो सहसा किसी सवेरे सारा घर-बार बेच कंगाल हो रास्ते पर जा खड़े होते हैं।

हिमांशु की अवस्था जब कुछ और बढ़ी तब उम्र और रिश्ते के अनेक अंतर के बावजूद वनमाली के साथ एक मैत्री बंधन में बंधा। दोनों के बीच मानो छोटा-बड़ा कुछ भी नहीं रहा।

ऐसा होने के कुछ कारण भी थे। हिमांशु पढ़ता-लिखता था और स्वभावत: उसकी ज्ञान-स्पृहा अत्यंत प्रबल थी। किताब मिलते ही पढ़ने लगता, इससे बहुत-सी व्यर्थ की किताबें भी अवश्य पढ़ी गईं, पर जैसी भी हो, इससे सब ओर से उसके मन की एक विशेष परिणति साधित हुई। वनमाली एक विशेष श्रद्धा के साथ उसकी बातें सुनता, उससे परामर्श लेता, उसके साथ छोटी-बड़ी सभी प्रकार की बातों की आलोचना करता, किसी विषय में ही उसे छोटा बालक मान अग्रहणीय नहीं समझता। हृदय के सर्वप्रथम स्नेह-रस से जिसे पाला-पोसा है, बड़ी उम्र में यदि वही ज्ञान-बुद्धि एवं उन्नत स्वभाव के लिए श्रद्धा का अधिकारी हो, तो उसके समान परम प्रिय वस्तु जगत में दूसरी नहीं।

हिमांशु को बगीचे का भी शौक था, लेकिन इस विषय में दोनों मित्रों में अंतर था। वनमाली का शौक हृदय का था तो हिमांशु में था बुद्धि का शौक। संसार के ये कोमल पेड़-पौधे, या अचेतन जीवन-राशि, जो सार-संभार की, कोई लालसा नहीं रखते लेकिन सार-संभार होने पर घर के बाल-बच्चों के समान बढ़ उठते, जो मानव शिशु से भी अधिक शिशु हैं, उन्हें यत्नपूर्वक पालने-पोसने की वनमाली की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। लेकिन हिमांशु की पेड़-पौधों के प्रति एक जिज्ञासु दृष्टि थी। अंकुर उगते, कोंपलें फूटतीं, कलियां लगतीं, फूल खिलते, इनमें उसका एकांतिक मनोयोग आकर्षित होता।

पेड़ के बीज बोने, कलम लगाने, खाद डालने, मचान तैयार करने के विषय में विभिन्न सलाह-मशविरे की बात हिमांशु के मन में आती रहती और वनमाली उन्हें अत्यंत आनंदपूर्वक ग्रहण करता। इस उद्यान-खंड को लेकर आकृति-प्रकृति में जितने प्रकार की संयोग-वियोग की संभावनाएं होतीं, वे दोनों मिलकर पूरा करते।

द्वार के सामने बगीचे के ऊपर ही एक पक्की वेदी जैसी थी। चार बजते ही एक पतला-सा कुर्ता पहने एक चुन्नटों वाली चादर कंधे पर डाल, हुक्का हाथ में लिए वनमाली वहां छाया में जा बैठता। कोई बंधु-बांधव नहीं, हाथ में

कोई एक किताब या अखबार भी नहीं। वह बैठा-बैठा उदासीन कनखियों से कभी दाएं और कभी बाएं दृष्टि डालता। इसी तरह उसका समय हुक्के की वाष्प-कुंडली के समान धीरे-धीरे अत्यंत हल्के भाव से उड़ता जाता, विलीन होता जाता, और फिर कहीं कोई निशान तक नहीं रख जाता।

आखिर में जब हिमांशु स्कूल से लौटकर जलपान कर हाथ-मुंह धोकर दिखाई देता तब वनमाली जल्दी से हुक्के की नली एक ओर को कर खड़ा होता, तभी उसके आग्रह को देखकर समझ में आता कि अब तक धैर्य के साथ वह किसकी प्रत्याशा में बैठा था।

फिर बगीचे में घूमते-घूमते दोनों की बातचीत होती, अंधेरा हो जाने पर दोनों बेंच पर जा बैठते—दक्षिण पवन पत्तों को मर्मरित करता बह जाता; किसी दिन नहीं भी बहता, पेड़-पौधे चित्रवत् स्थिर खड़े रहते, सिर के ऊपर आकाश को भरे हुए तारे जगमगाते रहते।

हिमांशु बातें करता, वनमाली चुपचाप सुनता। जो न समझ में आता वह भी उसे अच्छा लगता; जो सब बातें दूसरों से सुनने में अत्यंत खीझ पैदा करने वाली होतीं, वही बातें हिमांशु के मुंह से बड़ी मजेदार लगतीं, ऐसे श्रद्धावान वयस्क श्रोता को पाकर हिमांशु की भाषण-शक्ति, स्मृति-शक्ति कल्पना-शक्ति की विशेष परितृप्ति होती।

वह कुछ बातें पढ़कर कहता, कुछ सोचकर कहता, कुछ बातें तभी दिमाग में उदित होतीं और बहुत बार कल्पना के सहारे से ज्ञान के अभाव को ढक देतीं। वह बहुत-सी बातें ठीक कहता, बहुत-सी बेतुकी भी, लेकिन वनमाली गंभीरतापूर्वक सुनता, बीच-बीच में दो-एक बात कहता हिमांशु उसका प्रतिवाद करके जो उसे समझाता, वह वही समझता, फिर दूसरे दिन छाया में बैठा हुआ हुक्के के कश खींचते-खींचते उन सब बातों के विषय में कुछ देर तक आश्चर्य के साथ सोचता रहता।

इसी बीच एक गड़बड़ी हो गई। वनमाली के बगीचे और हिमांशु के घर के बीच से पानी निकलने का एक नाला था। उसी नाले पर कहीं एक नीबू का पेड़ उग आया था। उस पेड़ में जब नीबू लगते तब वनमाली का नौकर उसे तोड़ने की कोशिश करता और हिमांशु का नौकर उसे मना करता, इसके चलते दोनों में जो गाली-गलौज की झड़ी लगती। वह यदि कोई ठोस वस्तु होती तो उससे सारा नाला भर जाता।

बीच से वनमाली के पिता हरचंद्र और हिमांशु माली के पिता गोकुलचंद्र में उस नीबू के पेड़ को लेकर भारी झगड़ा मच गया। दोनों पक्ष नाले के दखल के लिए अदालत में जा पहुंचे।

वकील-बैरिस्टरों में जितने महारथी थे सभी ने दूसरे पक्ष का अवलंबन लेकर बड़ा लंबा वाक्-युद्ध आरंभ किया। दोनों पक्षों का जितना पैसा खर्च हो गया उतना पानी तो भादों की बाढ़ में भी उस नाले से कभी नहीं बहा होगा।

आखिर में हरचंद्र की जीत हुई, प्रमाणित हुआ, नाला उसी का है और नीबू के पेड़ पर दूसरे किसी का कोई हक नहीं। अपील हुई, पर नाला और नीबू हरचंद्र के ही रहे।

जितने दिन मुकदमा चलता रहा, दोनों भाइयों की मित्रता में कोई रुकावट नहीं आई। यहां तक कि, कोई विवाद की छाया एक-दूसरे को स्पर्श न करे इस आशंका से कातर हो वनमाली दुगुनी घनिष्ठता से हिमांशु को हृदय के निकट आबद्ध कर रखने की चेष्टा करता, और हिमांशु भी रंचमात्र विमुखता नहीं दिखाता।

जिस दिन अदालत में हरचंद्र की जीत हुई, उस दिन घर में, विशेष रूप से अंत:पुर में परम आनंद की धूम मच गई, केवल वनमाली की आंखों की नींद चली गई। उसके दूसरे दिन अपराह्न में ऐसे म्लान मुख से वह बगीचे की वेदी पर जा बैठा जैसे दुनिया में और किसी का कुछ नहीं हुआ, बस उसकी ही भारी हार हुई।

उस दिन समय निकल गया, छ: बज गए, लेकिन हिमांशु नहीं आया। वनमाली ने एक गहरी दीर्घ नि:श्वास छोड़ हिमांशु के घर की ओर देखा, खुली खिड़की के भीतर से दिखा अलगनी पर हिमांशु के स्कूल के बदले कपड़े लटक रहे हैं; बहुत से जाने-पहचाने लक्षणों को मिलाकर देखा—हिमांशु घर में है। हुक्के की नली फेंककर वह उदास मुख से घूमने लगा और सैकड़ों बार उस खिड़की की ओर देखा, लेकिन हिमांशु बगीचे में नहीं आया।

संध्या समय बत्ती जलने पर वनमाली धीरे-धीरे हिमांशु के घर गया।

गोकुलचंद्र द्वार पर बैठे तपी देह पर हवा लगा रहे थे। "कौन है?" उन्होंने पूछा।

वनमाली चौंक पड़ा, जैसे चोरी करने आया और पकड़ लिया गया हो। कांपते हुए स्वर में बोला, "मामा, मैं हूं।"

मामा ने कहा, "किसे ढूंढ़ने आए हो? घर में कोई नहीं है।"

वनमाली फिर बगीचे में आ चुप बैठा रहा।

जितनी रात बढ़ने लगी, देखा, हिमांशु के घर की खिड़कियां एक-एक ..के बंद हो गईं। दरवाजों की दरार से जो प्रकाश रेखाएं दिख रही थीं। करीब-..रीब वे भी धीरे-धीरे बुझ गईं। अंधेरी रात में वनमाली को लगा, हिमांशु के घर .. सारे दरवाजे उसके लिए बंद हो गए, वह केवल बाहर के अंधेरे में अकेला ..ड़ा रहा।

फिर उसके दूसरे दिन वह बगीचे में आ बैठा; सोचा, आज शायद आ भी ..कता है। बहुत दिनों से रोजाना ही आता था वह फिर एक दिन भी नहीं ..एगा। यह बात वह कैसे भी नहीं सोच पाया। कभी मन में भी नहीं आया था .. यह बंधन किसी प्रकार कभी टूटेगा; ऐसे निश्चिंत मन से करता कि जीवन .. सारे दु:ख-सुख कब उसे बंधन में बंध गए यह वह जान ही नहीं पाया। आज ..ऐसा पता चला कि वह बंधन टूट गया है; पर क्षण-भर में उसका जो सर्वनाश ..ो गया इसका उसे कैसे भी विश्वास नहीं हुआ।

प्रतिदिन यथासमय वह बगीचे में आ बैठता कि कहीं अकस्मात् वह ..ए। लेकिन ऐसा दुर्भाग्य जो नियम-क्रम से प्रतिदिन घटित होता वह दैव-क्रम .. एक दिन भी नहीं घटा।

रविवार के दिन सोचा, पहले के नियमानुसार आज भी सुबह हिमांशु ..र यहां खाने को आएगा। ठीक विश्वास किया हो ऐसी बात नहीं, लेकिन ... भी आशा नहीं छोड़ी गई, सवेरा हुआ, वह नहीं आया।

तब वनमाली बोला, "तो फिर भोजन करके ही आएगा।" जब वह ..जन करके भी नहीं आया तब वनमाली ने सोचा, 'आज शायद भोजन करके .. रहा है। नींद खुलते ही आ जाएगा।' नींद कब खुली, मालूम नहीं, पर वह ..या नहीं।

फिर वही शाम हुई, रात आई, हिमांशु के घर के दरवाजे एक के बाद एक ..द हुए, बत्तियां एक के बाद एक बुझ गईं।

इसी प्रकार सोमवार से रविवार तक सप्ताह के सातों दिन जब दूरदृष्टा ने ..के हाथों से छीन लिए, आशा को आसरा देने के लिए जब और एक दिन भी ..की नहीं रहा, तब हिमांशु के रुद्ध द्वार अट्टालिका की ओर उसकी अश्रुपूर्ण दो ..र आंखों ने एक बड़ी मर्मभेदी मनोवेदना की फरियाद भेज दी और जीवन-.. की सारी वेदना को एकमात्र आर्त स्वर के बीच घनीभूत कर बोला, "हे ..माय!"

❑❑

30

दालिया

पराजित शाहसुजा ने औरंगजेब के भय से भागकर आराकान राज्य में आश्रय ग्रहण किया था। उसके साथ में उसकी तीन सुंदरी कन्याएं थीं। आराकान के राजा की इच्छा हुई, राजपुत्रों के साथ उनका विवाह कर दें। उस प्रस्ताव पर शाहसुजा द्वारा आपत्ति प्रकट किए जाने पर एक दिन राजा के आदेश से उन्हें छलपूर्वक नौका द्वारा बीच नदी में ले जाकर नौका डुबो देने की चेष्टा की गई। उस विपत्ति के समय सबसे छोटी अमीना को उसके पिता ने स्वयं नदी में फेंक दिया। बड़ी बेटी ने आत्महत्या कर ली और सुजा का एक विश्वासी कर्मचारी रहमत अली जुलेखा को साथ ले तैरकर भाग गया और उधर सुजा ने युद्ध करते हुए प्राण दिए।

अमीना प्रखर स्रोत में बहती दैव-योग से तुरंत ही एक मछुए के जाल में फंस गई और उसी के घर में पलती हुई बढ़ी।

इस बीच वृद्ध राजा की मृत्यु हो गई और युवराज राजगद्दी पर अभिषिक्त हुए।

1

एक दिन सुबह-ही-सुबह बूढ़े मछुए ने आकर अमीना को फटकारा "तिन्नी!" मछुए ने आराकानी भाषा में अमीना का नया नामकरण किया था। "तिन्नी, आज सवेरे-सवेरे तुझे हुआ क्या! काम-काज में तो तूने बिल्कुल हाथ नहीं लगाया। मेरे नए जाल में गोद नहीं लगाया गया है। मेरी नाव—"

अमीना मछुए के पास आकर प्यार जताते हुए बोली, "बूढ़े, आज मेरी दीदी आई है, इसी से मेरी छुट्टी है।"

"तेरी दीदी कौन, कहां से आ गई रे तिन्नी?"

तभी जुलेखा न जाने कहां से बाहर निकल आ बोली, "मैं हूं।"

बूढ़ा हैरान रह गया। फिर जुलेखा के बहुत पास आकर अच्छी तरह से उसके चेहरे को देखा। फिर चट से पूछा, "तू कोई काम-काज जानती है?"

अमीना बोली, "बूढ़े! दीदी के बदले में मैं काम कर दूंगी। दीदी काम नहीं कर सकेगी।"

बूढ़े ने कुछ देर सोचकर पूछा, "तू रहेगी कहां?"

जुलेखा बोली, "अमीना के पास।"

बूढ़े ने सोचा फिर तो बड़ी मुश्किल होगी। पूछा, "खाएगी क्या?"

जुलेखा बोली, "इसका भी इंतजाम है।" कहते हुए लापरवाही के साथ मछुए के सामने एक स्वर्ण मुद्रा फेंक दी।

अमीना ने उसे उठाकर मछुए के हाथ में देते हुए धीरे से कहा, "बूढ़े, अब अधिक मत बोल, अब अपने काम पर जा। दिन चढ़ आया है।"

जुलेखा अमीना की खोज में छद्मवेश में अनेक स्थानों पर घूमती हुई आखिर इस मछुए की कुटिया में कैसे आ पहुंची। यह सब बातें बताने पर यहां दूसरी कहानी बन जाएगी। उसका रक्षक रहमत शेख छद्मनाम से आराकान की राजसभा में काम कर रहा है।

2

छोटी-सी नदी बहती जा रही थी और प्रथम ग्रीष्म की शीतल प्रभात वायु में कैलू वृक्ष के रक्तिम पुष्प-मंजरी में फूल झर रहे थे।

वृक्ष तले बैठकर जुलेखा अमीना से बोली, "ईश्वर ने जो मृत्यु के हाथ से हम दोनों बहनों की रक्षा की है, वह केवल पिता की हत्या के प्रतिशोध के लिए। और तो दूसरा कोई कारण समझ में नहीं आता।"

अमीना नदी के उस पार सबसे दूरवर्ती, सबसे छायामय, वन श्रेणी की ओर दृष्टि फैलाए धीरे-धीरे बोली, "दीदी, अब वे सारी बातें न बोल बहन! मुझे अब यह दुनिया एक तरह से अच्छी ही लग रही है। मरना चाहें तो मर्द लोग मार-काट करें, मरें, मुझे यहां अब कोई दु:ख नहीं है।"

जुलेखा बोली, "छि: छि:, अमीना, तू क्या शाहजादे के घर की बेटी है। कहां दिल्ली का तख्त, और कहां आराकान के मछुए की कुटिया!"

अमीना हंसकर बोली, "दीदी, दिल्ली के सिंहासन की तुलना में मेरे इस

बूढ़े की कुटिया और इस कैलू वृक्ष की छाया यदि किसी बालिका को अधिक अच्छी लगे तो इससे दिल्ली का सिंहासन एक बूंद भी आंसू नहीं बहाएगा।''

जुलेखा कुछ अनमने भाव से अमीना से बोली, ''लेकिन तुझे दोष नहीं दिया जा सकता, तब तो तू निहायत छोटी थी। लेकिन एक बार सोचकर देख तो सही कि अब्बाजान तुझे सबसे अधिक प्यार करते थे इसीलिए तुझे ही अपने हाथों से पानी में फेंका था। अब्बा द्वारा दी गई मौत से इस जीवन को अधिक प्रिय मत मान। पर अगर तू बदला ले सकी तो तभी जिंदगी का कोई अर्थ होगा।''

अमीना चुप हो दूर ताकती रही, लेकिन अच्छी तरह समझ में आ रहा था कि सब बातों के बावजूद बाहर की यह हवा, वृक्ष की छाया और उसका अपना यह नवयौवन और जाने कौन-सी एक सुखद स्मृति ने उसे निमग्न कर रखा था।

कुछ देर के बाद, वह गहरी सांस भरती हुई बोली, ''दीदी, तू कुछ देर प्रतीक्षा कर बहन! मेरा घर का काम बाकी है। मैं रसोई न बना दूं तो बूढ़े को खाना नहीं मिलेगा।''

3

जुलेखा अमीना की स्थिति के विषय में सोचकर भारी उदास मन से चुप बैठी रही। इसी समय अचानक 'धप्प' से किसी के कूदने की आवाज हुई और पीछे से किसी ने आकर जुलेखा की आंखें बंद कर लीं।

जुलेखा भयभीत होकर बोली, ''कौन!''

स्वर सुनकर युवक आंखें छोड़ सामने आ खड़ा हुआ; जुलेखा के मुंह की ओर ताकता हुआ प्रसन्न मुख से बोला, ''तुम तो तिन्नी नहीं हो।'' जैसे जुलेखा बराबर अपने को 'तिन्नी' कहकर ही जताने की कोशिश करती रही हो और केवल युवक के असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि के सामने उसकी सब चतुराई खुल गई हो। जुलेखा ने वस्त्र संभाला और गर्वित भाव से उठ खड़ी होते हुए दोनों आंखों से अग्निबाण छोड़ते हुए पूछा, ''कौन हो तुम?''

युवक बोला, ''तुम मुझे नहीं पहचानतीं। तिन्नी जानती है। तिन्नी कहां है?''

शोरगुल सुन तिन्नी बाहर आई। जुलेखा का क्रोध और युवक का हतबुद्धि विस्मित मुख देखकर अमीना जोर-जोर से हंस पड़ी। बोली, ''दीदी, इसकी बातों का तुम कुछ भी बुरा न मानना। यह क्या आदमी है? यह तो जंगली हिरण

है। अगर इसने कोई बेअदबी की हो तो मैं इसको फटकारूंगी। दालिया...तुमने क्या किया था?"

युवक ने फौरन कहा, "आंखें बंद कर ली थीं। मैंने सोचा था तिन्नी होगी, लेकिन यह तो तिन्नी नहीं है।"

तिन्नी सहसा असह्य क्रोध प्रकट करते हुए बोली, "फिर! छोटे मुंह बड़ी बात! तुमने कब तिन्नी की आंखें बंद की हैं। तुम्हारा साहस तो कम नहीं।"

युवक बोला, "आंखें बंद करने के लिए कुछ अधिक साहस की जरूरत नहीं होती, तब जबकि पहले से ही अभ्यास रहा हो तो। पर सच कह रहा हूं तिन्नी, आज थोड़ा डर गया था।" कहते हुए जुलेखा की ओर से छिपाकर उंगली से इशारा करते हुए अमीना के मुंह की ओर देख चुपचाप हंसने लगा।

अमीना बोली, "नहीं, तुम तो बड़े जंगली हो। शाहजादी के सामने खड़े होने लायक नहीं। तुम्हें साथ में रखकर पाठ पढ़ाना जरूरी है। देखो, इस तरह सलाम करो", कहकर अमीना ने अपनी यौवन मंजरित देहलता को अत्यंत मधुरभंगी में झुकाकर जुलेखा को सलाम किया। युवक ने बड़े कष्टपूर्वक उसकी पूरी तरह लेकिन अधूरी नकल की।

बोली, "इस प्रकार तीन कदम पीछे हट जाओ।" युवक पीछे हट आया।

"फिर सलाम करो।"

फिर सलाम किया।

इस प्रकार पीछे हटवाते, सलाम करवाते, अमीना युवक को कुटिया के द्वार पर ले गई। बोली, "कमरे के अंदर चलो।" युवक ने कमरे में प्रवेश किया।

अमीना ने बाहर से कमरे का द्वार बंद करके कहा, "थोड़ा घर का काम करो। आग जला रखो।" कहते हुए दीदी के पास आ बैठी। बोली, "दीदी, गुस्से न होना बहन, यहां के लोगबाग ऐसे ही हैं। मैं बहुत परेशान हो गई हूं।"

लेकिन अमीना के मुख पर या व्यवहार में इसका कोई भी लक्षण प्रकट नहीं हुआ। बल्कि बहुत बातों में यहां के लोगों के प्रति उसका कुछ अनुचित पक्षपात दिखा।

जुलेखा ने यथासमय क्रोध प्रकट करते हुए कहा, "सचमुच अमीना, तुम्हारे व्यवहार से मैं बहुत हैरान हूं। एक बाहरी आकर तुम्हारा स्पर्श करे। उसका इतना बड़ा दुस्साहस!

अमीना दीदी के साथ स्वर में स्वर मिलाकर बोली, "देख बहन! अगर किसी बादशाह या नवाब का बेटा ऐसा व्यवहार करता, तो मैं उसे डांट-फटकार कर भगा देती।"

जुलेखा के भीतर की फूटती हंसी रुकी नहीं। वह हंसकर बोल उठी, "सच कहना अमीना, तू जो यह बता रही थी कि दुनिया तुझे बड़ी अच्छी लग रही है, वह क्या इस जंगली युवक के लिए ही?"

अमीना बोली, "दीदी, सच-सच बताऊं दरअसल यह मेरा बड़ा उपकार करता है। फल-फूल तोड़ देता है, शिकार कर लाता है, काम करने के लिए बुलाने पर दौड़ा आता है। कई बार सोचती हूं इसको फटकार दूं। लेकिन वह कोशिश बेकार चली जाती है। यदि खूब आंखें तरेरकर कहती हूं, 'दालिया, तुमसे मैं बहुत नाराज हूं'—दालिया मेरे चेहरे की ओर देखकर हैरानी से चुपचाप हंसता रहता है। इस देश का मजाक शायद ऐसा ही है; दो-एक चपत लगाने पर बड़ा भारी खुश होता है। यह भी जांचकर देखा है। अभी देखो न, कमरे में बंद है—बड़े मजे में है, दरवाजा खोलते ही देखूंगी आंखें और मुंह लाल किए हुए मन की तरंग में आग फूंक रहा है। इसे लेकर क्या करूं, बता न बहन! मुझसे तो अब नहीं चल रहा है।"

जुलेखा ने कहा, "मैं कोशिश करके देख सकती हूं!"

अमीना ने हंसते हुए चिरौरी की, "तेरे पैरों पड़ती हूं बहन! उसे अब तू कुछ न कहना।" उसने इस तरह कहा, जैसे वह युवक अमीना का बड़े शौक से पाला गया पालतू हिरण हो। अभी उसका जंगली स्वभाव गया नहीं—कहीं दूसरे आदमी को देख डरकर कंहीं और भटक जाए, ऐसी आशंका थी। इतने में मछुए ने आकर पूछा, "तिन्नी, आज दालिया नहीं आया?"

"आया है।"

"कहां गया।"

"उसने बड़ा हंगामा-सा मचा रखा था, इसलिए उसे कमरे में बंद कर रखा है।"

बूढ़े ने कुछ चिंतित होकर कहा, "अगर परेशान करे तो सहती रहना। कच्ची उम्र में सभी ऐसे नटखट होते हैं। उसे अधिक झिड़का न कर। कल दालिया ने एक थलु (स्वर्ण मुद्रा) देकर मुझसे तीन मछलियां ली थीं।"

अमीना बोली, "बूढ़े, फिक्र मत कर; आज मैं उससे दो थलु ऐंठूंगी। बदले में एक भी मछली नहीं देनी होगी।"

बूढ़ा अपनी लड़की की इतनी कम उम्र में ऐसी चतुराई और दुनियादारी देखकर बहुत खुश हुआ और उसके सिर पर सस्नेह हाथ फेरकर चला गया।

4

आश्चर्य यह है कि दालिया के आने-जाने के बारे में जुलेखा की विशेष आपत्ति धीरे-धीरे जाती रही। सोचकर देखने पर इसमें कोई हैरानी नहीं। कारण, नदी में जैसे एक ओर धार है तो दूसरी ओर किनारा; रमणी में भी उसी प्रकार हृदयावेग और लोक-लज्जा दोनों रहती हैं। पर, सभ्य समाज से बाहर आराकान राज्य में लोग कहां ? यहां तो केवल ऋतु-चक्र से वृक्ष मंजरित होते हैं और सामने की नीला नदी वर्षा में स्फीत, शरत् में स्वच्छ और ग्रीष्म में क्षीण हो जाती है। पक्षियों के उच्छ्वसित कंठ स्वर में समालोचना का लेशमात्र नहीं; और दक्षिण वायु बीच-बीच में उस पार के गांव में मानव-चक्र की गुंजन-ध्वनि बहाकर ले आती है, पर काना-फूसी नहीं लाती।

धराशायी अट्टालिका पर धीरे-धीरे जैसे अरण्य जन्म लेता है, यहां कुछ दिनों तक रहने पर उसी प्रकार प्रकृति के छिपे आक्रमण से औपचारिकता की मानव-निर्मित दृढ़ भित्ति अलक्षित रूप से धीरे-धीरे ढह जाती है और चारों ओर प्राकृतिक जगत के साथ सब कुछ एकाकार हो जाता है। दो समयोग नर-नारी का मिलन-दृश्य देखने में रमणी को जैसा सुंदर लगता है वैसा दूसरा कुछ नहीं। इतने रहस्य, इतने सुख, इतने अतल-स्पर्शी कौतूहल का विषय उसके लिए दूसरा कुछ नहीं हो सकता। तभी इस जंगली कुटिया के बीच निर्जन दारिद्र्य की छाया में जब जुलेखा का कुल-गर्व और लोकमर्यादा का भाव स्वतः ही शिथिल हो आया तब पुष्पित कैलू वृक्ष की छाया तले अमीना और दालिया के मिलन की मनोहर क्रीड़ा देखने में उसे बड़ा आनंद मिलता।

कदाचित् उसके भी तरुण हृदय में एक अतृप्त आकांक्षा जग उठती और सुख-दुख में उसे चंचल बना देती। अंत में ऐसा हुआ, किसी दिन युवक के आने में विलंब होने पर अमीना जैसी उत्कंठित रहती, जुलेखा भी उतने ही आग्रह के साथ प्रतीक्षा करती और दोनों के मिलने पर चित्रकार अपने सद्यः समाप्त चित्र को कुछ दूरी से जैसे देखता है वैसे ही सस्नेह निरीक्षण करती हुई रखती। किसी-किसी दिन मौखिक झगड़ा भी करती, छलपूर्वक डांटती, अमीना को कमरे में बंद कर युवक के मिलन वेग को प्रतिहत करती।

सम्राट् और अरण्य के बीच एक सादृश्य है। दोनों ही स्वाधीन, दोनों ही स्वराज्य के एकाधिपति, दोनों को ही किसी का नियम मानकर नहीं चलना होता। दोनों में ही प्रकृति की एक स्वाभाविक वृहदता और सरलता है। जो बीच के हैं, जो दिन-रात लोकशास्त्र के अक्षर मिलाकर जीवन-यापन करते हैं, वे ही

कुछ स्वतंत्र प्रकृति के नहीं हैं। वे ही बड़े के दास, छोटे के प्रभु और प्रतिकूल स्थिति में बिल्कुल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। जंगली दालिया प्रकृति-साम्राज्ञी का उच्छृंखल पुत्र था, शाहजादी के पास उसे कोई संकोच नहीं होता था, और शाहजादियां भी उसे समकक्ष का व्यक्ति जानकर पहचान पातीं। सहास्य, सरल, कौतुकप्रिय, सभी अवस्थाओं में निर्भीक, असंकोची, उसके चरित्र में दारिद्र्य का कहीं लक्षण ही नहीं था।

लेकिन इन सब खेलों के बीच एक-आध बार जुलेखा का हृदय हा-हा कर उठता वह सोचती, 'सम्राट् पुत्री के जीवन का यही परिणाम!'

एक दिन सवेरे दालिया के आते ही जुलेखा उसका हाथ जोर से दबाकर बोली, "दालिया, यहां के राजा को दिखा सकते हो?"

"दिखा सकता हूं। पर किसकिए, बताओ तो सही?"

"मेरे पास एक कटार है जिसे मैं उसकी छाती में उतार देना चाहती हूं।"

पहले तो दालिया कुछ आश्चर्य में पड़ गया, उसके बाद जुलेखा के हिंसा-प्रखर मुख की ओर देखकर उसका समस्त मुख हंसी से भर गया; जैसी इतनी बड़ी मजे की बात इससे पहले कभी भी न सुनी हो। अगर इसे मजाक कहो तो यह राजकन्या के उपयुक्त ही था। न कोई बात न चीत, पहली मुलाकात में ही एक कटार का आधा हिस्सा एक जीवंत राजा की छाती में घुसेड़ने पर ऐसे अंतरंग व्यवहार से राजा सहसा इस तरह हैरान रह जाएगा, यही चित्र निरंतर उसके मन में उदित होकर उसकी निःशब्द कौतुक हंसी को रह-रहकर उच्च हास्य में परिणत करने लगा।

5

उसके दूसरे ही दिन रहमत शेख ने जुलेखा को गोपन में पत्र लिखा कि "आराकान के नए राजा को मछुए की कुटिया में दोनों बहनों का पता लगा है और अकेले में अमीना को देखकर अत्यंत मुग्ध हुए हैं। विवाह के लिए अविलंब उसे प्रासाद में लाने का आयोजन कर रहे हैं। बदला लेने का इतना सुंदर अवसर फिर नहीं मिलेगा।"

तब जुलेखा ने अमीना का हाथ दृढ़ता से पकड़कर कहा, "ईश्वर की इच्छा स्पष्ट ही दीख रही है। अमीना, अब तुम्हारे जीवन के कर्त्तव्य-पालन का समय आया है, इस समय अब खेल अच्छा नहीं दीखता।"

दालिया उपस्थित था, अमीना ने उसकी ओर ताका; देखा वह कौतुक से हंस रहा है।

अमीना उसकी हंसी से मर्माहत होकर बोली, जानते हो दालिया, मैं राजवधू बनने जा रही हूं।"

दालिया ने कहा, "वह तो अधिक समय के लिए नहीं।" अमीना ने पीड़ित विस्मित चित्त से मन-ही-मन सोचा, 'सच ही यह है वन का मृग, इसके साथ मानव के समान व्यवहार करना मेरा पागलपन ही है।'

अमीना दालिया को तनिक और चौकस करने के लिए बोली, "राजा को मारकर फिर क्या मैं लौट पाऊंगी ?"

दालिया बात को संगत जान बोला, "लौटना तो कठिन ही है।"

अमीना की सारी-की-सारी रूह एकबारगी थर्रा उठी।

जुलेखा की ओर मुड़कर गहरी सांस भरकर बोली, "दीदी, मैं तैयार हूं।"

और दालिया की ओर मुड़कर बिंधे हृदय से मजाक के बहाने बोली, "रानी बनते ही मैं सबसे पहले राजा के खिलाफ एक साजिश में शामिल होने के अपराध में तुम्हें दंड दूंगी। उसके बाद फिर जो करना होगा करूंगी।"

यह सुनकर दालिया ने विशेष कौतुक का अनुभव किया जैसे प्रस्ताव का कार्य में परिणत होना बहुत विनोद का विषय हो।

6

अश्वारोही, पदातिक, निशान, हाथी, बाध और आलोक से मछुए के घर-द्वार के टूट पड़ने की-सी दशा हुई। राजप्रासाद से दो स्वर्णमंडित शिविकाएं भी आईं।

अमीना ने जुलेखा के हाथ से कटार ले ली। हाथी-दांत निर्मित उसकी नक्काशी को बहुत देर तक देखती रही। फिर वस्त्र हटाकर अपनी छाती पर एक बार उसकी धार को जांच कर देखा। जीवन-मुकुल के वृंत के पास कटार को एक बार स्पर्श कराया, फिर उसे म्यान में भरकर वस्त्र के बीच छिपाकर रखा।

उसकी एकांत इच्छा थी कि इस मरण-यात्रा से पहले दालिया के साथ एक बार मुलाकत हुई होती; लेकिन कल से ही वह लापता था। दालिया उस समय जो हंसी हंस रहा था, उसके भीतर क्या मान की ज्वाला प्रच्छन्न थी।

शिविका में चढ़ने के पूर्व अमीना ने अपने बाल्यकाल के आश्रय-स्थल को अश्रुजल के बीच से एक बार देखा—उसकी कुटिया का एक वृक्ष उसके घर के पास बहती वह नदी। मछुए का हाथ पकड़कर वह भरे और कंपते स्वर से बोली, "बूढ़े, तो फिर चली। तिन्नी के चले जाने पर तेरा घर-द्वार कौन देखेगा ?"

बूढ़ा बिल्कुल बालकों की तरह रो पड़ा।

अमीना बोली, "बूढ़े, अगर दालिया फिर यहां आए तो उसे यह अंगूठी दे देना। कहना, तिन्नी जाते समय दे गई है।"

यह कहते हुए तेजी से शिविका में चढ़ गई। महा समारोह के साथ शिविका चली गई। अमीना की कुटिया, नदी का किनारा, कैलू वृक्ष की छांह, अंधकार, सभी निस्तब्ध, जनशून्य हो गए।

यथासमय शिविका द्वय ने तोरेण-द्वार अतिक्रमण कर अंत:पुर में प्रवेश किया। दोनों बहनें शिविका छोड़कर बाहर आईं।

अमीना के मुंह पर हंसी नहीं थी। आंखों में भी अश्रुचिह्न नहीं। जुलेखा का मुंह फीका पड़ा है। जब कर्त्तव्य दूर था तब तक उसके उत्साह में तीव्रता थी—अब उसने कंपित हृदय से, व्याकुल स्नेह से अमीना को आलिंगन पाश में जकड़ा। मन-ही-मन बोली, 'इस सद्यः प्रस्फुटित फूल को नवप्रेम के वृंत से तोड़कर किस रक्त-स्रोत में बहाने जा रही हूं।'

लेकिन अब अधिक सोचने का समय नहीं। परिचारिकाओं द्वारा लाए शत सहस्र दीप के अनिमेष दृष्टि के बीच से दोनों बहनें स्वप्नाहत के समान चलने लगीं। अंत में वासर-कक्ष (नव दंपति का पहली रात का विवाह-कक्ष) द्वार के पास क्षण-भर के लिए रुककर अमीना ने जुलेखा से कहा, "दीदी!"

जुलेखा ने अमीना को प्रगाढ़ आलिंगन में बांध उसका चुंबन लिया।

दोनों ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया।

राजा कमरे के बीच मसनद शय्या पर राजवेश में आसीन थे। अमीना संकोचवश द्वार से कुछ दूरी पर खड़ी रही।

जुलेखा ने तनिक आगे बढ़ राजा के निकटवर्ती हो देखा, राजा चुपचाप सकौतुक मुस्करा रहे हैं।

जुलेखा बोल पड़ी, "दालिया!" अमीना मूर्च्छित हो गई।

दालिया उठकर आहत पक्षी के समान उसे उठा गोदी में भरकर शय्या पर ले गया। अमीना ने सचेतन हो छाती से छुरी को बाहर निकाल लिया और दीदी के मुख की ओर देखा। दीदी ने दालिया की ओर देखा और दालिया चुपचाप हास्यवदन दोनों को देखता रहा। कटार भी म्यान के भीतर से जरा-मुंह निकालकर यह तमाशा देख जैसे झकझकाती हंसी हंसने लगी।

❑❑

31

दहेज

पांच लड़कों के बाद जब एक कन्या का जन्म हुआ तब मां-बाप ने लाड़ से उसका नाम निरुपमा रखा। इसके पहले इस समाज में ऐसा शौकीन नाम किसी ने सुना नहीं था। प्राय: देवी-देवताओं के नाम ही प्रचलित थे—गणेश, कार्त्तिकेय, पार्वती इसके उदाहरण हैं।

अब निरुपमा के विवाह की बातचीत चल रही है। उसके पिता रामसुंदर मित्र ने बड़ी खोज की। लेकिन मनपसंद वर कैसे भी नहीं मिला। अंत में एक बड़े रायबाहदुर के घर के इकलौते लड़के को खोज निकाला। उक्त रायबहादुर के पैतृक जमीन-जायदाद बहुत कम रह गई है पर घर तो खानदानी ही था न।

वर-पक्ष ने दहेज में दस हजार की रकम और अनेक प्रकार की दान-सामग्री की मांग की। रामसुंदर बिना सोचे-विचारे राजी हो गए; ऐसे पात्र को कैसे भी छोड़ा नहीं जा सकता।

कैसे भी रुपयों की व्यवस्था नहीं हो पा रही है। गिरवी रखकर, बेचकर, बहुत कोशिशों के बावजूद भी छ:-सात हजार रुपये बाकी रह ही गए। इधर विवाह का दिन करीब आता जा रहा है।

आखिरकार विवाह का दिन आ ही पहुंचा। एक आदमी अधिक ब्याज पर बाकी रुपये उधार देने को तैयार हो गया लेकिन ऐन मौके पर वह भी गैर-हाजिर रहा। विवाह-मंडप में भारी हलचल मच गई। रामसुंदर ने हमारे रायबहादुर से हाथ-पैर जोड़कर कहा, "शुभ काम संपन्न हो जाने दें, मैं रुपये अवश्य ही अदा कर दूंगा।" रायबहादुर बोले, "रुपये मिले बिना वर को मंडप में नहीं लाया जाएगा।"

इस दुर्घटना के कारण अंत:पुर में रोना-धोना मच गया। इस बड़ी विपत्ति

का जो मूल कारण है वह विवाह की लाल चेली साड़ी पहने, गहना पहने, माथे पर चंदन चुपड़े चुप बैठी है। भावी ससुर-कुल के प्रति उसमें बड़ी भारी भक्ति या अनुराग उत्पन्न हो रहा हो, ऐसा नहीं कह सकते।

इस बीच एक सुविधा हो गई। सहसा ही वर अपने पितृदेव के प्रति बे-अदब हो गया। पिता से कह बैठा, "खरीद-फरोख्त, मोल-भाव की बात मैं नहीं समझता, विवाह करने आया हूं, विवाह करके ही लौटूंगा।"

पिता ने जिस किसी को सामने पाया उसी से बोले, "देख रहे हैं न, आजकल के लड़कों का आचरण?" दो-एक बुजुर्ग लोग थे, उन्होंने कहा, "शास्त्र-शिक्षा, नीति-शिक्षा तो बिल्कुल रही नहीं, इसी से तो ऐसा है।"

वर्तमान शिक्षा का विषमय फल अपनी संतान में प्रत्यक्ष देख रायबहादुर हतोत्साहित होकर बैठ गए। विवाह किसी तरह विषण्ण-निरानंद भाव से संपन्न हुआ।

ससुराल जाते समय निरुपमा को हृदय से लगाकर पिता आंसू नहीं रोक सके। नीरू ने पूछा, "बाबूजी, क्या ये लोग मुझे फिर कभी आने नहीं देंगे?" रामसुंदर ने उत्तर दिया, "आने क्यों नहीं देंगे, बेटी! मैं तुम्हें लिवा लाऊंगा।"

अक्सर ही रामसुंदर लड़की से मिलने चले जाया करते पर समधियाने में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रही। यहां तक कि नौकर-चाकर तक उन्हें नीची निगाह से देखते। अंत:पुर के बाहर अकेले कमरे में किसी दिन पांच मिनट के लिए बेटी से मिल पाते तो किसी दिन मिल तक नहीं पाते।

समधियाने में इस तरह का अपमान तो सहा नहीं जाता। रामसुंदर ने निश्चय किया, जैसे भी हो, रुपया चुकाना ही होगा।

लेकिन कर्ज का जितना बोझ अभी कंधे पर था वही संभाले नहीं संभल रहा था। खर्च में बेहद कटौती करनी पड़ी और कर्जदार की आंख से बचने के लिए हमेशा कई तरह के हीन कौशल अपनाने पड़ते हैं।

उधर ससुराल में उठते-बैठते कन्या को उलाहने मिलते। पिता के घर की निंदा सुनकर कमरे का दरवाजा बंद कर आंसू बहाना उसका नित्य-कर्म बन गया है।

विशेष रूप से सास का आक्रोश किसी भी तरह कम नहीं होता। यदि कोई कहता, "वाह कैसा रूप है; बहू का मुख देखकर आंखें जैसे शीतल हो जाती हैं।" सास गरज उठतीं, "हां, बड़ी रूपवती है। जैसे घर की बेटी, वैसा ही रूप-रंग।"

यहां तक कि बहू के खाने-पहनने तक की कोई परवाह नहीं करता, यदि कोई दयालु पड़ोसी किसी प्रकार की कोई कमी बताता तो सास उत्तर देतीं, ''इतना ही बहुत है।'' यानी कि बाप ने पूरे दाम दिए होते तो बेटी की भी पूरी सार-संभार होती। सभी ऐसा भाव प्रदर्शित करते जैसे बहू का इस घर पर कोई अधिकार नहीं, वह धोखा देकर घुस आई है।

शायद कन्या के अनादर-अपमान की ये सारी बातें कानोकान अंत में रामसुंदर तक पहुंची होंगी। वे घर-बार बेचने का प्रयत्न करने लगे।

लेकिन लड़कों को बे-घरबार का करने जा रहे हैं, यह बात उनसे छिपाए रखी। उन्होंने निश्चय किया, घर बेचकर फिर उसी घर को किराए पर ले लेंगे; ऐसे कौशल से चलेंगे कि उनके मरे दम तक यह बात लड़के जान तक नहीं पाएंगे।

लेकिन लड़के जान गए। सब आकर रोने-चिल्लाने लगे, खासकर बड़े तीनों शादीशुदा लड़के, जिनमें से किसी-किसी के संतान भी हैं। उनकी असहमति बड़ी महत्त्वपूर्ण थी, घर की बिक्री स्थगित रही। तब रामसुंदर इधर-उधर से भारी ब्याज पर थोड़े-थोड़े रुपये उधार लेने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि गृहस्थी का खर्चा चलना मुश्किल हो गया।

नीरू पिता का मुख देखकर सब कुछ समझ गई। वृद्ध के पके केश, सूखा चेहरा और सदा संकुचित भाव में दैन्य और दुश्चिंता प्रकट हो आई। कन्या के आगे जब पिता अपराधी है तब वह अपराध-अनुपात क्या छिप सकता है। जब समधियाने की अनुमति से क्षण भर के लिए कन्या से साक्षात्कार होता तब पिता की छाती कैसी फट रही होती, यह उनकी हंसी देखकर ही अनुमान हो जाता है।

नीरू उस व्यथित पितृ-हृदय को सांत्वना देने कुछ दिन के लिए मायके जाने को अत्यंत अधीर हो उठी। वह पिता का म्लान मुख देख अब दूर नहीं रह सकती थी। एक दिन रामसुंदर से बोली, ''बाबूजी, मुझे एक बार घर ले चलो।'' रामसुंदर ने कहा, ''अच्छा।''

किंतु उनका कोई जोर नहीं—अपनी पुत्री पर पिता का जो स्वाभाविक अधिकार होता है वह जैसे दहेज के रुपयों के बदले गिरवी रख दिया गया हो। यहां तक कि अत्यंत संकोच के साथ पुत्री से मुलाकात की भीख मांगनी होती और उसमें कभी-कभी निराश होने पर भी दूसरी बार कुछ कहने का मुख नहीं रहता।

किंतु पुत्री के स्वयं मायके आना चाहने पर पिता उसे न लाकर कैसे रह सकता है। इसलिए समधी के पास इस आशय की अर्जी पेश करने से पहले रामसुंदर ने कितनी दीनता, कितने अपमान, कितने नुकसान सहकर जो तीन हजार रुपये संग्रह किए उस इतिहास का गोपनीय रहना ही भला है।

वे कुछ नोटों को रूमाल में लपेट, चादर में बांधकर समधी के निकट जा बैठे। पहले हंसते हुए मुहल्ले की चर्चा छेड़ी। हरे कृष्ण के घर में बड़ी भारी चोरी हो गई, उसका आद्योपांत विवरण कह सुनाया; नवीनमाधव और राधामाधव दोनों भाइयों की तुलना करते हुए राधामाधव की विद्या-बुद्धि, स्वभाव की प्रशंसा और नवीनमाधव की निंदा की; शहर में एक नए रोग का आगमन हुआ, उस विषय में अनेक अजीबो-गरीब आलोचनाएं कीं, अंत में हुक्का जमीन पर रखते हुए बातों ही बातों में बोले, "अरे हां, समधी जी, दरअसल वे रुपये तो बाकी रह ही गए हैं। रोज ही सोचता हूं आते हुए कुछ साथ लेता आऊं, लेकिन समय पर ध्यान ही नहीं रहता। अरे भाई, बूढ़ा जो हो गया हूं।" ऐसी एक लंबी भूमिका बांधते हुए अस्थि-पंजर की तीन अस्थियों के समान तीन नोटों को अत्यंत सहज भाव से अत्यंत लापरवाही से बाहर निकाला। केवल तीन हजार के नोटों को देखकर रायबहादुर ने ठहाका लगाया।

बोले, "रहने दीजिए समधी जी, इसकी मुझे जरूरत नहीं।" एक प्रचलित देसी कहावत का उल्लेख करते हुए बोले कि छोटी-सी बात के लिए वे हाथों को बदबूदार नहीं करना चाहते।

ऐसी घटना के बाद कन्या को घर ले जाने का प्रस्ताव कोई जबान पर नहीं ला सकता था—केवल रामसुंदर ही थे जिन्होंने सोचा, 'यह सब रिश्तेदारी का संकोच अब मुझे शोभा नहीं देता।' मर्माहत हो काफी देर चुप रहने के बाद अंत में मृदु स्वर में बात चलाई। रायबहादुर ने बिना कोई कारण जताते हुए कहा, "यह अभी नहीं होगा।" और यह कहते हुए वे काम के बहाने उठकर चले गए। रामसुंदर पुत्री को मुंह न दिखाकर कांपते हाथों उन कुछ नोटों को चादर की खूंट में बांध घर लौट आए। मन-ही-मन प्रतिज्ञा की, जब तक सारे रुपये अदा करके नि:संकोच कन्या के अधिकार की मांग नहीं कर सकेंगे—तब तक फिर समधियाने नहीं आएंगे।

बहुत दिन बीत गए। निरुपमा आदमी पर आदमी भेजती रही पर पिता नहीं आए। अंत में रूठकर उसने आदमी भेजना बंद कर दिया, "इससे रामसुंदर के मन पर भारी चोट पहुंची, लेकिन फिर भी वे नहीं गए।

क्वार का महीना आ गया। रामसुंदर ने कहा, "अब की पूजा में बेटी को घर लाना ही है, नहीं तो मैं... ।" खूब लंबी-चौड़ी-सी कसम खाई।

पंचमी या षष्ठी के दिन चादर की खूंट में कुछ नोटों को बांधकर रामसुंदर ने यात्रा की तैयारी की। एक पांच साल के पोते ने आकर पूछा, "दादाजी, क्या मेरे लिए गाड़ी खरीदने जा रहे हो ?" ठेला गाड़ी चढ़कर हवा खाने का बहुत दिनों का उसे शौक है पर किसी भी तरह उसे पूरा करने का उपाय नहीं सूझता। छः वर्ष की पोती रोती हुई आकर कहती है, पूजा के अवसर पर निमंत्रण में पहनकर जाने के लिए उसके पास एक अच्छा कपड़ा नहीं है।

रामसुंदर यह सब जानते थे और तंबाकू पीते-पीते बूढ़े ने इस विषय में काफी सोचा। जब रायबहादुर के घर से पूजा का निमंत्रण आएगा तब उनकी बहुओं को अत्यंत मामूली गहनों के साथ अनुग्रह-पात्र दीन के समान वहां जाना होगा, इन सब बातों को सोचकर उन्होंने बड़ी गहरी सांस भरी लेकिन इससे उनके भाग्य की वार्धक्य रेखा के अधिक गहरे अंकित होने के सिवाय और कोई फल नहीं हुआ।

दैन्य पीड़ित घर की क्रंदन-ध्वनि को कानों में भरकर वृद्ध ने अपने समधी के घर में प्रवेश किया। आज उनमें वह संकोच का भाव नहीं, द्वार-रक्षक और भृत्यों के मुंह की ओर भी वह चकित सलज्ज दृष्टिपात दूर हो गया मानो उन्होंने अपने ही घर में प्रवेश किया हो। सुना, रायबहादुर घर में नहीं हैं, कुछ देर प्रतीक्षा करनी होगी। मन के उच्छ्वास को न संभाल पा रामसुंदर ने कन्या के साथ मुलाकात की। आनंदातिरेक से दोनों नेत्रों से आंसू बह चले। पिता भी रो रहे हैं कन्या भी रो रही है; दोनों में से कोई भी बोल नहीं पा रहा है। ऐसे ही कुछ समय बीत गया। फिर रामसुंदर ने कहा, "बेटी, अबकी तुझे ले जाऊंगा। अब कहीं कोई रुकावट नहीं।"

इसी समय रामसुंदर के बड़े लड़के हर मोहन ने अपने दोनों छोटे बच्चों के साथ सहसा कमरे में प्रवेश किया। वे पिता से बोले, "बाबूजी, तो फिर आपने हम लोगों को रास्ते पर बिठा दिया ?"

रामसुंदर ने अचानक अग्निमूर्ति हो कहा, "तुम लोगों के लिए क्या मैं नरक में जाऊं, तुम लोग मुझे मेरे सत्य की रक्षा नहीं करने दोगे ?" रामसुंदर घर बेच बैठे हैं; लड़के कैसे भी कुछ जान न पाएं, इसके लिए अनेक उपाय किए, फिर भी वे जान गए हैं, जानकर उनके प्रति अचानक रुष्ट और असंतुष्ट हो उठे।

उनका पोता उनके दोनों घुटनों से यथाशक्ति लिपट मुंह उठाकर बोला, "दादाजी, मुझे गाड़ी नहीं खरीद दी?"

सिर झुकाए रामसुंदर से कोई उत्तर न पा नीरू के पास जाकर बोला, "मुझे एक गाड़ी खरीद दोगी बुआ!"

निरुपमा सारा मामला समझ गई, बोली, "बाबूजी, यदि तुमने अब एक पैसा भी मेरे ससुर को दिया तो अपनी कन्या का मुंह फिर कभी नहीं देख पाओगे, तुम्हारी देह छूकर मैं यह कसम खाती हूं।"

रामसुंदर ने कहा, "राम! राम! ऐसी बात नहीं कहते। फिर, ये रुपये यदि मैं न दे पाऊं तो तुम्हारे पिता का अपमान और तुम्हारा भी।"

नीरू बोली, "रुपया देना ही अपमान है, तुम्हारी कन्या का क्या कोई सम्मान नहीं। क्या मैं केवल रुपये की थैली भर हूं, जब तक रुपये हैं तब तक मेरा दाम है। नहीं, बाबूजी, ये रुपये देकर तुम मेरा अपमान मत करो। इसके अलावा मेरे पति तो यह रुपये नहीं चाहते।"

रामसुंदर ने कहा, "बेटी, तब यह तुम्हें जाने नहीं देंगे।"

निरुपमा बोली, "न जाने दें तो क्या कर सकते हो बोलो, फिर तुम भी ले जाने के लिए कुछ मत कहना।"

रामसुंदर कांपते हाथों नोट बंधी चादर को कंधे पर डाल चोर के समान सबकी आंखें बचाकर घर लौट.गए।

रामसुंदर रुपये लाए थे और बेटी की मनाही के कारण वे रुपये दिए बिना ही लौटा ले गए, यह बात छिपी न रही। द्वार पर कान लगा कौतूहल स्वभाव वाली दासी ने नीरू की सास के पास यह खबर पहुंचा दी। सुनते ही उनके क्रोध की सीमा न रही। निरुपमा के लिए उसकी ससुराल अब कांटों की सेज बन गई। इधर उसके पति विवाह के थोड़े दिनों बाद ही डिप्टी मजिस्ट्रेट होकर किसी दूर शहर में चले गए, कहीं संग दोष से नीरू को कुशिक्षा न मिले इसी बहाने अब मायके के रिश्तेदारों से मुलाकात की बिल्कुल मनाही हो गई थी।

इसी समय नीरू अत्यंत कठिन रोग से पीड़ित हो गई। पर इसके लिए उसकी सास को पूरी तरह से दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अपने शरीर के प्रति वह अत्यंत लापरवाही बरत रही थी। कार्त्तिक महीने की ओस में रात-भर सिरहाने का द्वार खुला रखती, जाड़े के दिनों में देह पर कपड़ा नहीं रखती, खाने-पीने में कोई नियम नहीं मानती। दासियां जब अक्सर भोजन लाना भूल

जातीं तब एक बार भी मुंह खोलकर उन्हें स्मरण नहीं दिलाती। वह पराए घर में दास-दासी की तरह स्वामी-स्वामिनी के अनुग्रह पर निर्भर हो रह रही है। यही संस्कार उसके मन में बद्धमूल हो रहा था।

लेकिन इस प्रकार का भात्र भी सास को सह्य नहीं था। यदि भोजन के प्रति बहू की किसी प्रकार की लापरवाही देखतीं तो सास कह उठतीं, "नवाब के घर की बेटी है न। गरीब के घर का अन्न इनके मुंह में रुचता नहीं।" फिर कभी कहतीं, "एक बार देखो तो, कैसी बुरी शक्ल बना रखी है, दिन-ब-दिन जैसे जली सूखी लकड़ी-सी हुई जा रही है।"

रोग जब गंभीर होता गया तब सास बोली, "ये सब इसके नखरे हैं।" आखिर एक दिन नीरू ने अत्यंत विनयपूर्वक सास से कहा, "मां, मैं एक बार अपने बाबूजी और भाइयों को देखूंगी।"

सास बोलीं, "यह मायके जाने का बहाना है।"

कहने का कोई विश्वास नहीं करेगा—जिस दिन संध्या के समय नीरू की सांस उखड़ने लगी उसी दिन पहली बार डॉक्टर ने उसे देखा था और उस दिन ही डॉक्टर के देखने का अंत भी हो गया।

घर की बड़ी बहू मरी, खूब धूम-धाम से अंत्येष्टि-क्रिया संपन्न हुई जिले में, प्रतिमा-विसर्जन समारोह के बारे में राय चौधरियों की जैसी बड़ी लोक-प्रसिद्धि है, बड़ी बहू की अंत्येष्टि संबंधी रायबहादुरों की बहुत कुछ वैसी ही ख्याति फैल गई—ऐसी चंदन-काठ की चिता इस इलाके में कभी किसी ने देखी नहीं। ऐसे समारोह से श्राद्ध अनुष्ठान भी केवल रायबहादुर के घर में ही संभव था, सुना जाता है, इससे उनके ऊपर कुछ कर्ज भी हो गया।

रामसुंदर को सांत्वना देते समय, उनकी बेटी की कैसे महा समारोह के बीच मृत्यु हुई, सभी ने उसका बड़ा विस्तृत वर्णन किया।

इधर डिप्टी मजिस्ट्रेट का पत्र पहुंचा, "मैंने यहां सारा बंदोबस्त कर लिया है...इसलिए मेरी पत्नी को फौरन यहां भेज दें।" रायबहादुर की श्रीमती ने लिखा, "बेटा, हमने तुम्हारे लिए एक दूसरी लड़की का रिश्ता तय किया है, इसलिए छुट्टी लेकर फौरन चले आओ।"

इस बार बीस हजार का दहेज और हाथों-हाथ अदायगी।

❑❑

32

मध्यवलतनी

निवारण की गृहस्थी बिल्कुल साधारण ढंग की थी, उसमें काव्यरस नाममात्र को भी नहीं था। जीवन में इस रस की कोई आवश्यकता है, ऐसी बात उसके मन में कभी आई भी नहीं। जैसे परिचित पुरानी चप्पल-जोड़ी में दोनों पैर आराम से निश्चित भाव से प्रवेश करते हैं उसी तरह इस पुरानी दुनिया में निवारण अपने चिराभ्यस्त स्थान को अधिक किए रहता है, उस संबंध में भूलकर भी किसी प्रकार की चिंता, तर्क या तत्त्वालोचन नहीं करता।

निवारण सवेरे-सवेरे गली के किनारे, घर के द्वार पर खुली देह बैठ अत्यंत निश्चित भाव से हुक्का लिए तंबाकू पीता रहता। रास्ते से लोगों का आना-जाना, गाड़ी-घोड़े की आवाजाही, वैष्णव भिखारियों का गान, बेकार शीशी-बोतल खरीदने वालों की हांक चलती रहती; ये सारे चलायमान दृश्य मन को हल्के भाव से ढके रहते और जिस दिन कच्ची अमिया या तपसी मछली वाला आता, उस दिन बहुत मोल-भाव कर कुछ विशेष रूप से खान-पान का आयोजन होता। उसके बाद यथासमय तेल लगाकर स्नान करके भोजन के बाद रस्सी पर लटकती चपकन पहन चिलम भर तंबाकू पीता रहता और एक बीड़ा पान मुंह में रखकर दफ्तर की ओर चल पड़ता। दफ्तर से लौटकर शाम के समय भोजन के बाद रात को शयन-कक्ष में स्त्री हरसुंदरी के साथ मुलाकात होती।

वहां मित्र के लड़के के विवाह पर आइबड़-भात (विवाह के पूर्व वर या-वधू के पितृगृह में अन्नग्रहण रूप संस्कार। इसे संस्कृत में अव्यूदान कहते हैं) भेजना, नई-नई नौकरानी की ढिठाई, छेंचकि (महीन टुकड़ों में कटी तेल में तलकर थोड़े-से जल में सिद्ध या पकाई तरकारी विशेष) में विशेष छौंक की उपयोगिता संबंधी जो सब छोटी-मोटी समालोचनाएं होतीं उसे आज तक किसी

कवि ने छंदोबद्ध नहीं किया, और इसलिए निवारण के मन में कोई खीज पैदा नहीं हुई।

इसी बीच फागुन के महीने में हरसुंदरी को कष्टदायक पीड़ा शुरू हुई। ज्वर किसी प्रकार से छूटता नहीं। डॉक्टर जितनी ही कुनैन देते बाधा प्राप्त प्रबल स्रोत के समान ज्वर भी उतना ही ऊपर चढ़ता जाता। ऐसे ही बीस दिन, बाईस दिन, चालीस दिन तक व्याधि चली।

निवारण का दफ्तर बंद था। वह रामलोचन की सांध्यकालीन सभा में बहुत दिनों से गया नहीं था। क्या करे, कुछ समझ में नहीं आता। एक बार शयनकक्ष में जाकर रोगिणी का हाल मालूम कर आता, तो एक बार बाहर बरामदे में बैठकर चिंतित बैठा तंबाकू पीता। दोनों वक्त डॉक्टर-वैद्य बदलता और जो जैसा कहता, वही दवा परीक्षा कर देखना चाहता।

प्रेमपूर्वक इस अव्यवस्थित सुश्रूषा के बावजूद चालीस दिन बाद हरसुंदरी रोगमुक्त हुई। लेकिन, ऐसी दुबली और कमजोर हो गई कि शरीर जैसे बहुत दूर से अत्यंत क्षीण स्वर में 'हूं' कह उत्तर मात्र देता।

जब वसंतकाल में दक्षिण की हवा का बहना शुरू हो गया तब उष्ण निशीथ के चंद्रालोक ने भी सुहागनों के उन्मुक्त शयन-कक्ष में निःशब्द पद संचार का प्रवेशाधिकार प्राप्त किया।

हरसुंदरी के कमरे के नीचे ही पड़ोसी के पिछवाड़े का बगीचा है। वहीं कोई खास सुहाना या रमणीय स्थान है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किसी समय किसी ने शौक से दो-चार पत्ता बहार के पौधे लगा दिए थे, तब से उस ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। सूखी डाल के मचान पर कुम्हड़े की बेल चढ़ रही थी; पुराने बेर की झाड़ी के नीचे भारी झंखाड़ था; रसोईघर के बगल में दीवार टूटकर कुछ ईंटें जमा हो पड़ी थीं। और उसी के साथ जले पत्थर के कोयले और राख दिनोदिन स्तूपाकृत होते जा रहे थे।

किंतु, वातायन के नीचे लेटे इस बगीचे की ओर ताकती हुई हरसुंदरी प्रति क्षण जो आनंद-रसपान करने लगी। अपने तुच्छ जीवन में ऐसा और कभी भी नहीं कर पाई थी। ग्रीष्मकाल में स्रोतावेग मंद हो छोटी ग्राम्य नदी जब बालू शय्या पर क्षीर्ण हो आती तब जैसे अत्यंत स्वच्छता प्राप्त करती, तब जैसे प्रभाव का सूर्यालोक उसकी तलहटी तक कंपित होता रहता, वायु स्पर्श उसके सर्वांग को पुलकित कर देता और आकाश के तारे उसके स्फटिक दर्पण के ऊपर सुख-

स्मृति के समान अति सुस्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होते वैसे ही हरसुंदरी के क्षीण जीवन तंतु के ऊपर आनंदमयी प्रकृति की प्रत्येक उंगली जैसे स्पर्श करने लगी और फिर अंतर में जो संगीत तरंग होने लगा उस भाव को ठीक पूर्णतया समझ न पाई।

इसी समय जब उसके पति पास ही बैठकर पूछते, "कैसी हो?" तब उसकी आंखों में जैसे जल छलक आता। रोग क्षीर्ण मुख पर उसकी दोनों आंखें बहुत बड़ी लगतीं, वे बड़ी-बड़ी प्रेमार्द्र और आभास से झुकी आंखें पति के मुख की ओर उठतीं, क्षीर्ण हाथों नई अपरिचित आनंद रश्मि प्रवेश करती।

इस प्रकार कुछ दिन बीते। एक दिन रात में टूटे प्राचीर के उपरिवर्ती नन्हे पीपल के कांपते शाखांतराल से एक बड़ा-सा चांद उदित हो रहा था और संध्याकालीन उमस विलुप्त हो अचानक एक निशाचर वातास जाग्रत हो उठी। ऐसे में निवारण के बालों में उंगली फेरते-फेरते हरसुंदरी बोली, "हम लोगों के कोई बाल-वाल तो हुआ नहीं, तुम दूसरा विवाह करो।"

हरसुंदरी कुछ दिनों से यह बात सोच रही थी। मन में जब तक प्रबल आनंद या वृहत् प्रेम का संचार होता है तब मनुष्य सोचता है, 'मैं सब कुछ कर सकता हूं।' तब अचानक आत्म-विसर्जन की एक इच्छा बलवती हो उठती है। स्रोत का उच्छ्वास जैसे कठिन तट पर अपने को वेग से मूर्च्छित करता है वैसे ही प्रेम का आवेग, आनंद का उच्छ्वास, एक महत् त्याग, एक वृहत् दुःख के ऊपर अपने को जैसे निक्षेप करना चाहता है।

ऐसी ही दशा में अत्यंत पुलकित चित्त से एक दिन हरसुंदरी ने निश्चय किया, अपने पति के लिए मैं बहुत बड़ा कुछ करूंगी। पर हाय, जितनी साध है, उतनी सामर्थ्य किसके पास है। हाथ के पास क्या है, क्या दिया जा सकता है? ऐश्वर्य नहीं, बुद्धि नहीं, क्षमता नहीं, मात्र एक प्राण है, वह भी यदि कहीं देने को है तो अभी दे डालूं किंतु उसका भी क्या मूल्य?

"और अगर पति को दुग्ध फेन के समान शुभ्र, नवनीत के समान कोमल, शिशु कंदर्प के समान सुंदर एक स्नेह पुतली संतान दे सकती! किंतु प्राणपण इच्छा से भरकर भी तो वह होने का नहीं।" तब मन में आया, पति का दूसरा विवाह करना होगा। सोचा, स्त्रियां इसके लिए इतनी कातर क्यों होती हैं, यह काम तो कुछ भी कठिन नहीं। पति से जो प्यार करता है सौत से प्यार करना उसके लिए ऐसा क्या असाध्य है, यह सोचकर उसकी छाती फूल उठी।

पहले-पहल जब यह प्रस्ताव निवारण ने सुना तो हंसकर उड़ा दिया, दूसरी और तीसरी बार भी उसकी अनसुनी कर दी। पति की यह असहमति और अनिच्छा देख हरसुंदरी को आस्था और प्रसन्नता जितनी ही बढ़ी उतनी ही उसकी प्रतिज्ञा दृढ़ होने लगी।

इधर निवारण ने जितनी बार यह अनुरोध सुना उतनी ही बार इसकी असंभाव्यता उसके मन से दूर होती गई और घर के द्वार पर बैठे तंबाकू पीते-पीते संतान-परिवृत्त घर का सुखमय चित्र उसके मन में उज्ज्वल हो उठने लगा।

एक दिन स्वयं ही प्रसंग चलाते हुए उसने कहा, "अब इस बुढ़ापे में एक बच्ची से विवाह करके मैं उसकी देखभाल नहीं कर सकूंगा।"

हरसुंदरी ने कहा, "उसके लिए तुम्हें चिंता नहीं करनी होगी। पालने का भार मेरे ऊपर रहा," कहते-कहते इस संतानहीना रमणी के मन में एक किशोर वयस्का, सुकुमारी, लज्जाशीला, मातृक्रोड़ से सद्यविच्युता नववधू की मुखच्छवि उदित हुई और हृदय स्नेह से विगलित हो गया।

निवारण ने कहा, "मुझे दफ्तर जाना है, काम है फिर तुम हो, उस पर किसी बच्ची की जिद सुनने का अवसर मेरे पास नहीं है।"

हरसुंदरी ने बार-बार कहा, "उसके लिए जरा-सा भी समय नष्ट करना नहीं होगा।" और अंत में मजाक करते हुए बोली, "अच्छा जी, तब देखूंगी कहां रहता है तुम्हारा काम, कहां रहती हूं मैं और कहां रहते हो तुम!"

निवारण ने इस बात का उत्तर तक देना आवश्यक नहीं समझा, सजा के तौर पर हंसकर हरसुंदरी के कपोल पर तर्जनी से आघात किया। यह तो हुई भूमिका।

2

नाक में बुलाक डाले और आंखों में आंसू भरे एक छोटी-सी लड़की के साथ निवारण का विवाह हुआ। उसका नाम था शैलबाला।

निवारण ने सोचा, नाम बड़ा मधुर है और चेहरा भी लावण्य भरा है। उसका भाव, उसका चेहरा, उसकी चाल-ढाल कुछ विशेष मनोयोग से देखने की इच्छा होती है, पर वह किसी भी तरह पूरी नहीं हो पाती। उल्टे ऐसा भाव दिखाना पड़ता है कि "अरे यह रत्ती-भर की लड़की, इसे लेकर तो बड़ी मुसीबत में फंस गया, किसी तरह जान बचाकर मेरे वयसोचित कर्त्तव्य-क्षेत्र में जा पड़ने पर जैसे परित्राण मिल सकता है।"

हरसुंदरी निवारण के इस विषय विपदग्रस्त भाव को देखकर मन-ही-मन बड़े आमोद का अनुभव करती। कभी-कभी एकाध दिन उसके हाथ को जोर से पकड़कर कहती, "अरे भागते कहां हो। इत्ती छोटी-सी लड़की है वह तो तुम्हें खा नहीं जाएगी।"

निवारण दूनी हड़बड़ी का भाव दिखाते हुए कहता, "अरे रुको भी, मुझे एक जरूरी काम है।" कहते हुए जैसे भागने का रास्ता न पा रहा हो। हरसुंदरी हंसकर द्वार रोककर कहती, "आज आंखों में धूल नहीं झोंक सकोगे।"

अंत में निवारण नितांत निरुपाय हो कातर भाव से बैठ जाता।

हरसुंदरी उसके कान में कहती, "अरे, पराई लड़की को घर में लाकर उसकी ऐसी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।"

कहते हुए शैलबाला को पकड़कर निवारण के बाईं ओर बैठा देती और जबरदस्ती घूंघट खोल और ठोड़ी पकड़कर उसके आनत मुख को ऊपर उठाकर निवारण से कहती, "अहा, कैसा चांद-सा मुखड़ा है, देखो तो सही।"

या किसी दिन दोनों को कमरे में बैठाकर काम के बहाने उठ जाती और बाहर से 'धम्म' से दरवाजा लगा देती। निवारण निश्चय ही जानता, दो कौतूहली आंखें किसी-न-किसी सूराख से संलग्न हुई पड़ी हैं; अत्यंत उदासीन भाव से दूसरी ओर करवट ले सोने की चेष्टा करता, शैलबाला घूंघट खींचे सिकुड़ी-सी मुख फेरे एक कोने में दुबकी बैठी रहती।

अंत में हारकर हरसुंदरी ने कोशिश छोड़ दी लेकिन वह बहुत ज्यादा दु:खी नहीं हुई।

हरसुंदरी ने जब कोशिश छोड़ दी तब स्वयं निवारण ने कोशिश शुरू की। इसमें बड़ा कौतूहल, बड़ा रहस्य है। हीरे का एक टुकड़ा पाने पर उसे अनेक प्रकार से अनेक ओर से घुमा-फिराकर देखने की इच्छा होती है, और यह एक छोटा सुंदर-सा मनुष्य मन बड़ा अपूर्व है। इसे कितने प्रकार से स्पर्श कर, दुलार कर, अंतराल से, सामने से, बगल से देखना पड़ता है। कभी एक बार कान के बुंदे को हिलाकर, कभी जरा घूंघट उठाकर, कभी बिजली के समान सहसा सचकित-सा, कभी नक्षत्र के समान देर-देर तक अपलक नव-नव सौंदर्य की सीमा का संधान करना पड़ता है।

मैकमोरान कंपनी के बड़े बाबू श्रीनिवारणचंद्र के भाग्य में ऐसी अनुभव प्राप्ति इसके पहले कभी नहीं हुई थी। उसने जब प्रथम विवाह किया था तब

बालक था; जब यौवन को प्राप्त हुआ तब स्त्री उसके लिए चिरपरिचित थी। विवाहित जीवन चिराभ्यस्त था। हरसुंदरी को वह अवश्य ही प्यार करता, किंतु कभी भी उसके मन में कृत्रिम प्रेम का सचेतन संचार नहीं हुआ।

बिल्कुल पके आम में ही जिस कीड़े ने जन्म लिया हो, जिसकी किसी भी घड़ी रस को खोजना नहीं पड़ा हो, थोड़ा-थोड़ा करके रसास्वाद नहीं करना पड़ा हो, उसे एक बार वसंतकाल में विकसित पुष्पवन में छोड़कर देखें— विकासोन्मुख गुलाब के साथ खुले मुख के पास बार-बार चक्कर लगाने का कितना आग्रही होता है। जरा-सा जो सौरभ पाता, जरा-सा जो मधुर आस्वाद लगाने का प्राप्त करता, उसी में उसको क्या नशा आता!

निवारण पहले-पहल कभी या तो गाउन पहनी हुई कांच की गुड़िया, कभी एक शीशी एसेंस, मिठाई या कभी कोई मिठाई जैसी चीज खरीदकर शैलबाला को अकेले में दे जाता। इस तरह कुछ जरा-सी घनिष्ठता का सूत्रपात होता। अंत में किसी एक दिन हरसुंदरी ने गृहकार्य से मिले अवकाश के समय दरवाजे के छिद्र से देखा, निवारण और शैलबाला कौड़ियों से दस-पचीसी खेल रहे हैं।

बुढ़ापे में भी यह कौन-सा खेल है! सवेरे निवारण भोजनादि के बाद दफ्तर के लिए निकला, पर दफ्तर न जाकर अंतःपुर में प्रवेश किया। इस प्रवंचना की क्या आवश्यकता थी? सहसा एक जलती वज्रशलाका द्वारा न जाने किसने हरसुंदरी की आंखें खोल दीं, उस प्रखर ताप में आंखों का जल वाष्प होकर सूख गया।

हरसुंदरी ने मन-ही-मन कहा, 'मैं ही उसे घर में लाई, मैंने ही उसका मिलन कराया, फिर मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों, जैसे कि मैं उनके सुख का कांटा हूं।'

हरसुंदरी शैलबाला को गृहकार्य सिखाती। एक दिन निवारण ने मुख खोल कर कहा, "बच्ची है बेचारी। उससे तुम बहुत अधिक काम ले रही हो, उसका शरीर उतना झेल नहीं पाता।"

एक बड़ा तीखा-सा उत्तर हरसुंदरी के मुंह पर आया; किंतु वह कुछ बोली नहीं, चुप रह गई।

तब से वह बहू को घर के कामों में हाथ नहीं लगाने देती; खाना पकाना, देखभाल सब काम स्वयं करती। ऐसा हुआ कि शैलबाला अब जरा भी काम

नहीं करती, हरसुंदरी दासी की तरह उसकी सेवा करती और पति विदूषक के समान मनोरंजन करता। घर-गृहस्थी का काम करना, दूसरे का ध्यान रखना भी जीवन का कर्त्तव्य है, यह शिक्षा ही उसे नहीं मिली।

हरसुंदरी दासी के समान चुपचाप काम करने लगी। इसमें उसे बड़े भारी गर्व का अनुभव होता। उसमें न्यूनता और दीनता नहीं। उसने कहा, "तुम दोनों बच्चे की तरह मिल-जुलकर खेलो, गृहस्थी का सब भार मैंने लिया।"

3

हाय, आज कहां है वह बल, जिस बल पर हरसुंदरी ने सोचा था कि वह पति के लिए जीवन-पर्यंत अपने प्रेम के अधिकार का आधा हिस्सा निःशंक छोड़ दे सकती है। सहसा किसी पूर्णिमा रात्रि में जब ज्वार आता है तब दोनों किनारे प्लावित कर मनुष्य सोचता है, मेरी कहीं सीमा नहीं। उस समय जो एक विराट प्रतिज्ञा कर बैठता है, जीवन के सुदीर्घ भाटे के समय, उस प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए उसके संपूर्ण प्राणों में खिंचाव पड़ता है। अचानक ऐश्वर्य के दिनों में लेखनी के एक झटके से जो दान-पत्र लिखा जाता है, चिर दारिद्र्य के दिनों में पल-पल तिल-तिलकर उसे चुकाना पड़ता है। तब समझ में आता है, मनुष्य बड़ा दीन, उसका हृदय बड़ा दुर्बल, उसकी क्षमता बड़ी ही सामान्य है।

दीर्घ रोगावसान से क्षीण रक्तहीन पांडुकलेवर में हरसुंदरी उस दिन शुक्ला द्वितीया के चांद के समान एक हल्की-सी रेखा मात्र थी; गृहस्थी में नितांत बेजान-सी उतरा रही थी। उसे लगा, 'मुझ जैसे कुछ भी नहीं के न होने पर भी चलेगा।' धीरे-धीरे उसका शरीर बली हो उठा, खून का तेज बढ़ने लगा, तब हरसुंदरी के मन में न जाने कहां से ढेर सारे मनोभाव आ उपस्थित हुए, उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा, "तुम तो त्याग-पत्र लिखकर बैठी हो, पर हम अपना अधिकार नहीं छोड़ेंगे।"

हरसुंदरी ने जिस दिन पहली बार अपनी स्थिति को अच्छी तरह समझ लिया उसी दिन निवारण और शैलबाला को अपना शयन-कक्ष सौंप अलग कमरे में अकेली जाकर सो रही।

आठ वर्ष की उम्र में, वासर रात्रि में जिस शय्या पर प्रथम शयन किया था, आज सत्ताईस वर्ष बाद उसने उसी शय्या को त्याग दिया। दीपक बुझाकर वह सधवा-रमणी असह्य हृदय भार लेकर जब अपनी नई वैधव्य शय्या पर आ गिरी

थी तब गली के दूसरे छोर पर एक शौकीन युवक विहागरागिनी में मालिनी गान गा रहा था और दूसरा तबले पर संगत कर रहा था। स्रोतावृंद सम पर हाय...हाय...स्वर में चिल्ला पड़ते थे।

उसका वह गाना उस निस्तब्ध चांदनी रात में बगल के कमरे में सुनने में अच्छा ही लग रहा था। तब बालिका शैलबाला की उनींदी आंखें ऊंघ रही थीं और निवारण उसके कानों के पास मुंह रखकर धीरे-धीरे पुकार रहा था, ''सखी!'

इसी बीच इस व्यक्ति ने बंकिम बाबू का 'चंद्रशेखर' पढ़ लिया था और दो-एक आधुनिक कवियों का काव्य भी शैलबाला को पढ़कर सुनाया था।

निवारण के जीवन के पिछले हिस्से में जो एक यौवन-उत्स बराबर दबा हुआ था, आघात पाकर सहसा असमय ही उच्छ्वसित हो उठा। कोई भी उसके लिए तैयार नहीं था, इस कारण अकस्मात् उसकी बुद्धि तथा विवेक और घर-गृहस्थी का सारा बंदोबस्त उलट-पलट हो गया। वह बेचारा कभी नहीं जानता था कि मनुष्य के भीतर में सारे उपद्रवकारी पदार्थ रहते हैं, ऐसी दुर्दांत दुरंत शक्तियां जो सारा हिसाब-किताब और श्रृंखला-सामंजस्य नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं।

केवल निवारण ही नहीं, हरसुंदरी को भी एक नई वेदना का परिचय मिला। किसकी आकांक्षा और किसके लिए यह दु:सह यंत्रणा। मन इस समय जो कुछ चाहता है, कभी पहले तो यह चाह नहीं थी, कभी उसको पाया भी नहीं था। जब भद्र भाव से निवारण नियमित दफ्तर जाता, तब सोने के थोड़ी देर के लिए ग्वाले का हिसाब, चीजों की महंगाई और औपचारिक कर्त्तव्य विषयक आलोचनाएं होतीं, तब तो इस अंतर विप्लव की कोई शुरुआत तक नहीं थी। वह प्रेम अवश्य करता पर उसमें कोई औद्धत्य, कोई उत्ताप नहीं था। वह प्रेम मात्र अप्रज्ज्वलित ईंधन के समान था।

आज उसे अनुभव हुआ, जीवन की सफलता से कोई उसे जैसे चिरकाल से वंचित करता आ रहा है। उसका हृदय जैसे चिरदिन से अपवासी बना हुआ है। उसका यह नारीजीवन घोर दारिद्र्य में ही बीत रहा है। उसने केवल हाट-बाजार, पान-मसाला, साग-सब्जी के झंझटों को लेकर ही सत्ताईस अमूल्य वर्षों को दासी वृत्ति में ही व्यतीत किया और आज जीवन के मध्यपथ पर आकर देखा कि उसके ही शयन-कक्ष के बगल में एक छिपे महा-महैश्वर्य भंडार का ताला खोल एक छोटी-सी बालिका एकबारगी राज-राजेश्वरी बन बैठी है। नारी दासी

अवश्य है किंतु साथ-ही-साथ नारी रानी भी है। किंतु सारा हिसाब बंटाकर एक नारी दासी बनी और एक नारी रानी बनी; इससे दासी का गौरव तो गया ही रानी का सुख भी न रहा।

इसी कारण शैलबाला ने भी नारी जीवन के यथार्थ सुख का स्वाद नहीं पाया। उसने इतना अविच्छिन्न दुलार पाया जिससे प्रेम करने का पल-मात्र अवसर नहीं मिला। समुद्र की ओर प्रवाहित हो, समुद्र में आत्मविसर्जन कर, शायद नदी की एक महत् चरितार्थता है; किंतु समुद्र यदि ज्वार के खिंचाव से आकृष्ट हो लगातार नदी की ओर ही उन्मुख हुआ रहे तब नदी केवल अपने में ही स्वयं स्फीत होती रह सकती है। गृहस्थी अपना सारा प्यार-दुलार ले रात-दिन शैलबाला की ओर अग्रसर होती रही, इससे शैलबाला का आत्मप्रेम अत्यंत उत्तुंग होकर चढ़ने लगा। गृहस्थी के प्रति उसका प्रेम पनप नहीं पाया। उसने जाना, 'मेरे लिए ही सब कुछ है और मैं किसी के लिए नहीं।' इस स्थिति में पर्याप्त अहंकार भर है, किंतु संतोष जैसा कुछ भी नहीं।

4

एक दिन घनघोर घटा छा गई। इतना अंधेरा हो आया कि कमरे के भीतर काम-काज करना मुश्किल हो गया। बाहर जोरों की बारिश हो रही थी। बेर के पेड़ के तले लतागुल्मों का जंगल जल में लगभग डूब गया था और प्राचीर के पार्श्ववर्ती नाले से मटमैला जलस्रोत 'कलकल' ध्वनि से बह चला था। हरसुंदरी अपने नए शयन-कक्ष के निर्जन अंधकार में खिड़की के पास चुपचाप बैठी थी।

इसी समय निवारण ने चोर के समान धीरे-धीरे द्वार से प्रवेश किया। वह यह समझ नहीं पाया कि लौट आए या आगे बढ़े। हरसुंदरी ने देखा पर कुछ बोली नहीं।

तब निवारण ने सहसा एकदम तीर वेग से हरसुंदरी के पास जाकर एक ही सांस में कहा, "दो-चार गहनों की जरूरत आ पड़ी है। तुम जानती तो हो कि बहुत कर्ज चढ़ गया है, कर्जदार बड़ा अपमान कर रहे हैं—थोड़ा-बहुत बंधक रखना होगा—जल्दी छुड़ा लूंगा।"

हरसुंदरी ने कोई उत्तर नहीं दिया, निवारण चोर के समान खड़ा रहा। आखिर में फिर बोला, "तो क्या आज नहीं होगा।"

हरसुंदरी ने कहा, "नहीं।"

कमरे में प्रवेश करना जितना कठिन था तत्काल बाहर निकलना भी उतना ही कठिन था। निवारण ने कुछ इधर-उधर ताकते हिचकिचाते हुए कहा, "तब क्या जाकर कहीं और कोशिश कर देखूं।" कहते हुए वहां से चला गया।

कहां ऋण चुकाना है और कहां गहने बंधक रखना होगा, हरसुंदरी ने यह सब समझ लिया। समझा, नववधू ने पिछली रात अपने इस मतिभ्रष्ट पालतू पुरुष को बड़े तीखे स्वर में कहा था, "दीदी के पास संदूक भरकर गहने हैं और मैं एकाध भी नहीं पा-पहन सकती?"

निवारण के चले जाने पर हरसुंदरी ने धीरे-धीरे उठकर लोहे के संदूक को खोल एक-एक करके सारे गहनों को बाहर निकाला। शैलबाला को बुलाकर पहले अपने विवाह की बनारसी साड़ी उसे पहनाई, फिर उसे सिर से पैर तक एक-एक कर गहनों से लाद दिया। अच्छी तरह जूड़ा बांधकर दिया जलाकर देखा, बालिका का मुख बड़ा ही मधुर दीख पड़ा—अभी-अभी पके सुगंधित फल के समान सुड़ौल रसपूर्ण। शैलबाला जब 'झन्-झन्' शब्द करती हुई चली गई तो वह शब्द देर तक हरसुंदरी की शिराओं के रक्त के बीच 'रिन-झिन' कर बजने लगा।

मन-ही-मन बोली, 'आज भला किस बाज में तेरी-मेरी तुलना। लेकिन एक समय था जब मेरी भी यही उम्र थी, मैं भी तो ऐसी ही यौवन की शेष रेखा तब उभर उठी थी, पर मुझे यह बात किसी ने क्यों नहीं जताई थी। कब वह दिन आया और कब वह दिन चला गया, इसकी एक बार सूचना भी नहीं मिली।' लेकिन किस गर्व से, किस गौरव से, और कौन-सी तरंग उठाती शैलबाला चलती।

हरसुंदरी जब मात्र घर-गृहस्थी ही जानती थी तब ये गहने उसके लिए कितने मूल्यवान थे? तब क्या अबोध के समान यह सब ऐसे क्षण भर में ही हाथ से लुटा सकती थी। आज घर-गृहस्थी के अतिरिक्त दूसरे किसी एक बड़े का परिचय मिला है; अब इन गहनों की कीमत और भविष्य का हिसाब सब कुछ तुच्छ हो गया है।

और शैलबाला हीरे-जवाहरात के जेवरात झिलमिलाते हुए शयन-कक्ष में चली गई, एक बार पलभर के लिए भी सोचा नहीं कि हरसुंदरी ने उसे कितना कुछ दिया। उसने यही जाना था कि चारों की सारी सेवा, सारी संपदा, सारे

सौभाग्य स्वाभाविक नियम से उसी में आकर परिसमाप्त होंगे; क्योंकि वह शैलबाला थी, वह सखी थी।

5

ऐसे भी लोग होते हैं, जो स्वप्नावस्था में निर्भीक भाव से अत्यंत दुर्गम पथ पर से चले जाते हैं, पलभर के लिए भी चिंता नहीं करते। बहुत से जाग्रत मनुष्यों की भी वैसी ही चिर स्वप्नावस्था उपस्थित होती है, कुछ भी होश नहीं रहता, विपद के संकीर्ण पथ पर निश्चिंत मन से अग्रसर होते रहते हैं, अंत में दारुण सर्वनाश के सम्मुखीन हो जाग्रत हो उठते हैं।

हमारे मैकमोरान कंपनी के बड़े बाबू की भी वैसी ही दशा है। शैलबाला उनके जीवन के बीच एक प्रबल आवर्त के समान चक्कर काटने लगी और बहुत दूर से विविध महार्घ आकृष्ट हो उसमें विलुप्त होने लगे। मात्र निवारण का मनुष्यत्व और मासिक वेतन, हरसुंदरी का सुख-सौभाग्य और वस्त्रालंकार ही नहीं; साथ-ही-साथ मैकमोरान कंपनी के नकद खजाने से भी चोरी-छिपे मांग बढ़ने लगी और वहां से भी एक-दो करके थैलियां अदृश्य होने लगीं। निवारण निश्चय करता, 'अगले महीने के वेतन से धीरे-धीरे कर्ज चुका देगा।' लेकिन अगले महीने का वेतन हाथ में आते ही उस आवर्त से ऐसा खिंचाव आता कि अंत में दो आने का सिक्का तक पलभर में चमचमाते तड़ित वेग से अंतर्हित हो जाता।

अंत में वह एक दिन पकड़ा गया। वंशानुक्रम की नौकरी थी। साहब बहुत स्नेह करते थे—खजाना पूरने के लिए मात्र दो दिन का समय दिया।

उसने धीरे-धीरे कैसे ढाई हजार रुपयों का गबन किया है, यह निवारण खुद भी नहीं समझ सका। वह एकदम पागल की तरह हरसुंदरी के पास पहुंचा और बोला, "सर्वनाश हो गया।"

हरसुंदरी सब कुछ सुनकर एकदम पीली पड़ गई।

निवारण ने कहा, "जल्दी गहने निकालो।"

हरसुंदरी बोली, "वह तो सब मैंने छोटी बहू को दे दिए हैं।"

निवारण बिल्कुल शिशु-सा अधीर हो कहने लगा, "क्यों दिया छोटी बहू को? क्यों दिया? किसने तुमसे उसे देने को कहा था?"

हरसुंदरी उसका सही उत्तर न देकर बोली, "इससे क्या हानि हुई? वह पानी में तो नहीं बहाया है।"

भीरु निवारण ने कातर स्वर में कहा, "यदि तुम किसी बहाने उसके पास से निकाल सको। पर मेरे सिर की कसम, जो बताया कि मैंने मांगा है या किसलिए मांगा है।"

तब हरसुंदरी मर्मांतक खीज और घृणा से भरकर बोल उठी, "यह क्या तुम्हारी बहानेबाजी या लाड़-दुलार करने का समय है। चलो।" कहकर पति को साथ लेकर छोटी बहू के कमरे में गई।

छोटी बहू कुछ समझी नहीं। उसने हर बार इतना ही कहा, "यह सब मैं क्या जानूं?"

गृहस्थी की किसी चिंता से उसे चिंतित होना होगा, ऐसी कोई बात क्या उसके साथ हुई थी। सब अपनी-अपनी चिंता करेंगे, और सभी मिलकर शैलबाला के आराम की चिंता करेंगे। अकस्मात् इसका व्यतिक्रम हुआ, यह कैसा घोर अन्याय है।

तब निवारण शैलबाला के पैर पकड़कर रो पड़ा। शैलबाला केवल यही कहती रही, 'यह मैं क्या जानूं, मैं अपनी चीजें भला क्यों देने लगी?'

निवारण ने देखा, "वह दुबली-सी छोटी सुंदरी सुकुमारी बालिका लोहे के संदूक से भी कठिन है। हरसुंदरी संकट के साथ पति की यह दुर्बलता देख घृणा से जर्जरित हो उठी। वह शैलबाला से जबर्दस्ती चाबी छीनने लगी। शैलबाला ने फौरन चाबी का गुच्छा दीवार के उस पार तालाब में फेंक दिया।

हरसुंदरी ने हत्बुद्धि हो पति से कहा, "तो फिर ताला तोड़ दो।"

शैलबाला बड़े ही शांत भाव से बोली, "तब मैं गले में फांसी लगाकर मरूंगी।"

निवारण ने कहा, "मैं एक जगह और कोशिश करके देखता हूं।" कहते हुए अस्त-व्यस्त सा घर के बाहर चला गया।

निवारण दो घंटे में ही अपना पैतृक घर ढाई हजार रुपये में ।च आया।

बहुत मुश्किलों से हाथ की हथकड़ी तो बची, पर नौकरी चली गई। चल-अचल संपत्ति में केवल दो पत्नियां रह गईं। उसमें से क्लेश कातर बालिका पत्नी गर्भवती हो बिल्कुल अचल ही हो पड़ी थी। गली के नुक्कड़ पर एक छोटे सीले हुए घर में उस छोटे परिवार ने आश्रय लिया।

6

छोटी बहू के असंतोष और दु:ख का कोई ओर-छोर नहीं। वह किसी भी तरह समझ नहीं पातीं कि यह उसके पति के बूते की बात नहीं। क्षमता नहीं थी तो विवाह क्यों किया था?

ऊपर के तल्ले में मात्र दो कमरे। एक कमरे में निवारण और शैलबाला का शयन-कक्ष था और दूसरे कमरे में हरसुंदरी रहती है। शैलबाला असंतोष जाहिर करती कहती, "मैं रात-दिन सोने के कमरे ही में बंद नहीं रह सकती।"

निवारण झूठा आश्वासन देकर कहता, "मैं एक दूसरे अच्छे घर की खोज में हूं, जल्दी ही यह घर बदल लूंगा।"

शैलबाला कहती, "क्यों, यह बगल में तो दूसरा एक कमरा पड़ा है।"

शैलबाला ने अपने पहले के पड़ोसियों की ओर कभी मुंह उठाकर देखा तक नहीं था। निवारण की वर्तमान दुरवस्था से दु:खी होकर वे एक दिन मिलने आईं; चले जाने पर क्रोध किया, रोई, उपवास किया, हिस्टीरिया के दौरे से सारा मोहल्ला सिर पर उठा लिया। इस प्रकार के उपद्रव अक्सर होने लगे। आखिर में शैलबाला शारीरिक संकट की अवस्था में भयानक पीड़ाग्रस्त हुई, यहां तक कि गर्भपात होने तक की नौबत आ गई।

निवारण ने हरसुंदरी के दोनों हाथ पकड़कर कहा, "तुम शैल को बचाओ।"

हरसुंदरी रात-दिन की परवाह किए बिना शैलबाला की सेवा करने लगी। तिलभर की चूक होने पर शैल उससे कटुवाक्य कहती, लेकिन वह एक का भी उत्तर न देती।

शैल किसी भी तरह साबुदाना खाना नहीं चाहती थी, कटोरी समेत फेंक देती, बुखार में कच्चे आम की चटनी से भात खाना चाहती। न पाने पर गुस्सा हो जाती और रो-रोकर कोहराम मचा देती। हरसुंदरी उसे 'मेरी रानी' मेरी बहन 'मेरी दीदी' कहकर शिशु के समान बहलाने की चेष्टा करती।

पर शैलबाला बची नहीं गृहस्थी का सारा लाड़-प्यार ले चरम असुख और असंतोष में बालिका का छोटा असंपूर्ण व्यर्थ जीवन असमय ही नष्ट हो गया।

7

निवारण को पहले तो बड़ा भारी आघात पहुंचा, पर दूसरे ही क्षण उसने पाया कि उसका एक बड़ा बंधन टूट गया। शोक के बीच ही सहसा उसने एक

मुक्ति के आनंद का अनुभव किया। सहसा लगा, इतने दिन उसकी छाती पर एक दु:स्वप्न सवार था। होश आने पर क्षण में ही उसे अपना जीवन अतिशय लघु जान पड़ा। माधवी लता की तरह यह जो कोमल जीवनपाश छिन्न-भिन्न हो गया, क्या वही उसकी दुलारी शैलबाला थी। सहसा गहरी उसांस भरकर देखा नहीं, यह उसकी उद्‌बंधन रज्जु थी।

और, उसकी चिर जीवन संगिनी हरसुंदरी? वही तो उसकी सारी गृहस्थी की अकेली अधिकारिणी बन उसके जीवन के समस्त सुख-दुख के स्मृति मंदिर के बीच बैठी है—लेकिन फिर भी बीच में एक दरार है। ठीक जैसे एक छोटी-सी चमकीली सुंदर और निष्ठुर कटार ने आकर एक कलेजे के दाएं और बाएं हिस्से के बीच वेदनापूर्ण विदारण रेखा खींच दी हो।

एक गहरी रात में जब सारा शहर सोया हुआ था तब निवारण ने धीरे-धीरे हरसुंदरी के निभृत शयन-कक्ष में प्रवेश किया। नीरव भाव से प्राचीन परिपाटी के अनुसार वह उस पुरानी शय्या के दाईं ओर सोता रहा था। लेकिन इस बार भी अपने उसी चिर अधिकार में से लेकिन एक चोर की तरह उसने अंदर पैर बढ़ाया।

हरसुंदरी कुछ न बोली, न निवारण ने ही एक शब्द कहा। वे पहले जैसे पास-पास शयन करते रहे, अब भी वैसे ही पास-पास लेटे रहते किंतु उनके ठीक बीचोबीच एक मृत बालिका लेट रही, उसे कोई लांघ न सका।

❑❑

33

त्याग

फाल्गुन की प्रथम पूर्णिमा में आम्रमंजरी की सुगंध को लिए नव वसंत की हवा बह रही है। पुष्करिणी के किनारे एक पुराने लीची के पेड़ के घने पल्लवों के बीच से एक निद्राहीन अश्रांत पपीहे की पुकार मुखर्जी के घर के एक निद्राहीन शयनकक्ष में प्रवेश कर रही है। हेमंत कुछ चंचल भाव से कभी अपनी पत्नी के बालों के एक गुच्छे को जूड़े से अलग कर अपनी उंगली में लपेटता है, तो कभी उसके बाले को चूड़ी से बजाता हुआ ठुंग...ठुंग...शब्द करता है, कभी उसके बालों की फूलमाला को खींचकर स्थान बदलकर उसके मुंह पर लाकर डालता है। संध्या समय के निस्तब्ध फूल के पेड़ को सचेतन करने के लिए वायु जैसे कभी इस ओर कभी उस ओर थोड़ा-थोड़ा हिलाती-डुलाती है, हेमंत का भी बहुत कुछ वैसा ही भाव है।

किंतु, कुसुम सामने के चंद्रालोक प्लावित असीम शून्य में दोनों नेत्रों को निमग्न कर स्थिर हो बैठी। पति की चंचलता उसको स्पर्श कर प्रतिहत हो लौटी जा रही है। अंत में हेमंत ने कुछ अधीर भाव से कुसुम के दोनों हाथों को हिलाते हुए कहा, ''कुसुम तुम कहां हो! तुम जैसे एक बड़ी दूरबीन लगाकर बहुत ध्यान से देखने पर बिंदुमात्र दिखाई दोगी, इतनी दूर जाकर पड़ी हो। मेरी इच्छा है, तुम आज मेरे कुछ अधिक पास आओ। देखो तो सही, कैसी सुहानी रात है।''

कुसुम ने शून्य से मुख फेर पति के मुख की ओर देखते हुए कहा, ''यह चांदनी रात, यह वसंत काल, सब इसी क्षण मिथ्या हो नष्ट-भ्रष्ट हो सकते हैं, ऐसा एक मंत्र मैं जानती हूं।''

हेमंत ने कहा, ''यदि जानती हो तो उसे उच्चरित करने की आवश्यकता नहीं। और अगर ऐसा कोई मंत्र जानती हो जिससे सप्ताह में तीन-चार रविवार

आ जाएं या फिर रात शाम के पांच-साढ़े पांच तक ठहर जाए तो वह सुनने को मैं राजी हूं।'' कहते हुए कुसुम को थोड़ा और पास खींचने की कोशिश की। कुसुम उस आलिंगन पाश में न बंधती हुए बोली, ''अपनी मृत्यु के समय तुम्हें जो कुछ बताने का सोचा था आज वह बताने की इच्छा हो रही है। आज जो मन में आ रहा है, तुम चाहे जितनी भी सजा क्यों न दो मैं उसे झेल लूंगी।''

सजा के बारे में जयदेव का एक श्लोक सुनाकर हेमंत मजाक करने की तैयारी में था। इतने में सुनाई दिया कि एक गुस्सैल चप्पल की 'चटाचट' ध्वनि पास आ रही है। हेमंत के पिता हरिहर मुखर्जी के कदमों की परिचित आहट। हेमंत हड़बड़ाकर उठा।

हरिहर कमरे के दरवाजे के पास आकर क्रोध में गरजते हुए बोले, ''हेमंत, बहू को अभी इस घर से भगा दो।''

हेमंत ने पत्नी के मुंह की ओर देखा, पत्नी ने कुछ भी विस्मय प्रकट नहीं किया, केवल दोनों हाथों के बीच वेदना से मुंह छिपाकर अपने सारे बल और इच्छा द्वारा अपने को विलीन करने की चेष्टा की। दक्षिण वायु के साथ पपीहे का स्वर कमरे में प्रवेश करने लगा, किसी के कानों में वह नहीं पड़ा। इतनी असीम सुंदर पृथ्वी इतनी सहजता से ही यहां का सब कुछ बेसुरा हो जाता है।

2

हेमंत ने बाहर से लौटकर पत्नी से पूछा, ''यह सच है क्या?''

पत्नी ने कहा, ''सच है।''

''फिर इतने दिनों तक बताया क्यों नहीं?''

''कई बार बताने की चेष्टा की पर बता न सकी। मैं बड़ी पापिन हूं।''

''तो आज सब कुछ खोलकर बताओ।''

कुसुम भी गंभीर दृढ़ स्वर में सब कुछ बता गई—कि कैसे अडिग कदमों से, धीर गति से, आग के बीच से चलती गई; कितनी दग्ध हो रही थी कोई न जान सका। सब कुछ सुनकर हेमंत उठ गया।

कुसुम ने समझा जो पति चले गए उनको फिर लौटकर नहीं पा सकेगी। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ; यह घटना भी जैसे अन्य दिनों की घटना की तरह ही अत्यंत सहज रूप में उपस्थित हुई, मन में ऐसी ही एक शुष्क जड़ता का संचार हुआ; केवल, पृथ्वी और प्रेम आद्यंत मिथ्या और शून्य से जान पड़े। यहां तक कि हेमंत की अतीत की सारी प्रेम-वार्ताएं स्मरण कर अत्यंत नीरस कठिन

निरानंद हंसी एक प्रखर धार—निष्ठुर कटार के समान उसके मन के एक छोर से दूसरे छोर तक एक दाग छोड़ गई। शायद उसने सोचा, जो प्रेम इतना अधिक-सा लगता है, इतना दुलार, इतनी प्रगाढ़ता—जिसका तिलमात्र विच्छेद ऐसा मर्मांतक, जिसका मुहूर्त मात्र मिलन इतना घनानंदमय, जो असीम अनंत जैसा लगता है, जन्म-जन्मांतर पर्यंत जिसके अवसान की कल्पना नहीं की जा सकती—वह प्रेम यह है! इतने जरा-से पर निर्भर! समाज ने जैसे ही जरा-सा आघात किया वैसे ही असीम प्रेम चूर्ण ही मुट्ठी-भर धूल में परिणत हो गया! हेमंत कंपित स्वर में अभी कुछ ही पहले कानों के पास कह रहा था, 'सुहावनी रात!' वह रात तो अभी भी समाप्त नहीं हुई है' अभी भी वही पपीहा पुकार रहा है, दक्षिण वायु मसहरी हिलाती बही चली जा रही है, और ज्योत्स्ना, सुख श्रांत सुप्त सुंदरी के समान वातायनवर्ती पलंग के एक छोर पर निमग्न हो पड़ी है। सब मिथ्या है। 'प्रेम मेरे से भी अधिक मिथ्यावादी, मिथ्याचारी है।'

3

दूसरे दिन प्रातः ही उनींदेपन से बेसुध हेमंत पागल की तरह प्यारीशंकर घोषाल के घर जा पहुंचा। प्यारीशंकर ने पूछा, "कहो जी, क्या खबर है?"

हेमंत भयानक आग-सा धधका और फिर जलते-जलते, कंपते-कंपते बोला, "तुमने हमारी जाति भ्रष्ट की है, सर्वनाश किया है—तुम्हें इसकी सजा भोगनी होगी।" कहते-कंहते उसका कंठ रुद्ध हो आया।

प्यारीशंकर थोड़ा हंसकर बोला, "और, तुम लोगों ने मेरी जाति की रक्षा की है, मेरे समाज की रक्षा की है, मेरी पीठ पर प्यार से हाथ फेरा है! मेरे प्रति तुम लोगों का बड़ा जतन, बड़ा प्रेम है।"

हेमंत की इच्छा हुई उसी क्षण प्यारीशंकर को ब्रह्म तेज द्वारा भस्म कर दे, किंतु उस तेज में वह स्वयं ही जलने लगा, प्यारीशंकर अच्छा-खासा स्वस्थ नीरोग भाव से बैठा रहा।

हेमंत ने टूटे कंठ से पूछा, "मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

प्यारीशंकर ने कहा, "मैं पूछता हूं, मेरी इकलौती बेटी के सिवा मेरी कोई दूसरी संतान नहीं, मेरी उस कन्या ने तुम्हारे पिता के पास जाकर क्या अपराध किया था। तुम तब छोटे थे, तुम शायद नहीं जानते—तो फिर उस घटना को मन लगाकर सुनो। अधीर न होना भैया, इसमें बड़ी उलझनें हैं।"

"मेरे दामाद नवकांत मेरी कन्या के गहने चुराकर जब विलायत भाग गए,

तब तुम बच्चे ही थे। फिर पांच वर्ष बाद जब वह बैरिस्टर होकर देश लौट आए तो मोहल्ले में जो हो-हल्ला मचा—शायद तुम्हें कुछ-कुछ याद हो। हो सकता है तुम नहीं भी जानते हो, उसे उस समय तुम कलकत्ते के स्कूल में पढ़ते थे। तुम्हारे पिता गांव के मुखिया होकर बोले, 'अगर कन्या को पतिगृह में भेजने का इरादा हो तो फिर उस कन्या को घर में वापस नहीं बुला सकोगे।'' मैंने उनसे हाथ-पैर जोड़कर कहा, 'भैया, इस बार तुम मुझे क्षमा करो। मैं लड़के को गोबर खिलाकर प्रायश्चित करवाता हूं। तुम लोग उसे जात में ले लो।' तुम्हारे पिता किसी भी तरह राजी न हुए, मैं भी अपनी एकमात्र कन्या को छोड़ न सका। जात छोड़ी देश छोड़ा, कलकत्ते में आकर घर बसाया। यहां आकर भी विपत्ति टली नहीं। जब अपने भतीजे के विवाह की सारी तैयारी कर ली तब तुम्हारे बाप ने कन्या पक्ष को उत्तेजित कर वह विवाह तुड़वा दिया। मैंने भी प्रतिज्ञा की, यदि इसका बदला न लूं तो मैं ब्राह्मण का लड़का नहीं। अब तुम थोड़ा-बहुत समझ पाए होगे—लेकिन और जरा सब्र करो—सारी घटना सुनने पर खुश होगे—इसमें बड़ा रस है।

''तुम जब कॉलेज में पढ़ते थे तब तुम्हारे डेरे के बगल में ही विप्रदास चटर्जी का मकान था। बेचारे अब रहे नहीं। चटर्जी बाबू के घर में कुसुम नाम की एक बाल-विधवा अनाथ कायस्थ-कन्या आश्रिता थी। लड़की बड़ी सुंदर थी—वृद्ध ब्राह्मण कॉलेज के जवान छोकरों की नजर से उसे बचा रखने के लिए कुछ चिंता ग्रस्त हो गए थे। लेकिन, बूढ़े आदमी की आंखों में धूल झोंकना एक लड़की के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं था। लड़की अक्सर छत पर कपड़ा सुखाने जाती और बिना छत पर गए शायद तुम्हें भी पाठ कंठस्थ न होता। दोनों छतों से तुम दोनों में परस्पर किसी प्रकार की बातचीत होती या नहीं यह तो तुम्हीं दोनों जानो, किंतु लड़की के रंग-ढंग देखकर बूढ़े के मन में भी संदेह जगा क्योंकि घर के काम-काज में लगातार चूक होने लगी और तपस्विनी गौरी के समान दिन-दिन वह आहार-निद्रा का त्याग करने लगी। कभी-कभी तो वह संध्या समय बूढ़े के सामने ही बिना बात आंसू नहीं रोक पाती।

''अंत में बूढ़े ने यह आविष्कार किया कि छत पर तुम दोनों में मौके-बेमौके चुपचाप साक्षात्कार होता रहता है—यहां तक कि कॉलेज न जाकर दोपहर में छत के ऊपर की परछत्ती की छाया तले, छत के कोने में तुम पुस्तक हाथ में लिए बैठे रहते; निर्जन में अध्ययन का अचानक तुममें इतना उत्साह जगा। विप्रदास जब मेरे पास परामर्श के लिए आए मैंने कहा, 'काका, तुम तो बहुत

दिनों से काशी जाने की सोच रहे हो—लड़की को मेरे पास रखकर तीर्थवास करने जाओ, मैं उसका दायित्व लेता हूं।

"विप्रदास तीर्थ चले गए। मैंने लड़की को श्रीपति चटर्जी के डेरे में रख उन्हें ही उसका पिता कहकर चला दिया। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह तो तुम जानते ही हो। तुम्हारे पास आद्यंत सब बातें खोलकर बताने में बड़ा आनंद मिला। यह जैसे एक कहानी के समान है। इच्छा होती है, सब कुछ लिखकर एक किताब के रूप में छपाऊंगा। लिखना मेरे वश का नहीं। सुना है कि मेरा भतीजा थोड़ा-बहुत लिखता है—उससे लिखवाने की इच्छा है। पर, यदि तुम दोनों मिलकर लिखो तो सबसे उत्तम होगा, क्योंकि कहानी का उपसंहार मेरा अच्छी प्रकार जाना हुआ नहीं है।"

हेमंत ने प्यारीशंकर की अंतिम बातों पर विशेष कान नहीं दिया, कहा, "कुसुम ने इस विवाह में कोई आपत्ति नहीं की।"

प्यारीशंकर बोले, "आपत्ति की या नहीं—यह समझना बड़ा मुश्किल है। जानते ही हो भैया स्त्री का मन-जब 'ना' कहता है तब 'हां' समझना पड़ता है। पहले तो इस नए घर में आकर कई दिन तुम्हें न देख पाने के कारण जाने कैसी पगली-सी हो गई थी। देखा, तुमने भी कहां से पता पा लिया था; अक्सर किताब हाथ में लिए कॉलेज की यात्रा करते तुम यह भूल जाते—और श्रीपति के डेरे के सामने आकर न जाने क्या खोजते-फिरते; ठीक प्रेसीडेंसी कॉलेज का ही रास्ता खोजते हो ऐसा नहीं लगता थां, क्योंकि भद्र व्यक्ति के घर की खिड़की के भीतर से केवल पतंग और दीवानी युवकों के हृदय का पथ मात्र था। देख-सुनकर मुझे बड़ा दुख हुआ। देखा, तुम्हारी पढ़ाई में बड़ा विघ्न हो रहा है और लड़की की हालत भी संकटजनक है।

"एक दिन कुसुम को बुलाकर कहा, 'बेटी, मैं बूढ़ा आदमी हूं, मुझसे संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है—तुम जिसकी मन-ही-मन कामना करती हो, वह मैं जानता हूं। लड़का भी बर्बाद होने जा रहा है। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों का मिलन हो जाए।' सुनते ही कुसुम एकबारगी छाती फाड़कर रोने लगी और भागकर चली गई।

"ऐसे ही अक्सर बीच-बीच में शाम को श्रीपति के घर जाकर, कुसुम को बुलाकर, तुम्हारी बात चलाकर क्रमशः उसकी लज्जा को दूर किया। अंत में प्रतिदिन धीरे-धीरे बात-विचार करते हुए उसे समझाया कि विवाह के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इसके सिवा मिलन का दूसरा कोई उपाय नहीं। कुसुम

बोली, 'कैसे होगा?' मैंने कहा, 'तुम्हें कुलीन घर की लड़की बताकर चला दूंगा।' बहुत वाद-विवाद के बाद उसने इस बारे में तुम्हारी राय क्या है—यह जानना चाहा। मैं बोला, 'लड़के की उन्मत्त होने जैसी हालत दीख रही है, उस पर से उसे यह गोलमाल वाली बातें सुनाने की क्या जरूरत है भला? कार्य के अच्छी तरह निर्विघ्न, निश्चिंत, निष्पन्न हो जाने पर ही सब ओर से सुखकर होगा। विशेष रूप से जब कभी भी इस बात के प्रकट होने की संभावना नहीं है तब बेचारी को अपनी ओर से जबर्दस्ती जीवन-भर के लिए दुखी किए रहना है?'

"कुसुम ने समझा या नहीं, यह मैं समझ नहीं पाया। कभी रोती तो कभी गुमसुम हो रहती। अंत में जब मैं कहता, 'तब रहने दो', तब फिर वह बेचैन हो उठती। ऐसी हालत में श्रीपति द्वारा तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव भिजवाया। देखा, संपत्ति देने में तुम्हें तनिक भी देर नहीं लगी। तब विवाह का सारा कार्यक्रम तय हुआ।

"विवाह से कुछ पहले कुसुम नाहीं कर बैठी। हम लोग उसे किसी प्रकार वश में नहीं कर पा रहे थे। वह मेरे हाथ-पांव जोड़ती; कहती, 'रहने दीजिए, ताऊजी!' मैंने कहा, 'यह कैसी बला है! सब कुछ तय हो गया है, तब क्या कहकर लौटाया जाए।' कुसुम ने कहा, "तुम यह खबर फैला दो कि मेरी अचानक मृत्यु हो गई—मुझे यहां से कहीं दूर भेज दो।' मैंने कहा, 'तब लड़के की क्या दशा होगी?' उसकी बहुत दिनों की आशा कल पूरी होगी जान वह मानो स्वर्ग में चढ़ बैठा है, आज मैं सहसा उसे तुम्हारी मृत्यु की खबर दूंगा। फिर दूसरे दिन तुम्हारे पास उसकी मृत्यु का संवाद पहुंचाना होगा, और फिर उसी दिन संध्या को मेरे पास तुम्हारी मृत्यु का संवाद आएगा। मैं क्या इस बुढ़ापे में स्त्री-हत्या; ब्राह्मण-हत्या करने बैठा हूं।"

"उसके बाद शुभ-लग्न में शुभ-विवाह संपन्न हुआ, 'मैंने अपने एक कर्त्तव्य-अदायगी से मुक्ति पा चैन की सांस ली। उसके बाद जो हुआ वह तो तुम जानते हो।"

हेमंत ने कहा, "हमारे साथ जो करना था वह तो तुमने किया, अब इस बात को बोला क्यों?"

प्यारीशंकर ने कहा, "मैंने जब देखा कि तुम्हारी छोटी बहन का विवाह बिल्कुल तय हो गया है तब मन-ही-मन सोचा, 'एक ब्राह्मण की जात ली लेकिन वह केवल कर्त्तव्य-बोध के कारण। फिर एक ब्राह्मण की जात जाएगी,

मेरा कर्त्तव्य है इसे रोकना।' इसलिए उन्हें पत्र लिखा, बताया, हेमंत ने जो शूद्र कन्या से विवाह किया है उसका प्रमाण है।''

हेमंत ने बड़ी कठिनाई से धैर्य रोककर कहा, ''अगर मैं इस लड़की को जो त्याग दूं तो उसकी क्या दशा होगी? आप उसे आश्रय देंगे?''

प्यारीशंकर ने कहा, ''मेरा जो काम था, मैंने किया, अब दूसरे की परित्यक्ता स्त्री को पालना मेरा काम नहीं है। अरे भई सुनो, हेमंत बाबू के लिए बर्फ डाल कर एक ग्लास डाब (कच्चे नारियल का पानी) ले आओ और साथ में पान भी ले आना।''

हेमंत ने इस सुशीतल आतिथ्य की प्रतीक्षा न की और चला गया। कृष्णपक्ष की पंचमी। अंधेरी रात। पक्षी बोल नहीं रहे हैं। तालाब के किनारे लीची का पेड़ जैसे काले चित्रपट पर प्रगाढ़ दाग के समान पोता गया है। केवल दक्षिण वायु इस अंधकार में अंधभाव से चक्कर काट रही है, मानो उसे रात के पंजे ने दबोच रखा हो। और आसमान के तारे निर्निमेष सतर्क नेत्रों से प्राणपण से अंधकार भेदकर न जाने क्या रहस्य आविष्कार करने में लगे हैं।

शयन-कक्ष में दीपक नहीं जल रहा है। हेमंत खिड़की के पास पलंग पर बैठा सामने के अंधकार की ओर ताक रहा है। कुसुम धरती पर दोनों हाथों से उसके लिपटे पैर पर मुख रखे पड़ी है। समय जैसे स्तंभित समुद्र के समान स्थिर बना हुआ हो। जैसे अनंत निशीथिनी के ऊपर अदृष्ट चितेरे ने इस एक चिरस्थाई चित्र को अंकित कर रखा है। चारों ओर प्रलय, बीच में एक विचारक एवं उसके पैरों के पास एक अपराधिनी।

फिर चप्पल की आहट सुन पड़ी। हरिहर मुखर्जी द्वार के पास आकर बोले, ''बहुत देर हो गई, और अधिक समय नहीं दे सकूंगा। लड़की को कमरे से बाहर निकालो—भगाओ उसे।''

कुसुम ने यह स्वर सुनते ही एक बार मुहूर्त के लिए जीवन की साध मिटाते हुए हेमंत के दोनों पैरों को दुगुने आवेग से जकड़कर पकड़ा, चरण-चुंबन कर पैर की धूलि माथे पर ले पैर छोड़ दिए।

हेमंत उठकर गया, पिता से बोला, ''मैं पत्नी को त्याग नहीं सकता।''

हरिहर गरजकर बोले, ''जात खोना है क्या?''

हेमंत ने कहा, ''मैं जात-पात नहीं मानता।''

''तब तू भी यहां से दूर हो जा।''

❑❑

34

बला

संध्या के समय आंधी क्रमशः प्रबल होने लगी। बूंदों का झोंका, बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कौंध से आकाश में जैसे देवासुर-संग्राम छिड़ गया हो। काले-काले मेघखंडों ने महाप्रलय की जयपताका के समान दिशा-दिशा में उड़ना आरंभ किया, गंगा के इस पार उस पार विद्रोही लहरों ने कलकल-ध्वनि के साथ नृत्य शुरू कर दिया और बगीचे के बड़े-बड़े वृक्षों की सब शाखाएं चरमराती हुई हाहाकार के साथ दाएं-बाएं हाथ-पांव-सर पटकने लगीं।

तब चंदन नगर के उद्यान-गृह के एक दीपालोकित बंद कमरे में खाट के सामने वाले नीचे बिछे बिछौने पर बैठे स्त्री-पुरुष में बातचीत हो रही थी।

शरत् बाबू कह रहे थे, "और कुछ दिन यहां रहने पर ही तुम्हारा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो जाएगा, तब हम लोग घर लौट सकेंगे।"

किरणमयी कह रही थी, "मेरा शरीर अब बिल्कुल स्वस्थ है। अब घर लौटने में कोई परेशानी नहीं।"

जो विवाहित हैं वे समझ ही जाएंगे कि बात को जितने संक्षेप में दर्ज किया गया है उतने संक्षेप में वह समाप्त नहीं हुई थी। विषय विशेष दुरूह नहीं, फिर भी वाद-प्रतिवाद कैसे भी समझौते की ओर नहीं बढ़ रहा था; पतवारहीन नौका के समान लगातार चक्कर काट रहा था, अंत में अश्रु-तरंग में डूबने की संभावना दिखाई दी।

शरत् ने कहा, "डॉक्टर का कहना है कि और कुछ दिन रह जाने पर अच्छा होगा।"

किरण बोली, "तुम्हारा डॉक्टर तो जैसे सब जानता है।"

शरत् ने कहा, "तुम जानती तो हो कि इस समय वहां अनेक प्रकार के रोगों का हमला होता है, इसलिए और दो-एक महीने बिताकर जाने पर ही अच्छा है।"

किरण बोली, "क्या यहां पर इस समय कहीं किसी को कोई रोग नहीं होता?"

पूर्व इतिहास यही है। किरण को उसके घर और मोहल्ले में सभी चाहते हैं, यहां तक कि सास भी। उस किरण को जब यह जानलेवा रोग हुआ तब सभी चिंतित हो उठे और डॉक्टर ने जब जलवायु परिवर्तन का प्रस्ताव दिया तब उसके पति और सास ने घर और काम-काज छोड़कर प्रवास जाने में कोई आपत्ति नहीं की।

यद्यपि गांव के समझदार बुजुर्गों ने ही जलवायु परिवर्तन से आरोग्य की आशा करनी और पत्नी के लिए इतना 'हो-हल्ला' करना एक तरह की स्त्रैणता का एक निर्लज्ज आधिक्य समझा और प्रश्न किया, इसके पहले क्या किसी की स्त्री को जटिल रोग नहीं हुआ, शरत् ने जहां जाने का निश्चय किया है वहां के मनुष्य क्या अमर हैं और ऐसा कोई देश है, जहां भाग्यलिपि सफल नहीं होती— हालांकि शरत् और उनकी मां ने उन सब बातों पर कान नहीं दिया; उस समय गांव की सारी समवेत विज्ञता की अपेक्षा उनकी हृदयलक्ष्मी किरण की जान बचाना उनके लिए अधिकं महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ। प्रिय व्यक्ति की विपदा में मनुष्य का ऐसा मोह दिखाई पड़ता है।

शरत्चंद्र नगर के उद्यान-गृह में आकर रह रहे हैं और किरण भी रोगमुक्त हो गई है, वैसे शरीर अभी पूरी तरह सबल नहीं हुआ है। उसके चेहरे और आंखों में एक करुण कृशता अंकित है, जिसे देखकर हृदय में कंपकंपी के साथ मन में आता है कि ओह, बड़ी जान बची।

पर किरण का स्वभाव संगीतप्रिय और आमोदप्रिय है। यहां अकेले उसे और अच्छा नहीं लग रहा है, उसके घर में काम नहीं, मोहल्ले में साथिन नहीं, केवल सारे दिन अपने बीमार शरीर को लेकर हिलाने-डुलाने की इच्छा नहीं होती। घंटे-घंटे में खुराक नापकर पियो, सेंको, पथ्य पालन करो—इससे चिढ़ गई हैं। आज आंधी भरी संध्या में बंद कमरे में पति-पत्नी में इसी को लेकर बहस छिड़ी हुई थी।

किरण जब तक उत्तर दे रही थी तब तक उभय पक्ष में आमने-सामने

समान रूप से द्वंद्व-युद्ध चल रहा था, किंतु अंत में किरण जब निरुत्तर हो बिना प्रतिवाद के शरत् की ओर से कुछ विमुख हो गर्दन टेढ़ी कर बैठी तब दुर्बल निरुपाय पुरुष के पास दूसरा कोई अस्त्र नहीं रहा, वह पराजय स्वीकार करने की तैयारी कर ही रहा था कि ऐसे समय बाहर से पालकीवाहक ने ऊंचे स्वर में कुछ निवेदन किया।

शरत् ने उठकर द्वार खोलकर सुना, नदी में डूबती हुई नौका से एक ब्राह्मण-बालक तैरकर उनके बगीचे में आ खड़ा है।

सुनते ही किरण का मान-अभिमान दूर हो गया, उसी समय अलगनी से सूखे कपड़े उतार लाई और जल्दी से एक कटोरी दूध गरम कर ब्राह्मण बालक को अंत:पुर में बुलवा भेजा।

बालक के केश लंबे थे, बड़ी-बड़ी आंखें थीं। मूंछ की रेखा अभी फूटी नहीं है। किरण ने अपने सामने उसे भोजन करवाकर उसका परिचय पूछा।

यह भी सुना कि वह यात्रा दल का छोकरा है, नाम है नीलकांत। उनके निकटवर्ती सिंह बाबू के घर यात्रा के लिए बुलाया गया है, इस बीच नौका डूबने से उसके दल के लोगों की क्या गति हुई कौन जाने; चूंकि वह अच्छी तरह तैरना जानता था, इसीलिए किसी प्रकार प्राणों की रक्षा की।

लड़का यहीं रह गया और थोड़ी देर हो जाती तो वह मर ही जाता, यह सोचकर उसके प्रति किरण के मन में बड़ी दया उमड़ आई।

शरत् ने सोचा, अच्छा ही हुआ, किरण को एक नया काम मिला, अब कुछ दिन ऐसे ही कट जाएंगे। ब्राह्मण बालक के कल्याण से पुण्य-संचय की प्रत्याशा में सास भी प्रसन्न हुई। अधिकारी महाशय और यमराज के हाथ से सहसा इस धनी परिवार के हाथ पड़ जाने पर नीलकांत ने विशेष आराम का अनुभव किया।

किंतु शीघ्र ही शरत् और उनकी मां के विचारों में परिवर्तन होने लगा। उन्होंने सोचा अब और जरूरत नहीं, इस लड़के को विदा कर पाने से ही बला टलेगी।

नीलकांत ने छिप-छिपकर शरत् के हुक्के में गुड़गुड़ शब्द से तंबाकू का कश खींचना आरंभ कर दिया था। वर्षा के दिनों में बड़ी प्रसन्नता से शौकिया रेशमी छतरी को तानकर नए मित्र बनाने की चेष्टा में पड़ोस में घूमने लगा। पता नहीं कहां से गांव के एक गंदे-से कुत्ते को लाड़ से ऐसा उद्दंड बना दिया जो

बिना बुलाए शरत् के सुसज्जित कमरे में प्रवेश कर साफ धुली जाजिम पर पद-पल्लव चतुष्ट्य की धूलि रेखा में अपने शुभागमन की सूचना स्थाई रूप से मुद्रित कर जाने लगा। देखते-ही-देखते नीलकांत के चारों ओर एक लंबा-चौड़ा भक्त-शिशु सम्प्रदाय तैयार हो उठा और उस वर्ष गांव के आम के बगीचे में कच्चे आमों को पकने का अवसर ही नहीं मिला।

किरण इस लड़के को बहुत अधिक ही दुलार देतीं, इसमें संदेह नहीं। शरत् और शरत् की मां इस बारे में उन्हें बहुत मना करतीं, किंतु वे इस पर ध्यान न देती थीं। शरत् के पुराने कुर्ते-मोजे, नई धोती-चादर और जूते पहनाकर उन्होंने उसे बाबू जैसा सजा रखा था। बीच-बीच में जब-तब उसे बुलवाकर उनका स्नेह और विनोद दोनों ही चरितार्थ होते। किरण सहास्य मुख से पनबट्टा बगल में रख खाट पर बैठतीं, दासी उनके गीले, भीगे खुले बालों को उंगली से हटाते हुए घिस-घिसकर सुखाती और नीलकांत नीचे खड़े हो हाथ हिला-हिलाकर नल-दमयंती का पाला (लोकगीत या नाटक का विषय) अभिनय करता।

इस प्रकार लंबी दुपहरी बड़ी तेजी से कट जाती। किरण शरत् को अपने साथ एकासन पर बिठाकर दर्शक श्रेणी विभक्त करने की चेष्ट करतीं पर शरत् बुरी तरह खीझ जाता और शरत् के सामने नीलकांत की प्रतिभा भी पूर्णतया उत्साह न पाती। कभी-कभार सास भी देवी-देवता के नाम सुनने की आशा से आकृष्ट हो आतीं, किंतु अविलंब ही उनकी चिराभ्यस्त मध्याह्नकालीन निद्रावेश भक्ति को अभिभूत और उन्हें शय्याशायी कर देता।

नीलकांत के भाग्य में शरत् के पास से कान खिंचाई, चांटे, थप्पड़ अक्सर जुटते रहते; किंतु इनके मुकाबले कठिनतर शासन-प्रणाली में बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण उसके लिए ये सब अपमान या कष्टदायक नहीं प्रतीत होते। नीलकांत की दृढ़ धारणा थी कि पृथ्वी के जल-स्थल विभाग के समान मानव-जन्म भी आहार और प्रहार में विभक्त है, बल्कि प्रहार का अंश ही अधिक है।

नीलकांत की उम्र का ठीक-ठीक अनुमान कर पाना कठिन है; यदि चौदह-पंद्रह हो तो आयु की अपेक्षा मुख अधिक परिपक्व है, यह कहना होगा और अगर सत्रह-अठारह है तो आयु के अनुरूप परिपक्वता नहीं आई है। या तो वह अकाल-पक्व है, नहीं तो अकाल-अपक्व।

असली बात यह है कि वह बहुत छोटी उम्र में ही यात्रा-दल में प्रवेश ले राधिका, दमयंती, सीता और विद्या की सखी बनता रहा। अधिकारियों की आवश्यकतानुसार विधाता के वर से कुछ दूर तक बढ़कर उसकी बाढ़ रुक गई। उसे सब छोटा ही देखते, स्वयं को वह छोटा ही मानता, आयु के उपयुक्त सम्मान वह कहीं से नहीं पाता। इन सब स्वाभाविक और अस्वाभाविक कारणों के प्रभाव से सत्रह वर्ष की आयु में वह अनति-पक्व सत्रह की अपेक्षा अति-परिपक्व चौदह के समान दीखता। मूंछ की रेखा न फूटने से यह भ्रम और भी पक्का हो गया था। तंबाकू का धुआं लगकर ही हो या उम्र-अनुचित भाषा-प्रयोगवश ही हो, नीलकांत के होंठों के पास कुछ अधिक परिपक्वता दिखती, लेकिन उसकी बड़ी-बड़ी तारा-विशिष्ट दोनों आंखों में एक प्रकार का सारल्य और तारुण्य था।

मुझे लगता है कि नीलकांत का अंदर स्वभावतः कच्चा था किंतु यात्रादल के ताप से उपरिभाग में पक्वता के लक्षण दिखने लगे हैं।

शरत् बाबू के आश्रय में चंदन नगर के बगीचे में रहते-रहते नीलकांत पर स्वभाव का नियम अव्याहत भाव से अपना प्रभाव जमाने लगा। वह इतने दिनों तक वय:संधि-स्थल पर अस्वाभाविक रूप से लंबे समय तक रुका हुआ था; यहां आने पर जाने कब एक समय उसने चुपचाप उसे पार कर लिया। उसके सत्रह-अठारह वर्ष का वयक्रम अच्छी तरह संपूर्ण रूप से परिणत हो उठा।

उसका यह बदलाव बाहर से किसी की आंखों में नहीं पड़ा पर उसका पहला लक्षण यह है कि जब किरण नीलकांत के प्रति बालकोचित व्यवहार करती तो वह मन-ही-मन लज्जित और दु:खी होता। एक दिन आमोदप्रिय किरण ने उसे स्त्री-वेश में सखी सजने की बात कही। वह बात उसे अकस्मात् बड़ी ही त्रासदायक जान पड़ी पर उसका उपयुक्त कारण वह खोज नहीं सका। आजकल उसे 'यात्रा-दल' का अनुकरण करने के लिए बुलाने पर वह गायब हो जाता। वह एक अभागे यात्रादल के छोकरों की अपेक्षा अधिक कुछ नहीं, नहीं—यह बात कैसे भी उसका मन स्वीकार नहीं करता।

यहां तक कि उसने यहां के कारिंदे के पास से थोड़ा-बहुत पढ़ने-लिखने का संकल्प किया। पर बहूरानी का स्नेह-भाजन होने के कारण कारिंदे को नीलकांत फूटी आंख नहीं सुहाता और मन की एकाग्रता की रक्षा करते पढ़ाई-लिखाई का अभी भी अभ्यास न रहने से सभी अक्षर उसकी आंखों के आगे से तिरते चले जाते।

गंगा के किनारे चंपा वृक्ष के तले पेड़ के तने से टिककर गोद में किताब खोलकर वह काफी देर तक यों ही बैठा रहता; जल 'छल्‌छल्‌ कर' बहता रहता, नावें तैरती रहतीं, शाखा पर चंचल और अनमने पक्षी 'किच्‌-मिच्‌' शब्द से स्वगत उक्ति प्रकट करते रहते, नीलकांत किताब के पन्ने पर आंखें गड़ाए क्या सोचता रहता—वही जाने या फिर क्या पता वह भी नहीं जाने। एक बात से कैसे भी दूसरी बात पर नहीं पहुंच पाता, फिर भी 'किताब पढ़ रहा हूं', सोचकर उसमें बड़े आत्म-गौरव का भाव जगता। सामने से जब एक नाव चली जाती तब वह और भी अधिक आडंबर के साथ किताब उठाकर पढ़ने का ढोंग करता; दर्शक के चले जाने पर वह मन-ही-मन भुनभुनाता पढ़ने के उत्साह की और रक्षा न कर पाता।

पहले वह किसी गाने को मशीन की तरह गाता रहता, अब उन गानों के सुर उसके मन में एक अपूर्व चांचल्य का संचार करते। गान के शब्द अति सामान्य, नगण्य अनुप्रास से पूर्ण, उसका अर्थ भी नीलकांत के लिए पूरी तरह बोधगम्य नहीं, किंतु जब वह गाता—

ओ राजहंस जन्म ले द्विजवंश में
ऐसा नृशंस क्यों हुआ रे—
बोल किसलिए इस अरण्य में
· *राजकन्या का प्राण संशय किया रे।*

तब वह जैसे सहसा लोकांतर-जन्मांतर में उपनीत होता; तब चारों ओर का परिचित जगत्‌ और उसका तुच्छ जीवन गान में अनूदित होकर एक नया रूप धारण करता। राजहंस और राजकन्या की बात से उसके मन में एक अपरूप चित्र का आभास जग उठता, वह अपने को क्या सोचता स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता, किंतु यात्रा दल के मातृ-पितृहीन छोकरे को भूल जाता।

नितांत दरिद्र घर का अभागा मलिन शिशु जब संध्या शय्या पर सोकर राजपुत्र, राजकन्या और सात राजाओं के धन-माणिक्य की बात सुनता तब क्षीण दीपालोकित जीर्ण गृह के कोने के अंधकार में उसका मन समस्त दारिद्र्य और हीनता के बंधन से मुक्त हो एक सर्व-संभव रूपकथा के राज्य में एक नूतन रूप, उज्ज्वल वेश और अप्रतिहत क्षमता धारण करता, उसी प्रकार गान के सुर में यात्रादल का यह लड़का अपने साथ अपने जगत्‌ का एक नवीन आकार में सृजन करता—जल की ध्वनि, पत्तों का मर्मर, पक्षियों का कलरव और जिस

लक्ष्मी ने इस श्रीहीन को आश्रय दिया है उनकी सहास्य स्नेहिल मुखच्छवि, उनकी कल्याण मंडित वलयवेष्टित दोनों बांहों एवं दुर्लभ सुंदर पुष्पदल कोमल रक्तिम चरण युगल न जाने कैसे किसी माया-मंत्र बल से रागिणी में रूपांतरित हो जाते।

फिर एक समय यह गीति-मरीचिका कहां अपसारित होती, यात्रादल का नीलकांत घने घुंघराले बालों के साथ प्रकट होता, आम के बगीचे के मालिक पड़ोसी की शिकायत से शरत् आकर उसके गाल पर कस-कसकर चांटे लगाता और बालक-भक्त मंडली का अधिनायक हो नीलकांत जल-स्थल और तरुशाखाग्र पर नव-नव उपद्रव सृजन के लिए निकल पड़ता।

इसी बीच शरत् के भाई सतीश ने कलकत्ता से कॉलेज की छुट्टी में बगीचे में आकर आश्रय लिया। किरण को बड़ी खुशी हुई, उसके हाथ में और एक काम जुटा; बैठने-उठने, खाने-पहनने में समवयस्क देवर के प्रति परिहासपाश-विस्तार करने लगी। कभी अपने हाथों में सिंदूर लगाकर उसकी आंखें बंद करतीं, कभी उसके पीठ के कुर्ते पर बंदर लिख रखतीं, कभी 'झन्' से सांकल चढ़ाते हुए बाहर से द्वार बंद कर सुमधुर अट्टहास के साथ भाग जातीं।

सतीश बंदा भी छोड़ने वाला जीव नहीं था। वह उनकी चाबी का गुच्छा चुरा लेता, कभी पान के बीड़े में लाल मिर्च रख देता और छिपकर खाट के पाए के साथ उनका आंचल बांधकर बदला लेता। इस तरह से दोनों का सारे दिन चिल्लाना, दौड़ना, हंसना यहां तक कि बीच-बीच में झगड़ना-रोना, रूठना-मनना और फिर सुलह-सफाई के साथ चलने लगा।

नीलकांत पर कौन-सा भूत सवार हुआ ईश्वर जाने! वह किस बहाने किसके साथ झगड़ा करे सोच न पाता, लेकिन उसका मन तीव्र तिक्तरस से परिपूर्ण हो गया। वह अपने भक्त बालकों को कई तरह से रुलाने लगा। अपने उस पालतू देशी कुत्ते को अकारण लात मारने लगता। बंदर के 'केइं-केइं' चीत्कार से नभोमंडल ध्वनित होने लगता, यहां तक कि रास्ते पर भ्रमण के समय जोर-जोर से छड़ी मारकर जंगली घासों की शाखाएं उधेड़ता चलता।

जिनकी खुराक अच्छी है, उनको सामने बैठाकर खिलाना किरण को बड़ा अच्छा लगता। अच्छी तरह जमकर खाने की क्षमता नीलकांत में थी, स्वादिष्ट भोज्य-सामग्री के खाने का बार-बार अनुरोध उसके पास कभी बेकार नहीं जाता। इसलिए किरण अक्सर उसे बुलाकर अपने सामने खिलातीं और इस

ब्राह्मण बालक का तृप्तिपूर्वक आहार करना देख वे विशेष सुख का अनुभव करतीं। सतीश के आने के बाद समयाभाव से नीलकांत के खाने की जगह पर अक्सर बीच-बीच में किरण को अनुपस्थित रहना पड़ता; पहले ऐसी घटना से उसके भोजन में कुछ भी बाधा न पड़ती, वह सबसे अंत में दूध की कटोरी को धोकर उसके पानी तक को पीकर ही उठता। लेकिन आजकल किरण के स्वयं बुलाकर न खिलाने से उसका हृदय दुखता, उसके मुंह का स्वाद बिगड़ गया था—वह बिना खाए उठ जाता; भरे हुए कंठ से दासी को कह जाता, "मुझे भूख नहीं।" सोचता, किरण समाचार पाकर अभी अनुतप्त चित्त से उसे बुला भेजेंगी और खाने के लिए उससे बार-बार अनुरोध करेंगी, और वह उस अनुरोध को किसी भी तरह नहीं मानेगा, कहेगा, "मुझे भूख नहीं।"

किंतु किरण तक यह समाचार कोई भी नहीं पहुंचाता और न किरण ही उसे बुला भेजतीं, जो खाना बचता वह दासी खा लेती। तब वह अपने शयन-कक्ष का दीया बुझाकर अंधकार में बिस्तर पर पड़ा, उच्छ्वसित वेग से बलपूर्वक मुख पर तकिया रखकर फफक-फफककर रोता रहता; पर उसकी शिकायत पर कौन ध्यान देता, किस पर उसका अधिकार है, कौन उसे सांत्वना देने आता ? जब कोई भी नहीं आता, तब स्नेहमयी विश्वधात्री निद्रा आकर धीरे-धीरे कोमल कर-स्पर्श से इस मातृहीन व्यथित बालक के मन को शांत कर देतीं।

नीलकांत की दृढ़ धारणा थी कि सतीश किरण के पास सब समय उसकी शिकायत करता रहता है; जिस दिन किसी कारण से किरण गंभीर बनी रहतीं उस दिन नीलकांत सोचता, सतीश के षड्यंत्र के चलते किरण उससे नाराज हैं।

अब से नीलकांत एकाग्र मन से तीव्र आकांक्षा के साथ हमेशा देवता के निकट प्रार्थना किया करता, "अगले जन्म में जैसे मैं सतीश होऊं और सतीश मेरी जगह हो।" वह जानता, ब्राह्मण के एकांत मन का अभिशाप कभी निष्फल नहीं होता, इसलिए वह मन-ही-मन सतीश को ब्रह्म तेज से दग्ध करने की इच्छा से स्वयं जलता-भुनता रहता। और उसके कानों में ऊपर के तल्ले से सतीश और उसकी भाभी के उच्छ्वसित उच्चहास्यमिश्रित परिहासपूर्ण कलरव आता रहता।

नीलकांत खुलकर सतीश से किसी प्रकार की शत्रुता करने का साहस नहीं जुटा पाता, किंतु मौका पाते ही छोटी-मोटी असुविधाएं पैदा कर प्रसन्नता का अनुभव करता। घाट की सीढ़ियों पर साबुन रख सतीश जब गंगा में उतर डुबकी

लगाना आरंभ करता रहता और पाता कि साबुन है नहीं। एक दिन नहाते-नहाते अचानक उसने देखा उसका मनपसंद चिकन के कामवाला कुर्त्ता गंगा में बहा जा रहा है; सोचा, हवा में उड़ गया होगा पर हवा किस ओर से बही, इसे किसी ने नहीं जाना।

एक दिन सतीश के विनोद के लिए किरण ने नीलकांत को बुलाकर उसे यात्रागान गाने को कहा; नीलकांत चुप्पी साधे रहा। किरण ने विस्मित हो पूछा, "तुझे हुआ क्या रे!" नीलकांत ने इसका जवाब नहीं दिया। किरण पुनः बोली, "वह गान तो गा...गा न।" "वह गान तो मैं भूल गया हूं", कहकर नीलकांत चला गया।

अंत में किरण के घर लौटने का समय हुआ। सभी तैयार होने लगे; सतीश भी साथ जाने वाला था। पर नीलकांत से कोई कुछ भी नहीं कहता। वह साथ जाएगा या रहेगा, यह सवाल किसी के मन में आया ही नहीं।

किरण ने नीलकांत को साथ ले जाने का प्रस्ताव किया। इसमें सास, पति और देवर सभी ने एक ही स्वर में आपत्ति जाहिर की। किरण ने भी अपना संकल्प त्याग दिया। अंत में यात्रा से दो दिन पहले ब्राह्मण बालक को बुलाकर किरण ने उसे बड़े स्नेह से उसके अपने गांव लौटने का आदेश दिया।

वह लगातार कई दिनों से उपेक्षा के बाद, मीठी बात सुनकर अपने को और अधिक रोक नहीं पाया, एकदम रो पड़ा। किरण की भी आंखें छलछला आईं। जिसे बहुत दिनों तक पास रखा नहीं जा सकता, उसे इतने दिनों तक स्नेह देकर उसका मोह बढ़ाना अच्छा नहीं हुआ, सोचकर किरण के मन में बड़ा अनुताप हुआ।

सतीश पास ही में था; वह इतने बड़े लड़के का रोना देखकर बुरी तरह चिढ़ गया। बोल उठा, "अरे जा मर। बात नहीं, चीत नहीं एकदम रो-रोकर बेहाल बना है।"

किरण ने इस कठोर उक्ति के लिए सतीश को फटकारा। सतीश बोला, "भाभी, तुम समझती नहीं हो, तुम सभी का बहुत अधिक विश्वास कर लेती हो; यह कहां से आया कोई पता-ठिकाना नहीं, यहां आकर अच्छे-खासे राजा के हाल में है। अब 'पुनर्मूषिक' होने की आशंका से दिखावटी रोना रो रहा है—वह अच्छी तरह जानता है कि दो बूंद आंसू गिरा देने से ही तुम पिघल जाओगी।"

नीलकांत तेजी से चला गया। पर उसका मन सतीश की काल्पनिक मूर्ति

को कटार बनकर छीलने लगा, सुई बनकर बींधने लगा, आग होकर जलाने लगा। पर प्रकृत सतीश के शरीर पर कोई खरोंच तक नहीं उभरी, केवल उसी के मर्म-स्थल से रक्तपात होने लगा।

कलकत्ते से सतीश एक कीमती दवातदान खरीद लाया था, उसके दोनों बगल दो सीप की नाव पर दवात जमाया हुआ था और बीच में एक जर्मन सिल्वर धातु का बना हंस उन्मुक्त चंचुपुट में कलम पकड़े, पंख फैलाकर बैठा था; उसके प्रति सतीश का बड़ा रुझान था, अक्सर वह बीच-बीच में रेशमी रूमाल से बड़े ही जतन से उसे झाड़ता-पोंछता। किरण अक्सर मजाक करती हुई इस हंसचंचु के अग्रभाग में उंगली से आघात कर कहती, "ओ राजहंस, जन्म ले द्विज वंश में ऐसा नृशंस क्यों हुआ रे।" और इसी को उपलक्ष्य बना देवर के साथ हंसी-मजाक का वाक्युद्ध चलता।

यात्रा के पहले दिन सवेरे-सवेरे वह चीज खोज-खोजकर भी नहीं मिली। किरण ने हंसकर कहा, "देवरजी, तुम्हारा राजहंस तुम्हारी दमयंती की खोज में उड़ गया।"

लेकिन सतीश क्रोध से आग-बबूला हो उठा। नीलकांत ने ही वह चुराया है, इस बारे में उसे जरा भी संदेह नहीं था। पिछली शाम को उसे सतीश के कमरे के पास घूमते-फिरते भी देखा गया है, ऐसा प्रमाण भी मिला।

सतीश के सामने अपराधी लाया गया। वहां किरण भी उपस्थित थी। सतीश एकबारगी उससे कहं उठा, "तूने मेरी दवात चोरी करके कहां रखी है, ला दे।"

नीलकांत ने कई-कई बार अपराध और बिना अपराध के भी शरत् से बहुत मार खाई है और बराबर प्रफुल्ल चित्त से उसे सहा है। लेकिन किरण के सामने जब उसके नाम दवात चोरी का आरोप लगाया गया, तब उसकी बड़ी-बड़ी दोनों आंखें आग-सी जलने लगीं, उसकी छाती फूलकर कंठ को ठेल उठी, सतीश के और एक शब्द के उच्चरित करते ही वह अपने दोनों हाथ के दस नखों के साथ क्रुद्ध बिल्ली के बच्चे के समान सतीश पर झपट पड़ता।

तब किरण उसे बगल के कमरे में बुलाकर ले जा मीठे-मृदु स्वर में बोलीं, "नीलू, अगर वह दवात तूने ली हो तो चुपचाप मुझे दे जा, मुझसे कोई कुछ नहीं कहेगा।"

नीलकांत की आंखें 'टपटप' बरस पड़ीं, अंत में वह मुंह ढककर रोने लगा। किरण ने बाहर आकर कहा, "नीलकांत ने कभी कुछ नहीं चुराया है।"

शरत् और सतीश दोनों ही कहने लगे, "अवश्य ही नीलकांत को छोड़कर किसी और ने उसे नहीं चुराया है।"

किरण ने बलपूर्वक कहा, "कभी नहीं।"

शरत् ने नीलकांत को बुलाकर सवाल करना चाहा, किरण बोली, "नहीं, इस चोरी के बारे में उससे कुछ नहीं पूछना!"

सतीश बोला, "उसका कमरा और बक्सा खोजकर देखना चाहिए।"

किरण बोलीं, "यदि ऐसा किया तो तुम्हारे साथ मेरी हमेशा-हमेशा के लिए कुट्टी हो जाएगी। तुम निर्दोषी के प्रति किसी प्रकार का संदेह प्रकट नहीं कर सकते।"

कहते-कहते उनकी पलकें दो बूंद आंसू से गीली हो उठीं। उसके बाद उन दो करुण नेत्रों की दुहाई मान नीलकांत के प्रति और किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया।

निरीह आश्रित बालक के प्रति इस प्रकार के अत्याचार से किरण के मन में बड़ी करुणा का संचार हुआ। उन्होंने अच्छी दो जोड़ी फराशडांगा की धोती-चादर, दो कुर्ते, एक जोड़ा नया जूता और एक दस रुपये का नोट लेकर शाम को नीलकांत के कमरे में प्रवेश किया। उनकी इच्छा थी, नीलकांत के बिना बताए उन स्नेह-उपहारों को चुपके से उसके बक्से में रख आएंगी। टीन का बक्सा भी उन्हीं का दिया हुआ था।

आंचल से चाबी का गुच्छा लेकर चुपचाप बक्स को खोला। पर अपने उपहारों को उसमें अंटा नहीं पाईं। बक्से में लट्टू, खप्पची, कच्चा आम छीलने के लिए एक धारदार सीप, टूटे ग्लास के तला वगैरह कई तरह के पदार्थ स्तूपाकर रक्षित थे।

किरण ने सोचा बक्से को ठीक से संभालकर उसमें सब चीजें अटा सकेंगी। इसी उद्देश्य से बक्से को खाली करने लगी। पहले लट्टू, चकई, छुरी वगैरह निकले, इसके बाद कई मैले और धुले कपड़े निकले। फिर इन सबके बाद नीचे अचानक सतीश के बहुत जतन वाला राजहंस शोभित दवातदान भी निकल आया।

किरण का चेहरा हैरानी से लाल हो गया, वह बहुत देर तक उसे हाथ में लिए सोचती रहीं।

इस बीच पता नहीं कब, नीलकांत ने पीछे से कमरे में प्रवेश किया। वह

जान न सकीं। नीलकांत ने सब कुछ देखा, सोचा किरण खुद चोर की तरह उसकी चोरी पकड़ने आई हैं और अब तो उसकी चोरी पकड़ी भी गई। उसने किसी सामान्य चोर की तरह लोभ में पड़कर चोरी नहीं की, उसने तो केवल बदला लेने के लिए यह काम किया है, उसने तो इस चीज को गंगाजल में फेंकने का निश्चय किया था। केवल एक मुहूर्त के दुर्बलतावश उसे न फेंक अपने बक्से में रख छोड़ा है, ये सब बातें वह कैसे समझाएगा। वह चोर नहीं! वह चोर नहीं, तब वह क्या है ? कैसे बताए कि वह क्या है। उसने चोरी की है, लेकिन वह चोर नहीं है, किरण ने उस पर चोर होने का संदेह किया है, इस निष्ठुर अन्याय को वह किसी भी तरह समझा नहीं सकेगा, वहन भी नहीं कर सकेगा।

किरण ने एक गहरी उसांस भरते हुए उस दवातदान को बक्से में रखा। एक चोर की तरह उसे ऊपर से मैले कपड़े में दबा दिया, उसके ऊपर बालक के लट्टू, लकुटी, चकई, सीप, शीशे के टुकड़े वगैरह सब कुछ रखा और सर्वोपरि अपने उपहारों तथा दस रुपये के नोट को भी सजाकर रख दिया।

लेकिन दूसरे दिन उस ब्राह्मण बालक का कोई पता नहीं चला। गांव के लोगों ने बताया, उसे तो कहीं देखा नहीं, पुलिस ने कहा, उसका पता कहीं नहीं मिल रहा है। तब शरत् ने कहा, "अब नीलकांत के बक्से की जांच की जाए।"

किरण ने जिद ठानते हुए कहा, "ये किसी भी तरह नहीं होने का।" कहकर बक्से को अपने कमरे में मंगवाकर दवात को बाहर निकाला और छिपकर गंगा के जल में फेंक आईं।

शरत् सपरिवार अपने घर लौट गए, बगीचा एक दिन में ही सूना हो गया; केवल नीलकांत द्वारा पोसा गया वह बाजारू कुत्ता खाना-पीना छोड़ नदी के किनारे-किनारे घूमता-खोजता और रोता फिरने लगा।

❑❑

35

दुराशा

दार्जिलिंग पहुंच कर देखा, दार्जिलिंग का मौसम खराब था। दसों दिशाएं मतवाले मेघों व वर्षा से आच्छादित थीं। ऐसे वातावरण में न बाहर निकलने का मन होता था और न ही घर के भीतर बैठे रहने का। मन कुछ उदास-सा हो गया।

होटल में सुबह का नाश्ता करके लकदक होकर घूमने निकला। लगातार बारिश हो रही थी और चारों ओर घने बादलों का जालसा फैला था।

सुनसान कैलकैटा रोड पर अकेले टहलते हुए मैं सोच रहा था, अनंत बादलों के इस देश में अब अच्छा नहीं लगता; शब्द, स्पर्श और गंध से भरी अनोखी धरती माता को फिर से पांचों इंद्रियों द्वारा पांचों रूपों में पाने के लिए दिल बेचैन हो उठा है।

तभी पास ही किसी स्त्री के सिसकने की करुण आवाज मेरे कानों में पड़ी। यूं तो पूरी दुनिया ही रो-सिसक रही है, इसलिए किसी का रोना-सिसकना कोई बड़ी बात न थी। किसी दूसरे स्थान पर होता तो शायद पलटकर भी न देखता, किंतु इस प्रकार के वातावरण में वह आवाज कुछ अजीब और अकेली-सी महसूस हुई। मैं इस आवाज को नजरअंदाज न कर सका।

आवाज की ओर आगे बढ़कर देखा—गेरुआ वस्त्र पहने एक स्त्री, जिसके सिर की सुनहरी और मटमैली जटाएं जूड़े के रूप में बंधी हुई थीं, सड़क किनारे एक पत्थर पर बैठी रो रही है।

यह ताजी घटी किसी शोकपूर्ण घटना पर रोने जैसा रोना नहीं था। यह तो दुखों का वह लावा था जो भीतर के अंधेरे और सूनेपन के अहसास से पिघलकर बाहर आ रहा था।

मैंने टूटी-फूटी हिंदी में उससे पूछा, "तुम कौन हो? क्या हुआ है तुम्हें? क्यों रो रही हो?"

बिना कोई उत्तर दिए उसने अपनी भीगी-चमकती आंखों से एक नजर मुझे देखा।

यह सोचकर कि शायद किसी परपुरुष को एकाएक सामने पाकर वह भयभीत हो उठी है, मैंने सांत्वना-सी देते हुए कहा, "डरो मत, मैं भला आदमी हूं।"

सुनकर वह हंसती हुई ठेठ हिंदुस्तानी में बोली, "बहुत दिनों से भय-डर, लाज-शर्म सब घोलकर पिए बैठी हूं, बाबूजी, एक जमाने में मैं जिस जनानखाने में रहती थी, वहां मेरे अपने भाई को भी अंदर आने के लिए इजाजत लेनी पड़ती थी। आज सारी दुनिया में किसी से मेरा कोई पर्दा नहीं है।"

पहले तो मुझे जरा गुस्सा आया, मेरा चाल-चलन सब विलायती था, पर यह दुर्भाग्य की मारी बिना किसी संकोच के मुझे बाबूजी कहकर क्यों पुकार रही है? सोचा, व्यर्थ की माथा-पच्ची क्यों करूं। अपना रास्ता पकड़ूं। मगर उसके जवाब के बाद उत्पन्न हुई उत्सुकतावश ऐसा न कर सका। बल्कि कुछ बड़प्पन दिखाते हुए गरदन टेढ़ी करके पूछा, "मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकता हूं क्या? क्या तुम्हारी कोई प्रार्थना है?"

उसने स्थिर भाव से मेरे मुंह की ओर देखा और क्षण भर बाद संक्षेप में उत्तर दिया, "मैं बद्राओन के नवाब गुलाम कादिर खां की बेटी हूं।"

बद्राओन किस देश में है? गुलाम कादिर खां कौन-से नवाब हैं? उनकी बेटी किस दुख के कारण संन्यासिनी के वेश में दार्जिलिंग के इस कैलकैटा रोड के किनारे बैठकर रो रही है? मैं इसका सिर-पैर भी नहीं जानता, किंतु उसका परिचय पाकर जानने की उत्सुकता और बढ़ गई, बीच में टोकूंगा नहीं, कहानी खूब जम रही है। उसी पल अपने चेहरे को अत्यंत गंभीर बनाकर लंबा सलाम करते हुए बोला, "बीबी साहिबा, माफ कीजिए, मैं आपको पहचान न सका।"

न पहचान सकने के अनेक तर्कपूर्ण कारण पैदा किए जा सकते थे। उनमें सबसे बड़ा कारण था कि उन्हें पहले कभी देखा नहीं था, उस पर ऐसा घना कोहरा कि अपने हाथ-पांव देखना तक मुश्किल हो रहा था। बीबी साहिबा ने भी इसे मेरा अपराध नहीं माना और संतुष्ट स्वर में दाहिने हाथ के इशारे से एक अलग पत्थर की ओर निर्देश करते हुए मुझे अनुमति दी, "बैठिए।"

मैंने देखा, उस स्त्री में अधिकारपूर्ण आदेश देने की क्षमता थी। मैंने ऐसा जाहिर किया, मानो आसन ग्रहण करने की उसकी सम्मति पाकर एक दुर्लभ सम्मान प्राप्त किया हो।

बद्राओन के गुलाम कादिर खां की पुत्री नूरुन्निसा या मेहरुन्निसा या नूर-उल-मुल्क ने मुझे दार्जिलिंग के कैलकैटा रोड के किनारे अपने निकट ही नीचे कीचड़ लगे आसन पर बैठने का अधिकार दिया है।

होटल से मैकिंटोश पहनकर बाहर निकलते समय ऐसी महान संभावना की कल्पना मेरे सपने में भी नहीं थी। मैं तो मौसम के तेवर देखकर ही होटल से मैकिंटोश और लांग शूज पहनकर बाहर निकला था।

मैंने कहा, "बीबी साहिबा, आपका यह हाल किसने किया?"

बद्राओन-कुमारी ने अपने माथे पर हाथ मारा और बोली, "मैं क्या जानूं कौन है, जो यह सब कराता है? इतने विशाल पत्थरों से भरे हिमालय को किसने सामान्य जल-भरे बादलों से ढक दिया है?"

मैंने किसी प्रकार का दार्शनिक तर्क उठाए बिना ही सारी बातें स्वीकार कर लीं और बोला, "आपने ठीक कहा, भाग्य का रहस्य कौन जान सकता है? हम तो कीटमात्र हैं।"

तर्क उठाता, मगर मेरी भाषा में इतनी शक्ति न थी। दरबान और चपरासियों से जितनी हिंदी सीख सका था, उससे कैलकैटा रोड के किनारे बैठकर किसी नवाबपुत्री के साथ बहस करना मेरे लिए असंभव था।

बीबी साहिबा ने पुनः कहा, "मेरे जीवन की अनोखी कहानी आज ही खत्म हुई है। अगर फरमाइश करें तो सुनाऊं!"

मैंने व्यग्र होकर जल्दी से कहा, "जरूर! जरूर!! अगर मेहरबानी करें तो सुनकर कान धन्य होंगे।"

कोई यह न समझे कि मैंने ठीक यही बातें इसी तरह से हिंदुस्तानी भाषा में कही थीं, मेरी कहने की इच्छा थी पर सामर्थ्य न था। भाषा की वैसी सहज शिष्टता, मैंने कभी जानी ही नहीं थी। बीबी साहिबा के साथ बात करते समय आज पहली बार मैं दीन और अशिक्षित-सा महसूस कर रहा था।

वे बोलीं, "मेरे पिता के वंश में दिल्ली के सम्राट वंश का खून बह रहा था। उस कुल-गौरव की रक्षा करते रहने के कारण मेरे लिए उपयुक्त वर मिल पाना कठिन हो गया था। लखनऊ के नवाब के साथ मेरी शादी की बात चली

थी, पिता झिझक रहे थे। तभी दांत से कारतूस काटने की बात पर सिपाहियों के साथ सरकार बहादुर की ठन गई। तोपों के धुएं से हिंदुस्तान में अंधेरा छा गया। हमारा किला यमुना के किनारे था। हमारी फौज के सेनापति एक हिंदू ब्राह्मण थे। उनका नाम था केशरलाल।''

केशरलाल का परिचय देते समय एक पल के लिए उसके स्वर में संगीत-सा पैदा हो गया। उसकी स्मृति ने जैसे उसे आनंदविभोर-सा कर दिया। मैंने अपनी छड़ी जमीन पर टिका दी और सिगरेट सुलगा लिया।

नवाबपुत्री बताती जा रही थी, ''केशरलाल परम हिंदू थे। मैं प्रतिदिन सुबह उठकर अंत:पुर के झरोखे से देखा करती—केशरलाल यमुना के जल में प्रदक्षिणा करते-करते दोनों हाथ जोड़कर, नवोदित सूर्य को अर्घ्य प्रदान करते थे। फिर घाट पर बैठकर जप करते और साफ-सुंदर कंठ से भैरव राग में भजन गाते हुए घर लौट जाते। मैं मुस्लिम बालिका थी, किंतु कभी अपने धर्म की बात नहीं सुनी थी और अपने धर्म के लिए निश्चित उपासना विधि भी नहीं जानती थी। उन दिनों भोगविलास, मदिरापान, स्वेच्छाचारिता से हमारे पुरुषों में दया-धर्म क्षीण हो गया था और अंत:पुर के प्रमोद-भवन में भी धर्म सजीव नहीं था।

विधाता ने शायद मेरे मन में स्वाभाविक धर्म-पिपासा दी थी या और कोई गूढ़ कारण था या नहीं, बता नहीं सकती; किंतु प्रतिदिन शांत प्रभातवेला के नवोदित सूर्य की नई किरणों में केशरलाल की पूजा और अर्चना के दृश्य से मेरा उसी समय नींद से जागा अंत:करण एक अव्यक्त भक्तिमाधुर्य से परिपूर्ण हो जाता। मेरे हृदय में केशरलाल के प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी।

मेरी एक हिंदू नौकरानी थी। वह प्रतिदिन झुककर प्रणाम करके केशरलाल के पैरों की धूल ले आती थी—देखकर मुझे आनंद भी होता, ईर्ष्या भी जागती। क्रियाकर्म, पर्व आदि के अवसर पर वह दासी कभी-कभी ब्राह्मण-भोज करवाकर दक्षिणा देती।

अपनी ओर से मैं उसे सहायता के लिए धन देती और पूछती, ''क्या केशरलाल को नहीं बुलाओगी?''

वह जीभ काटकर कहती, ''केशरलाल किसी का अन्न या दान ग्रहण नहीं करते।''

इस प्रकार प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी रूप से, केशरलाल को किसी भी प्रकार का भक्ति-चिह्न न दिखा पाने के कारण मेरा हृदय व्याकुल और अतृप्त बना

रहता। हमारे पूर्वजों में से कोई एक ब्राह्मण कन्या को बलपूर्वक विवाह करके ले आए थे। मैं अंत:पुर के किनारे बैठकर उनके पवित्र रक्त का प्रवाह अपनी शिराओं में अनुभव करती और उस रक्त-सूत्र से केशरलाल के साथ अभिन्न संबंध की कल्पना करके थोड़ी मात्रा में तृप्त होती थी।

अपनी हिंदू दासी से मैं हिंदू धर्म के समस्त आचार-व्यवहार सीखती, देवी-देवताओं की आश्चर्यजनक कथाएं सुनती, रामायण-महाभारत का अपूर्व इतिहास आदि सब कुछ विस्तार से सुनती; सुनकर उस बंद अंत:पुर के एक किनारे बैठकर हिंदू-जगत् का अनुपम दृश्य मेरे मन के पट पर जाग उठता। मूर्ति और प्रतिमाएं, शंख-घंटे की ध्वनि, सोने के कलश वाले सुंदर मंदिर, धूप और धूने का धुआं, अगर और चंदन मिले फूलों की सुगंध, योगी तथा संन्यासियों की अलौकिक क्षमता, ब्राह्मण की देवतुल्य महत्ता, मनुष्यरूप धारण किए हुए देवताओं की विचित्र लीला—सब कुछ मिलकर मेरे लिए एक अति प्राचीन, अति विस्तृत, अत्यंत सुंदर, अलौकिक मायालोक की सृष्टि करते।

मेरा हृदय डार से बिछुड़े छोटे पक्षी की तरह प्रभात वेला में, विशाल प्राचीन महल के हर कमरे में उड़-उड़कर घूमता रहता। हिंदू-जगत् मेरे बालिका हृदय के लिए एक परम सुंदर परियों की कहानियों वाला साम्राज्य था।

उन्हीं दिनों कंपनी बहादुर के साथ सिपाहियों की जंग छिड़ गई। हमारे बद्राओन के छोटे से किले में भी क्रांति की लहर जाग उठी।

केशरलाल ने कहा, ''अब तो गो-मांस खाने वाले गोरे लोगों को आर्यावर्त से भगाकर फिर एक बार हिंदुस्तान में राजपद के लिए, हिंदू-मुसलमानों में जुए की बाजी जमानी पड़ेगी।''

मेरे पिता गुलाम कादिर खां चतुर व्यक्ति थे। वे अंग्रेज जाति को कूट संभाषण से संबोधित कर बोले, ''वे लोग असंभव को संभव कर सकते हैं। हिंदुस्तान के लोग किसी प्रकार भी उनसे जीत नहीं पाएंगे। मैं अनिश्चय की आशा में इस छोटे-से किले को खोना नहीं चाहता। मैं कंपनी बहादुर से नहीं लड़ूंगा।''

हिंदुस्तान के समस्त हिंदू-मुसलमानों का खून खौल रहा था और मेरे पिता की इस व्यापारी-सुलभ चतुराई से हम सबके मन में धिक्कार का भाव जाग उठा, यहां तक कि मेरी बेगम माताएं भी व्यथित हो उठी थीं। इसी समय फौज लिए, सशस्त्र केशरलाल ने आकर मेरे पिता से कहा, ''नवाब साहब, अगर

आप हमारे साथ नहीं रहेंगे, तो जब तक लड़ाई चलेगी, आपको कैद करके, आपके किले पर मैं कब्जा कर लूंगा।"

मेरे पिता ने फौरन पैंतरा बदलकर कहा, "इन सब फसादों की कोई जरूरत नहीं है। मैं तुम लोगों के साथ ही रहूंगा।"

केशरलाल बोले, "राजकोष से कुछ धन निकालना पड़ेगा।"

पिता ने विशेष कुछ नहीं दिया, बोले, "जब जैसी जरूरत होगी, देता रहूंगा।"

मेरी मांग से लेकर पैर की उंगली तक के जितने आभूषण थे, सब एक कपड़े में बांधकर अपनी हिंदू दासी के हाथों मैंने केशरलाल के पास भिजवा दिए। उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इससे मुझे असीम आनंद प्राप्त हुआ। मेरे शरीर का प्रत्येक अंग पुलकित और रोमांचित हो उठा। केशरलाल जंग लगी बंदूक की नालों और पुरानी तलवारों को घिस-घिसकर साफ करने में लग गए; इतने में अचानक एक दिन शाम को जिला-कमिश्नर साहब गोरी फौज को साथ लेकर आसमान में धूल उड़ाते हुए हमारे किले पर आ पहुंचे!

मेरे पिता गुलाम कादिर खां ने उन्हें छिपकर गदर की खबर पहुंचा दी थी। मगर बद्राओन की फौज पर केशरलाल का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव था कि उनके इशारे पर वे टूटी बंदूक और जंग लगी तलवार हाथ में लिए लड़ने-मरने के लिए तैयार हो गए।

विश्वासघाती पिता का घर मुझे नरक समान लगने लगा।

क्रोध, दुख, लज्जा और घृणा से छाती फटने लगी, पर आंखों से एक बूंद पानी भी न निकला। अपने डरपोक भाई की पोशाक पहनकर बदले हुए वेश में मैं किले से बाहर निकल गई; किसी के पास मुझे देखने का अवसर न था। जब धूल और बारूद का धुआं, सैनिकों की आहें और बंदूकों की आवाज रुक गई तो ऐसा लगा मानो मृत्यु की भीषण शांति ने जल-स्थल और आकाश को ढक लिया हो।

यमुना के जल में अपनी लालिमा बिखेरकर सूर्य अस्त हो गया था। संध्या के आकाश में शुक्लपक्ष का पूर्ण चंद्र विराजमान था।

युद्धक्षेत्र में सब ओर केवल मृत्यु का विकराल रूप दिखाई दे रहा था। कोई और समय होता, तो मेरा हृदय दुख और भय से दब जाता, पर उस दिन मैं सपने में खोई हुई सी चारों ओर घूम रही थी, ढूंढ़ रही थी—कहां है केशरलाल?

खोजते-खोजते रात के दूसरे पहर में चंद्रमा की उज्ज्वल चांदनी में मैंने देखा, रणभूमि से कुछ दूर यमुना-तट के आम के वृक्षों की छाया में केशरलाल और उनके स्वामिभक्त सेवक देवकीनंदन के मृत शरीर भूमि पर पड़े हैं। मैं समझ गई कि अत्यधिक घायल अवस्था में सेवक स्वामी को या स्वामी सेवक को युद्धभूमि से इस निरापद स्थान तक ढोकर ले आए हैं और फिर शांति से मृत्यु के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

पहले तो मैंने अपनी बहुत दिनों की अतृप्त इच्छा की पूर्ति की। मैंने केशरलाल के चरणों में बैठकर अपने घुटनों तक लंबे बालों को खोलकर, बार-बार उनके पैरों की धूल पोंछी, फिर उनके हिमशीतल चरण-कमलों को उठाकर अपने तप्त ललाट पर लगाया, चरणों का चुंबन करते ही मेरी आंखें बरस पड़ीं।

तभी केशरलाल का शरीर कांप उठा और सहसा उनके मुख से पीड़ा का अस्फुट स्वर सुनकर मैंने घबराकर उनके पांव छोड़ दिए। मैंने सुना, आंखें बंद किए, शुष्क कंठ से उन्होंने एक बार कहा, 'पानी।'

मैं उसी क्षण दौड़कर, अपनी ओढ़नी को यमुना के जल में भिगोकर ले आई। ओढ़नी को निचोड़कर केशरलाल के खुले होंठों में पानी डालने लगी और उनके माथे पर जो गहरा घाव लगा था, उस पर अपने गीले कपड़े का छोर फाड़कर बांध दिया। इस तरह कई बार यमुना से पानी लाकर उनके मुख और आंखों को भिगोने के बाद, धीरे-धीरे उनमें चेतना का संचार हुआ।

मैंने पूछा, "और पानी दूं?"

केशरलाल ने पूछा, "तुम कौन हो?"

मैं अब अपने को रोक न सकी, बोली, "अधीना, आपकी सेविका। मैं नवाब गुलाम कादिर खां की बेटी हूं।"

मैंने सोचा था, केशरलाल आसन्न मृत्यु के समय अपने भक्त का अंतिम परिचय साथ लेते जाएंगे, इस सुख को कोई मुझसे छीन न सकेगा। परंतु मेरा परिचय पाते ही केशरलाल सिंह के समान गरजकर बोले, "बेईमान की बेटी विधर्मी! मृत्युकाल में यवन के हाथ का पानी पिलाकर तूने मेरा धर्म नष्ट कर डाला।"

यह कहकर उन्होंने पूरी शक्ति से मेरे गाल पर दाहिने हाथ से तमाचा मारा, मैं मूर्च्छित सी हो गई, मेरी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उस समय मैं सोलह वर्ष की थी। अंत:पुर से बाहर मेरा पहला दिन था। अभी तक सूर्य की

तप्त किरणों ने मेरे सुकुमार कपोलों की रक्तिमा का हरण नहीं किया था, पर उस बाह्य-जगत् में पांव रखते ही अपने देवता से मुझे यह पहला पुरस्कार मिला।"

मैं बुझे हुए सिगरेट को हाथ में लेकर चित्रवत् बैठा था। कहानी सुन रहा था या भाषा सुन रहा था अथवा संगीत सुन रहा था, मालूम नहीं। मेरे मुंह से कोई बात नहीं निकल रही थी। अब मुझसे और न रहा गया, सहसा बोल उठा, "जानवर!"

नवाबपुत्री बोली, "जानवर नहीं, क्या जानवर मृत्यु की यंत्रणा के समय होंठों तक आई पानी की बूंद का परित्याग करता है?"

मैंने अप्रतिभ होकर कहा, "ठीक बात है। वह देवता था।"

नवाबजादी बोली, "कैसा देवता? क्या देवता भक्त की सेवा का ऐसा अपमान करता है?"

मैंने कहा, "यह बात भी ठीक है।" यह कहकर मैं चुप हो गया।

नवाबपुत्री कहने लगी, "शुरू में तो मुझे गहरी चोट पहुंची। लगा कि सारा आसमान अचानक चकनाचूर होकर मेरे सिर पर आ गिरा हो। क्षण भर में चेतना प्राप्त कर उस कठोर किंतु पवित्र वीर ब्राह्मण के चरणों में दूर से ही प्रणाम किया और मन-ही-मन बोली, 'हे ब्राह्मण ! तुम हीन की सेवा, पराया अन्न, धनी का दान, युवती का यौवन, नारी का प्रेम, कुछ भी ग्रहण नहीं करते। तुम स्वतंत्र हो, तुम एकाकी हो, तुम निर्लिप्त हो, सुदूर हो; मुझे, तुम्हारे निकट आत्मसमर्पण करने का अधिकार तक नहीं है!'

नवाबपुत्री को भूमि पर माथा टेक प्रणाम करते देखकर केशरलाल को कैसा लगा, नहीं बता सकती। किंतु उनके मुख पर विस्मय अथवा अन्य कोई भाव प्रकट नहीं हुआ।

शांत भाव से उन्होंने एक बार मेरे मुंह की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे उठे। मैंने चौंककर सहारा देने के लिए अपना हाथ बढ़ाया, उन्होंने चुपचाप उसे ठुकरा दिया और बड़े कष्ट से उठकर यमुना के घाट पर पहुंचे, वहां एक छोटी-सी नाव बंधी थी। पार उतारने वाला कोई भी नहीं था। उस नाव में बैठकर केशरलाल ने रस्सी खोल दी, देखते-ही-देखते नाव मंझधार में जाकर अदृश्य हो गई। मेरी इच्छा होने लगी कि इस व्यर्थ जीवन को यमुना के जल में विसर्जित कर दूं। किंतु कर नहीं सकी। फिर निरुद्देश्य ही यमुना के किनारे-किनारे चल दी, कहां जाऊंगी? कुछ पता नहीं था।"

इतना कहकर वह चुप हो गई। मैंने भी कोई बात नहीं की।

काफी समय बाद नवाबजादी बोली, "इसके बाद की घटनाएं बड़ी जटिल हैं। जीवन के इन थोड़े से दिनों में इतना तो मैं समझ गई हूं कि असाध्य, असंभव कुछ भी नहीं है। नवाब के अंत:पुर की बालिका के लिए बाह्य-जगत् संपूर्ण रूप से दुर्गम प्रतीत हो सकता है, पर एक बार बाहर निकलने पर चलने के लिए रास्ता अपने आप मिल जाता है। वह रास्ता नवाबी पथ भले ही न हो, मगर पथ है; उस पथ पर मनुष्य हमेशा से चलता आ रहा है। सामान्य जन-जीवन के इस पथ पर अकेली नवाबजादी का लंबा भ्रमण-वृत्तांत शायद सुनने में सुखकर न हो, अगर हो, तो भी उन सारी बातों को कहने का उत्साह मुझमें नहीं है। संक्षेप में अनेक दुख-कष्ट, विपत्ति और अपमान सहने पड़े हैं। फिर भी जीवन असहनीय नहीं हुआ। आतिशबाजी के समान जितना जला, उतनी ही उद्दाम गति प्राप्ति हुई। जब तक वेग से चल रही थी, जलने का बोध नहीं था। आज अचानक वह परम दुख और चरम सुख की आलोकशिखा बुझ जाने पर, इस पथ की धूल के ऊपर जड़ पदार्थ की भांति गिर पड़ी हूं—आज मेरी यात्रा का समापन हो गया, यहीं मेरी कहानी भी समाप्त होती है।"

इतना कहकर नवाबपुत्री मौन हो गई। मैंने मन-ही-मन सिर हिलाया, कहानी का अंत तो किसी तरह भी नहीं हो सकता। कुछ देर चुप रहकर मैं टूटी-फूटी हिंदी में बोला, "गुस्ताखी माफ कीजिए! बाद की बातें जरा खोलकर बताएं तो गुलाम के दिल की बेचैनी काफी कुछ कम हो सकती है।"

नवाबपुत्री हंसी। मैं समझ गया, मेरी टूटी-फूटी हिंदी का असर हुआ है। अगर मैं शुद्ध हिंदी में बात कर पाता तो मेरे सामने उनकी लज्जा न टूटती, पर मैं उनकी मातृभाषा बहुत कम जानता हूं, यही हम दोनों के बीच एक बड़ी दूरी है, यही एक पर्दा है। उन्होंने फिर कहना आरंभ किया, "केशरलाल के समाचार मुझे प्राय: मिलते रहते थे, पर किसी प्रकार भी उनसे मिल नहीं पाई थी। वे तांत्या टोपे के दल के साथ मिलकर, उस क्रांति से आच्छादित आकाश के नीचे, कभी पूर्व में, कभी पश्चिम में, कभी ईशान में, कभी नैर्ऋत्य में वज्रपात की तरह क्षण भर के लिए टूटते, फिर अदृश्य हो जाते थे।

उस समय मैं योगिनी बनकर, काशी के शिवानंद स्वामी को 'पिता' संबोधित कर, उनके निकट संस्कृत शास्त्र का अध्ययन कर रही थी। भारतवर्ष के सभी समाचार उनके चरणों में आकर एकत्रित होते थे। मैं भक्तिभाव से

शास्त्र की शिक्षा ग्रहण करती और करुण उद्वेग के साथ युद्ध के समाचार संग्रह करती थी। धीरे-धीरे ब्रिटिशराज ने हिंदुस्तान की विद्रोह की अग्नि को पैरों तले रौंदकर बुझा दिया। उस समय सहसा केशरलाल के समाचार मिलने बंद हो गए।

भीषण प्रलय के आलोक की रक्त-किरणों में भारतवर्ष के सुदूर प्रांतों से जो वीर मूर्तियां क्षण-क्षण दिखाई दे रही थीं, अचानक वे सब अंधकार में विलीन हो गईं। तब मुझसे और न रहा गया। गुरु का आश्रय त्याग कर भैरवी के वेश में फिर बाहर निकल पड़ी। एक पथ से दूसरे पथ पर, एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में, मठों में, मंदिरों में घूमती रही, कहीं केशरलाल का कोई समाचार नहीं मिला।

दो-एक व्यक्तियों ने, जो उसका नाम जानते थे, बोले, "उसे या तो युद्ध में या राजाज्ञा से मृत्यु प्राप्त हुई है।"

मेरी अंतरात्मा ने कहा, 'कभी नहीं', केशरलाल की मृत्यु नहीं हो सकती। वह ब्राह्मण, वह दु:सह ज्वलंत अग्नि कभी नहीं बुझ सकती। मेरी आत्माहुति ग्रहण करने के लिए वह अब भी किसी निर्जन यज्ञ की वेदी पर ऊर्ध्वशिखा के रूप में जल रही है।

हिंदू शास्त्रों में लिखा है कि ज्ञान के द्वारा, तपस्या के द्वारा शूद्र ब्राह्मण बना है। मुसलमान ब्राह्मण बन सकता है या नहीं—इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका एकमात्र कारण यह है कि प्राचीनकाल में मुसलमान थे ही नहीं।

मैं जानती थी कि केशरलाल के साथ मेरे मिलन में बहुत विलंब है, क्योंकि उससे पहले मुझे ब्राह्मण बनना होगा। एक-एक करके तीस वर्ष बीत गए, मैं अपनी आत्मा से, बाहर से, आचार-व्यवहार से, मन-वचन-कर्म से ब्राह्मण बन गई।

मेरी उस ब्राह्मण पितामही का रक्त निष्कलुष तेज के साथ मेरे संपूर्ण शरीर में प्रवाहित होने लगा।

मैंने मन-ही-मन अपने यौवनारंभ के प्रथम विप्र, अपनी यौवन-समाप्ति के अंतिम विप्र, मेरे तीनों लोकों के एकमात्र विप्र के चरणों में स्वयं को संपूर्ण रूप में, नि:संकोच भाव से प्रतिष्ठित कर एक अपूर्व दीप्ति प्राप्त की। युद्ध और क्रांति के दरम्यान, केशरलाल की वीरता की अनेक गाथाएं मैंने सुनीं किंतु वे बातें मेरे हृदय पर अंकित नहीं हुईं। बस, वही चित्र कि शांत चांदनी रात में,

निस्तब्ध यमुना की धार में, एक छोटी-सी नाव पर सवार अकेले केशरलाल चले जा रहे हैं; मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो चुका था।

मैं हर पल बस यही देखा करती कि ब्राह्मण निर्जन स्रोत पर सवार रात-दिन किस अनजान महारहस्य की ओर भागा जा रहा है। उसका कोई साथी नहीं; सेवक नहीं, उसे किसी की आवश्यकता नहीं। वह निर्मल-आत्मनिमग्न पुरुष स्वयं अपने में पूर्ण है।

आकाश के ग्रह—चांद-तारे उसे चुपचाप निहार रहे हैं। इसी बीच समाचार मिला कि केशरलाल ने राजदंड से पलायन कर नेपाल में आश्रय लिया है। मैं नेपाल गई। वहां बहुत दिन रहने के बाद समाचार मिला कि काफी दिन हुए केशरलाल नेपाल छोड़कर न जाने कहां चला गया है। उसके बाद से मैं पहाड़ों में ही घूम रही हूं। यह हिंदुओं का देश नहीं है-भूटिया और लेपचा लोग म्लेच्छ हैं, इनके आहार-व्यवहार में कोई सद्विचार-सदाचार नहीं है। इनके आराध्य देव, इनकी पूजा और अर्चना की विधि सब कुछ भिन्न है। अनेक दिनों की साधना के द्वारा मैंने जो विशुद्ध शुचिता प्राप्त की थी, मुझे भय होने लगा कि कहीं उसमें इन लोगों का लेशमात्र प्रभाव भी न पड़ जाए।

मैंने हर संभव चेष्टा से अपने को हर प्रकार के मलिन संस्पर्श से बचाकर रखा। मैं जानती थी कि मेरी नाव किनारे आ लगी है, मेरे जीवन का चरमतीर्थ निकट ही है। उसके बाद और क्या कहूं? शेष बातें बहुत कम हैं। दीप जब बुझता है तो हवा के एक ही झोंके से बुझ जाता है, इस बात की और लंबी व्याख्या क्या करूं! अड़तीस साल बाद इस दार्जिलिंग में आकर आज सुबह मैंने केशरलाल को देखा।''

वक्ता को यहां चुप होते देखकर मैंने उत्सुकता से पूछा, ''क्या देखा?''

नवाबपुत्री बोली, ''देखा, वृद्ध केशरलाल, भूटिया बस्ती में भूटिया पत्नी तथा उसके गर्भजात पौत्र-पौत्रियों को लेकर मैले कपड़े पहने, मैले आंगन में, भुट्टों से दाने निकाल रहा है।''

कहानी समाप्त हुई। मैंने सोचा, सांत्वना के कुछ शब्द कहने चाहिए। मैं बोला, ''अड़तीस साल तक लगातार जिसे प्राणों के भय से रात-दिन विजातियों के साथ रहना पड़ा हो, वह भला अपने आचार की रक्षा कैसे कर सकता है?''

नवाबकन्या बोली, ''क्या मैं यह नहीं समझती? पर मैं इतने दिन किस मोह में घूम रही थी? जिस ब्राह्मणत्व ने मेरे किशोर हृदय का हरण किया था,

क्या मैं जानती थी कि वह केवल अभ्यास और संस्कारमात्र था? मैं तो समझती थी, वह धर्म था, अनादि था, अनंत था। यदि ऐसा न होता तो सोलह वर्ष की किशोरावस्था में पिता के घर से पहली बार बाहर निकलकर उस चांदनी रात में, अपने विकसित, पुष्पित, भक्ति के वेग से कंपित तन, मन और प्राणों के समर्पण के बदले, ब्राह्मण के दाहिने हाथ से जो दु:सह अपमान मिला था, उसे गुरु के हाथ की दीक्षा समझ के, चुपचाप सिर झुकाकर, दुगुने भक्तिभाव से क्यों मैंने शिरोधार्य कर लिया? हाय ब्राह्मण, तुमने तो अपने एक अभ्यास के बदले दूसरा अभ्यास प्राप्त कर लिया, मुझे अपने एक यौवन, एक जीवन के बदले दूसरा जीवन-यौवन फिर कहां मिलेगा?''

यह कहकर रमणी उठ खड़ी हुई, बोली, ''नमस्कार बाबूजी!'' क्षण भर में ही मानो संशोधन करके कहा, ''सलाम बाबू साहब!'' इस मुस्लिम अभिवादन के द्वारा उसने मानो जीर्ण नींव वाले, धराशायी भग्न ब्राह्मणत्व से अंतिम विदा ली। मेरे कुछ कहने से पहले ही वह उस हिमाद्रि शिखर के धूसर कोहरे की राशि में मेघ की भांति खो गई। मैं पल भर के लिए आंखें बंद करके पूरी घटनावली को मानसपटल पर चित्रित देखने लगा।

आंखें खोलकर देखा, बादल अचानक फट गए थे और स्निग्ध धूप से निर्मल आकाश चमक रहा था। हथरिक्शाओं पर अंग्रेज स्त्रियां और घोड़े पर सवार अंग्रेज पुरुष वायु सेवन के लिए निकल पड़े थे; बीच-बीच में दो-एक बंगालियों के गुलूबंद से ढके मुखमंडल से मेरे प्रति कौतुकपूर्ण कटाक्ष आ रहे थे। मैं जल्दी से उठ खड़ा हुआ। जो कुछ भी देखा-सुना था वह अब सत्य प्रतीत नहीं हो रहा था। लगता था, मैंने कोई कल्पना बुनी थी—वह मुसलमान ब्राह्मणी, वह ब्राह्मण वीर और यमुना के किनारे का वह किला—सब कुछ मेरी कल्पना मात्र थी जो कुछ पलों के लिए मेरे समक्ष चित्रित हो उठी थी।

❑❑

36

दृष्टिदान

सुना है, आजकल बंगाली लड़कियों को अपना पति स्वयं ढूंढ़ना पड़ता है। मैंने भी ढूंढ़ा, पर देवता की सहायता से। मैं बचपन से ही अनेक व्रत आदि रखती थी और शिवपूजा भी करती थी। मेरी उम्र आठ साल होते-होते मेरा विवाह हो गया था। किंतु दुर्भाग्य, पूर्वजन्म के पापों के कारण मैं पति को पाकर भी पूर्ण रूप से न पा सकी। माता त्रिनयनी ने मेरी दोनों आंखें ले लीं। जीवन के अंतिम क्षण तक पति को देख पाने का सुख न दिया।

बचपन से ही मेरी अग्निपरीक्षा आरंभ हो गई थी। चौदह वर्ष की होने से पहले ही मैंने एक मृत शिशु को जन्म दिया था और स्वयं भी मृत्यु के समीप पहुंच गई थी, किंतु जिसके भाग्य में दुख भोगना लिखा है, वह मर भी कैसे सकता है?

जो दीप जलने के लिए बना है उसका तेल कम या समाप्त नहीं होता, रात-भर जलने के बाद ही उसका निर्वाण होता है। मैं बच तो गई, पर शारीरिक दुर्बलता, मन की पीड़ा या दूसरे किसी कारण से भी हुआ, मुझे नेत्र रोग हो गया। मेरे पति तब डॉक्टरी पढ़ रहे थे। नया-नया उत्साह था, अतः इलाज करने का अवसर पाते ही खुश हो उठते थे। मेरे नेत्र रोग के विषय में जानकर वे खुश हुए थे। दरअसल, इलाज करने का उन्हें एक अवसर मिला था। फलस्वरूप, मेरी आंखों का इलाज उन्होंने स्वयं करना आरंभ किया।

मेरे भैया उस समय बी.एल. की परीक्षा के लिए कॉलेज में पढ़ रहे थे। उन्होंने एक दिन आकर मेरे पति से कहा, "क्या कर रहे हो? कुमू की दोनों आंखें खराब हो रही हैं। किसी अच्छे डॉक्टर को क्यों नहीं दिखाते।"

मेरे पति बोले, "अच्छा डॉक्टर क्या होता है? और फिर वही आकर कौन-सा अलग विधि से इलाज करेगा? दवाएं तो सब मालूम ही हैं।"

भैया जरा गुस्से से बोले, "तब तो तुममें और तुम्हारे कॉलेज के बड़े साहब में कोई अंतर ही नहीं होगा? आखिर बड़ा साहब होता ही क्यों है?"

"कानून पढ़ रहे हो, डॉक्टरी के बारे में तुम क्या जानो? शादी के बाद अगर तुम्हारी पत्नी की संपत्ति को लेकर कोई मुकदमा छिड़ा, तो क्या तुम मेरी सलाह पर चलोगे?" झुंझलाकर पति ने कहा।

मैं मन-ही-मन सोच रही थी—दो पाटों के बीच में दाने ही पिसते हैं। पति और भैया में वाद-विवाद होते देख मुझे पीड़ा होने लगी। मैंने मन में सोचा कि भैया ने जब मुझे दान ही कर दिया है, तो मेरे बारे में व्यर्थ चिंतित क्यों हो रहे हैं? मेरा सुख-दुख, रोग-आरोग्य, जीना-मरना सब कुछ तो अब मेरे पति के संग ही है।

उस दिन मेरी आंखों की चिकित्सा संबंधी इस छोटी-सी बात पर, पति के साथ भैया का मानो मनमुटाव ही हो गया। मेरी आंखों से तो वैसे ही पानी आता था, दुखी होने के कारण तब और अधिक जल की धारा बहने लगी। उसका असली कारण उस समय मेरे पति या भैया, कोई भी नहीं समझ पाए।

पति के चले जाने के बाद भैया अचानक एक डॉक्टर को लेकर आ गए। डॉक्टर ने मेरी आंखों की जांच करने के बाद कहा, "अगर सावधानी न बरती जाए, तो आंखों के रोग के अधिक बढ़ जाने की आशंका रहती है।" उन्होंने कुछ दवाएं लिख दीं। भैया ने उसी समय दवाएं मंगवा लीं।

डॉक्टर के चले जाने के बाद मैंने भैया से कहा, "भैया, मैं आपके पांव पड़ती हूं, मेरा जो इलाज चल रहा है, उसमें कोई बाधा न डालिएगा।"

बचपन से ही मैं भैया से बहुत डरती थी, उन्हें मैं इतने स्पष्ट रूप से कुछ कह सकूंगी, यह मेरे लिए एक आश्चर्यजनक घटना थी। पर मैं अच्छी तरह समझ रही थी कि भैया मेरे पति से छिपाकर मेरे इलाज की जो व्यवस्था कर रहे हैं, उससे मेरा कुछ भला होगा या नहीं, मगर बात खुलने पर बुरा अवश्य हो सकता था।

मेरे इस तरह स्पष्ट बात कहने से भैया भी कुछ हैरान हो गए। थोड़ी देर चुप रहे। फिर सोचकर बोले, "अच्छा तो मैं फिर डॉक्टर नहीं लाऊंगा। पर डॉक्टर जो दवा लिखकर गए हैं, उसे तो नियम से लेती रहना।"

दवा आने पर उसे खाने और लगाने की बाबत समझाकर भैया चले गए। पति के लौटने से पहले ही मैंने वह दवा आदि सारी चीजें बिना किसी हिचक

के अपने आंगन के कुएं में फेंक दीं। मैं जानती थी कि अगर यह बात मेरे पति को पता चली तो व्यर्थ का बवंडर खड़ा हो जाएगा। हो सकता है मुझमें और मेरे पति में जमकर तकरार हो जाती।

उधर, भइया से कहा-सुनी होने का नतीजा यह निकला कि मेरे पति दुगुनी चेष्टा से मेरी आंखों के इलाज में जुट गए। सुबह-शाम दवा बदली जाने लगी। रोजाना नए-नए कौतुक होते, कभी आंखों पर पट्टी बांधी जाती, कभी चश्मा लगाया जाता, कभी पाउडर तो कभी आंख में बूंद-बूंद दवा डाली जाती। दुर्गंधयुक्त मछली का तेल खाने से जब अंदर की आंतें तक बाहर निकलने को हुईं तो भी मैं खामोश ही रही।

पति पूछते, 'कैसा लग रहा है?'

मैं कहती, 'पहले से ठीक हूं।'

मैं यही सोचती कि जो हो रहा है, ठीक ही हो रहा है।

जब आंखों से अधिक पानी निकलने लगता तो सोचती, पानी निकल ही जाना अच्छा लक्षण है। जब पानी निकलना बंद हो जाता तो सोचती कि अब शायद मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊंगी।

मगर वह भ्रम अधिक दिनों तक न चला। कुछ समय बाद पीड़ा असहनीय हो उठी। आंखों का धुंधलापन बढ़ गया और सिर के दर्द ने मुझे स्थिर न रहने दिया। देखा, मेरे पति भी कुछ हैरान से दिखे, इतने दिन बाद किस बहाने से डॉक्टर बुलाएं, शायद समझ नहीं पा रहे थे।

मैंने उनसे कहा, "भैया का मन रख लेने के लिए एक बार डॉक्टर को बुलाने में हर्ज ही क्या है? इसी बात को लेकर वे बेकार में ही नाराज हो रहे हैं; उससे मुझे बड़ा दुख होता है। इलाज तो तुम ही करोगे, एक डॉक्टर साथ रहने से ठीक रहेगा।"

चुटकी बजते ही पति की समस्या का समाधान हो गया। फौरन बोले, "तुम ठीक कहती हो।" फिर उन्होंने उसी दिन एक अंग्रेज डॉक्टर को बुला लिया। दोनों में क्या बातें हुईं, मुझे मालूम नहीं; पर मुझे लगा जैसे गोरे डॉक्टर ने मेरे पति को फटकारा, वे सिर झुकाकर चुपचाप खड़े रहे।

डॉक्टर के चले जाने पर मैंने पति का हाथ पकड़कर कहा, "न जाने कहां से गंवार-गोरे गधे को पकड़कर ले आए। कोई देशी डॉक्टर ही तो काफी था। मेरी आंख की बीमारी के बारे में वह क्या तुमसे बेहतर समझेगा?"

पति ने कुछ संकोच के साथ बताया, "आंखों का ऑपरेशन जरूरी है।"

मैंने जरा गुस्सा दिखाया, "तुम्हें शुरू से ही मालूम था कि ऑपरेशन करना होगा। पर यह बात तुम मुझसे छिपाते रहे। तुम्हें क्या लगता है, मैं ऑपरेशन से डरती हूं?"

मेरी ऐसी बात सुनते ही पति की लज्जा दूर हो गई। वे बोले, "आंख के ऑपरेशन से तो बड़े-बड़े वीर पुरुष डरते हैं?"

मैंने मजाक में कहा, "पुरुष की वीरता तो बस पत्नी तक ही सीमित है।"

पति ने उसी क्षण उदास और धीमे स्वर में कहा, "ठीक कहती हो, पुरुष के पास तो अहंकार के सिवाय कुछ है ही नहीं।"

मैं उनकी कमजोरी की तरफ से फौरन उनका ध्यान हटाते हुए बोली, "अहंकार में भी क्या पुरुष स्त्रियों से जीत सकते हैं? वहां भी हमारी ही जीत है।"

इस बीच भैया के आने पर मैंने भैया को बुलाकर कहा, "भैया, इतने दिन आपके उस डॉक्टर के इलाज से मेरी आंखें ठीक हो रही थीं। एक दिन भूल से खाने की दवा आंखों में लगा लेने के बाद से ही मेरी आंख की तकलीफ बहुत ज्यादा बढ़ गई है। आपके बहनोई कह रहे हैं कि ऑपरेशन कराना होगा।"

"मैं तो समझ रहा था कि तेरे पति का इलाज ही चल रहा है, इसलिए मैं गुस्से से इतने दिन नहीं आया।" भैया ने हैरानी से कहा।

"नहीं, मैं...मैं छिपकर उसी डॉक्टर के इलाज पर ही चल रही थी, इन्हें इसलिए नहीं बताया था कि कहीं नाराज न हों।"

स्त्री होके जन्म लेने से कितना झूठ बोलना पड़ता है।

भैया के मन को भी दुखी नहीं कर सकती थी; पति के आत्मसम्मान को भी ठेस नहीं पहुंचा सकती थी। मां बनकर गोद के बच्चे को बहलाना पड़ता है। पत्नी बनकर बच्चे के पिता को भी बहलाना पड़ता है। कैसे-कैसे छल और अभिनय करने पड़ते हैं एक स्त्री को।

इस छल का लाभ यह हुआ कि अंधे होने से पहले मैं अपने भैया और पति का मिलना अपनी आंखों से देख सकी। भैया ने सोचा, छिपकर इलाज करने के कारण ही यह दुर्घटना हुई है और पति ने सोचा, शुरू में ही भैया की सलाह मान लेता तो ठीक रहता। दोनों ही स्वयं को दोषी समझते हुए एक-दूसरे के काफी निकट आ गए।

पति भैया की सलाह लेने लगे; भैया भी अपराध बोध से दबे सभी विषयों में मेरे पति की राय पर ही विश्वास प्रकट करने लगे। अंत में दोनों की सम्मति से एक अंग्रेज डॉक्टर ने आकर मेरी बाईं आंख का ऑपरेशन किया। कमजोर आंख उस आघात को सहन न कर सकी, उसकी क्षीण दीप्ति अचानक बुझ गई। उसके बाद दूसरी आंख को भी धीरे-धीरे अंधेरे ने ढक लिया।

एक दिन पति मेरे पास आकर बोले, "तुम्हारे सामने अब और झूठी बड़ाई नहीं करूंगा, तुम्हारी दोनों आंखों को नष्ट करने वाला मैं ही हूं।"

मैंने अनुभव किया कि उनकी आवाज आंसुओं से भीगी हुई है। अपने दोनों हाथों से उनका दाहिना हाथ दबाकर मैंने कहा, "बहुत अच्छा किया। जरा सोचो तो, अगर किसी डॉक्टर के इलाज से मेरी आंखों की रोशनी चली जाती तो मुझे क्या तसल्ली रहती? होनी को जब टाला नहीं जा सकता, तो मेरी आंखों को कोई नहीं बचा सकता था। वे आंखें तुम्हारे हाथों नष्ट हुई हैं, यही मेरे अंधेपन का एकमात्र सुख है। जब पूजा के फूल पूरे नहीं हो रहे थे तो श्रीराम अपनी दोनों आंखें निकालकर देवता को समर्पित करने के लिए तैयार हो गए थे। मेरे देवता को मैंने अपनी दृष्टि दी है—मेरी पूर्णिमा की किरणें, मेरे प्रभात का प्रकाश, मेरे आकाश की नीलिमा, मेरी पृथ्वी की हरियाली—सब कुछ मैंने तुम्हें दिया। तुम्हारी आंखों को जब जो अच्छा लगे, मुझे अपने मुंह से कहना, उसे मैं तुम्हारी आंखों से देखने के प्रसाद के रूप में ग्रहण करूंगी।"

यह सारी और ऐसी बातें सामान्य स्थिति में शायद मैं न कह पाती, किंतु पिछले काफी दिनों से जब मैं दुखी होती, जब दुर्भाग्य का अहसास होता तो इसी तरह की बातें अपने मन से कहती थी, आज उन्हीं बातों को शब्द मिल गए।

"कुमू, झूठे दंभ से, तुम्हारा जो कुछ मैंने नष्ट किया है, उसे फिर लौटा तो न सकूंगा, पर मुझसे जहां तक हो सकेगा तुम्हारी आंखों की कमी दूर करूंगा, तुम्हारे साथ-साथ रहूंगा।"

मैंने कहा, "यह तो कोई बात नहीं हुई। तुम अपने काम-काज छोड़कर क्या मुझ अंधी से बंधकर बैठे रहोगे। मेरे रहते ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। मैं तुम्हारी दूसरी शादी करवाऊंगी।"

उनका विवाह करना क्यों जरूरी है, इस विषय पर विस्तारपूर्वक कुछ भी कहने से पहले ही मेरा गला भर आया। गला साफ करके मैं कुछ कह पाती कि उससे पहले ही वे रुंधे स्वर में बोल उठे, "मैं मूर्ख हूं, अहंकारी हूं, किंतु फिर

भी मैं पाखंडी नहीं हूं। अपने हाथों से मैंने तुम्हें अंधा किया है, अब यदि उस कमी के लिए तुम्हें त्यागकर मैं दूसरी पत्नी ग्रहण करता हूं तो मैं इष्टदेव गोपीनाथ की शपथ खाकर कहता हूं, मुझे ब्रह्महत्या और पितृहत्या का पाप लगे।'' कहते-कहते वे तनिक आवेश में आ गए।

मैं उन्हें इतनी बड़ी शपथ न उठाने देती, मैंने बोलने का प्रयास किया, मगर हलक में फंस गए आंसुओं के एक गोले ने मेरी आवाज को दबा दिया।

मेरे पति ने जो कुछ कहा, उसे सुनकर असीम आनंद प्रतीत हुआ। औरत के लिए इससे बड़ा आनंद और क्या होगा कि उसका पति सदा उसका बने रहने की इतनी कठोर शपथ ले। उसी आनंद के आवेग से मैं मुंह छिपाकर रो पड़ी।

मैं अंधी हो गई हूं, फिर भी वे मुझे नहीं छोड़ेंगे। वे सदा मुझे अपने हृदय में धारण किए रहेंगे। इतना सौभाग्य मैं नहीं चाहती, पर मन तो स्वार्थी होता है न। स्वार्थी मन को यह बात बड़ी ही सुखद लगी।

जब रोने के बाद जी कुछ हल्का हुआ तो मैंने उनका चेहरा अपनी हथेलियों में भर अपने करीब लाकर कहा, ''ऐसी कठोर शपथ क्यों उठाई? मैंने क्या तुम्हें तुम्हारे सुख के लिए विवाह करने को कहा था? सौत से तो मैं अपना स्वार्थ पूरा करती। आंखों के अभाव में तुम्हारे जो काम मैं खुद नहीं कर पाती, वे सब उससे करवाती।''

''काम तो दासी भी क़र सकती है। केवल काम की सुविधा के लिए एक दासी से विवाह करके क्या उसे मैं तुम जैसी देवी के साथ एक आसन पर बैठा सकता हूं?'' कहते हुए मेरा चेहरा उठाकर उन्होंने मेरे माथे पर एक निर्मल चुंबन किया।

उस चुंबन के द्वारा मानो मेरा तीसरा नेत्र खुल गया, उसी क्षण देवीत्व में मेरा अभिषेक हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा, 'यही ठीक है, जब अंधी ही हो गई हूं तो अब मैं इस बाहरी घर-संसार की गृहिणी नहीं हो सकती, अब तो मैं दुनियादारी से ऊपर उठके, देवी बनकर ही पति का कल्याण करूंगी। अब और झूठ नहीं, धोखा नहीं; गृहिणी नारी की जितनी भी कमजोरी और छलनाएं होती हैं, उन्हें अपने से दूर रखूंगी। इन्होंने देवी कहा है तो अब देवी बनकर दिखाने में ही इनका सुख है।'

उस दिन, दिन-भर मेरे अंदर एक द्वंद्व-सा चलता रहा। इतनी बड़ी शपथ उठाने के उपरांत ये किसी तरह भी दूसरा विवाह नहीं कर पाएंगे। यह खुशी

और संतोष की बात थी, मगर यह खुशी अब हृदय में शूल की भांति चुभ रही थी। मन के भीतर एक शूल-सा गड़ गया, जिसे मैं निकाले नहीं निकाल पा रही थी। मेरे अंदर एक नई देवी का प्रादुर्भाव हुआ, उसने कहा, 'हो सकता है ऐसा दिन भी आए, जब तुम्हारे पति का कल्याण इस शपथ की रक्षा करने से नहीं बल्कि इस शपथ को भंग करके दूसरा विवाह करने से हो।'

भीतर की स्त्री बोली, 'हो सकता है, पर जब उन्होंने शपथ ली है तब तो वे दूसरा विवाह नहीं कर पाएंगे!'

देवी ने कहा, 'अगर ऐसा हो तो तुम्हें तो इससे प्रसन्न नहीं होना चाहिए।'

स्त्री फिर बोली, 'सब समझती हूं, पर जब वे शपथ ले चुके हैं, तब?'

मन में बैठी स्त्री और जाग्रत हो गई, देवी का द्वंद्व चलता रहा। अंत में जब कोई निर्णय न हो सका तो देवी ने त्योरियां चढ़ा लीं और एक अज्ञात भय के अंधकार ने मेरे समस्त मन को ढक लिया।

अब मेरा हरेक काम पति देखते। घर के नौकर-चाकरों को उन्होंने मेरे करीब से हटा लिया। मैं पूरी तरह पति पर निर्भर हो गई। पहले-पहल तो यह सब बहुत अच्छा लगा। पति को अपने इतना करीब पाकर सुखद अनुभूति होती थी; आंखों के हिस्से का पति-सुख दूसरी अन्य इंद्रियों ने आपस में बांट लिया, वे अपना हिस्सा बढ़ाने लगीं।

मगर फिर धीरे-धीरे पति अन्य बाहरी कार्यों में व्यस्त होते गए तो मुझे जैसे चारों तरफ से शून्यता ने घेर लिया।

कहीं कुछ पकड़ नहीं पाती हूं, सब कुछ जैसे खो-सा गया है। पहले जब उन्हें लौटने में देर हो जाती थी तब मैं सड़क के कमरे वाली खिड़की खोलकर बाट जोहा करती थी। आज मेरा दृष्टिहीन संपूर्ण शरीर उन्हें ढूंढ़ने की कोशिश करता है। अपनत्व का वह सेतु जो हम दोनों तटों को एक किए था, वह टूट चुका है। मेरे अंधेपन की गहरी कालिमा कुछ और काली होकर हम दोनों के बीच फैल गई है।

अब मुझे विवशता के साथ बैठे रहना पड़ता है, सोचती रहती हूं, कब वे इस स्याह नदी को पार करके स्वयं ही मेरे समक्ष उपस्थित होंगे। इसलिए, अब जब वे पल भर के लिए भी मुझे छोड़कर चले जाते हैं, तो मेरा अंधा शरीर आगे बढ़कर उन्हें पकड़ना चाहता है, हाहाकार करके उन्हें पुकारता है। किंतु, इतनी आकांक्षा, इतनी निर्भरता तो ठीक नहीं है।

एक तो पति पर पत्नी का भार ही काफी होता है, उस पर अंधेपन का भारी बोझ, नहीं...यह बोझ मैं उन पर नहीं डालूंगी। इस अंधकार को मैं स्वयं ही ढोऊंगी। मैंने दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा की कि अपने इस अंधत्व से मैं पति को बांधकर नहीं रखूंगी।

फिर मैं आत्मनिर्भर होने लगी। शब्द, स्पर्श और गंध का सहारा लेकर अपने सभी कार्य स्वयं करने की चेष्टा करती। थोड़े दिनों में मैं अपने सारे कार्य करना सीख गई। यहां तक कि घर के बहुत से काम अब मैं पहले से भी अधिक निपुणता के साथ कर लेती थी।

अब मुझे लगने लगा, दृष्टि हमारे कामों में जितनी सहायता करती है, दूसरे अंगों को उससे कहीं अधिक विक्षिप्त कर देती है। जितना भर देखने से काम चल जाना होता है, आंखें उससे कहीं अधिक देखती हैं। आंखें जब पहरा देने का काम करती हैं, तो कान आलसी हो जाते हैं; उन्हें जितना सुनना चाहिए, वे उससे कम सुनते हैं। अब चंचल आंखों के न रहने से मेरी अन्य सभी इंद्रियां अपने कर्तव्यों का पालन शांत और सहज भाव से करने लगीं।

मैं अब पति को अपना कोई काम न करने देती बल्कि उनके सारे काम पहले की तरह मैं ही करने लगी थी।

पति ने एक दिन मुझसे शिकायत की, "मेरे प्रायश्चित से तुम मुझे वंचित कर रही हो।"

"तुम्हारा प्रायश्चित किसलिए है, यह मैं नहीं जानती, परंतु मैं अपने आप पर पाप का भार क्यों बढ़ाऊं?"

मैं जानती हूं कि ऐसा कहकर जब मैंने उन्हें बंधन मुक्त किया तो उन्होंने चैन की सांस ली थी। अंधी पत्नी की सेवा को जीवन भर ढोना पति का काम नहीं है।

मेरे पति डॉक्टरी पास करने के उपरांत मुझे लेकर शहर से गांव आ गए। गांव में आकर मुझे लगा जैसे मां की गोद में आ गई हूं। इन दस सालों में मेरी जन्मभूमि मेरे मन के भीतर छाया की तरह धुंधली हो आई थी। जब तक आंखें थीं, कलकत्ता शहर मेरे चारों ओर किसी पर्दे की भांति अन्य स्मृतियों को ढके खड़ा था।

आंखों की ज्योति के चले जाते ही, मैं समझ गई कि कलकत्ता केवल आंखों को भुलावे में रखने वाला नगर है, उससे मन नहीं भरता।

अगहन के अंत में हम हासिमपुर पहुंच गए।

नई जगह थी, चारों ओर का दृश्य कैसा है, मैं न जान सकी। किंतु बचपन के कुछ गंध और अनुभवों ने मुझे सम्मोहित-सा कर लिया। ओस से भीगे नए जुते हुए खेत, अरहर और सरसों के खेतों से उठकर आसमान में भरी उनकी कोमल मीठी सुगंध, चरवाहे के गीत; ऊबड़-खाबड़ कच्चे रास्ते पर बैलगाड़ी चलने से उत्पन्न 'चर्र-चूं' की आवाजें मेरे हृदय को पुलकित करने लगीं।

मेरे जीवन के आरंभ की स्मृतियों ने अपनी अनिर्वचनीय ध्वनि और गंध के साथ प्रत्यक्ष वर्तमान बनकर मुझे घेर लिया, अंधी आंखें उसका कुछ विरोध नहीं कर सकीं। मैं अपने उसी बचपन में लौट गई।

मेरे बचपन के उस व्रत और भोर की बेला में फूल चुनकर शिवपूजा की बात मुझे याद आई। एक यह गांव था, जिससे मेरी सुखद स्मृतियां जुड़ी थीं, एक कलकत्ता शहर जहां इधर-उधर की बातचीत में, आने-जाने के गोलमाल और तेज रफ्तार जिंदगी में बुद्धि कुछ विकारग्रस्त तो हो ही जाती है। धर्म-कर्म, भक्ति-श्रद्धा की वह निर्मल सरलता नहीं रहती।

मुझे उस दिन की बात याद आती है जब अंधी होने के बाद कलकत्ते में मेरी एक गांव की सखी ने आकर मुझसे कहा था, 'तुझे गुस्सा नहीं आता कुमू ? मैं होती तो ऐसे पति का मुंह न देखती!'

'मुंह देखना तो बंद ही है बहन! इसलिए इन जली आंखों पर गुस्सा आता है, पर भला उनसे क्यों नाराज होऊं?' ठीक समय पर डॉक्टर न बुलाने के कारण मेरी सखी मेरे पति से बहुत अधिक नाराज थी और चाहती थी कि मैं भी पति पर क्रोध दर्शाऊं, मगर मैंने उसे समझाया, 'संसार में चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने, भूल से, भ्रांति से, दुख-सुख की अनेक घटनाएं घटित होती रहती हैं; किंतु मन के भीतर यदि भक्ति को स्थिर रख सकें तो दुख में भी शांति मिलती है, नहीं तो केवल नाराजगी, 'तू-तू, मैं-मैं' और मन-मुटाव, लड़ाई-झगड़े जैसी बातों में ही जीवन बीत जाता है। अंधी हो गई हूं, यही क्या कम बड़ा दुख है, उस पर पति से नाराज होकर दुख का भार और क्यों बढ़ाऊं।'

मेरे मुंह से बड़े-बूढ़ों जैसी बातें सुनकर वह मुंह फुलाकर नाराज हो चली गई। उसका नाम लावण्य था।

पर कुछ भी हो बातों में विष होता है, बातें कभी एकदम व्यर्थ नहीं जातीं।

लावण्य के मुंह की क्रोधभरी बातें मेरे मन में दो-चार चिनगारियां छोड़

गई थीं। मैंने उन्हें पैरों से मसलकर बुझा दिया था, पर फिर भी दो-एक दाग रह ही गए थे! इसीलिए कह रही थी, कलकत्ते में अनेक विवाद हैं, अनेक बातें हैं, वहां देखते-ही-देखते बुद्धि असमय पककर कठोर हो जाती है।

कुछ दिन सुख से बीते। मेरे पति की डॉक्टरी अच्छी चलने लगी, उनकी आमदनी बढ़ी, कुछ रुपए भी जमा हुए।

परंतु रुपया अच्छी चीज नहीं है। जब यह आने लगता है, तो अपने साथ बहुत कुछ लाता है। बहुत सारी चीजें दम तोड़ देती हैं। सबसे पहले तो अपनापन ही मिटता है। हर चीज, हर बात पैसे से तुलने लगती है। मन की निर्बलता समाप्त हो जाती है। उसके सबल होते ही वह शासक हो जाता है। जिस मन में सुख, संतोष और शांति रहती थी, वहां ढेरों कुविचार, छल भर जाते हैं।

अंधे की अनुभवशक्ति शायद अधिक होती है; इसीलिए या किस कारण से मालूम नहीं, आर्थिक अवस्था में सुधार के साथ-साथ पति में आता जा रहा परिवर्तन मैं भली-भांति समझ रही थी। जब मेरे पति की उम्र कम थी, तब न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म के संबंध में उनके अंदर जो विवेक था, वह धीरे-धीरे जड़ होता जा रहा था।

मुझे आज भी याद है, वे अक्सर कहा करते थे, 'डॉक्टरी मैं केवल जीविका चलाने के लिए नहीं पढ़ रहा, इससे मैं अनेक गरीबों का उपकार कर सकूंगा।'

जो डॉक्टर मरते हुए गरीब रोगी के घर जाकर, पहले फीस लिए बिना नाड़ी नहीं देखना चाहते, उनके बारे में बताते हुए घृणा से उनके मुंह से शब्द नहीं निकलते थे। मैं समझ रही थी, अब वे दिन नहीं रहे।

एक गरीब स्त्री ने अपने इकलौते बेटे की जान बचाने के लिए उनके पांव पकड़ लिए थे, पर उन्होंने उसकी उपेक्षा की। अंत में अपनी सौगंध दिलाकर मैंने उन्हें इलाज के लिए भेजा, लेकिन उन्होंने पूरे मन से अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया।

जब हमारे पास धन-दौलत की कमी थी, तब गलत तरीके से कमाए गए धन को मेरे पति किस दृष्टि से देखते थे यह मुझे मालूम है। पर अब तो बैंक में भी काफी रुपया जमा हो चुका था।

एक दिन एक धनी व्यक्ति का कर्मचारी आया और मेरे पति के साथ अकेले में दो दिन तक बातें करके चला गया। क्या बातें हुईं, मुझे कुछ मालूम

नहीं पड़ा, पर उसके बाद जब मेरे पति मेरे पास आए और अत्यंत प्रफुल्लता के साथ नाना विषयों पर नाना प्रकार की बातें करने लगे, तब अपने अंत:करण की स्पर्शशक्ति द्वारा मैं समझ गई कि आज वे कलंक लपेटकर आए हैं।

मैं सोचती, अंधी होने से पहले मैंने जिन्हें अंतिम बार देखा था, मेरे वे पति कहां हैं ? जिन्होंने मेरी दृष्टिहीन दोनों आंखों के बीच एक चुंबन अंकित करके मुझे देवी के पद पर अभिषिक्त किया था, मैं उनके किस काम आ सकी ? इन प्रश्नों का उत्तर सोचने बैठती तो कोई रास्ता न मिलता।

पति के साथ मेरी आंखों से देखने का जो विच्छेद हुआ था, वह कुछ भी न था, पर जब अनुभव करती हूं कि मैं जहां हूं वे वहां नहीं हैं, तो भीतर तक प्राण कांपने लगते हैं।

मैं अंधी हूं, संसार के प्रकाश से वंचित, मन के अंदर अपनी पहली उम्र का वही प्रथम प्रेम, अटूट भक्ति, अखंड विश्वास लेकर बैठी हुई हूं—देवमंदिर में जीवन के आरंभ में, मैंने जिन शैफाली फूलों को अर्पण किया था, उसकी ओस की बूंदें अभी सूखी नहीं हैं और मेरे पति इस शीतल छाया के देश को छोड़कर रुपए कमाने के पीछे संसार के रेगिस्तान में न जाने कहां अदृश्य होते चले जा रहे हैं ?

मैं जो कुछ विश्वास करती हूं, जिसे सब सुख-संपत्ति से अधिक समझती हूं; उसके प्रति बहुत दूर से वे कटाक्ष करते हैं। किंतु पहले यह विच्छेद नहीं था, पहली उम्र में हम दोनों ने मिलकर एक ही डगर पर चलना शुरू किया था। पर कब उस डगर में अंतर आरंभ हो गया, इसे न तो वे जान सके, न मैं ही जान पाई।

आज मैं उन्हें पुकारकर भी उत्तर नहीं पाती। कभी-कभी सोचती हूं, शायद अंधी हूं, इसलिए छोटी-सी बात को ही बढ़ा-चढ़ाकर देखती हूं। आंखें रहतीं तो शायद मैं इस दुनिया को सबकी तरह साधारण दृष्टि से ही देखती। पति ने भी एक दिन मुझे यही समझाकर कहा। उस दिन सुबह एक बूढ़ा मुसलमान अपनी पोती के हैजे के इलाज के लिए उन्हें बुलाने आया था। मैंने उसे कहते हुए सुना, 'बेटा, मैं गरीब हूं, पर अल्लाह तुम्हारा भला करेंगे।'

मेरे पति बोले, 'अल्लाह जो करेंगे, केवल उससे तो मेरा काम नहीं चलेगा। पहले बताओ, तुम क्या करोगे।'

सुनते ही मैंने सोचा, ईश्वर ने मुझे अंधा किया है, बहरा क्यों नहीं किया।

उस बूढ़े ने एक ठंडी सांस के साथ 'हा अल्लाह' कहकर विदा ली। मैंने उसी समय दासी से कहकर, उसे भीतर की खिड़की पर बुला भेजा और कहा, 'बाबा, तुम्हारी पोती के लिए यह डॉक्टर का कुछ खर्चा दे रही हूं। तुम मेरे पति की मंगल-कामना करके पड़ोस के डॉक्टर को बुलाकर ले जाओ।'

उस दिन सारा दिन मैंने कुछ नहीं खाया। बस उदास और बुझी हुई सी बिस्तर पर पड़ी रही। दोपहर के बाद पति ने नींद से जागकर कहा, 'क्या बात है कुमू! काफी दिनों से देख रहा हूं कि कुछ उदास रहती हो।'

पहले का अभ्यस्त उत्तर ही मुंह से निकलना चाहता था—नहीं, कुछ भी तो नहीं है। पर कपट का समय अब बीत गया है, मैंने स्पष्ट कहा, "कितने दिन से तुम्हें कहने को सोचती हूं,पर कहते समय समझ नहीं पाती कि क्या कहना है। मैं नहीं जानती अपने मन की बात ठीक से समझाकर कह सकूंगी या नहीं, पर तुम अपने मन में जरूर इस बात का अनुभव करते हो कि हम दोनों ने जिस प्रकार एक होकर जीवन आरंभ किया था, आज वह भिन्न हो गया है।"

पति हंसकर बोले, "परिवर्तन ही तो संसार का नियम है।"

मैंने कहा, "रुपया-पैसा, रूप-यौवन सबमें परिवर्तन होता है, पर क्या नित्य-वस्तु संसार में कुछ भी नहीं है? सब बदलते हैं?"

तब वे जरा गंभीर होकर बोले, "देखा, दूसरी स्त्रियां वास्तविक अभाव को लेकर दुखी रहती हैं—किसी का पति कमाता नहीं है, किसी का पति प्यार नहीं करता—तुम तो आसमान से दुख खींच लाती हो।"

मैं उसी समय समझ गई—अंधत्व मेरी आंखों में काजल लगाकर मुझे इस परिवर्तनशील घर-संसार से बाहर ले गया है, मैं दूसरी स्त्रियों की तरह नहीं हूं, मुझे मेरे पति नहीं समझेंगे।

इन्हीं दिनों मेरी एक बुआ-सास, अपने भतीजे की खबर लेने गांव से आ, गईं। हम दोनों ने उनके पांव छुए, पांव छूते ही, उन्होंने कहना शुरू किया, "सुनो बहू, दुर्भाग्य से तुम अपनी आंखें खो बैठी हो, अब हमारा अविनाश अंधी पत्नी को लेकर गृहस्थी कैसे चलाएगा? उसकी दूसरी शादी करवा दो।"

पति अगर मजाक से कहते कि अच्छी बात है बुआ, तुम लोग कोई रिश्ता-विश्ता देखो, तो बात साफ हो जाती।

पर उन्होंने कुंठित स्वर में कहा, "अरे बुआ, क्या कह रही हो?"

बुआ ने जवाब दिया, "क्यों, कुछ गलत कह रही हूं क्या? अच्छा बहू,

तुम्हीं बताओ बेटी! क्या गलत कहती हूं मैं।" मैं हंस पड़ी और बोली, "जिसकी गांठ काटनी हो, भला उसकी भी कोई राय लेता है।"

बुआ जवाब में बोलीं, "हां, बात तो ठीक ही है अविनाश, तो अब तू और मैं छिपकर सलाह करेंगे, ठीक है न, फिर भी मैं कहती हूं—बहू, कुलीन की बेटी की सौत की संख्या जितनी अधिक होती है, उसका पति-गौरव उतना ही बढ़ता है। हमारा बेटा अगर डॉक्टर न बनकर शादी ही करता तो उसके रोजगार की क्या चिंता थी? रोगी तो डॉक्टर के हाथ में आते ही मरता है, मगर मरने पर फीस तो नहीं देता। पर विधाता के शाप से कुलीन की पत्नी मरती नहीं है और वह जितने दिन जिंदा रहती है, उसके पति को उतना ही लाभ है।"

दो दिन बाद पति ने मेरे सामने ही बुआजी से कहा, "बुआजी, अपनों की तरह बहू की सहायता कर सके, ऐसी एक भले घर की लड़की दिला सकती हो क्या? इन्हें आंखों से दिखाई नहीं देता, अगर ऐसी कोई हो जो सदा इनके साथ रहे तो मैं निश्चिंत हो जाऊं।"

जब नई-नई अंधी हुई थी तब यह बात कहते तो ठीक था लेकिन अब देख न पाने के कारण मुझे या घर को या घर के काम-काज में क्या अड़चन होती है, मैं नहीं जानती। अब जबकि मैं सब कुछ करने की अभ्यस्त हो गई हूं, तब इन्हें मेरी चिंता सता रही है। मन में आया कि विरोध करूं। पर लाभ क्या होता, यही सोचकर चुप रही।

बुआजी ने तपाक से कहा, "लड़कियों की कमी क्या है? मेरे ही जेठ की एक बेटी है, सुंदर भी और सुलक्षणा भी। लड़की बड़ी हो गई है, बस, विवाह के लिए कोई उपयुक्त लड़का नहीं मिल रहा है। तुम जैसा कुलीन लड़का मिले तो अभी शादी करवा दूं।"

पति चकित होकर बोले, "शादी की बात कौन कर रहा है?"

इस पर बुआ तुनक गईं, "कैसी अजीब बात करते हो, शादी किए बिना, एक भले घर की लड़की तुम्हारे घर यों ही आकर कैसे रहेगी?"

बात ठीक थी और मेरे पति उसका कोई ठीक जवाब नहीं दे पाए।

अपनी बंद आंखों के अनंत अंधकार में अकेली खड़ी होकर सिर ऊंचा किए मैं पुकारती रही, "हे भगवान! मेरे पति की मदद करो।"

उसके दो-चार दिन बाद एक दिन सुबह प्रतिदिन की पूजा आदि समाप्त कर बाहर आते ही बुआजी ने कहा, "बहू, मैंने अपने जिस जेठ की बेटी की

बात कही थी, वही हेमांगिनी आज घर से आई है। हिमू, यह तुम्हारी दीदी हैं, इन्हें प्रणाम करो।''

उसी समय मेरे पति अचानक आकर, मानो एक अपरिचित स्त्री को देखकर लौटने लगे तो बुआजी बोलीं, ''कहां जाता है, अविनाश!''

पति ने पूछा, ''यह कौन है, बुआजी?''

बुआजी ने बताया, ''यही मेरे जेठ की बेटी हेमांगिनी है।''

इस लड़की को कब बुलाया गया? कौन लाया? कैसे आई आदि बातों को लेकर मेरे पति बार-बार अनावश्यक विस्मय प्रकट करते रहे थे।

मैंने मन-ही-मन कहा, 'जो कुछ हो रहा है, सब समझ रही हूं। ऊपर से छल-कपट भी आरंभ हो गया! चोरा-चोरी, आंख-मिचौली, मिथ्या बातें! अधर्म करना है तो करो, अपनी अशांत प्रवृत्ति के लिए करो; पर मेरे लिए यह हीनता क्यों? मुझे भुलावे में रखने के लिए यह मिथ्याचरण क्यों?'

हेमांगिनी का हाथ पकड़कर मैं उसे कमरे में ले गई। उसके चेहरे और शरीर पर हाथ फेरकर देखा, मुझे लगा, चेहरा सुंदर है, उम्र भी चौदह-पंद्रह साल से कम नहीं होगी।

बालिका अचानक मीठी और ऊंची आवाज में हंस पड़ी, बोली, ''यह क्या कर रही हो दीदी? मेरा भूत झाड़ रही हो क्या?''

इस उन्मुक्त और सरल हंसी से हमारे बीच के काले बादल एक पल में ही दूर हो गए। मैंने उसके गले में बांहें डालकर कहा, ''मैं तुम्हें देख रही हूं बहन!''

कहकर उसके कोमल चेहरे पर और एक बार हाथ फेरा।

''देख रही हो?'' कहती हुई वह फिर हंसने लगी, बोली, ''मैं क्या तुम्हारे बगीचे की फली या बैंगन हूं जो हाथ फेरकर देख रही हो कि कितनी बड़ी हो गई हूं?''

तब मुझे अचानक याद आया, हेमांगिनी नहीं जानती कि मैं अंधी हूं। मैंने कहा, ''बहन, मैं अंधी हूं।''

सुनकर वह कुछ देर के लिए हैरान और गंभीर बनी रह गई। मैं अनुभव कर रही थी—अपने कौतूहल भरे दो नवीन विशाल आयत नेत्रों से उसने मेरी ज्योतिहीन आंखों और चेहरे के भाव को बड़े ध्यान से देखा, फिर बोली, ''ओह, इसीलिए चाची को यहां बुलाकर ले आई हो!''

मैंने कहा, "नहीं, मैंने नहीं बुलाया, तुम्हारी चाची खुद आई हैं।"

बालिका फिर हंस पड़ी और बोली, "तो दया करके आई हैं क्या? तब तो दयामयी जल्दी यहां से हिलने वाली नहीं हैं! पर पिताजी ने मुझे यहां क्यों भेजा?"

इसी समय बुआजी कमरे में आईं। अब तक मेरे पति के साथ उनकी बातचीत चल रही थी। कमरे में उनके आते ही हेमांगिनी बोली, "चाची बताओ, हम लोग घर कब लौटेंगे?"

बुआजी बोलीं, "अरे, अभी आते देर नहीं हुई और जाऊं-जाऊं करने लगी! ऐसी चंचल लड़की कभी नहीं देखी!"

हेमांगिनी ने कहा, "चाची, तुम्हारे तो यहां से जल्दी हिलने के लक्षण नहीं दिखाई देते। वैसे यह तुम्हारे अपनों का घर है, तुम जितने दिन चाहो रहो, पर मैं नहीं रहूंगी, तुमसे कहे देती हूं।" यह कहकर मेरा हाथ पकड़कर बोली, "क्यों बहन, तुम लोग तो मेरे अपने सगे नहीं हो न?"

मैंने उसके इस सरल प्रश्न का कोई उत्तर न देकर उसे गले से लगा लिया।

मैंने देखा, बुआजी कितनी ही तेज क्यों न हों, इस कन्या को संभालना उनके वश की बात नहीं है। बुआजी ने सबके सामने गुस्सा न दिखाकर, हेमांगिनी को जरा प्यार से समझाने की कोशिश की और उसने तो जैसे उस प्यार को शरीर से झाड़कर फेंक दिया।

बुआजी ने जैसे सारी बातें लाड़ली बिटिया का मजाक समझकर हंस के उड़ा दीं और चली जाने को हुईं। फिर जाने क्या सोचकर लौट आईं और हेमांगिनी से बोलीं, "हिमू! चल तेरे नहाने का समय हो गया है।"

हेमांगिनी मेरे पास आकर बोली, "हम दोनों घाट पर चलेंगे, ठीक है न बहन?" बुआजी इच्छा न होते हुए भी चुप हो गईं। वे जानती थीं—खींचातानी करने से हेमांगिनी की ही जीत होगी और उन दोनों की अनबन मेरे सामने एकदम खुलकर हो जाएगी।

खिड़की के घाट पर जाते-जाते हेमा ने मुझसे कहा, "तुम्हारे बाल-बच्चे क्यों नहीं हैं?"

मैंने जरा हंसकर कहा, "मुझे क्या मालूम! भगवान ने क्यों नहीं दिए, यह मैं कैसे बताऊं?"

हेमा बोली, "जरूर तुम्हारे अंदर कोई पाप था।"

मैंने कहा, "वह भी अंतर्यामी ही जानते हैं।"

बालिका ने प्रमाणस्वरूप कहा, "देखो न, चाची के भीतर इतनी कुटिलता है, उनके गर्भ से संतान का जन्म हो ही नहीं सकता।"

पाप-पुण्य, सुख-दुख, दंड-पुरस्कार का रहस्य मैं स्वयं ही नहीं समझती, बालिका को भी नहीं समझा सकी। केवल एक गहरी सांस लेकर मन-ही-मन भगवान से कहा, "तुम ही जानते हो।"

हेमांगिनी उसी पल मुझे गले लगाकर हंस पड़ी और बोली, "अरे, मेरी बात सुनकर भी तुम ठंडी सांस लेती हो? भला मेरी बातों पर कौन ध्यान देता है?"

मैंने देखा, पति की डॉक्टरी में बाधा पड़ने लगी। दूर से बुलावा आने पर तो जाते ही नहीं, कहीं पास भी जाने पर जल्दी ही काम निपटाकर चले आते हैं। पहले जब घर पर रहते तो दोपहर के खाने और सोने के समय ही केवल अंदर आते थे। अब बुआजी भी जब-तब बुला भेजतीं और वे भी अनावश्यक बुआजी की खबर लेने आ जाते।

बुआजी जब ऊंची आवाज में पुकारकर कहती हैं, 'हिमू, जरा मेरा पानदान तो देना!' तो मैं समझ जाती हूं, बुआजी के कमरे में मेरे पति आए हुए हैं। शुरू-शुरू में दो-तीन दिन हेमांगिनी पानदान, तेल की कटोरी, सिंदूर का डिब्बा आदि आदेशानुसार ले जाती थी। पर अब उसे पुकारे जाने पर भी किसी तरह हिलती ही न थी। दासी के हाथ से आदेशानुसार वस्तुएं भेज देती थी।

बुआ पुकारती रहतीं 'हेमांगिनी, हिमू, हिमि'—बालिका जैसे मेरे प्रति एक करुणा के आवेश से मुझसे लिपटी रहती, एक आशंका और विषाद उसे ढक लेता। इसके बाद मेरे पति के बारे में वह भूलकर भी मेरे सामने उल्लेख न करती।

इसी बीच मेरे भैया मुझे देखने आए। मैं जानती थी, भैया की नजर बहुत पैनी है। बात क्या है और कैसी चल रही है, उनसे यह छिपाना प्रायः असंभव था। मेरे भैया बड़े कठोर स्वभाव के हैं, वह मामूली अन्याय को भी क्षमा करना नहीं जानते।

मेरे पति उनकी ही आंखों के सामने अपराधी के रूप में खड़े होंगे, मैं इसी बात से सबसे अधिक डरती थी। अतः मैंने अधिक-से-अधिक प्रफुल्लता से सब कुछ ढके रखने का प्रयत्न किया। अधिक बातें करके, अधिक व्यस्तता दिखाकर, बहुत ज्यादा धूमधाम करके, चारों ओर मानो एक धूल-सी उड़ाकर,

एक पर्दा रखने की चेष्टा की, लेकिन वह मेरे लिए इतना अस्वाभाविक था कि उससे और अधिक पकड़े जाने की संभावना उत्पन्न हो गई।

भैया ज्यादा दिन नहीं रह पाए। मेरे पति ऐसी अस्थिरता दिखाने लगे कि उसने सबके सामने कठोरता का रूप धारण कर लिया। भैया चले गए।

विदा लेने से पहले स्नेह भरा हाथ बहुत देर तक मेरे सिर पर रखा; उनका हाथ किसी आवेग से कांप रहा था। एकाग्रचित्त हो, मन-ही-मन कौन-सा आशीर्वाद दिया—वह मैं समझ गई। उनके आंसू, मेरे आंसुओं से भीगे गालों पर आ गिरे।

उस दिन हाट का दिन था, चैत की सांझ को लोग बाजार हाट से खरीदारी करके घरों को लौट रहे थे। सहसा दूर से बरसात साथ लिए एक तूफान आ रहा था, उसी की माटी मिली सोंधी गंध और भीगी हवा आकाश में फैली हुई थी। साथियों से बिछुड़े लोग अंधेरे मैदान में, एक-दूसरे को बेचैन ऊंची आवाज में पुकार रहे थे।

मैं अंधी जब तक अपने कमरे में अकेली रहती हूं, तब तक दीया नहीं जलाया जाता, कहीं लौ से कपड़े में आग न लग जाए या कोई दुर्घटना न हो जाए। मैं उस सूने अंधेरे कमरे में फर्श पर बैठ गई और दोनों हाथ जोड़कर अपनी अंधी दुनिया के ईश्वर को पुकारकर कहने लगी, 'प्रभु, तुम्हारी दया जब अनुभव नहीं कर पाती, तुम्हारा अभिप्राय जब नहीं समझ पाती; तब इस अनाथ टूटे हृदय की नौका के हाल को जी-जान से, दोनों हाथों से पकड़कर सीने पर दबा लेती हूं, सीने से खून निकलने लगता है, पर तूफान को संभाल नहीं पाती! हे प्रभु, तुम मेरी और कितनी परीक्षा लोगे? मेरी शक्ति ही कितनी है प्रभु?' यह कहते-कहते आंसू उमड़ आए तो पलंग पर सिर रखकर रोने लगी।

दिन भर घर का काम करना पड़ता है। हेमांगिनी छाया की तरह साथ-साथ रहती है, भीतर-ही-भीतर जो आंसू भर आते हैं, उन्हें गिराने का अवसर ही नहीं मिलता है। बहुत दिनों के बाद आज आंखों का पानी बाहर निकला। इसी समय पलंग जरा हिला, किसी के चलने की आहट हुई और पल भर बाद ही हेमांगिनी ने आकर मुझे गले लगा लिया और चुपचाप अपने आंचल से मेरे आंसू पोंछने लगी।

वह शाम ढले क्या सोचकर, कब आकर पलंग पर लेट गई थी, मैं नहीं जान पाई थी। उसने एक प्रश्न भी नहीं पूछा, मैंने भी उससे कोई बात नहीं कही।

वह धीरे-धीरे अपना शीतल हाथ मेरे माथे पर फेरने लगी। इसी बीच कब मूसलाधार वर्षा के साथ-साथ एक आंधी आई, मैं जान भी नहीं पाई। बहुत दिनों बाद किसी से अपनेपन का स्नेह मिला तो व्यथित मन को असीम शांति मिली।

दूसरे दिन हेमांगिनी ने कहा, "चाची, मैं कहे देती हूं, तुम अगर घर नहीं चलतीं तो मैं अपने कैवर्त दादा के साथ चली जाऊंगी।" बुआजी बोलीं, "इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, मैं भी कल चल रही हूं। एक साथ ही चलेंगे। यह देख हिमू, मेरे अविनाश ने तेरे लिए कितनी सुंदर मोती-जड़ी अंगूठी खरीदी है।" ऐसा कहकर बुआजी ने बड़े गर्व के साथ अंगूठी हेमा के हाथ में दी।

हेमांगिनी ने अंगूठी उंगली से निकाल ली और बोली, "चाची, देखो, मैं कैसा अच्छा निशाना लगा सकती हूं।"

कहते हुए उसने खिड़की से निशाना लगाकर अंगूठी पीछे के पोखर में फेंक दी। बुआजी को गुस्से से, दुख से, हैरानी से मानो काठ मार गया। फिर मेरा हाथ पकड़ कर वह बोलीं, "बहू, खबरदार, इसकी इस बचपने की बात अविनाश को मत बताना। मेरे बेटे को बड़ा दुख होगा। तुम्हें मेरी सौगंध बहू!"

मैंने कहा, "और कुछ कहने की जरूरत नहीं है बुआजी! मैं कुछ भी नहीं कहूंगी।"

दूसरे दिन जाने से पहले हेमांगिनी मेरे गले लगकर बोली, "दीदी, मुझे याद रखना।"

मैंने अपने दोनों हाथ बार-बार उसके मुंह पर फेरते हुए कहा, "अंधे कुछ भी नहीं भूलते बहन! मेरी तो कोई दुनिया ही नहीं है, मैं तो बस मन के सहारे ही जीती हूं।" कहकर मैंने उसके माथे को चूम लिया।

हेमांगिनी के चले जाने से मेरी पृथ्वी शुष्क हो गई। वह मेरे प्राणों में जो सुगंध, सौंदर्य-संगीत, जो उज्ज्वल प्रकाश और जो कोमल तरुणाई लाई थी, उसके चले जाने से वह सब खो गया, मुझे अपना सारा घर-संसार सूना-सूना सा लगने लगा। अपने चारों ओर एक बार दोनों हाथ फैलाकर देखा—कहीं मेरा कुछ है या नहीं?

तभी पति ने आकर विशेष आनंद जताते हुए कहा, "ये लोग चली गईं, अब चैन आया, जरा काम-धाम करने का मौका मिलेगा।"

मुझे स्वयं पर शर्मिंदगी सी हो गई। आखिर मेरे पति ऐसा दिखावा क्यों कर

रहे हैं? क्यों सच को छिपा रहे हैं? क्या मैं सच से डरती हूं? क्या मैं आघात से कभी डरी हूं? मेरे पति क्या नहीं जानते कि जब मैंने अपनी दोनों आंखें दी थीं, तब मैंने किस शांत भाव से अपने लिए इस चिर-अंधकार को ग्रहण किया था! फिर मेरे प्रति यह बेचारगी क्यों?

इतने दिन तक तो मेरे और पति के बीच केवल एक अंधेपन का ही पर्दा था, आज से एक और व्यवधान की उत्पत्ति हो गई। पति कभी भूलकर भी हेमा का नाम मेरे सामने नहीं लेते, मानो उनसे जुड़ी दुनिया से हेमांगिनी एकदम खो गई हो, वहां जैसे उसने कभी हल्का-सा निशान भी न छोड़ा हो। पर पत्र द्वारा उन्हें उसकी खबर मिलती रहती थी, यह मैं अनायास ही अनुभव कर सकती थी। जिस प्रकार तालाब में बाढ़ का थोड़ा-सा भी पानी जिस दिन प्रवेश करता है, कमल की डंठल में उस दिन तनाव पैदा होता है। उसी तरह उनके भीतर जिस दिन थोड़ा-सा भी उभार जागता, अपने हृदय के मूल में उस दिन मैं उसे स्वयं ही अनुभव कर लेती। कब उन्हें खबर मिलती और कब नहीं; यह सब मुझसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं था। पर मैं भी उनसे उसके बारे में कुछ नहीं पूछती थी।

बैसाख महीने के बीचोबीच, एक दिन दासी ने आकर मुझसे पूछा, "मांजी, घाट पर बड़े समारोह के साथ नाव तैयार हो रही है। बाबूजी कहां जा रहे हैं?"

मैं जानती थी कि किस बात की तैयारी हो रही है। मेरे भाग्य के आकाश में पहले कुछ दिन तूफान से पहले की शांति थी और फिर प्रलय के घनघोर बादल आकर इकट्ठे हो रहे थे; संहारक शिवजी नीरव उंगलियों के संकेत से अपनी संपूर्ण प्रलयंकारी शक्ति को मेरे सिर के ऊपर एकत्रित कर रहे थे, यह मैं समझ रही थी। दासी से कहा, "मुझे तो अभी तक कोई खबर नहीं मिली।"

दासी ने और कुछ पूछने का साहस नहीं किया और एक ठंडी सांस लेकर चली गई।

आधी रात को पति ने आकर कहा, "काफी दूर से मेरा बुलावा आया है। कल पौ फटने से पहले ही मुझे रवाना होना पड़ेगा। लौटने में शायद दो-तीन दिन लग जाएं।"

मैं पलंग से उठ खड़ी हुई, बोली, "क्यों मुझसे झूठ बोल रहे हो?"

पति ने दबी और कांपती हुई आवाज में कहा, "झूठ क्या कहा मैंने?"

मैं बोली, "तुम विवाह करने जा रहे हो।" वे चुप रहे । मैं भी स्थिर भाव

से खड़ी रही। बहुत देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। अंत में मैंने कहा, "कुछ तो उत्तर दो! कहो कि 'हां' मैं विवाह करने जा रहा हूं।"

उन्होंने प्रतिध्वनि के समान उत्तर दिया, "हां, मैं विवाह करने जा रहा हूं।"

मैंने कहा, "नहीं, तुम नहीं जा सकते। मैं इस महाविपत्ति से, महापाप से तुम्हारी रक्षा करूंगी। अगर यही नहीं कर पाई तो फिर मैं तुम्हारी पत्नी कैसी? किसलिए मैंने शिवपूजा की थी?"

फिर बहुत देर तक कमरा शांत रहा। मैंने धरती पर लेटकर, पति के पांव पकड़कर कहा, "मैंने तुम्हारे साथ क्या अपराध किया है? किस बात में मुझसे त्रुटि हुई है? दूसरी पत्नी की तुम्हें क्या जरूरत है? तुम्हें मेरे सिर की कसम, सच-सच कहो।"

तब पति धीरे से बोले, "सच कह रहा हूं, मैं तुमसे डरता हूं। तुम्हारे अंधत्व ने तुम्हें एक अनंत आवरण से ढक लिया है, वहां मैं प्रवेश नहीं कर सकता। तुम मेरी देवी हो, तुम देवी के समान भयानक हो। तुम्हें लेकर प्रतिदिन का गृहकार्य नहीं कर सकता। जिसे डांट सकूं, जिस पर बिगड सकूं; जिसे प्यार कर सकूं, गहने गढ़वाकर दे सकूं, ऐसी एक सामान्य स्त्री मैं चाहता हूं।"

"मेरे हृदय को चीरकर देखो; मैं एक सामान्य नारी ही हूं, मैं अपने मन के भीतर से उस नई-ब्याही बालिका के सिवा और कुछ नहीं हूं। मैं विश्वास करना चाहती हूं, निर्भर करना चाहती हूं, पूजा करना चाहती हूं। स्वयं को अपमानित करके, मुझे दु:सह दुख देकर, तुम मुझे अपने से बड़ा मत बनाओ। सभी विषयों में मुझे अपने पैरों में स्थान दो।"

मैंने क्या-क्या कहा था, भला वह सब क्या मुझे याद है? क्रुद्ध समुद्र अपना गर्जन क्या स्वयं सुन सकता है?—केवल याद है, कहा था, 'यदि मैं सती होऊं और भगवान साक्षी रहें, तो तुम कभी अपनी धर्मशपथ का उल्लंघन नहीं कर सकोगे। उस महापाप से पहले या तो मैं विधवा हो जाऊंगी या फिर हेमांगिनी जिंदा नहीं रहेगी।' और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थी।

जब मेरी मूर्च्छा टूटी तो रात्रि के अंतिम पहर के पक्षियों ने अभी चहचहाना आरंभ नहीं किया था और पति जा चुके थे।

मैं मंदिर के द्वार बंद कर पूजा में बैठी। दिन भर मैं मंदिर से बाहर न निकली। शाम को ऐसी भयानक आंधी आई कि मकान कांपने लगा। आज मैंने नहीं कहा कि हे ईश्वर मेरे पति की रक्षा करो। मैं एकाग्रचित्त हो केवल यही

कहती रही; 'भगवान मेरे भाग्य में जो लिखा है, वह हो, पर मेरे पति को यह महापाप करने से रोको।'

सारी रात बीत गई। उसके दूसरे दिन भी मैं पूजा के आसन से नहीं उठी। मैं पत्थर की मूर्ति के सामने मूर्ति बनकर बैठी रही। सांझ के समय बाहर से दरवाजे पर धक्के पड़ने लगे।

दरवाजा तोड़कर लोग जब अंदर आए तो मैं बेहोश पड़ी हुई थी। बेहोशी टूटते ही एक स्वर सुना 'दीदी', देखा तो मैं हेमांगिनी की गोद में लेटी हुई हूं। सिर हिलाते ही उसकी रेशमी साड़ी के सरसराने की आवाज हुई।

हे भगवान, तुमने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी! मेरे पति का पतन हो गया। मैंने मन ही मन में सोचा।

हेमांगिनी सिर नीचा करके धीरे-धीरे बोली, "दीदी, तुम्हारा आशीर्वाद लेने आई हूं।"

पहले तो मैं एक क्षण के लिए पत्थर बन गई, पर दूसरे ही क्षण उठ बैठी, बोली, "जरूर आशीर्वाद करूंगी बहन, इसमें तुम्हारा क्या दोष है?"

हेमांगिनी अपनी ऊंची, मधुर आवाज से हंस पड़ी। बोली, "दोष? तुम्हारे विवाह करने पर तो कोई दोष नहीं हुआ, मेरे विवाह करने पर कैसा दोष?"

हेमांगिनी को गले लगाकर मैं भी हंसी। मन-ही-मन कहा, 'क्या संसार में मेरी प्रार्थना ही अंतिम प्रार्थना है? क्या ईश्वर की इच्छा ही अंतिम नहीं है? जो आघात आया है, उसे अपने सिर पर ले लूंगी, पर हृदय के अंदर जहां मेरा धर्म, मेरा विश्वास है, वहां नहीं आने दूंगी। मैं जैसी थी, वैसी ही रहूंगी।'

हेमांगिनी ने मेरे पैरों पर गिरकर, पैरों की धूल माथे पर लगाई। मैंने कहा, "तुम अखंड सौभाग्यवती बनो, सदा सुखी रहो।"

हेमांगिनी बोली, "केवल आशीर्वाद दे देने से तुम्हारा काम पूरा नहीं होगा; अपने सती-हाथों से मेरी और मेरे पति की अगवानी करनी होगी। तुम उनसे शरमाओगी तो काम नहीं चलेगा। यदि अनुमति दो तो मैं उन्हें अंदर ले आऊं।"

"ठीक है, ले आओ।"

कुछ देर बाद कमरे के अंदर कदमों की आहट उभरी और स्नेह भरा प्रश्न सुनाई दिया, "तू ठीक है न कुमू?"

मैं झट पलंग से उतरी और पांव छूकर बोली, "बड़े भैया!"

हेमांगिनी बोली, "कैसे बड़े भैया? कान मरोड़ दो, ये तुम्हारे छोटे बहनोई हैं।"

तब मैं सारी बातें समझ गई। मैं जानती थी कि भैया ने प्रतिज्ञा की थी कि वे शादी नहीं करेंगे। मां नहीं है, उन्हें मनाकर शादी करवाने वाला कोई नहीं था। अब मैंने ही उनकी शादी करवाई। मेरी आंखों से लगातार आंसू गिरने लगे। मैं किसी तरह उन्हें रोक नहीं पा रही थी। भैया धीरे-धीरे मेरे बालों पर हाथ फेरने लगे। हेमांगिनी मेरे गले लगकर बस हंसती रही।

रात को नींद नहीं आ रही थी। मैं बड़ी बेचैनी से पति के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं समझ नहीं पा रही थी कि लज्जा और निराशा को वे कैसे अपने में समेट पाएंगे। काफी रात गए बहुत धीरे से दरवाजा खुला। मैं चौंककर उठ बैठी। पति के पैरों की आहट थी। सीने में मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगा।

वे आकर पलंग पर बैठे और मेरा हाथ पकड़कर बोले, ''तुम्हारे भैया ने मुझे बचा लिया! मैं क्षण भर के मोह में फंसकर मरने जा रहा था! उस दिन जब मैं नाव पर सवार हुआ था, तो मेरे सीने को किस पत्थर ने दबा रखा था—वह ईश्वर ही जानते हैं। जब नदी के बीच तूफान में फंस गया था, तब जान का डर भी हो रहा था, साथ ही सोच रहा था, अगर डूब जाऊं तो मेरा उद्धार हो जाए। मथुरागंज पहुंचकर सुना, पहले दिन ही तुम्हारे भैया के साथ हेमांगिनी की शादी हो चुकी है। किस लज्जा और आनंद से मैं नाव में लौटा था, बता नहीं सकता। इन कई दिनों में मैं निश्चित रूप से समझ गया हूं, तुम्हें छोड़कर मेरा कोई सुख नहीं है। तुम ही मेरी देवी हो।''

मैंने हंसकर कहा, ''नहीं, मुझे देवी नहीं बनना है। मैं तुम्हारे घर की गृहिणी हूं। मैं बस एक सामान्य स्त्री मात्र हूं।''

''मेरा भी एक अनुरोध तुम्हें मानना पड़ेगा। फिर कभी देवता कहकर मुझे लज्जित नहीं करोगी।''

दूसरे दिन शंखध्वनि और मांगलिक ध्वनियों से पूरा मोहल्ला गूंज उठा। हेमांगिनी मेरे पति के साथ उठते-बैठते, खाते-पीते, दिन-रात कितनी ही तरह से मजाक करने लगी। अत्याचार की कोई सीमा न रही। पर वे कहां गए थे, क्या घटना घटित हुई थी, किसी ने उसका लेशमात्र भी जिक्र नहीं किया।

❑❑

37

पोस्टमास्टर

पोस्टमास्टर की पहली पोस्टिंग उलापुर गांव में हुई थी। उलापुर बड़ा ही छोटा सा गांव था। पोस्टमास्टर कलकत्ता का रहने वाला था। गांव के किनारे पर खपरैल की छत वाले एक छोटे से अंधेरे से कमरे में उसका दफ्तर था। वैसे ही एक अलग कमरे में मुंशी व अन्य कर्मचारी बैठते थे। उस जगह के सामने ही एक छोटा सा तालाब था और उसके बाद जंगल या खेत। आस-पास ऊंचे-ऊंचे वृक्ष खड़े थे। ऐसे में भला कलकत्ता से आए उस पोस्टमास्टर का मन भला क्या लगना था। उसकी हालत तो नदी से निकालकर किनारे पर डाली गई मछली जैसी हो रही थी। कैसी जगह है। फिर, उसका मिजाज भी कुछ अलग ही था। लोगों से अधिक मिलना-जुलना उसे पसंद नहीं था।

कार्यालय में काम भी कुछ अधिक नहीं था। छोटा सा गांव, कम काम। आखिर खाली समय कैसे गुजरे? इसका उपाय उसने यह किया कि खाली समय में कविताएं लिखने की चेष्टा करता या फिर कल्पना करता कि यहां के वृक्षादि रेतकर यहां तक पक्की इमारत बनी होती जिसमें कार्यालय जैसी सभी सुख-सुविधाएं होतीं। वह अपनी कल्पना का पोस्ट ऑफिस बनाता रहता।

उसकी तनख्वाह बहुत कम थी। स्वयं ही खाना बनाना पड़ता था। यूं घर के ऊपरी काम-काज के लिए गांव की ही एक अनाथ बालिका को रखा हुआ था। उसे थोड़ा-बहुत खर्चा खाना मिल जाता था। उसका नाम रतन था। उम्र यही कोई बारह-तेरह बरस की होगी।

शाम के वक्त जब सूरज ढलता और गांव के घरों से धुआं उठने लगता, वृक्ष दैत्य सरीखे दिखने लगते, इधर-उधर की पहाड़ियों में छिपे झींगुर गुनगुनाने लगते, तब वह भी कमरे के कोने की दीवार में बने आले में मरियल सी लौ वाला दीया जला देता।

फिर उस बालिका को पुकारता, "रतन !"

रतन बुलावे की प्रतीक्षा में दरवाजे पर ही बैठी रहती थी। वहीं से पूछती, "बाबूजी! बुला रहे हैं क्या?"

"क्या कर रही है?"

"सोचती हूं, अंगीठी जला दूं। आपने रसोई... !"

पोस्टमास्टर उसकी बात पूरी नहीं होने देते, बीच में काटकर हुक्म सुना देते, "रसोई का काम बाद में ... पहले हुक्का ले आ।"

वह मुंह बिचकाकर चली जाती और कुछ देर बाद ही हुक्के की चिलम को फूंक मारती ले आती। उस दिन हुक्का लेकर उसने हठात् ही पूछ लिया— "अच्छा रतन! तुझे मां की याद आती है?"

"साहब, वह तो बहुत लंबी कहानी है—कुछ याद है, कुछ याद नहीं है। मां से बाप मुझे ज्यादा प्यार करता था। बाप की कुछ-कुछ याद है। रोजाना काफी मेहनत करने के बाद शाम को वह घर लौट आता था", इतनी बातें कहते-कहते वह पोस्टमास्टर के पैर के पास फर्श पर बैठ गई। फिर उसे याद आने लगा, उसका एक छोटा भाई था, बरसात के दिनों में दोनों पेड़ के एक टूटी डाल को 'छिप' बनाकर मछली पकड़ने का खेल खेलते थे। बातें तो बहुत हैं, मगर यही घटना न जाने क्यों मुझे बार-बार परेशान करती है।

इस प्रकार की बातें जब होतीं तो बातों में ही रात हो जाती। जब रात ढल जाती तो पोस्टमास्टर की खाना बनाने की इच्छा नहीं होती थी। सुबह की बनी सब्जी रहती थी, रतन जल्दी अंगीठी जलाकर दो-चार रोटियां पका लाती और उसी में दोनों के रात का खाना हो जाता था।

किसी-किसी दिन शाम को चबूतरे के कोने में बनी चौकी पर बैठ पोस्टमास्टर भी अपने घर की बातें सुनाते थे—छोटा भाई, मां व बहन की बातें। यहां अकेले बैठे जिनकी सोच में मन परेशान होता था, उनकी बातें। यह बातें प्रायः मन को पीड़ा ही देती थीं। वह वे बातें एक अनपढ़ छोटी-सी बालिका से कहा करते थे। कोई अस्वाभाविक नहीं अनुभव होता।

आखिर ऐसा हुआ कि बातचीत के समय बालिका उनके घर के लोगों को मां, जीजी, भइया कहकर इस तरह पुकारती थी मानो वह उन्हें शुरू से जानती हो। यहां तक कि उसके छोटे-से हृदय पर भी उनकी काल्पनिक तस्वीरें अंकित हो गई थीं।

एक दिन पोस्टमास्टर के पास कोई काम नहीं था। बारिश होने के बाद मौसम बेहद सुहावना हो गया था। पोस्टमास्टर उस सुहावने दृश्य को देख रहे थे

और सोच रहे थे कि काश! इस वक्त कोई अपना विशेष जन पास में रहता होता। पोस्टमास्टर ने लंबी सांस लेकर पुकारा, "अरी रतन!"

उस वक्त रतन अमरूद के पेड़ के नीचे पैर फैलाकर अमरूद खाने में व्यस्त थी। मालिक की आवाज सुनते ही दौड़कर आई और हांफते हुए बोली, "बाबू जी, बुला रहे हो?"

"तुझे मैं थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना सिखाऊंगा।" कहकर उसे तमाम दोपहर कच्चा कायदा पढ़ना सिखाते रहे। कुछ ही दिनों में रतन उसे पढ़ने में निपुण हो गई।

सावन के महीने में बरसात का क्रम जारी रहा। नदी-नाले, पोखर, नहर, लबालब भर गए। रात-दिन मेढकों की टर्र-टर्र और पानी गिरने की आवाजें सुनाई देतीं। कीचड़-पानी भरे गांव के रास्तों पर से आना-जाना लगभग बंद हो गया था। गांव में हाट-बाजार जाना पड़ता था।

एक दिन सवेरे से ही घटाएं छाई हुई थीं। रतन काफी देर से द्वार पर बैठी बुलावे की प्रतीक्षा कर रही थी, परंतु रोज की तरह बुलावा न पाकर वह कॉपी-किताब लिए धीरे-धीरे कमरे में जा घुसी। देखा—पोस्टमास्टर चुपचाप चारपाई पर लेटे हुए हैं, शायद आराम कर रहे हैं। यही सोचकर बिना कोई आवाज किए कमरे में से बाहर जाने को हुई तो अचानक पोस्टमास्टर की आवाज सुनाई दी, "रतन!"

वह फौरन पलटकर उनके नजदीक पहुंची और तनिक चिंतित स्वर में पूछा, "क्यों भाईसाहब सो गए थे क्या?"

पोस्टमास्टर ने दबी आवाज में कहा, "ऐसा मालूम होता है कि तबीयत कुछ ठीक नहीं है, जरा मेरे बदन को हाथ से छूकर देख तो।"

ऐसे नीरस वातावरण में उसका मन हो रहा था कि कोई उसकी सेवा-टहल करे। कोई प्यार से, स्नेह और अपनेपन से उसके माथे पर हाथ रखे। उसने यह सोचकर एक गहरी सांस ली कि काश! ऐसे कठिन समय में उसकी मां या बहन उसके पास होतीं। अब वह मासूम बालिका रतन बालिका न रही। उसमें मां के स्वाभाविक गुण उत्पन्न हो गए। वह फौरन गांव में जाकर हकीम को बुला लाई। फिर सारी रात सेवा में लगी रही। नियत समय पर दवा देती। सारी रात उसके सिरहाने बैठी रही और खुद ही पथ्य की तैयारी की। रात भर में सैकड़ों बार पूछती रही, "भाई साहब, कुछ अच्छा महसूस कर रहे हैं न?" पोस्टमास्टर

को बिस्तर से उठकर बैठने में काफी दिन लग गए। जब बिस्तर से उठे तो शरीर बिल्कुल बेजान सा था। मगर इस बीमारी ने उन्हें यह फैसला लेने पर विवश कर दिया कि किसी प्रकार यहां से तबादला करवाना ही होगा।

और उसी दिन अपनी बीमारी का उल्लेख करते हुए पोस्टमास्टर ने कलकत्ते में अफसर के पास तबादले की प्रार्थना की दरखास्त दी।

रोगी की सेवा पूरी करके रतन फिर कमरे के बाहर अपनी जगह पर रहने लगी। परंतु पहले की तरह अब उसके पास बुलावा नहीं आता था। बीच-बीच में वह झांकते हुए भीतर को देख लेती थी। तब पोस्टमास्टर बहुत ही उदासीन होकर कभी चारपाई पर लेटे दिखाई देते, कभी बैठे।

वह तब अपनी दरखास्त के उत्तर की अधीर प्रतीक्षा कर रहे थे।

उधर, दरवाजे के पास बैठी रतन ने हजारों बार अपना पुराना पाठ पढ़ा। वह यही सोचती रहती कि जिस दिन भाई साहब पाठ की परीक्षा लेंगे उस दिन सबक सुनाने में कहीं गड़बड़ी न हो जाए।

आखिर हफ्ते भर के बाद एक दिन शाम को उसे बुलाया गया। वह बेताब सी होकर कमरे के भीतर दाखिल हुई और पूछा, "भाई साहब, मुझे बुला रहे थे क्या?"

पोस्टमास्टर ने कहा, "रतन, मैं कल ही यहां से जा रहा हूं?"

"कहां जा रहे हो?" हैरानी से उसने पूछा।

"घर जा रहा हूं।" वही सपाट स्वर।

"कब लौटोगे?" उत्सुकता से पूछा रतन ने।

"अब कभी नहीं लौटूंगा।"

रतन ने और कुछ नहीं पूछा। पूछने का साहस ही नहीं रहा था। पोस्टमास्टर खुद ही बोले, "मैंने तबादले के लिए दरखास्त भेजी थी, दरखास्त मंजूर हो गयी। फिलहाल तो घर जाऊंगा, उसके बाद ही किसी दूसरी जगह जाना होगा।"

इसके बाद एकदम से खामोशी छा गई।

काफी देर तक कोई कुछ नहीं बोला।

कमरे की जीर्ण छत के एक छेद में से पानी की बूंदें मिट्टी के एक पात्र में गिर रही थीं जिस कारण टप-टप की आवाज उत्पन्न हो रही थी।

थोड़ी देर बाद रतन उठकर रोटी पकाने रसोईघर की ओर चल पड़ी। गुजरे दिनों की तरह रोटी जल्दी-जल्दी नहीं पकी। रतन का आज रोटी पकाने का मन ही नहीं हो रहा था। शायद बहुत सी भावनाएं उसे परेशान कर रही थीं।

पोस्टमास्टर का खाना समाप्त होने पर बालिका हठात् उनसे पूछ बैठी, "भाई साहब, क्या मुझे अपने साथ अपने घर ले चलोगे?"

पोस्टमास्टर मुस्कराकर बोले, "पगली कहीं की, ये कैसे हो सकता है?"

परन्तु ऐसा किस कारण नहीं हो सकता, उन्हें बालिका को यह समझाना नहीं सूझा।

सारी रात नींद व जागने के बीच पोस्टमास्टर का मुस्कराते हुए 'पगली कहीं की, ये कैसे हो सकता है' कहना रतन के कानों में गूंजता रहा।

सवेरे उठकर पोस्टमास्टर ने देखा कि उनके नहाने का पानी रखा है। कलकत्ते की आदत के कारण वह ताजे पानी से नहाया करते थे। बालिका ने नहीं पूछा था कि कब वह रवाना होंगे। शायद सुबह रवाना हों, यही सोचकर रतन नदी से पानी लाई थी।

नहाने के बाद उसने रतन को अपने कक्ष में बुलाया था। रतन चुपके से कमरे के भीतर आई और हुक्म सुनने के लिए सिर झुकाकर एक ओर खड़ी हो गई। पोस्टमास्टर ने कहा, "मेरी जगह जो पोस्टमास्टर आ रहे हैं, मैं उनसे तेरे बारे में बोलकर जाऊंगा, देखना वह तुझे मेरी तरह प्यार करेंगे। मेरे यहां से चले जाने की बात तुझे जरा भी नहीं सोचनी चाहिए।"

ये बातें निहायत ही प्यार से भरी थीं। परंतु नारी के मन को कौन समझता। रतन ने बहुत से दिन मालिक की फटकारों को बरदाश्त किया था लेकिन इन सहज बातों को उससे सहा नहीं गया। वह गुस्से से बिफरकर रोती हुई बोली, "नहीं, नहीं, तुम्हें किसी से कुछ नहीं कहना पड़ेगा, मैं भी यहां रहना नहीं चाहती।"

पोस्टमास्टर ने रतन का ऐसा बर्ताव कभी नहीं देखा था, इसलिए उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

नए पोस्टमास्टर आए। पोस्टमास्टर उन्हें सारी जिम्मेदारियां समझा-बुझाकर जाने को हुए। जाते वक्त रतन को बुलाकर कहा, "रतन, तुझे मैं कभी कुछ न दे सका, आज जाते वक्त तुझे कुछ देकर जाऊंगा, इससे तेरे कुछ दिन तो गुजर जाएंगे।" पोस्टमास्टर ने रास्ते के लिए कुछ पैसे रखकर तनख्वाह का बाकी हिस्सा जेब से निकाला।

तब रतन जमीन पर बैठे पोस्टमास्टर के पैर पकड़कर बोली, "भइया जी, तुम्हारे गोड़े लागी, तुम्हारे गोड़ लागी। भइया जी मुझे कुछ न देना, तुम्हारे पैर पकड़ती हूं।" इतना कहकर वह उठी और रोती हुई वहां से भाग गई।

पुराने पोस्टमास्टर लंबी सांस लेकर हाथ में कार्पेट की थैली पकड़कर कंधे पर छाता लेकर, कुली के माथे पर नीली व सफेद कतारों से चित्रित टीन की पेटी चढ़ाकर धीरे-धीरे नाव घाट की ओर चल पड़े।

जब वह नाव पर चढ़े और नाव चलने लगी तो वर्षा-प्लावित नदी पृथ्वी के उद्वेलित आंसुओं की भांति चारों तरफ से छलकने लगी थी। तब पोस्ट मास्टर दिल में एक भारी वेदना का अनुभव करने लगे। उन्हें लगा मानो एक सामान्य ग्रामीण बालिका के चेहरे ने सारे विश्व में उदासी की छाया फैला दी हो। पोस्टमास्टर को एक बार बड़ी इच्छा हुई, लौट जाएं और संसार की गोद से अलग उस अनामिनी को साथ ले आएं। परंतु उस वक्त हवा का तेज रुख होने के कारण बरसाती नदी का बहाव और तेज हो गया। गांव को पार कर श्मशान घाट नजर आ रहा था। इधर, नदी की धारा में समाते हुए पथिक के उदास मन में यह तत्व झलक रहा था—जीवन में ऐसे कितने विरह हैं, कितने मरण है, लौटकर क्या फायदा! दुनिया में कौन किसका होता है?

परंतु रतन के मन में किसी ज्ञान का उदय नहीं हुआ। वह आंसू बहाती डाकखाने के इर्द-गिर्द घूमा करती, उसके मन में क्षीण-सी आशा थी कि शायद भाई साहब लौट आएं। इसी आशा के कारण वह वहां से नहीं जा पा रही थी।

हाय! मूर्ख मानव-मन! भ्रांति किसी तरह नहीं मिटती, युक्तिशास्त्र का विधान काफी देर से समझ में आता है। प्रत्यक्ष सत्य को नकारकर झूठी आशा की दो बांहों में मन के भाव समाए रखना चाहती है, अंत में किसी दिन समस्त नब्जों को काटकर खून चूसकर भाग जाती है! तब होश आता है और दूसरी भ्रांति के बंधनों में फंस जाने के लिए उतारू हो उठती है।

❑❑

38

काबुली वाला

मेरी छोटी बेटी की उम्र पांच वर्ष है। वह जब एक वर्ष की थी तभी उसने बोलना सीख लिया था और तब से आज तक सोते समय के अतिरिक्त मैंने उसे खामोश नहीं देखा था। कुछ न कुछ और चकर-चकर बोलते जाना उसकी विशेषता है। जब कभी उसकी मां उसे डांट देती तो वह खामोश हो जाती। तब हम सबको बड़ा ही अप्राकृतिक सा लगता। वैसा वातावरण मुझसे अधिक देर तक सहा नहीं जाता, इसलिए मेरे साथ उसका वार्तालाप बड़े उत्साह से जारी रहता है।

उस दिन सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था कि मिनी ने वहां आकर बताना शुरू कर दिया, "रामदयाल दरबान कल 'काक' को कौआ बोलता था। वह कुछ जानता नहीं, है न बाबूजी?"

अभी मैं उसे विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में कुछ बताता कि उससे पहले ही उसने दूसरा विषय छेड़ दिया, "बाबूजी! भोला कहता था, आकाश में से हाथी सूंड़ से पानी बरसाता है, इसी से बरसा होती है। बाबूजी! भोला झूठ कहता है न? खाली बक-बक किया करता है, दिन-रात अगड़म-बगड़म बकता रहता है।"

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी बाट न जोह धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, 'बाबूजी, मां तुम्हारी कौन लगती है?'

मन-ही-मन में मैंने कहा, 'साली' और फिर बोला, "मिनी अब तू जाकर भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है।"

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटनों और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन'

कहना आरम्भ कर दिया, जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह कंचनमाला को लेकर रात के गहरे अन्धकार में कारागार के ऊंचे झरोखे से नीचे कलकल करती बहती नदी में कूद रहे थे।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गयी और जोर-जोर से चिल्लाने लगी, "काबली! ए काबुली वाला।"

मैला ढीला कुर्ता पहने, सिर पर साफा बांधे, कन्धे पर सूखे फलों की मैली सी झोली लटकाए, हाथ में अंगूरों की कुछ पेटियां लिए एक लम्बा-तगड़ा-सा काबुली वाला (काबुल देश का निवासी) धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदित हुए होंगे, वह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया।

मैंने सोचा, अभी झोली कन्धे पर डाले सिर पर एक मुसीबत आ खड़ी होगी और मेरा सत्रहवां अध्याय आज अधूरा रह जाएगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली वाला पलटकर घर की तरफ आने लगा। त्यों ही मिनी भय खाकर भीतर भाग गयी। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहां छिप गयी। उसके छोटे-से मन में शायद यह भ्रम जड़ें जमाए बैठा था कि उसकी उस मैली-कुचैली झोली में शायद दो-चार उसके जैसी बच्चियां अवश्य ही कैद होंगी।

इधर, काबुली वाले ने आकर मुस्कराते हुए मुझसे हाथ उठाकर दुआ-सलाम की और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, वास्तव में प्रतापसिंह और कंचनमाला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा। मैंने कुछ सौदा खरीद लिया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। अब्दुर रहमान रूसी, अंग्रेज आदि को लेकर अंग्रेजी, सीमान्त राज्यों की रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में उठकर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा, 'बाबूजी, आपकी बिटिया कहां गयी?'

मैंने मिनी को आवाज लगाकर बुला लिया। मेरा अभिप्राय यही था कि उसके मन से काबुली वाले को लेकर उत्पन्न व्यर्थ के भय को दूर कर दूं। काबुली वाले के मुख और झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई वह मेरे करीब आ खड़ी हुई। काबुली वाले ने झोली में से किशमिश और काजू निकालकर उसे देनी चाही, मगर उसने लेने का कोई प्रयास नहीं किया बल्कि सहमकर मेरे घुटनों से और अधिक लिपट गई। यह था काबुली वाले से मिनी का परिचय।

फिर कुछ दिन गुजर गए। एक दिन सवेरे मैं किसी आवश्यक कार्य से बाहर जा रहा था देखा, मिनी दरवाजे के पास बेंच पर बैठी काबुली वाले से हंस-हंसकर बातें कर रही थी और काबुली वाला उसके पैरों के समीप बैठा मुस्कराता हुआ उसकी बातें ध्यान से सुन रहा था। बीच-बीच में अपनी हिन्दी-फारसी की मिली-जुली भाषा में अपनी राय भी व्यक्त करता जाता था। मिनी को अपने पांच वर्ष के जीवन में, मेरे अतिरिक्त ऐसा धैर्य वाला श्रोता आज ही मिला था। वरना तो हर कोई कुछ देर उसकी चख-चख सुनने के बाद उसे डांट देता था। मैंने देखा कि उसके फ्रॉक की झोली बादाम-किशमिश से भरी हुई है।

मैंने काबुली वाले से कहा, "इसे यह सब क्यों दे दिया? अब मत देना।" फिर मैंने जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दी जिसे उसने सहज भाव से लेकर अपनी झोली में डाल लिया।

कुछ देर बाद घर लौटकर आया तो देखा कि उस अठन्नी को लेकर घर में बवाल मचा है।

मिनी की मां डांट-डपटकर मिनी से पूछ रही थी, "बता, कहां से लाई है यह अठन्नी?"

मिनी ने कहा, "काबुली वाले ने दी है।"

"काबुली वाले ने क्यों दी है और तूने अठन्नी ली कैसे, बता?"

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा, "मैंने मांगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।"

मैं सारा माजरा समझ गया। जो अठन्नी मैंने काबुली वाले को दी थी, वही अठन्नी उसने मिनी को दे दी थी। अतः मैंने जाकर मिनी की मां को समझाकर उसे उस संकट से उबारा। फिर एकान्त में ले जाकर मैंने उससे पूछताछ की तो उसने बताया कि काबुली वाले से उसकी भेंट रोज ही होती है और वह रोज उसे पिस्ते-बादाम देता है और काफी देर तक बड़े प्यार से उसकी चकल्लस भी सुनता है।

"कैसी बातें करता है काबुली वाला?" जब मैंने मिनी से पूछा तो उसने जो बताया उसके पीछे मित्रता और ठिठोली की भावना थी। मसलन मिनी काबुली वाले, जिसका नाम रहमत था, को देखकर हंसती हुई पूछती, 'काबुली वाला! ओ काबुली वाला!! तुम्हारी झोली में क्या है?'

काबुली वाला मुस्कराता हुआ उत्तर देता, 'हांति!'

इस प्रकार का हल्का-फुल्का परिहास दोनों में चलता और दोनों ही इससे आनन्दित होते।

मुझे सुहानी सुबह में एक उम्रदराज व्यक्ति और एक अबोध बालिका का यह हास-परिहास बड़ा ही भला लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता, 'तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा!'

हमारे देश की लड़कियां जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण नन्ही-सी बच्ची को ससुराल के विषय में अधिक कुछ नहीं बता पाए थे। अतः वह काबुली वाले की बात समझ ही नहीं पाती थी। उसे 'ससुराल' का अर्थ नहीं मालूम था, किन्तु मिनी और उत्तर न दे, यह उसके स्वभाव के विरुद्ध था। अतः उत्तर के बजाय वह भी प्रश्न दाग देती, 'क्या तुम ससुराल जाओगे?'

काबुली वाला मुट्ठी बांधकर हाथ ऊपर उठाता, 'मैं ससुर को मारूंगा।'

यह सुनकर मिनी ससुर नामक किसी अनजान जीव की दुर्दशा की कल्पना करके ठठाकर हंस पड़ती।

देखते-देखते सर्दियों की सुहावनी ऋतु आ गयी।

प्राचीनकाल में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिए निकला करते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कहीं नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन ब्रह्मांड में घूमा करता है। यानी मैं अपने घर में ही चिरप्रवासी हूं, बाहरी ब्रह्मांड के लिए मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का जिक्र आते ही मेरा मन वहीं की उड़ान भरने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतन्त्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

यों तो मेरा स्वभाव वृक्षों जैसा है जो अपना स्थान छोड़कर कहीं नहीं जाते। कहीं जाने की चर्चा होने पर ही मेरा दिल घबराने लगता है। मगर विदेशियों के भ्रमण के किस्सों से ही मैं घूमने की कसर पूरी कर लेता हूं। आजकल मेरी सुबह काबुली वाले के साथ गप-शप में गुजरती, जो मुझे अपने कर्मफलों के किस्से सुनाया करता था।

दूर-दूर तक दिखाई देते पर्वत और उनके बीच के तंग रास्तों से गुजरते ऊंटों के काफिले। पठानी पगड़ियां बांधे व्यापारी, कुछ ऊंटों पर बैठे, कुछ लगाम पकड़कर उनके साथ चलते। किसी के हाथ में बरछी, किसी के हाथ में बन्दूक।

काबुली वाला टूटी-फूटी बंगला भाषा में बताता रहता और उन किस्सों के काल्पनिक चित्र मेरे मानस पर अंकित होते रहते।

मिनी की मां काफी वहमी स्वभाव की महिला है। गली में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं कि उसे लगता है कि संसार भर के सारे मस्त शराबी हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं। उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोरों, डकैतों, शराबियों, सांपों, बाघों, रोगों, तिलचट्टों और गोरों से भरी पड़ी है।

इतने दिन हुए इस दुनिया में रहते हुए भी, पर उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ। काबुली वाले की ओर से भी मिनी की मां पूरी तरह निश्चिन्त नहीं थी। मुझे बार-बार चेताती थी कि मैं काबुली वाले पर नजर रखूं। मैं उसकी बात को मजाक में उड़ाने की चेष्टा करता तो वह चिढ़ जाती और मुझ पर प्रश्नों की झड़ी लगा देती—क्या कभी किसी का बेटा नहीं चुराया गया? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते? क्या एक लम्बे-तगड़े काबुली वाले के लिए एक छोटे-से बच्चे को उठा ले जाना कोई मुश्किल है? इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बातें बिल्कुल भी असम्भव नहीं, पर अचानक ऐसा हो, यह भी सम्भव नहीं। दूसरे पर भरोसा करना चाहिए। मगर वह इस बात को नहीं समझती, इसीलिए उसके मन का भय नहीं निकल पाता। मगर मैं इस शक-संदेह के कारण काबुली वाले को बिना किसी दोष के अपने घर आने से मना न कर सका।

हर वर्ष वह माघ मास के अन्त तक अपने देश लौट जाता है। इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में तल्लीन रहता है। उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है, लेकिन फिर भी मिनी से उसकी भेंट एक बार अवश्य हो जाती है।

देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य किसी षड्यन्त्र का जाल बुना जा रहा हो। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन सन्ध्या को हाजिर है। अंधेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढाले कुर्ता-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े उस आदमी को देखकर सचमुच ही मन में भय-सा पैदा हो जाता है। लेकिन, जब देखता हूं कि मिनी 'ओ काबुली वाला' कहती हुई हंसती-हंसती दौड़ी जाती है और दो असम आयु मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा भय दूर हो जाता है और हृदय खुशी से भरकर नाच उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई किताब के प्रूफ संशोधित कर रहा था। पिछले दो-तीन दिनों से सर्दी का काफी जोर है। अच्छे-अच्छों की 'चीं' बुलवा दी है इस जाड़े ने। जिधर देखो, उधर जाड़े की ही चर्चा

है। ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्माहट मुझे अच्छी प्रतीत हो रही है।

इस समय लगभग आठ बजे का समय होगा। ठीक इस समय गली में जोर का शोर सुनाई दिया।

उत्सुकतावश उठकर खिड़की से बाहर देखा तो क्या देखता हूं कि अपने उस काबुली वाले को दो सिपाही बांधे लिए जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशायी बच्चों का झुण्ड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुर्ते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से सना छुरा।

मैंने द्वार से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया और पूछा, "क्या बात है?" पता चला कि हमारे एक पड़ोसी ने काबुली वाले से कुछ रुपया उधार लेकर रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ रुपए तो उसने चुका दिए, मगर कुछ उसकी ओर बाकी थे, जिन्हें चुकाने से उसने साफ इन्कार कर दिया। बस इसी पर दोनों में तू-तू, मैं-मैं हुई और बात बढ़ गयी। काबुली वाले को इतना गुस्सा आया कि उसने छुरा निकालकर उसे घोंप दिया।

काबुली वाला उर्फ रहमत उस झूठे, बेईमान आदमी को भिन्न-भिन्न प्रकार के अपशब्द कह रहा था।

इतने में 'काबुली वाला! ओ काबुली वाला!!' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आयी।

रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक से चमक उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी। अतः झोली के बारे में दोनों मित्रों की नोक-झोंक न हो सकी। मिनी ने आते ही उससे पूछा, "तुम ससुराल जाओगे।"

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा, "हां, वहीं तो जा रहा हूं।"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह जवाब मिनी को अच्छा नहीं लगेगा, अतः झट से हाथ उठाकर मुक्का बनाते हुए बोला, "ससुर को मारता, पर क्या करूं, हाथ बंधे हुए हैं।"

छुरेबाजी के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला।

रहमत का ध्यान धीरे-धीरे मन से बिल्कुल उतर गया। हम लोग अपने घर में सदा से अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम-धन्धों में उलझे हुए दिन बिता

रहे थे। इस दरम्यान हमारे मन में एक बार भी यह बात नहीं उठी कि स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला एक इन्सान जेल की दीवारों के भीतर कैसे वर्ष-पर-वर्ष काट रहा होगा?

और वाचाल मिनी का आचरण तो और भी हैरतअंगेज था। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भुला दिया। बढ़ती उम्र के साथ-साथ उसके मित्र में परिवर्तन हुए, फिर मित्रों का स्थान सखियों ने ले लिया। अब वह पिता के कक्ष का भी रुख नहीं करती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया है। कितने ही वर्ष बीत गए! वर्षों बाद आज फिर एक शरद् ऋतु आयी है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गयी। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जाएगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी मां-बाप के घर में अंधेरा करके ससुराल चली जाएगी।

सवेरा बहुत ही सुहावना एवं मधुर था। वर्षों के बाद शरद् ऋतु की यह नई धवल धूप मन को बड़ी सुहा रही है। कलकत्ता की तंग गलियों से परस्पर सटे हुए पुराने ईंट गुंथे, मैले घरों पर भी इस धूप की आभा ने एक प्रकार का अद्‌भुत लावण्य बिखेर दिया है।

हमारे घर में सूर्योदय से पूर्व ही शहनाई बज रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी विछोह की पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे संसार में फैला रही है।

आज मेरी मिनी का विवाह है।

सवेरे से घर में शोर सा मचा हुआ है। आने-जाने वालों का तांता लगा हुआ है। आंगन में बांसों का मण्डप बनाया जा रहा था। हरेक कमरे और बरामदे में झाड़-फानूस लटकाए जा रहे थे उनके ठोका-पीटी की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'अरे यह करो, वो क्यों नहीं किया, इधर आओ...अरे जरा इधर देखो... ।'

ऐसी आवाजें मुझे लगातार सुनाई दे रही थीं।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में काबुली वाला आया और अभिवादन करके एक तरफ खड़ा हो गया। पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न तो झोली थी और न पहले-जैसे लम्बे-लम्बे बाल और न चेहरे पर पहले जैसी चमक। अन्त में उसकी मुस्कान देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा, "क्यों रहमत, कब आए?"

"कल शाम ही जेल से छूटा हूं।" उसने धीरे से कहा।

मेरे कानों के पास बम-सा फूटा।

किसी खूनी को मैंने कभी आंखों से नहीं देखा था, उसे देखकर मेरा मन एकाएक तेजी से धड़कने लगा। मेरे मन में यही इच्छा जाग्रत हुई कि आज के इस शुभ दिन वह इन्सान यहां से फौरन ही चला जाए तो अच्छा हो।

उसने सोचा होगा कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची होगी। उसने सोचा हो कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुली वाला, ओ काबुली वाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आएगी। उन दोनों के पहले हास-परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी? यहां तक कि पहले की मित्रता याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज में थोड़ी-सी किशमिश और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से मांग-तांगकर लेता आया था? उसकी पहले की मैली-कुचैली झोली आज उसके पास न थी।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर में कुछ मेहमान आए हैं, सो आज मैं उनके साथ व्यस्त हूं। आज तुम जाओ, फिर कभी आना।"

मेरी बात सुनकर वह तुरन्त ही जाने को राजी हो गया। पर द्वार के पास जाकर कुछ ठिठका और बोला, "क्या, तनिक बच्ची को नहीं देख सकता?"

मैंने कहा, "आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी।"

मेरा उत्तर सुनकर उसका चेहरा बुझ सा गया। बेबसी भरी निगाहों से उसने एक बार मेरे चेहरे की ओर देखा। फिर बिना कुछ कहे अभिवादन करके दरवाजे के बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में एक हूक सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊं, यही सोचकर मैंने दरवाजे की तरफ देखा तो पाया वह स्वयं ही आ रहा है।

कक्ष में आकर वह बोला, "बाबूजी! ये अंगूर और कुछ किशमिश-बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसे दे दीजिएगा।"

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उसने मेरे हाथ को थामते हुए कहा, "आपकी बहुत दया है बाबू साहब, हमेशा याद करूंगा, पैसा रहने दीजिए।" तनिक रुककर फिर बोला, "बाबू साहब! आपकी जैसी मेरी भी मुल्क में एक बच्ची है। मैं उसी को याद करके आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता था। मैं यहां सौदा बेचने नहीं आता।"

इतना कहकर उसने ढीले-ढाले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला, फिर बड़े जतन से उसकी एक-एक तह खोलने लगा। चारों तह खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया।

मैंने देखा, कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे से पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तैलचित्र नहीं, हाथ में थोड़ी-सी स्याही लगाकर, कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है।

अपनी बेटी के इस स्मृति चिह्न को छाती से लगाकर, रहमत हर वर्ष कलकत्ता के गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है और तब वह स्याही-चित्र मानो उसकी बच्ची के हाथ का कोमल स्पर्श, उसके वक्षस्थल में अमृत उंड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आंखें भर आयीं और फिर मैं इस बात को बिल्कुल ही भूल गया कि वह एक मामूली मेवा बेचने वाला है और मैं एक उच्चवंश का रईस हूं।

मुझे ऐसा लगने लगा कि जो वह है, वही मैं हूं। वह भी एक पिता है और मैं भी।

मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया; हालांकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गयी, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और गहनों से लदी-फंदी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गयी।

उसे उस अवस्था में देखकर काबुली वाला सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में हंसते हुए बोला, "लल्ली! सास के घर जा रही है क्या?"

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अतः अब उससे पहले की तरह उत्तर देते न बना।

रहमत की बात सुनकर लज्जावश उसके कपोल सुर्ख हो उठे। उसने मुंह फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आयी, जब इस काबुली वाले से मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद एक गहरी सांस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक साफ हो गयी कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गयी होगी और उसके साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी।

जाहिर था कि वह उसे पहले-जैसी नहीं पाएगा। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने? भीतर फिर से शहनाई बजने लगी थी और रहमत यहां कलकत्ता में मेरे सामने बैठा जागती आंखों से अफगानिस्तान स्थित अपने घर-आंगन का नजारा सा देखता लग रहा था। कौन जाने आज उसके घर भी शहनाई बज रही हो।

मैंने एक बड़ा नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया और कहा, "रहमत, तुम अपने देश चले जाओ, अपनी बच्ची के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी को भी सुख होगा।"

रहमत को रुपए देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक विषय काट देने पड़े। मगर इन सबका मुझे लेशमात्र भी रंज न था। अंग्रेजी बाजा भी नहीं आया। रनिवास में औरतें बहुत बिगड़ने लगीं, जैसा सोचा था, वैसी बिजली-बत्ती नहीं करा सका। आज एक अपूर्व ज्योत्स्ना से हमारा शुभ समारोह उज्ज्वल हो उठा।

❑❑

39

अनाथ की दीदी

तारामती ने गांव की एक अभागिनी के अत्याचारी पति के क्रूर कर्मों का कच्चा चिट्ठा पेश करने के बाद संक्षेप में अपनी राय प्रकट करते हुए कहा, ''आग लगे ऐसे पति के मुंह में।''

यह सुनकर जयगोपाल बाबू की पत्नी शशिकला को बहुत बुरा लगा और उसके मन को ठेस भी बहुत पहुंची। उसने जबान से तो कुछ नहीं कहा, पर अन्दर-ही-अन्दर सोचने लगी कि पति वर्ग के मुंह में सिगरेट-सिगार की आग के सिवा और किसी तरह की आग लगाना या उसकी कल्पना करना कम-से-कम किसी औरत को तो कभी किसी अवस्था में भी शोभा नहीं देता?

शशिकला को गुमसुम बैठा देखकर कठोर हृदय तारामती का उत्साह दूना हो गया, वह बोली, ''ऐसे खसम से तो जन्म-जन्म की रांड भली।''

झट से वह वहां से उठकर चल दी। उसके जाते ही बैठक समाप्त हो गई।

शशिकला गम्भीर हो गयी। वह सोचने लगी, 'पति की ओर से किसी दोष की वह कल्पना भी नहीं कर सकती, जिससे उनके प्रति ऐसा कठोर भाव जागृत हो जाए।'

विचारते-विचारते उसके कोमल हृदय का सारा प्रतिफल अपने प्रवासी पति की ओर उच्छ्वसित होकर दौड़ने लगा। पर जहां उसके पति शयन करते थे, उस स्थान पर दोनों बांहें फैलाकर वह औंधी पड़ी रही और बारम्बार तकिए को छाती से लगाकर चूमने लगी, तकिए में पति के सिर के तेल की सुगन्ध को वह महसूस करने लगी। फिर उठी; द्वार बन्द किया और बक्से में से पति का एक पुराना चित्र और पत्र निकालकर बैठ गई।

उस दिन की उसकी खामोश दोपहर इसी प्रकार कमरे में एकान्त चिन्ता, पुरानी स्मृति और व्यथा के आंसू बहाने में बीत गई। शशिकला और जयगोपाल

बाबू का दाम्पत्य जीवन कोई नया हो, सो बात नहीं है। बचपन में शादी हुई थी और इस दौरान कई बाल-बच्चे भी हो चुके थे। दोनों ने बहुत दिनों तक एक साथ रहकर साधारण रूप में दिन काटे। किसी भी ओर से इन दोनों के अपरिमित स्नेह को देखने के लिए कभी कोई नहीं आया?

लगभग सोलह वर्ष की एक लम्बी अवधि बिताने के बाद उसके पति को काम-धाम ढूंढ़ने के लिए अचानक ही परदेश जाना पड़ा और विछोह ने शशि के मन में एक प्रकार के प्रेम का तूफान खड़ा कर दिया। जैसे-जैसे पति के विरह का अहसास होता गया, वैसे-वैसे उसका हृदय व्यथित होने लगा। तड़प बढ़ती ही जाती थी। इस ढीली अवस्था में जब उसका अस्तित्व भी मालूम नहीं पड़ा, तब उसकी पीड़ा अन्दर से टीसें मारने लगी। इसी से, इतने दिन बाद, इतनी आयु में बच्चों की मां बनकर शशिकला आज बसन्त की दोपहर में निर्जन घर में विरह-शय्या पर पड़ी नवेली दुल्हन का-सा सुख-स्वप्न देखने लगी। जो स्नेह अज्ञात रूप में जीवन के आगे से बहा चला गया है, सहसा आज उसी के अन्तर से वह जागकर मन-ही-मन बहाव के विपरीत तैरकर बहुत दूर पीछे की ओर पहुंचना चाहती है जहां स्वर्णपुरी में कुंज वनों की भरमार है और स्नेह की उन्मत्त अवस्था; किन्तु उस अतीत के स्वर्णिम सुख में पहुंचने का अब उपाय क्या है?

फिर स्थान कहां है?

सोचने लगी कि अबकी बार जब वह पति का सामीप्य पाएगी तब जीवन की इन शेष घड़ियों को और बसन्त की आभा को निष्फल नहीं होने देगी। कितने ही दिवस, कितनी ही बार उसने छोटी-मोटी बातों पर वाद-विवाद करके पति को परेशान कर डाला है।

आज अतृप्त मन ने भी एकान्त इच्छा से संकल्प किया कि भविष्य में कदापि संघर्ष न करेगी, कभी भी उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं चलेगी, उनकी आज्ञा को पूरी तरह पालेगी, सब काम उनकी इच्छा के अनुसार किया करेगी, स्नेह-युक्त विनम्र हृदय से अपने पति का बुरा-भला व्यवहार सब चुपचाप सह लिया करेगी; कारण पति सर्वस्व है, पति प्रियतम है, पति देवता है।

बहुत दिनों तक शशिकला अपने माता-पिता की एकमात्र लाडली बेटी रही है। उन दिनों जयगोपाल बाबू वास्तव में मामूली नौकरी किया करते थे, इसके बावजूद भविष्य को लेकर वे तनिक भी चिंतित नहीं थे। कारण, गांव में ठाट-बाट से रहने के लिए श्वसुर के पास काफी चल-अचल सम्पत्ति थी।

किन्तु विधाता के कार्य निराले ही होते हैं। जब कहीं कोई आशा-उम्मीद नहीं थी, ऐसे में शशिकला के वृद्ध पिता कालीप्रसन्न के यहां पुत्र का जन्म हुआ। सत्य तनिक कठोर होता है, किन्तु कहा जाता है। साले के जन्म की खबर पाकर शशिकला और जयगोपाल बाबू को बड़ा दु:ख हुआ।

अधिक आयु में बच्चा होने के कारण उस पर माता-पिता के लाड़-प्यार का कोई ठिकाना न रहा। उस नवजात, दूध-पीते इकलौते साले ने आकर जयगोपाल बाबू के सुख-चैन को लील लिया। अपने कोमल हाथों की छोटी-छोटी मुट्ठियों में जयगोपाल बाबू की सारी आशाएं पीसकर चकनाचूर कर दीं।

ऐसे हालात पैदा होने पर ही जयगोपाल बाबू आसाम के किसी छोटे बगीचे में नौकरी करने के लिए चल दिए। कामकाज के लिए इतनी दूर जा रहे हैं, जब रिश्ते-नाते वालों ने सुना तो काफी समझाया कि यहीं पास में ही कहीं छोटा-मोटा काम-धन्धा खोजकर यहीं रहो तो अच्छा हो, किन्तु कुछ क्रोध के कारण कुछ परायों की नौकरी करके शीघ्र अमीर बनने की धुन में उन्होंने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया।

शशि को बच्चों के साथ उसके मायके में छोड़कर वह आसाम चले गए।

विवाह के उपरान्त इस दम्पति में यह पहला विछोह था।

पति के चले जाने से, शशि को दुधमुंहे भाई पर बड़ा क्रोध आया।

जो मन की पीड़ा को स्पष्ट रूप में कह नहीं सकता, उसी को क्रोध अधिक आता है।

छोटा-सा नवजात शिशु दीन-दुनिया के रिश्ते-नातों, लाभ-हानि से बेखबर मां का दूध चूसता और सुख से आंखें मींचकर सोता और उसकी बड़ी बहन अपने बच्चों के लिए गर्म दूध, ठण्डा भात, स्कूल जाने की देर इत्यादि अनेक कारणों से थकी-मांदी और झुंझलाई दिन-रात मुंह फुलाए रहती और सारे परिवार को परेशान करती।

मगर कुछ दिन बाद ही ईश्वर की कुछ ऐसी लीला हुई कि बच्चे की मां का स्वर्गवास हो गया। मरते समय मां अपनी गोद के बच्चे को बेटी के हाथ सौंप गई।

मगर बहुत ही शीघ्र मातृहीन शिशु ने अपनी कठोर हृदय दीदी का हृदय जीत लिया। वह हा-हा, ही-ही करता, अपनी दीदी के ऊपर जा चढ़ता और अपने छोटे से पोपले मुंह में उसका मुंह, नाक, कान—सब कुछ ले जाना चाहता, अपनी छोटी-सी मुट्ठी में उसका जूड़ा पकड़कर खींचता। सूर्य के उदय

होने से पहले ही उठकर जब वह गिरता-पड़ता अपनी दीदी को कोमल स्पर्श से पुलकित करता, किलकारियां मार-मारकर शोर मचाना आरम्भ कर देता और जब वह क्रमशः दी...दी...दीदी पुकार-पुकारकर बारम्बार उसका ध्यान बंटाने लगा और जब उसने काम-काज और फुरसत के समय उस पर उपद्रव करने आरम्भ कर दिए, तब शशि से स्थिर नहीं रहा गया। उसकी निश्छल मोहित कर देने वाली बाललीलाएं देखकर शशि मोहित हो उठती। उसे उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर उसे हृदय से स्वीकार करना ही पड़ा।

शिशु का नाम नीलमणि रखा गया।

जब वह दो वर्ष का हुआ तब उसके पिता असाध्य रोगी हो गए। जयगोपाल बाबू को फौरन ही पत्र द्वारा सूचित किया गया और आग्रह किया गया कि यथाशीघ्र लौट आएं। जयगोपाल बाबू ने भी स्थिति की गम्भीरता को समझा और मिले पत्र के उत्तर की तरह फौरन ही चले आए।

जब पहुंचे तब श्वसुर कालीप्रसन्न मौत की घड़ियां गिन रहे थे।

मरने से पूर्व कालीप्रसन्न ने अपने एकमात्र नाबालिग पुत्र नीलमणि का सारा भार दामाद जयगोपाल बाबू पर डाल दिया और अपनी अचल सम्पत्ति का एक चौथाई भाग अपनी बेटी के नाम कर दिया। इसलिए चल-अचल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए जयगोपाल बाबू को आसाम की नौकरी छोड़कर ससुराल में ही टिकना पड़ा। बहुत दिनों के उपरान्त पति-पत्नी का मिलन हुआ।

इस नए मिलन पर·शशि के मन में अबकी बार नए ही भावों का उदय हुआ, उसका व्यवहार ऐसा था, मानो अपने पति से उसका पुनः विवाह हुआ हो, पहले दाम्पत्य में जो एक जड़ता-सी आ गई थी, विरह के आकर्षण से एकदम टूट गई और अपने पति को मानो उसने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक पूर्णता के साथ पा लिया। मन-ही-मन उसने संकल्प किया कि चाहे कैसे ही दिन बीतें, वह पति के प्रति उद्दीप्त स्नेह की उज्ज्वलता को तनिक भी म्लान न होने देगी। किन्तु इस नए मिलन में जयगोपाल बाबू के मन की दशा कुछ और ही हो गई।

दो वर्ष परदेस में रहकर कठोर मेहनत करके अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने की कोशिश के रूप में उनके मन में एक प्रकार की जबरदस्त क्रांति का उदय हुआ। उनके मन में मालदार बनने की एकनिष्ठ इच्छा के सिवा और कोई इच्छा ही नहीं थी। इस नए उन्माद की तीव्रता के आगे पिछला जीवन उन्हें बिल्कुल ही निस्सार-सा दिखाई देने लगा।

जहां स्नेह नारी की प्रकृति में खास परिवर्तन ले आता है, वहीं पुरुष की

प्रकृति में कोई खास परिवर्तन होता है तो उसकी जड़ में रहती है कोई-न-कोई दुष्ट प्रवृत्ति, स्वार्थ। जयगोपाल बाबू दो वर्ष पश्चात् आकर पत्नी से मिले तो उन्हें हू-ब-हू पहली-सी पत्नी नहीं मिली। उनकी पत्नी शशि के जीवन में उनके नवजात साले ने एक नया ही लगाव उत्पन्न कर दिया था, जो पहले से ही कहीं अधिक विस्तृत और संकीर्णता से कोसों दूर है। शशि के मन के इस भाव से वह बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे और न इससे उनका मेल ही बैठता था। शशि अपने इस नवजात भाई के स्नेह में से कुछ भाग पति को देने का बहुत यत्न करती, पर उसमें इसे सफलता मिली या नहीं, कहना कठिन है।

वह भाई को गोद में उठाकर अपने पति को दिखाने के लिए भरपूर प्यार उंड़ेलती, ताकि बहनोई भी साले के प्रति कोई स्नेही भाव दिखाए, किन्तु जयगोपाल बाबू ने इस प्रकार का कोई प्रदर्शन नहीं किया और न ही नन्हे साले ने बहनोई के प्रति कोई बाल-सुलभ रुचि दिखाई।

जयगोपाल बाबू की समझ में यह बिल्कुल न आया कि इस दुबले-पतले चौड़े माथे वाले मनहूस सूरत काले-कलूटे बच्चे में ऐसा कौन-सा आकर्षण है, जिसके लिए उस पर इतना प्यार बरबाद किया जा रहा है।

प्यार की सूक्ष्म बातें नारी-जाति चट से समझ जाती है।

शशि तुरन्त ही समझ गई कि जयगोपाल बाबू को नीलमणि के प्रति कोई खास लगाव नहीं है और वह शायद मन से उसे चाहते भी नहीं हैं। तब से वह अपने भाई को बड़ी चतुरता से पति की दृष्टि से बचाकर रखने लगी। जहां तक हो सकता, जयगोपाल की कुपित दृष्टि उस पर नहीं पड़ने पाती।

और इस प्रकार वह बच्चा उस अकेली के लिए एकमात्र स्नेह का आधार बन गया।

उसकी वह इस प्रकार देखभाल करने लगी, जैसे वह उसके बड़े जतन से इकट्ठा किया हुआ गुप्त धन है।

नीलमणि जब कभी रोता तो जयगोपाल बाबू को बहुत ही झुंझलाहट होती।

अत: शशि झट से उसे छाती से लगाकर खूब प्यार कर-करके हंसाने का प्रयत्न करती; खासकर रात को उसके रोने से यदि पति की नींद उचटने की सम्भावना होती और पति यदि उस रोते हुए शिशु के प्रति हिंसात्मक भाव से क्रोध या घृणा प्रकट करता हुआ तीव्र स्वर में चिल्ला उठता।

तब शशि मानो अपराधिनी-सी संकुचित और अस्थिर हो जाती और उसी

क्षण उसे गोदी में लेकर दूर जाकर प्यार के स्वर में कहती, "चुप हो जा मेरे भैया, चुप हो जा।" और वह चुप होकर सो जाता।

बच्चों-बच्चों में बहुधा किसी न किसी बात पर झगड़ा हो ही जाता है।

शुरू-शुरू में ऐसे अवसरों पर शशि अपने भाई का पक्ष लिया करती थी; कारण उसकी मां नहीं है।

मगर धीरे-धीरे ऐसा होने लगा कि कसूर किसी का भी हो, जयगोपाल बाबू आंख मूंदकर उसे दोषी ठहराते, इस प्रकार हमेशा ही निर्दोष नीलमणि को कड़े-से-कड़ा दण्ड भुगतना पड़ता।

यह अन्याय शशि के हृदय में तीर के समान चुभ जाता और इसके लिए वह दंडित भाई को अलग ले जाकर, उसे मिठाई देकर, खिलौने देकर, गाल चूम कर दिलासा देने का प्रयत्न किया करती। परिणाम यह हुआ कि शशि नीलमणि को जितना ही अधिक चाहती, जयगोपाल बाबू उतना ही उस पर जलते-भुनते रहते और वह जितना ही नीलमणि से घृणा करते, गुस्सा करते शशि उतना ही उसे अधिक प्यार करती।

जयगोपाल बाबू उन इन्सानों में से थे जो अपनी पत्नी के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते और शशि भी उन स्त्रियों में से थी जो स्नेह के साथ चुपचाप पति की बराबर सेवा किया करती थी। किन्तु अब दोनों के हृदय में नीलमणि को लेकर अन्दर-ही-अन्दर एक गुठली-सी पकने लगी। इस प्रकार के नीरव द्वन्द्व का गोपनीय आघात-प्रतिघात किसी प्रत्यक्ष कष्ट की पीड़ा की अपेक्षा कहीं अधिक कष्टदायक होता है।

नीलमणि में एक बड़ा दोष, जो प्राकृतिक था, वह यह था कि उसका सिर सारी देह में सबसे बड़ा था। देखने में ऐसा प्रतीत होता जैसे विधाता ने एक खोखले-पतले बांस में फूंक मारकर ऊपर के हिस्से पर एक हंड़िया रख दी हो। डॉक्टर भी अक्सर भय प्रकट करते हुए कहा करते कि लड़का उस ढांचे के समान ही निकम्मा साबित हो सकता है।

उसने चलना और बोलना भी काफी विलम्ब से शुरू किया था।

वह अक्सर उदासी में डूबा रहता। उसका उदास और गम्भीर चेहरा तथा बड़ा सा सिर देखकर यही अनुमान होता था कि जैसे मरने से पूर्व पिता अपनी चिंताओं का सारा भार उसके सिर पर डाल गए हों।

दीदी के प्रयत्न और सेवा से नीलमणि ने अपने भय का समय पार करके छठे वर्ष में पदार्पण किया।

कार्तिक में भइया-दूज के दिन शशि ने नीलमणि को नए-नए बढ़िया वस्त्र पहनाए, खूब सज-धज के साथ बाबू बनाया और उसके विशाल माथे पर टीका करने के लिए थाली सजायी। भइया को पटड़े पर बिठाकर अंगूठे में रोली लगाकर टीका लगा ही रही थी कि इतने में मुंहफट पड़ोसिन तारामती आ पहुंची और आने के साथ ही बात-ही-बात में शशि को ताना दिया—

"हाय, हाय! छिपे-छिपे भइया का सत्यानाश करके ठाट-बाट से लोकदिखाऊ टीका करने से क्या फायदा?"

सुनकर शशि पर एक साथ आश्चर्य, क्रोध और वेदना की बिजली सी टूट पड़ी। अन्त में उसे सुनना पड़ा कि वे दोनों औरत-मर्द मिलकर, सलाह करके नाबालिग नीलमणि की अचल सम्पत्ति को मालगुजारी-वसूली में नीलाम करवाकर पति के फुफेरे भाई के नाम खरीदने की साजिश कर रहे हैं।

शशि ने सुनकर कोसना शुरू किया, 'जो जोग इतनी बड़ी झूठी बदनामी कर रहे हैं, भगवान करे उनकी जीभ जल जाए।'

आंसू बहाती हुई सीधी वह पति के पास पहुंची तथा उनसे सब बात कह सुनायी।

जयगोपाल बाबू ने कहा, "आजकल के जमाने में किसी का भरोसा नहीं किया जा सकता। उपेन्द्र मेरा सगा फुफेरा भाई है, उस पर सारी अचल सम्पत्ति का भार डालकर मैं निश्चिन्त था। उसने कब मालगुजारी नहीं भरी और कब नीलाम में हासिलपुर खरीद लिया, मुझे कुछ पता ही नहीं लगा।"

शशि ने आश्चर्य के साथ पूछा, "तुम नालिश नहीं करोगे?"

जयगोपाल बाबू ने कहा, "भाई के नाम नालिश कैसे करूं और फिर नालिश करने से कुछ फायदा भी नहीं होगा, गांठ से और रुपए-पैसे की बरबादी होगी?"

पति की बात पर भरोसा करना शशि का कर्तव्य था, किन्तु आज वह किसी भी तरह भरोसा न कर सकी। तब फिर उसकी अपनी सुख की घर-गृहस्थी और स्नेह का दाम्पत्य जीवन सब कुछ सहसा भयानक रूप में उसके समक्ष आ खड़ा हुआ। अचानक उसकी समझ में आ गया कि जिस घर-द्वार को वह अपना आश्रय समझ रही थी, वह एक निष्ठुर फांसी का फंदा बन गया है जिसने चारों ओर से उन दोनों बहिन-भाई को घेर लिया है। वह अकेली अबला अपने असहाय भाई को कैसे बचाए, उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

इस विषय पर सोचती जा रही थी, वैसे-वैसे संकट में फंसे हुए अबोध

भाई पर उसका प्यार बढ़ता ही जा रहा था। उसका हृदय ममता और आंखें अश्रुओं से भर गईं। वह सोचने लगी यदि उसे उपाय मालूम होता तो वह लाट साहब के दरबार में अपनी अर्जी लगवाती, वहां से भी कुछ न होता तो महारानी विक्टोरिया के पास खत भेजकर अपने भाई की जायदाद अवश्य बचा लेती।

इस प्रकार जब शशि महारानी विक्टोरिया के दरबार में न्याय कराके अपने फुफेरे देवर को ठीक करने का उपाय सोच रही थी, तब सहसा नीलमणि को तीव्र ज्वर चढ़ आया और ऐसा दौरा पड़ने लगा कि हाथ-पांव तन गए और वह मूर्छा खा गया।

जयगोपाल ने गांव के एक देशी डॉक्टर को बुलवाया। शशि ने अच्छे डॉक्टर के लिए प्रार्थना की तो जयगोपाल बाबू ने उत्तर दिया, "क्यों ? मोतीलाल क्या बुरा डॉक्टर है ?"

शशि जब उसके पांवों पर गिर गयी और अपनी सौगन्ध खिलाकर भयभीत हिरनी की तरह निहारने लगी, तब जयगोपाल बाबू ने कहा, "अच्छा, शहर से अंग्रेजी डॉक्टर बुलवाता हूं, ठहरो।"

शशि नीलमणि को छाती से चिपकाए पड़ी रही। नीलमणि भी एक पल के लिए उसे आंखों से ओझल नहीं होने देता; भय खाता कि उसे धोखा देकर उसकी दीदी कहीं चली न जाए। वह सदा उससे चिपटा रहता; यहां तक कि सो जाने पर भी वह पल्लू अपनी नन्ही मुट्ठी में दबाए रहता।

सारा दिन इसी प्रकार बीत गया शाम दीया-बत्ती के समय जयगोपाल बाबू ने आकर कहा, "शहर का डॉक्टर नहीं मिला, वह दूर कहीं मरीज देखने गया है।" साथ ही कहा, "मुकदमे के कारण मुझे अभी इसी समय बाहर जाना पड़ रहा है। मैंने मोतीलाल से कह दिया है, दोनों वक्त आकर, अच्छी प्रकार से देखभाल किया करेंगे।"

रात को नीलमणि इतनी गफलत में आ गया कि अंटसंट बकने लगा। भोर होते ही शशि को कुछ नहीं सूझा, वह बीमार भाई को लेकर नाव में बैठ कलकत्ता के लिए चल दी।

कलकत्ता जाकर देखा कि डॉक्टर घर पर ही है; कहीं बाहर नहीं गए हैं। भले घर की स्त्री समझकर डॉक्टर ने झटपट उसके लिए ठहरने का प्रबन्ध कर दिया और उसकी मदद के लिए एक अधेड़ विधवा को नियुक्त कर दिया।

नीलमणि का इलाज होने लगा।

दूसरे ही दिन जयगोपाल बाबू भी कलकत्ता आ धमके। मारे गुस्से के आग-बबूला होकर उसने शशि को तत्काल लौटने का हुक्म दिया।

शशि ने कहा, "मुझे यदि तुम काट भी डालो, तब भी मैं अभी घर नहीं लौटूंगी। तुम सब मिलकर मेरे नीलमणि को मार डालना चाहते हो। उसके बाप नहीं, मां नहीं, मेरे सिवा उसका है ही कौन ? मैं उसे बचाऊंगी। अवश्य बचाऊंगी। वह मेरा भाई है।"

जयगोपाल बाबू भावावेश में आकर बोले, "तो तुम यहीं रहो, मेरे घर अब कदापि मत आना।"

शशि ने उसी क्षण तपाक से कहा, "तुम्हारा घर कहां से आया ? घर तो मेरे भाई का है।"

जयगोपाल बाबू बोले, "अच्छा देखा जाएगा।"

कुछ दिनों तक इस घटना को लेकर मोहल्ले के लोगों में चुहलबाजियां चलती रहीं, अनेक वाद-विवाद होते रहे। तभी पड़ोसिन तारा ने कहा, "अरे! खसम के साथ लड़ना हो तो घर पर रहकर लड़ो न, जितना भी लड़ना हो। घर छोड़कर बाहर लड़ने-झगड़ने की क्या जरूरत। कुछ भी हो, आखिर है तो अपना घरवाला ही।"

हाथ में जो कुछ जमा-पूंजी थी सब खर्च करके, आभूषण आदि जो कुछ भी थे सब बेचकर किसी प्रकार शशि ने अपने नाबालिग भाई को मौत के मुंह से निकाल लिया और तब उसे पता चला कि दुआर गांव में उन लोगों की जो बड़ी भारी खेती की जमीन थी और उस पर उनकी पक्की हवेली भी थी, जिसकी वार्षिक आय लगभग डेढ़ हजार थी, उसे भी जमींदार के साथ मिलकर जयगोपाल बाबू ने अपने नाम करा लिया है। अब सारी अचल सम्पत्ति उसके पति की है, भाई का उसमें कुछ भी हक नहीं रहा।

रोग से छुटकारा मिलते ही नीलमणि ने घर चलने की जिद पकड़ ली। वह अपने दोस्तों के साथ खेलने को बेचैन था। अतः बार-बार कहता, "दीदी, घर चलो। दीदी घर चलो।"

सुनकर शशि रोने लगी, बोली, "हम लोगों का अब घर कहां है?" लेकिन वह जानती थी कि रोने से कुछ नहीं होगा। उसे हिम्मत और साहस से काम लेना होगा। आखिर उसके सिवा इस दुनिया में उसके भाई का है ही कौन! यह सोचकर शशि ने आंखें पोंछ डालीं और साहस बटोरकर डिप्टी-मजिस्ट्रेट तारिणी बाबू के घर जाकर, उसकी पत्नी की शरण ली।

मजिस्ट्रेट साहब जयगोपाल बाबू को भली-भांति जानते थे। भले घर की

बहू-बेटी घर से निकलकर जमीन-जायदाद के लिए पति से झगड़ना चाहती है, इस बात पर वे शशि पर गुस्सा हुए और उसे बातों में फुसलाए रखकर उसी समय उन्होंने जयगोपाल बाबू को पत्र लिखा। जयगोपाल बाबू साले सहित शशि को जबरदस्ती नाव पर बैठाकर गांव ले गया।

इस दम्पति का द्वितीय विच्छेद के बाद, फिर वह द्वितीय मिलन हुआ जन्म—जन्म का साथ सृष्टिकर्ता का विधान जो ठहरा।

बहुत दिनों बाद घर लौटकर पुराने साथियों को पाकर नीलमणि बहुत खुश हुआ, आनन्दपूर्वक घूमने-फिरने लगा। उसकी निश्चिन्त खुशी को देखकर भीतर-ही-भीतर शशि की छाती फूलने लगी।

शरद ऋतु आयी। मजिस्ट्रेट साहब गांवों में छानबीन करने दौरे पर निकले और शिकार करने के लिए जंगल से सटे गांव में तम्बू तन गए। गांव के मार्ग में साहब के साथ नीलमणि की भेंट हुई। उसके सभी साथी साहब को देखकर दूर हट गए, पर नीलमणि देखता रहा। न जाने साहब को उससे कुछ दिलचस्पी हुई, उसने पास बुलाकर पूछा, "तुम स्कूल में पढ़ते हो?"

बालक ने चुपचाप खड़े रहकर सिर हिला दिया, "हां।"

साहब ने पुनः पूछा, "कौन-सी पुस्तक पढ़ते हो?"

नीलमणि 'पुस्तक' शब्द का मतलब न समझ सका, अतः साहब के मुंह की ओर देखता रहा।

घर पहुंचकर नीलमणि ने साहब के साथ अपने इस परिचय की बात खूब उत्साह के साथ दीदी को बताई।

दोपहर को अचकन, पाजामा, पगड़ी आदि बांधकर जयगोपाल बाबू साहब का अभिवादन करने के लिए पहुंचे। साहब उस समय तम्बू के बाहर एक कुर्सी पर बैठे थे। चारों ओर सिपाहियों का घेरा था। उन्होंने जयगोपाल बाबू को चौकी पर बैठाकर गांव के हाल-चाल पूछे।

जयगोपाल बाबू सामान्य गांव वालों के सामने जो इस प्रकार बड़प्पन बनाए बैठा है, इसके लिए वह मन-ही-मन फूला नहीं समा रहा था। उसके मन में बार-बार ये विचार उठ रहे थे कि इस समय चक्रवर्ती और नन्दी घराने का कोई आकर देख जाता तो कितना अच्छा होता!

इतने में नीलमणि को साथ लिए घूंघट काढ़े एक स्त्री सीधी साहब के सामने आकर खड़ी हो गई, बोली, "साहब! आपके हाथ में मैं इस अनाथ भाई को सौंप रही हूं, आप इसकी रक्षा कीजिए।"

साहब पूर्वपरिचित गम्भीर प्रकृति वाले बालक को देखकर उसके साथ वाली स्त्री को भले घर की बहू-बेटी समझकर, उसी क्षण उठकर खड़े हो गए, ''आप तम्बू में आइए।''

''मुझे जो कुछ कहना है, वह यहीं कहूंगी।''

जयगोपाल बाबू का चेहरा फीका पड़ गया और घबराहट के मारे ऐसा हो गया, आंखों में ऐसी बेचैनी उभर आई जैसी सिंह दल के बीच घिरा हिरण शावक। गांव के लोग तमाशा देखने के लिए खिसक-खिसककर पास आने की चेष्टा करने लगे। तभी साहब ने बेंत उठाया और सब भाग खड़े हुए।

तब शशिकला ने अपने अनाथ भाई का हाथ थामते हुए उस अनाथ बच्चे का सारा इतिहास शुरू से आखिर तक कह सुनाया।

जयगोपाल बाबू ने बीच-बीच में रुकावट डालने की चेष्टा की, पर साहब ने गरजकर उसे जहां का तहां बैठा दिया, ''चुप रहो।'' पूरी बात सुनते-सुनते उन्होंने बेंत के संकेत से उसे चौकी से उठकर सामने खड़ा होने का हुक्म दिया।

जयगोपाल बाबू शशि को मन-ही-मन कोसता हुआ सामने खड़ा रहा और नीलमणि अपनी दीदी से बिल्कुल चिपटकर मुंह बनाए चुपचाप खड़ा सुनता रहा।

शशि की बात सुन लेने पर साहब ने जयगोपाल बाबू से कई प्रश्न पूछे और उनका उत्तर पाकर और बहुत देर तक चुप रहकर वह शशि को सम्बोधित करके बोले, ''बेटी ! यह मामला मेरी कचहरी में नहीं चल सकता, पर तुम बेफिक्र रहो। इस विषय में मुझे जो कुछ करना होगा, अवश्य करूंगा। तुम इस अनाथ भाई को लेकर बेधड़क घर जा सकती हो।''

शशि ने कहा, ''साहब! जब तक इस अनाथ को अपना मकान नहीं मिल जाता, तब तक इसे लेकर घर जाने का साहस मैं नहीं कर सकती। अब, यदि आप इसे अपने पास नहीं रखते तो और कोई भी इस अनाथ की रक्षा नहीं कर सकता?''

साहब ने पूछा, ''तुम कहां जाओगी?''

शशि ने उत्तर दिया, ''मैं अपने पति के घर लौट जाऊंगी, मेरी कुछ फिक्र नहीं है।''

साहब मुस्कराए और दुबले-पतले, गम्भीर स्वभाव वाले, काले रंग के उस दुखी अनाथ बालक को अपने पास रखने को तैयार हो गए।

इसके उपरान्त शशि जब विदा होने लगी, तब बालक ने उसकी धोती का छोर पकड़ लिया।

साहब ने कहा, "बेटा! तुम डरो मत। आओ मेरे पास आओ।"

घूंघट के भीतर अश्रुओं से झरना बहाते और पोंछते हुए अनाथ की दीदी ने कहा, "मेरा राजा भैया है न, जा, जा साहब के पास जा—तेरी दीदी तुझसे फिर मिलेगी, अच्छा।"

इतना कहकर उसने नीलमणि को उठा छाती से लगा लिया और माथे पर, पीठ पर हाथ फेरकर किसी प्रकार उसके पतले हाथों से अपनी धोती का छोर छुड़ाया और बड़ी तेजी से वहां से चल दी।

साहब ने तुरन्त ही बाएं हाथ से उस अनाथ बालक को रोक लिया और बालक, 'दीदी! दीदी!' चिल्लाता हुआ जोर-जोर से रोने लगा। शशि ने एक बार मुड़कर, दूर से अपना दाहिना हाथ उठाकर, अपनी ओर से उसे चुप होने के लिए सान्त्वना दी और अपने टूक-टूक हुए हृदय को लेकर और भी तेजी से आगे बढ़ गयी।

और फिर! इस घटना के कुछ ही दिन बाद, एक दिन भोर होते ही गांव वालों ने सुना कि रात को जयगोपाल बाबू की स्त्री हैजे से मर गयी और रात को ही उसका अन्तिम संस्कार हो गया।

अनाथ भाई को साहब के पास छोड़कर उसकी दीदी उसे वचन दे आई थी कि फिर मिलेगी, पता नहीं उस वचन को वह निभा सकी या नहीं?

❑❑

40

कंचन

विदेश से लौटने के बाद मैंने छोटा नागपुर के चंद्रवंशीय राजा के दरबार में नौकरी कर ली थी। उन्हीं दिनों इस कहानी का पुष्प खिला था।

उस दिन मैं निर्जन वन से लौट रहा था। झोली में रंग-बिरंगे पत्थर भरे थे, जिनका अपनी कोठी पर लौटकर अपनी प्रयोगशाला में मुझे परीक्षण करना था।

उन दिनों आसमान टेसू के फूलों जैसी रक्तिम आभा से विभोर था। शाल के वृक्ष की टहनियों पर मंजरियां झूल रही थीं। मधुमक्खियों के समूह मंडराते फिर रहे थे। व्यापारियों द्वारा लाख-संग्रह का समय आ गया था। बेर और शहतूत के पत्तों से रेशम के कीड़े इकट्ठे किए जा रहे थे। सन्थाल जाति महुए बीनती फिर रही थी। नुपूर की झंकार के समान गूंजती हुई नदी वहीं पर बही जा रही थी। मैंने स्नेह से उस नदी का नाम रखा था, 'तनिका।' एक अनोखा सा आवेश पूरे वातावरण में छाया हुआ था। इस वातावरण का मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा था कि मैं मोहित सा हो गया था। काम करने की मेरी गति धीमी हुई थी और इससे मैं कुछ खीझ गया था।

दिन ढल रहा था। कुछ आगे जाकर नदी दो भागों में बंट गई थी। बालू के एक टीले पर बगुलों का एक झुण्ड शान्त भाव से बैठा था।

इन सबका अवलोकन करता हुआ मैं अपनी कोठी पर लौट रहा था। ऐसे निर्जन स्थानों पर समय काटना एक भारी समस्या होती है, अतः शाम का समय मैंने अपने प्रयोगों के लिए निर्धारित किया हुआ था।

डायनमों द्वारा बिजली की रोशनी कर, नाना प्रकार के रासायनिक द्रव्य, माइक्रोस्कोप और न जाने क्या-क्या लेकर बैठ जाता हूं। इसी प्रकार बैठे-बैठे कभी आधी रात हो जाती है। मुझे आज विशेष खोज के बाद 'मैगनीज' के चिह्नों का आभास मिला था। इसलिए मेरी वापसी आज विशेष उत्साह के साथ हो रही

थी। उस वातावरण में कौए कांव-कांव करते हुए सिर पर से अपने-अपने नीड़ों की ओर बढ़े जा रहे थे।

इसी समय एक बाधा ने मेरे मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। मेरे सम्मुख आकर एक बाधा खड़ी हो गयी। सुनसान रास्ते के एक टीले पर शाल के पांच वृक्षों का एक व्यूह-सा खड़ा था। उसके झुरमुट में एक वृक्ष के तने से पीठ टिकाए एक कोमलांगी बैठी थी। वह दोनो पैरों को छाती के समीप समेट मन लगाकर कुछ लिखे जा रही थी।

मैं वृक्ष की आड़ में खड़ा होकर उसकी ओर ताकने लगा। मेरे हृदय में न जाने कैसी हलचल सी मच गई।

उस बाला को भी मेरे खड़े होने का कुछ आभास-सा हो गया था। उसने लिखना तो बन्द कर दिया; किन्तु उठी नहीं। मैंने सोचा कि कहूं, 'क्षमा कीजिए!'

किन्तु कैसी क्षमा? मैंने ऐसा कौन-सा दण्डनीय कार्य किया था?

यही सोचता हुआ मैं अपनी कोठी की ओर बढ़ने लगा, तभी मेरी दृष्टि जमीन पर पड़े फाड़े हुए किसी पत्र के लिफाफे पर जा पड़ी। मैंने उठाकर देखा—नाम, भवतोष मजूमदार, आई.सी.एस., मुकाम छपरा; हाथ की लिखावट लड़कियों-जैसी। मैंने उलट-पलटकर देखा, लिफाफे पर टिकट लगा हुआ है; लेकिन डाकखाने की मोहर नहीं। मेरी अक्ल ने झट समझ लिया कि फटे पत्र के लिफाफे पर किसी दुखान्त नाटक का क्षतचिह्न विद्यमान है और मैंने उस लिफाफे के रहस्य को जानने का भी संकल्प कर लिया।

जूलॉजी के अध्ययन के अभ्यास के साथ भीतर-ही-भीतर इस रहस्योद्‌घाटन का काम भी चल रहा था। जिस समय मैं रेडियम का कण पाने की आशा लेकर अनुसन्धान में डूबा हुआ था, उस समय मैंने शाल वृक्षों की छाया और प्रकाश के बन्धन में कंचन को बैठे देखा था।

इसमें कोई शक नहीं था कि इससे पहले भी, बंगाली बाला को निहारा था; किन्तु ऐसे स्वतन्त्र और एकान्त वातावरण में देखने का अवसर कभी नहीं मिला था। यहां उसकी सलोनी देह की कोमलता के साथ वन के फूल ने अपनी भाषा का स्वर मिला दिया।

विदेशी कोमलांगियों को तो बहुत बार देखा था और वे भली भी लगी थीं; किन्तु किसी बंगाली बाला को पहली बार ही इस प्रकार से देखा कि उसकी समग्रता को उपलब्ध किया जा सके। उसे देखकर यह प्रतीत नहीं होता कि उसका सम्बन्ध पुस्तकों से टूटा या नहीं।

बहुत समय पूर्व मैंने एक गीत सुना था जिसमें एक लड़की के रूप-

लावण्य का वर्णन था। वह गीत किन्हीं बसू महाशय का था। तब उस गीत को सुनकर भी मैंने भुला दिया था। मगर आज बाला को देखकर लगा कि उस गीत में जिस बंगाली लड़की के रूप-लावण्य का जिक्र किया गया था, वही लड़की आज मेरी आंखों के सामने है।

जूलॉजी शास्त्र में पढ़ा था कि पृथ्वी के नीचे छुपी हुई आग्नेय सामग्री सहसा तेज भूकम्प से आन्दोलितावस्था में ऊपर आ जाती है। आज अपने ही निम्न स्तर के अन्धकार में छुपी हुई उसी तपती हुई सामग्री को सहसा ऊपर के प्रकाश में देखा। मुझ कठोर विज्ञानी ने अपने अन्तस्तल में इस प्रकार आन्दोलितावस्था की कभी आशा नहीं की थी।

पता लग गया कि प्रतिदिन तीसरे पहर जब इसी रास्ते से काम से लौटा करता तो वह मुझे विशेष दृष्टि से देखा करती, पर उसकी दृष्टि में क्या है—यह अब तक मैं समझ नहीं सका था।

कभी-कभी मैं राह चलता पीछे मुड़कर देख लेता तो ऐसा लगता, कंचन की नजरें मेरा पीछा कर रही हैं। मुझे मुड़ता देखकर वह अपनी दृष्टि घुमाकर उन कागजों की ओर कर लेती, जिस पर बैठी वह लिखा करती थी।

मेरे विज्ञानी मन को ऐसा लगा कि वह किसी को पाने के लिए इतना कठोर व्रत कर रही है।

भवतोष मजूमदार विलायत से लौटकर छपरे में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो गया है। विलायत जाने से पूर्व इन दोनों में यहीं रहते समय गम्भीर प्रणय हो गया था, परन्तु अब पद पर नियुक्ति के बाद कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रह गया है। असल बात क्या है, इसकी जानकारी तो छानबीन करने से ही मिलेगी।

मेरे लिए यह सब मालूमात हासिल करना कोई कठिन कार्य नहीं था; क्योंकि मेरे सहपाठी बंकिम बाबू पटना विश्वविद्यालय में काम करते थे। उनको पत्र लिखकर डाल दिया—बिहार की सिविल सर्विस में कोई भवतोष मजूमदार नामक एक महाशय हैं। मेरे किसी मित्र ने अपनी लड़की के लिए इन्हें पसन्द किया है। इस कार्य में मेरा सहयोग चाहते हैं। कार्य थोड़ा कठिन अवश्य है किन्तु सम्भवत: आपके लिए इतना कठिन न हो। आपका आभारी रहूंगा। उन महाशय का विवाह के लिए क्या मत है, यह भी लिखिए।

पत्र का उत्तर मिला, 'रास्ता पथरीले से भी अधिक बढ़कर है। उसकी राय के विषय में सुनो। मैं कॉलेज में डॉ. अनिल कुमार का छात्र था। जितना साधारण डॉक्टर साहब का पांडित्य था, उतना ही सरल उनका हृदय। उनकी

नातिन को देखो तो पता लगेगा कि सरस्वती देवी ने उनकी साधना से सन्तुष्ट होकर, उनके बुद्धि-लोक को ही प्रकाशित नहीं किया बल्कि वह रूप-सुधा को लेकर उनकी गोदी में भी आयी है।'

शैतान भवतोष उनके इसी स्वर्ग-लोक में न जाने कहां से आन पड़ा। उसकी बुद्धि प्रखर थी और वह वाक्पटुता में निपुण। पहले धोखा खाया डॉक्टर साहब ने और बाद में उनकी नातिन ने। विवाह-सम्बन्ध निश्चित हो चुका था; प्रतीक्षा थी भवतोष की विलायत से लौटने की। विलायत का सारा खर्च डॉक्टर साहब ने दिया था। सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर जब वह भारत आया तो यहां के किसी उच्च पदाधिकारी की कन्या से विवाह कर लिया। उसके इस कुकृत्य और निर्लज्जता से क्षुब्ध होकर डॉक्टर साहब नौकरी को तिलांजलि देकर अपनी नातिन के साथ कहां चले गए, इसका कुछ पता नहीं।

पत्र को पढ़कर कंचन की परिस्थिति का पूर्ण आभास हुआ। तभी दृढ़ संकल्प किया कि उसको लज्जा और अवसाद से मुक्त करूंगा।

सूर्य देव पश्चिम की ओर जा रहे थे। सन्ध्या अपना आवरण फैला ही रही थी। यह समय कंचन के लौटने का था। तभी कोई गंवार उसके हाथ से लिखे हुए पृष्ठ छीनकर भाग खड़ा हुआ। मैंने उसका पीछा किया और उन पृष्ठों को पाने में सफल हो गया। मैंने वे सब कंचन को लौटा दिए। अपनी सम्पत्ति को वापस आया देख कंचन ने स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा, "सौभाग्य से आप...।"

मैंने कहा, "मेरे भाग्य से ही उस गंवार ने ऐसा किया।"

"इसका मतलब?" तनिक चौंककर उसने पूछा।

"मतलब स्पष्ट है।"

"मगर मैं नहीं समझी।"

"उसकी सहायता से आपके साथ ही पहली बात हो पायी। इससे पहले तो यही सोचता रहता कि कैसे और क्या बोलूं।"

"किन्तु वह तो एक चोर था।"

"नहीं, वह चोर नहीं, वह मेरा ही सिपाही था। उसके सहयोग से ही यह शुभ अवसर आया है।" कंचन ने अपनी गहरे रंग की साड़ी का छोर पकड़ कर अपने मुंह पर रख लिया और खिलखिलाकर हंस पड़ी। हंसी रुकते ही उसने कहा, "काश, यह सच होता तो बड़ा मजा आता।"

"किसे?"

"मुझे।"

"और मदद करने वाले का क्या इनाम होता?"

"उसे घर पर ले जाकर चाय पिला देती।"

"और इस नकली मदद कर्ता का क्या होगा?"

"उसने जो चाहा था मिल गया।"

"क्या मिल गया?"

"परिचय की पहली बात और क्या?"

"बस।"

"हां।"

"मैं चाहता हूं कि बातों का यह सिलसिला यहीं समाप्त न हो जाए।"

"समाप्त कैसे होगा?"

"अच्छा, यदि आपको पहले बात करने का अवसर मिला होता तो पहली बात आप क्या कहतीं?"

"मैं तो केवल यही पूछती कि सड़कों पर से पत्थर चुनने में लड़कपन नहीं लगता आपको?"

"फिर आपने पूछा क्यों नहीं?"

"डर लगता था।"

"डर ! मुझसे!"

"हां, दादू से सुना था कि आप बड़े विद्वान हैं। उन्होंने विलायत से छपा हुआ आपका लेख पढ़ा था। उन्होंने उसे समझाने का प्रयत्न किया, पर मैं समझ न सकी।"

तभी किसी की आवाज सुनाई दी, "दीदी! दीदी ! कहां हो तुम? अंधेरा हो गया है। आजकल समय अच्छा नहीं है।"

डॉक्टर साहब के उपस्थित होते ही मैंने उनके चरणों की धूल लेकर प्रणाम किया। वे तनिक सकपका गए। मगर मैंने तुरन्त अपना परिचय दिया, "मेरा नाम नवीन माधव सेन गुप्त।"

उसे सुनकर वृद्ध डॉक्टर का चेहरा खिल उठा, बोले, "क्या कहते हो? आप ही डॉक्टर सेन गुप्त हैं? आप तो बच्चे हैं।"

मैंने उत्तर दिया, "अभी बच्चा ही हूं, छत्तीस वर्ष का बच्चा।"

"आपको हमारे यहां चलना होगा।" निर्णायक लहजे में डॉक्टर साहब बोले।

"इसके लिए कहने की आवश्यकता नहीं है दादू; ये तो पहले ही चलने के लिए मुंह उठाए बैठे हैं।"

मैंने मन-ही-मन कहा, "अनर्थ हो गया! कैसी शरारत की है कंचन ने?"

डॉक्टर साहब ने उत्साहित स्वर में कहा, "आपको शायद देश और काल...।"

"नहीं, नहीं! इन बातों का मेरी दृष्टि में कोई महत्व नहीं है और न ही समझाने में आप अपना समय बरबाद करें।"

"समय का क्या अभाव है? अच्छा, आज भोजन हमारे घर ही करें।"

मैं धन्यवाद करने ही जा रहा था कि कंचन बोल उठी, "दादू! हर किसी को न्योता देकर मुझे मुश्किल में डाल देते हो। भला इस जंगल में अंग्रेजी खान-पान कहां मिलेगा। ये विलायत का 'डिनर' खाने वाले हैं। आए व्यर्थ में अपनी नातिन को बदनाम करना चाहते हैं?"

"अच्छा, अच्छा तो...।" वृद्ध डॉक्टर साहब मुझसे मुखातिब हुए, "आपको कब सुविधा होगी आने में? बताइए?"

"मेरी सुविधा तो कल ही हो सकती है; परन्तु मैं कंचन देवी को परेशान नहीं करना चाहता। मुझे अनुसन्धान के लिए वनों में जाना पड़ता है। वहां जो कुछ भी प्रकृति की देन के द्वारा मिलता है, उसे बटोरकर ले आता हूं।"

"दादू! इनकी बातों पर विश्वास मत कीजिए...ये तो बस ऐसे ही कहते रहते हैं।"

मैंने सोचा, यह तो अजीब लड़की है, जो बात कहता हूं उसी को काट देती है। इस प्रकार वार्ता करते-करते हम सब कंचन के मकान की ओर बढ़े चले जा रहे थे कि कंचन अचानक बोल उठी, "अब आप अपने शिविर को लौट जाइए।"

"क्यों? मैंने तो सोचा था कि आप लोगों को मकान तक छोड़ आऊं।"

"बस, बस, हम खुद ही चले जाएंगे। अस्त-व्यस्त अवस्था में मकान को दिखाकर मैं परिहास का केन्द्र नहीं बनना चाहती। उसे देखते ही मेम साहिब की याद आ जाएगी।"

विवश हो मुझे विलग होना पड़ा। उस अवस्था में मैंने कहा, "कल आप लोगों के यहां जो मेरा न्योता है, वह मेरे नए नामकरण के लिए है। कल से नवीन माधव नाम के डॉक्टर का सेन गुप्त अंश छूट जाएगा।"

"तब तो नामवर्तन कहिए, नामकरण क्यों कहते हैं?"

"जैसा आप समझें।"

इसके उपरान्त मैं अपने निवास में लौट आया। उस दिन मैं अनुसन्धान के लिए लाए गए पदार्थों की परख नहीं कर सका। मेरा मस्तिष्क कंचन के विषय में ही सोचता रहा।

अगले दिन तनिका के तट पर कंचन के साथ भेंट हुई। डॉक्टर साहब बालकों के समान मुझसे पूछ बैठे, "नवीन! क्या तुम विवाहित हो?"

मैंने उस भावार्थ प्रश्न का तुरन्त ही उत्तर देते हुए कहा, "अभी तक तो अविवाहित हूं।"

कंचन यहां भी नहीं चूकी, तपाक से बोली, "दादू! 'अभी तक' शब्द तो कन्यापक्ष वालों को सान्त्वना देने मात्र के लिए हैं। उनका कोई यथार्थ अर्थ नहीं।"

"यथार्थ अर्थ नहीं, यह कैसे निश्चय कर लिया?"

"यह एक गणित की उलझन है, फिर भी उच्च गणित कहने से जो वस्तु समझी जाती है, वह यह नहीं है। यह तो पहले से ही सुनने में आया है कि आप छत्तीस साल के बच्चे हैं। इस अर्से में आपसे भी पांच-सात बार कहा जा चुका है कि बेटा बहू लाना चाहती हूं। लेकिन आपने कहा—इससे पहले मैं लोहे के सन्दूक में रुपए लाना चाहता हूं। इसके बाद इस अर्से में आपका सब कुछ हो गया केवल फांसी शेष थी। अंत में प्रान्तीय सरकार का बड़ा पद जुट गया तो मां ने फिर कहा, 'अब तो बेटा ब्याह करना होगा। मेरी जिन्दगी के और कितने दिन बाकी हैं?' आपने कहा, 'मेरा जीवन और मेरा विज्ञान एक है, उसे मैं देश के लिए उत्सर्ग करूंगा। मैं अभी ब्याह न करूंगा।' विवश होकर उन्होंने आंखों का पानी पोंछकर चुप्पी साध ली। आपके छत्तीस वर्ष का हिसाब लगाते समय मैंने कहीं गलती की हो तो कहिए, वास्तव में बताइए, संकोच की कोई आवश्यकता नहीं।"

फिर बोली, "हम लोगों के देश में आप लोग लड़कियों को जीवनसंगिनी के रूप में पाते हैं, विश्व का जिससे कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु विदेश में जो लोग विज्ञान के तपस्वी हैं। उनको तो उपयुक्त तपस्विनी मिल ही जाती है—जैसे, अध्यापक क्यूरी को सहधर्मिनी मादाम क्यूरी। तो क्या वैसी कोई आपको वहां रहते नहीं मिली?"

कंचन के कहते ही कैथेरिन की बात याद आ गयी। लन्दन में रहते समय साथ ही काम किया करते थे। यहां तक कि मेरी एक रिसर्च की पुस्तक में मेरे नाम के साथ उसका नाम भी छपा था। मुझे स्वीकार करना पड़ा।

तब कंचन ने तत्काल ही पूछा, "उनके साथ आपने विवाह क्यों नहीं किया? वे क्या इसके लिए तैयार नहीं हुईं?"

"उन्हीं की ओर से प्रस्ताव तो आया था।"

"तो?"

"मेरा नाम भारतवर्ष का ठहरा, इसलिए...।"

"यानी स्नेह की सफलता आप जैसे साधकों की कामना की वस्तु नहीं। लड़कियों के जीवन का परम लक्ष्य व्यक्तिगत है और आप जैसे इन्सानों का वैयक्तिक।"

इसका उत्तर मुझे देते न बन पड़ा।

मुझे चुप देखकर कंचन फिर बोली, "बंगला साहित्य कतिपय आपने नहीं पढ़ा। उसमें यही बात दिखाई गई है कि लड़कियों का व्रत पुरुष को बांधना है और पुरुष का व्रत है उस बन्धन को काटकर ऊपर लोक का मार्ग पकड़ना। कच भी देवयानी के अनुरोध की उपेक्षा कर निकल पड़ा था—आप मां का अनुनय न मानकर चल पड़े हैं। एक ही बात हुई। नारी और पुरुष में चिरकाल से चला आने वाला यही संघर्ष है, चाहे भले ही अबला-क्रन्दन होता रहे। उस क्रन्दन से आप लोग अपनी पूजा का नैवेद्य सजा लीजिए। देवता के उद्देश्य से ही नैवेद्य की भेंट होती है; लेकिन देवता निरासक्त ही रहते हैं।"

मैं उसका चेहरा देखता रहा।

"देवयानी ने कच को क्या श्राप दिया था, जानते हैं नवीन बाबू?" क्षण भर रुककर उसने पूछा।

"नहीं।"

"अपने ज्ञान-साधन का फल आप स्वयं न सोच सकेंगे नवीन बाबू। हां, दूसरों को दान कर सकेंगे। मुझे यह बात कुछ अजीब-सी लगती है। यदि यह शाप आज कोई विदेशी लोगों को देता तो वह बच जाता। विश्व की सामग्री को अपनी सामग्री के समान व्यवहार करने की वजह से ही यूरोप वाले लालच के द्वार पर मरते हैं।"

उस दिन जो बातें हुईं वे केवल हास्य-व्यंग्य ही नहीं था। उनमें युद्ध की ओर संकेत था।

हालांकि कंचन के साथ जब मेरा सम्बन्ध सहज हो आया था, किन्तु फिर भी मैं उसके सम्मुख खड़े होकर उसकी चरम अभिलाषा की थाह पाने का कोई मार्ग नहीं खोज पाया। हां, एक दिन अवश्य पिकनिक के समय यह सुयोग मिल गया। उस समय डॉक्टर साहब शिवालय के खंडहर की सीढ़ी पर बैठकर

रसायनशास्त्र की कोई नई प्रकाशित हुई पुस्तक पढ़ रहे थे। एक आबनूस के पेड़ की झाड़ी में बैठकर कंचन अचानक कह उठी, "इस महाकाल के वन में एक अन्धी प्राणशक्ति है, उससे भयग्रस्त हूं।"

पुराने भवनों के दरार से लुक-छिपकर पीपल का अंकुर निकलता है और फिर धीरे-धीरे अपनी जड़ों से उसे बुरी तरह जकड़ लेता है। यह भी वैसा ही है। दादू के साथ यही बात हो रही थी। दादू कह रहे थे, 'बस्ती से बहुत दिनों तक दूर रहने से प्रकृति के अभाव से मानव का चित्त दुर्बल हो जाता है और आदमी पर प्रकृति का असर प्रखर हो उठता है।'

मैंने उत्तर दिया, "मेरा विचार यह है कि ऐसे अवसरों पर मानव का संग भीतर और बाहर से मिलना चाहिए, जिसका प्रभाव मानव-प्रकृति को पूर्ण कर सके। जब तक यह नहीं होगा तब तक अन्ध शक्ति से पराजित ही होना पड़ेगा। काश! आप मामूली...।" कहते-कहते मैं रुक गया।

"हां, हां, कहिए, संकोच मत कीजिए।" कंचन ने शीघ्रता से कहा।

"यह तो जानती ही हैं कि मैं वैज्ञानिक हूं, अत: जो कहने जा रहा हूं उसे व्यक्तिगत आसक्ति से रहित होकर ही कहूंगा। आपने एक दिन भवतोष को बहुत स्नेह से देखा था, क्या आज भी उसे उसी प्रकार...।"

"समझ लीजिए, नहीं करती...तब।"

"मैंने ही आपके मन को उधर से हटाया है।"

"सम्भव हो सकता है; लेकिन आपने ही नहीं, बल्कि इस अन्ध शक्ति ने भी। इसलिए मैं इस हटने को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखती।"

"ऐसा क्यों?"

"दीर्घ काल के प्रयास से मानव चित्तशक्ति में अपने आदर्श की रचना करता है, प्राणशक्ति की अन्धता उस आदर्श को तोड़ देती है। आपके प्रति जो मेरा प्रेम है, वह उसी अन्ध शक्ति के आक्रमण का फल है।"

"नारी होकर भी आप प्रेम पर ऐसा अपवाद मढ़ती हैं।"

"नारी होने के कारण ही तो ऐसा कह रही हूं। प्रेम का आदर्श हमारे लिए पूजा की सामग्री है। उसी को सतीत्व कहते हैं। सतीत्व एक आदर्श है। यह सामग्री वन की प्रकृति की नहीं है, मानवी है। इस निर्जन में इतने दिनों से इसी आदर्श की पूजा कर रही थी। सारे आघातों को सहने और धोखा खाने के बाद भी उसे बचा सकी तो मेरी पवित्रता भी नहीं जाएगी।"

"क्या भवतोष के लिए अब भी श्रद्धा का स्थान है?"

"नहीं।"

"उसके पास जाना चाहोगी।"

"नहीं।"

"तो फिर।"

"कुछ भी नहीं।"

"मैं आशय नहीं समझा।"

"आप समझ भी नहीं सकेंगे। आपकी सम्पत्ति ज्ञान है, उच्चतर शिखर पर वह भी इम्पर्सनल है। नारी-सम्पत्ति हृदय की सम्पत्ति है। यदि उसका सब कुछ चला जाए, वह सब कुछ जो बाहरी है, जिसे स्पर्श किया जा सकता है तब भी उस प्रेम में वह वस्तु बच रहती है जो कि इम्पर्सनल है।"

"वाद-विवाद में समय नष्ट न कीजिए। मुझे कुछ ही दिनों में खोज करने के अभिप्राय से अन्यत्र कहीं जाना होगा किन्तु...।"

"फिर गए क्यों नहीं?"

"आपसे...।"

तभी कंचन ने पुकारा, "दादू!"

डॉक्टर साहब अपना पढ़ना-लिखना छोड़कर उठ गए और मधुर स्वर में बोले, "क्या है दीदी?"

"आपने उस दिन कहा था न कि मनुष्य का सत्य उसी की तपस्या के भीतर से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी अभिव्यक्ति प्राणिशास्त्र से समझी जाने वाली अभिव्यक्ति नहीं है।"

"हां बिल्कुल ठीक...।"

"दादू, तो फिर आज अपनी और आपकी बात का निर्णय कर दूं। कई दिनों से मस्तिष्क उथल-पुथल का केन्द्र बना हुआ है।"

मैं उठ खड़ा हुआ, बोला, "मैं चलता हूं।"

"नहीं ! आप बैठिए। दादू, आपका वही पद फिर खाली हुआ है और सेक्रेटरी ने पुनः आपको बुलवाया भी है।"

"हां, तो फिर...।"

"आपको उस पद को स्वीकार करना होगा...अति शीघ्र वहीं लौट जाना होगा।"

डॉक्टर साहब बेचारे हतबुद्धि होकर कंचन के मुंह की ओर ताकते रहे।

कंचन बोली, "अच्छा अब समझी, आप इसी सोच में पड़े हैं कि मेरा क्या होगा? यदि अहंकार की मात्रा बहुत न बढ़ती हो तो आपको यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मेरे बिना आपका एक दिन भी नहीं चल सकता। मेरी

अनुपस्थिति में तो पन्द्रहवीं आश्विन को आप पन्द्रहवीं अक्टूबर समझ बैठते हैं। जिस दिन घर में अपने सहयोगी अध्यापक को भोजन के लिए आमन्त्रित करते हैं, उसी दिन लायब्रेरी का द्वार बन्द करके कोई 'निदारुण इक्वेशन' सुलझाने में लग जाते हैं। नवीन बाबू सोचते होंगे कि मैं बात बढ़ा-चढ़ाकर कर रही हूं।''

''आज ऐसी अशुभ बातें...।''

''सब अभी खत्म हो जाएंगी। आप चलें तो मेरे साथ अपने काम पर, छूटी हुई गाड़ी फिर लौट आएगी।''

डॉक्टर साहब मेरी ओर देखकर बोले, ''तुम्हारी क्या सलाह है नवीन?''

मैं क्षण भर स्तब्ध रहकर बोला, ''कंचन देवी से अधिक अच्छा परामर्श कोई नहीं दे सकता।''

कंचन ने उठकर मेरे चरण छूकर प्रणाम किया। मैं संकुचित होकर पीछे हट गया।

कंचन बोली, ''संकोच न कीजिए। आपकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूं, यह बात किसी दिन साफ हो जाएगी। आज आपसे यहीं अन्तिम विदा लेती हूं, जाने से पूर्व अब भेंट न होगी।''

''यह कैसी बात कह रही हो, दीदी?'' डॉक्टर साहब ने पूछा।

''दादू...।'' इतना ही कह सकी कंचन।

मैंने उसी क्षण डॉक्टर साहब की पग-धूलि का स्पर्श किया।

उन्होंने मुझे छाती से लगाकर कहा, ''मैं जानता हूं नवीन कि तुम्हारी कीर्ति का पथ तुम्हारे सामने प्रशस्त है।''

अपने स्थान पर लौटकर पहला रिकॉर्ड निकाला, उसे देखते ही मन में सहसा आनन्द उमड़ आया। समझा, मुक्ति इसी को कहते हैं। सान्ध्य वेला में दिन भर का काम समाप्त करके बरामदे में आते ही अनुभव हुआ कि पंछी पिंजरे से भले ही आजाद हो गया है, किन्तु उसके पैरों में जंजीर की एक कड़ी अब भी उलझी हुई है जो हिलते-डुलते बज उठती है।

❑❑

धन का मोह

क्रोध से थर-थर कांपता वृन्दावन कुण्डू अपने पिता के पास आकर बोला, "मैं इसी समय आपसे विदा लेना चाहता हूं।"

उसके पिता जगन्नाथ कुण्डू के चेहरे पर घृणा और क्रोध के मिले-जुले भाव उभर आए। वे बोले, "अरे स्वार्थी! अरे कृतघ्न!! तेरे पालन-पोषण पर मैंने जो पैसा खर्च किया है, उसे चुकाकर ही ऐसी धमकी देना।"

जगन्नाथ के घर का जिस प्रकार का खान-पान था, उस पर कुछ अधिक खर्च न होता था। पुराने सिद्धांतों और रीति-रिवाजों की दुहाई देकर जगन्नाथ बाबू अल्प व्यय में विश्वास रखते थे।

जब तक वृन्दावन अविवाहित था, उसका निर्वाह जैसे-तैसे चलता रहा, किन्तु विवाह के पश्चात् उनका अल्पव्यय, आत्मसन्तोष वाला सुन्दर सिद्धान्त उसे न भाया। उसने पिता के उस आदर्श को त्यागना शुरू कर दिया। उसके विचार सांसारिक सुख-ऐश्वर्य के सम्बन्ध में आध्यात्मिक से शारीरिकता की ओर परिवर्तित हो रहे थे और खाने-पीने की कमी, भूख, प्यास, सर्दी-गर्मी आदि जो कष्ट भी सामने आते हैं, उसने उन्हें सहना पसन्द न करके संसार के दूसरे व्यक्तियों के आचरण का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया था।

जब से वृन्दावन ने अपने पिता के निर्मित उच्च आदर्श को त्याग कर अपने नए आदर्शों पर चलना आरम्भ किया, तभी से बाप-बेटे में क्लेश होने लगे। इस कलह-कलेश की इन्तिहा तो तब हो गई जब एक बार वृन्दावन की पत्नी काफी बीमार हो गई। वृन्दावन के पिता ने उसके इलाज के लिए एक साधारण वैद्य को बुलवाया। यहां तक का व्यवहार भी सहन करने के योग्य था; किन्तु जब वैद्य ने रोगिणी के लिए एक अधिक मूल्य की औषधि मंगाने का आग्रह

किया तो जगन्नाथ ने समझ लिया कि वैद्यराज अयोग्य और वैद्यक के नियमों से बिल्कुल अपरिचित हैं।

बस उसने उसी समय उन्हें घर से बाहर निकलवा दिया। वृन्दावन ने पहले तो पिता से काफी अनुनय-विनय की कि औषधि मंगा लें। पिता के राजी न होने पर झगड़ा भी किया, परन्तु पिता के कान पर जूं तक न रेंगी।

अन्त में जब पत्नी स्वर्ग सिधार गयी तो वृन्दावन के क्रोध की सीमा न रही। उसने अपने पिता को उसका हत्यारा ठहरा दिया।

जगन्नाथ ने स्वभावानुसार उसको समझाने का बहुत प्रयत्न किया और कहा, "तुम कैसी नासमझी की बातें करते हो? क्या लोग महंगी दवाएं खाकर नहीं मरते; यदि महंगी दवाएं ही आदमी को जीवित रख सकती होतीं तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा क्यों मरते? इससे पहले तुम्हारी मां और दादी मर चुकी हैं, बहू मर गयी तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ा? समय आने पर प्रत्येक व्यक्ति को यह नश्वर शरीर त्यागना होता है।"

वृन्दावन यदि अल्पमति या नासमझ होता तो सम्भव था कि वह इन बातों से कुछ सान्त्वना प्राप्त कर लेता। मगर वह नई पीढ़ी का था। नई पौध, नया खून और...। नई पौध का चरित्र इतना बिगड़ चुका है कि वह पुराने ढंग पर मरना पसन्द नहीं करती। जिन दिनों की यह घटना है, उन दिनों अंग्रेज भारत में नए-नए आए थे; किन्तु उस समय भी इस देश के बड़े-बूढ़े अपनी-अपनी औलाद के स्वभाव-विरुद्ध ढंग पर आश्चर्य और विकलता प्रकट किया करते थे और अन्त में जब उनकी एक न चलती तो अपने मुंह से लगे हुए हुक्कों से सान्त्वना प्राप्त करने का प्रयत्न करते।

वास्तविकता यह है कि जिस समय मामला चरम सीमा को पहुंच गया और वृन्दावन से न रहा गया तो उसने आवेश तथा विकलता के साथ अपने पिता से अलग होने की बात कह डाली।

पिता ने लाख समझाया-धमकाया, मगर वह अपने निर्णय पर अटल रहा। दृढ़ रहा। पिता ने उसे दृढ़ देखकर उसी समय घोषणा करते हुए कहा, "चाहे देवता मेरे ढंग को गोहत्या के समान क्यों न समझें, मैं शपथ खाकर कहता हूं कि तुम्हें अपनी धन-सम्पत्ति से एक फूटी कौड़ी भी नहीं दूंगा।"

"यदि मैं तुम्हारी एक पाई तक को भी हाथ लगाऊं तो उस व्यक्ति से भी नीच होऊंगा जो अपनी मां को बुरे भाव से देखता है।" वृन्दावन के मुख से आवेश में निकल गया।

गांववासियों ने अपने-जैसे विचारों के, लम्बे-चौड़े वाद-विवाद के पश्चात् उस छोटे-से परिवर्तन-भरे झगड़े को सन्तोषपूर्वक देखा। जगन्नाथ ने चूंकि अपने बेटे को अपनी सम्पत्ति से वंचित कर दिया था, अत: प्रत्येक व्यक्ति उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न करने लगा।

वे सब इस विषय में सहमत थे कि केवल पत्नी की खातिर पिता के साथ झगड़ा करने का दृश्य इस नए युग में ही देखा जा सकता है।

इसके सम्बन्ध में वे स्वयं जो कारण बताते थे, वे भी बहुत असंगत थे। उनका कहना था कि यदि किसी की पत्नी मर जाए तो बड़ी सरलता से दूसरी प्राप्त कर सकता है, पर यदि पिता मर जाए तो संसार भर के धन-ऐश्वर्य के बदले में भी वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता। इस बात में सन्देह नहीं कि उनका उपदेश हर प्रकार से ठीक था; किन्तु दूसरा पिता प्राप्त करने की पीड़ा शायद उस पथभ्रष्ट बेटे को प्रभावित न करती। यदि ऐसा अवसर आता तो वह उसे ईश्वर इच्छा समझकर स्वीकार कर लेता।

वृन्दावन के अलग होने का दु:ख उसके पिता जगन्नाथ को तनिक भी अनुभव न हुआ। इसके कुछ विशेष कारण थे। एक तो यह कि उसके चले जाने से घर का खर्च कम हो गया, दूसरे हृदय से एक भारी चिन्ता दूर हो गयी। उसे हर समय इस बात का भय रहता था कि मेरा बेटा मुझे विष देकर न मार दे। जब कभी वह अपना थोड़ा-सा भोजन करने बैठता तो यही विचार उसे विकल कर देता कि इसमें विष न मिला हुंआ हो। यही चिन्ता किसी सीमा तक वृन्दावन की पत्नी का स्वर्गवास हो जाने पर दूर हो गयी थी, किन्तु अब वह बिल्कुल ही न रही। इतना सब होने पर भी बूढ़े जगन्नाथ के कठोर हृदय में भी एक निर्बलता शेष थी। वृन्दावन जाते समय अपने साथ अपने चार-वर्षीय पुत्र गोकुलचन्द को भी ले गया था। चूंकि उसकी खुराक और वस्त्रों का खर्च बहुत कम था, इसलिए जगन्नाथ को उससे बहुत प्रेम था वे दोनों चले गए तो सबसे पहले दु:ख और पछतावे की बजाय उसने अपने मन में यह हिसाब लगाया कि इन दोनों के चले जाने से खर्च में कितनी कमी हो जाएगी। इस बचत की वार्षिक रकम कहां तक पहुंचेगी और इस बचत को यदि किसी रकम का सूद समझा जाए तो उसका मूलधन कितना हो सकेगा।

जब तक गोकुलचन्द घर में था, वह अपनी चपलता से जगन्नाथ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित रखता था; परन्तु उसके चले जाने पर कुछ दिनों में ही बूढ़े को ऐसा अनुभव होने लगा कि घर काटने को दौड़ता है।

इससे पहले जिस समय जगन्नाथ पूजा-पाठ में तल्लीन होता तो गोकुलचन्द उसे छेड़ा करता। भोजन करते समय उसके आगे से रोटी या चावल उड़ाकर भाग जाता और स्वयं खा लेता और जब वह आय-व्यय लिखने बैठता तो उसकी दवात लेकर दौड़ जाता, किन्तु अब उसके चले जाने पर ये सब बातें भी समाप्त हो गयीं।

जीवन में प्रतिदिन का क्रियाकलाप उसे भार लगने लगा। उसे ऐसा मालूम होता था कि इस प्रकार का विश्राम भविष्य के संसार में ही सहन किया जा सकता है। जब कभी वह गोकुल की चंचलता को स्मरण करता और रजाइयों में उसके हाथों के छेदों या दरी पर कलम-दवात से उसके बनाए हुए भद्दे चित्रों को देखता तो उसका हृदय कष्ट के मारे बैठ जाता।

जगन्नाथ को अपने सोने के कमरे में एक कोने के अन्दर पड़ी हुई पुरानी धोती के टुकड़े दिखाई पड़े तो सहसा उसके नेत्रों से अश्रु बह निकले। यह वह धोती थी जिसे गोकुल ने दो वर्ष के अल्प समय में फाड़ दिया था। इस पर जगन्नाथ ने उसे झिड़का और बुरा-भला कहा था। किन्तु अब उसने इन टुकड़ों को उठाकर बड़ी सावधानी से अपने सन्दूक में रख लिया और इसकी शपथ खा ली कि यदि गोकुल उसके जीते-जी कभी वापस आ गया तो चाहे वह हर वर्ष एक धोती फाड़े, वह उससे कभी रुष्ट नहीं होगा। परन्तु गोकुल को न वापस आना था, न आया। जगन्नाथ दिन-प्रतिदिन वृद्ध होता जा रहा था और उसको खाली घर अधिक-से-अधिक भयावह दिखाई पड़ता था। अन्त में दशा यहां तक पहुंची कि वह सन्तोष से घर में बैठ भी न पाता। मध्याह्न-समय जब गांव के सब लोग अपने-अपने घरों में सोए होते तो जगन्नाथ नारियल हाथ में लिए गलियों में घूमता दिखाई देता।

गांव के लड़के जब कभी उसे अपनी ओर आता देखते तो खेलना छोड़कर दूर जा खड़े होते और इस प्रकार की पद्य-पंक्ति गाने लगते जिसमें एक स्थानीय कवि ने वृद्ध जगन्नाथ के मितव्ययी स्वभाव की प्रशंसा की थी।

कोई व्यक्ति भय के मारे उसका वास्तविक नाम इस डर से जबान पर न लाता कि कहीं उसे उस दिन अन्न-जल प्राप्त न हो। अतः लोगों ने उसके अनेक प्रकार के नाम रख छोड़े थे। वृद्ध उसे जगन्नाथ कहा करते थे, परन्तु मालूम नहीं छोटे लड़के उसे चिड़ियल क्यों कहते थे। सम्भव है इसका कारण यह हो कि उसका चर्म शुष्क और शरीर रक्तहीन दिखाई देता था। इन्हीं कारणों से वह प्रेत

आत्माओं के समान समझा जाता था। एक दिन मध्याह्न-समय जब जगन्नाथ स्वभावानुसार गांव की गलियों में आम के छतनारे वृक्षों के नीचे अपना नारियल हाथ में लिए फिर रहा था तो उसने देखा कि एक लड़का, जो देखने में अपरिचित मालूम होता था, गांव के लड़कों का मुखिया बना हुआ है और उन्हें कोई नई शरारत समझा रहा है।

उसके महान चरित्र और उसकी कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित होकर सब लड़कों ने उसे अपना नेता मान लिया था। दूसरे लड़कों की भांति वह वृद्ध जगन्नाथ को अपनी ओर आता देखकर भय से भागा नहीं, बल्कि उसके समीप जाकर चादर झाड़ने लगा। उसी समय उसमें से एक जीवित छिपकली निकलकर वृद्ध के शरीर पर गिरी और उसकी पीठ की ओर से नीचे उतरकर वन की ओर भाग गयी।

भय से वृद्ध के हाथ-पांव कांपने लगे। यह देखकर सब लड़के प्रसन्नता से भरकर शोर मचाने लगे। वृद्ध जगन्नाथ बड़बड़ाता और गालियां देता हुआ दूर निकल गया। उस भाग-दौड़ में वह अंगोछा, जो प्रायः उसके कन्धों पर पड़ा रहा करता था, सहसा गायब हो गया और दूसरे ही क्षण उस अपरिचित लड़के के सिर पर बंधी हुई पगड़ी के रूप में दिखाई देने लगा।

लड़के की ओर से इस प्रकार की चेष्टा देखकर जगन्नाथ पहले तो कुछ चिन्तित हुआ, फिर वह गांव वालों की प्रतिदिन की उपेक्षा से इस प्रकार पराजित होते देखकर प्रसन्न भी हुआ। काफी दिनों से लड़के उसकी छाया देखकर ही दूर भाग जाया करते थे और उसे उनसे बोलने तथा बातचीत करने का अवसर ही न मिलता था।

अपरिचित लड़का इस शरारत के पश्चात् दूर भाग गया था। किन्तु बहुत से वचन और सान्त्वना देने के पश्चात् वह उस वृद्ध के समीप आया। फिर दोनों में बातें होने लगीं—

"बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?"

"नितईपाल।"

"घर कहां है?"

"मैं नहीं बताऊंगा।"

"क्यों नहीं बताओगे?"

"मैं घर से भागकर आया हूं।"

"भागे क्यों थे?"

"मेरा पिता मुझे स्कूल जाने को कहता था।"

जगन्नाथ के हृदय में विचार आया, ऐसे होनहार लड़के को स्कूल भेजना कैसी व्यर्थ की बात है? भविष्य के परिणाम की ओर से आंखें मींचे रहने वाला वह कैसा पिता होगा, जो इसे स्कूल भेजना चाहता है।

थोड़ी देर पश्चात् वह कहने लगा, "अच्छा, तुम मेरे घर रहना पसन्द करोगे।"

लड़के ने उत्तर दिया, "हां।"

उसी दिन से वह नितईपाल उसके घर रहने लगा। उसे घर में प्रवेश करते हुए भी भय न हुआ। इतना ही नहीं, बल्कि उसने अपने वस्त्र और भोजन के विषय में ऐसे निर्भयतापूर्ण ढंग पर प्रश्न करने आरम्भ किए, जैसे वह उस घर में वर्षों से रहता रहा हो। यदि कोई वस्तु उसकी इच्छानुसार न होती तो वह जगन्नाथ से झगड़ा करता। जगन्नाथ अपने बेटे को तो डरा-धमका भी लेता, परन्तु उसे बस में लाना सरल न था। उसे उसकी हर बात माननी पड़ती ताकि वह भी कहीं भाग न जाए।

गांव के लोग आश्चर्य में थे कि जगन्नाथ ने नितईपाल को क्यों इस प्रकार सिर पर चढ़ा रखा है। यह सर्वविदित था कि वृद्ध अब कुछ दिन नहीं तो कुछ सप्ताह का मेहमान है और वे इस बात को सोचकर बहुत दुःखी थे कि उसके मरने पर उसकी सम्पत्ति का अधिकारी यही लड़का होगा।

वे सब इस बात पर लड़के से ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होंने यह भी सोच लिया था कि लड़के को हानि पहुंचाने का प्रयत्न करेंगे; परन्तु जगन्नाथ उसकी ऐसी निगरानी रखता जैसे वह उसकी कीमती वस्तु हो।

कभी-कभी लड़का धमकी देकर कहता, "मैं घर चला जाऊंगा।"

ऐसे अवसर पर वृद्ध जगन्नाथ लोभ-लालच का जाल बिछाकर कहता, "मैं अपनी सारी सम्पत्ति तुमको ही दे दूंगा।"

लड़का हर प्रकार से कम आयु का था, तब भी इस वचन के महत्व को खूब समझता था।

गांव वालों से और कुछ न हो सकता तो उन्होंने उस लड़के के बाप के सम्बन्ध में जांच आरम्भ की। उनको यह सोचकर बहुत दुःख होता था कि उसके माता-पिता उसकी याद में दुखी होंगे। लड़का बड़ा शैतान और निष्ठुर है,

जो उन्हें इस प्रकार छोड़कर भाग आया। वे इसे हजार-हजार गालियां देते होंगे। किन्तु ये सब बातें वे जिस आवेश में करते थे, इससे स्पष्ट प्रतीत होता था कि वे न्याय नहीं ईर्ष्या से काम ले रहे हैं।

एक दिन वृद्ध को किसी राहगीर की जबानी पता चला कि दामोदर पाल अपने बेटे की खोज में समीप के गांवों और कस्बों में फिर रहा है और कुछ ही समय में वह इस गांव में पहुंच जाएगा।

नितई ने जब यह बात सुनी तो सहज भाव से उसके हृदय के प्रेम का आवेश आया। वह उद्विग्नता की दशा में धन-सम्पत्ति छोड़कर अपने पिता के पास जाने को बेचैन हो गया। जगन्नाथ ने उसे रोकने की बहुत कोशिश की, मगर जब लड़के ने जिद न छोड़ी तो उसने कहा कि तुम्हारा बाप तुम्हें मारेगा। मैं तुम्हें एक ऐसे स्थान पर छिपा दूंगा कि किसी को भी तुम्हारा पता न मिल सके; यहां तक कि गांव वाले भी मालूम न कर सकेंगे।

इस बात से लड़के के हृदय में आश्चर्य उत्पन्न हुआ और वह कहने लगा, ''बाबा, मुझे कहां छिपाओगे? भला वह स्थान तो मुझे भी दिखा दो।''

''यदि वह स्थान मैं इस समय दिखाऊंगा तो लोगों को खबर हो जाएगी, रात हो जाने दो।''

बच्चों में आश्चर्यजनक स्थान देखने की उत्कट लालसा होती है; नितई भी उसी तरह यह बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने अपने हृदय में विचारा कि जब मेरे पिता मेरी खोज करने के पश्चात् वापस चले जाएंगे तो मैं दौड़ लगाकर लड़कों के साथ उस स्थान पर आंख-मिचौली खेला करूंगा और कोई मालूम न कर सकेगा कि मैं कहां छिपा हूं—वास्तव में उस समय बड़ा आनन्द आएगा। पिताजी सम्पूर्ण गांव छान मारेंगे और मुझे कहीं न पा सकेंगे, तो बड़ा आनन्द होगा।

मध्याह्न के समय जगन्नाथ लड़के को कुछ समय के लिए मकान में बन्द करके कहीं चला गया। उसके वापस आने पर नितई ने उससे इतने प्रश्न किए कि वह परेशान हो गया। अन्त में जब रात होने को हुई तो नितई कहने लगा, ''बाबा, अब तो वह स्थान मुझे दिखा दो।''

''अभी रात नहीं हुई।'' जगन्नाथ ने कहा।

इसके कुछ समय पश्चात् लड़के ने फिर कहा, ''बाबा, अब रात बहुत हो गयी है, अब तो चलो।''

जगन्नाथ ने धीरे-से कहा, "अभी गांव के लोग सोए नहीं हैं।"

नितई फिर कुछ देर के लिए रुका और बोला, "बाबा! इस समय तो सब लोग सो गए हैं, आओ अब चलें।"

रात बहुत बीत चुकी थी। वह लड़का कभी इतनी देर तक नहीं जागा था, इसलिए उसे जागते रहने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। नींद को आंखों से दूर धकेलने के लिए उसे कठोर संघर्ष करना पड़ रहा था। अन्त में आधी रात के समय जगन्नाथ लड़के की बांह पकड़कर गांव की अंधेरी गलियों से रास्ता टटोलता बाहर निकला।

सब दिशाएं सूनी थीं, चारों ओर सन्नाटा था, कभी-कभी कोई कुत्ता भौंकने लगता तो गांव के दूसरे कुत्ते भी उसके साथ मिलकर भौंकना आरम्भ कर देते। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं उसके पैरों की आहट से कोई पक्षी वृक्ष की टहनी से पंख फड़फड़ाता हुआ उड़ जाता।

नितई भय से कांप रहा था, किन्तु जगन्नाथ ने उसका हाथ दृढ़ता से पकड़ा हुआ था। कई खेतों में से होकर अन्त में ये लोग जंगल में दाखिल हुए। यहां एक जीर्ण-क्षीर्ण मन्दिर खड़ा हुआ था, जिसमें किसी भी देवता की मूर्ति दिखाई न पड़ती थी।

नितई ने उसे देखकर निराशा-भरे स्वर में कहा, "क्या, यही स्थान था?"

यह स्थान उसकी कल्पना से सर्वथा भिन्न था; ऐसे स्थान में उसके लिए किसी प्रकार की नवीनता नहीं थी, जब से वह घर से भागा था, अनेक बार ऐसे खंडहर मन्दिरों में रातें व्यतीत कर चुका था। इतना होने पर भी आंख-मिचौली खेलने के लिए यह स्थान ठीक ही था अर्थात् ऐसा कि उसके साथ खेलने वाले लड़के यहां उसे खोज न सकेंगे।

जगन्नाथ ने फर्श के बीच से एक पत्थर की सिल उठायी। उसके नीचे आश्चर्यचकित लड़के को एक तहखाना दिखाई दिया, जिसमें एक धीमा-सा दीप जल रहा था। भय और आश्चर्य दोनों बातें उसके हृदय पर जमी हुई थीं। अन्दर एक बांस की सीढ़ी खड़ी थी। जगन्नाथ नीचे उतरा। नितई भी उसके पीछे उतरने लगा।

नीचे उतरकर लड़के ने इधर-उधर देखा तो उसे अपने चारों ओर पीतल के टोकने पड़े हुए दिखाई दिए। उसके मध्य में एक आसन बिछा हुआ था और सामने थोड़ा सिन्दूर, घिसा हुआ चन्दन, कुछ जंगली फूल और पूजा की शेष सामग्री रखी हुई थी।

लड़के ने अपनी जिज्ञासा-पूर्ति के लिए उन टोकनों में से कुछ के अन्दर हाथ डाला और जब बाहर निकालकर देखा तो मालूम हुआ कि उनमें रुपए और सोने की मोहरें भरी हुई हैं। इतने में वृद्ध जगन्नाथ ने नितई से कहा, "नितई! मैंने तुमसे कहा था न कि मैं अपनी सारी सम्पत्ति तुम्हें दे दूंगा। मेरे पास कोई अधिक सम्पत्ति नहीं है, किन्तु जो कुछ भी है वह इन पीतल के टोकनों में भरी है और यह सब मैं आज तुम्हारे हवाले करना चाहता हूं।"

नितई प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा और बोला, "सच! क्या तुम इनमें से एक रुपया भी अपने पास न रखोगे?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "यदि मैं इसमें से कुछ लूं तो भगवान करे मेरा वह हाथ कोढ़ी हो जाए—किन्तु यह सम्पत्ति मैं तुम्हें एक शर्त पर देता हूं। यदि कभी मेरा पोता गोकुलचन्द या उसका भी पोता या परपोता या उसकी औलाद में से कोई व्यक्ति भी इस रास्ते से होकर जाए तो तुम्हारे लिए अनिवार्य होगा कि यह सारी सम्पत्ति उसको सौंप दो।"

लड़के ने थोड़ा ध्यान से सोचा और निश्चय के साथ विचारा कि वृद्ध पागल हो गया है। फिर कहने लगा, "बहुत अच्छा, ऐसा ही करूंगा।"

जगन्नाथ ने कहा, "बस तो इस स्थान पर बैठ जाओ।"

"क्यों?"

"तुम्हारी पूजा की जाएगी।"

लड़के ने चकित होकर पूछा, "पूजा? कैसी पूजा? और क्यों!"

"इसलिए कि यही रीति है।"

लड़का उछलकर तुरन्त आसन पर बैठ गया। वृद्ध जगन्नाथ ने उसके माथे पर चन्दन लगाया, भृकुटियों के मध्य सिन्दूर की बिन्दी लगा दी, जंगली पुष्पों का हार उसके गले में डाला और कुछ मन्त्रों का उच्चारण करने लगा। बेचारा नितई देवता की भांति आसन पर बैठा-बैठा उकता गया,क्योंकि उसकी पलकें नींद से भारी हो रही थीं। अन्त में उसने घबराकर कहा, "बाबा!"

परन्तु जगन्नाथ उत्तर दिए बिना ही मन्त्र पढ़ता रहा।

अन्त में मन्त्रों का सिलसिला समाप्त हुआ और जगन्नाथ ने बड़ी कठिनाई से एक टोकने को खींचकर लड़के के सम्मुख रखा और ये शब्द उसके मुख से बलात् कहलवाए, "मैं सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूं कि इस सारी धन-सम्पत्ति को गोकुलचन्द कुण्डू या वृन्दावन कुण्डू वल्द जगन्नाथ कुण्डू या गोकुलचन्द

कुण्डू के बेटे, पोते, परपोते; या उसकी औलाद के किसी व्यक्ति को जो इसका वास्तविक और योग्य उत्तराधिकारी होगा, दे दूंगा।"

अनेक बार शब्दों के कहने में भोले लड़के की चेतना जाती रही और कण्ठ सूखने लगा।

जैसे-तैसे यह रस्म समाप्त हुई, गुफा की वायु दीपक के धुएं और उन दोनों के सांस के कारण बुरी मालूम होने लगी।

नितई को अपना कण्ठ मिट्टी की भांति सूखा और हाथ-पांव जलते हुए अनुभव हो रहे थे। बेचारे का दम घुटा जा रहा था। दीपक धीरे-धीरे मद्धिम होता गया, यहां तक कि अन्तिम झोंका खाकर बुझ गया। इसके पश्चात् अंधेरा। नितई को ऐसा लगा कि वृद्ध जल्दी-जल्दी सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहा है। उसने घबराकर पूछा, "बाबा, तुम कहां जा रहे हो?"

जगन्नाथ ने निरन्तर ऊपर की ओर चढ़ते हुए उत्तर दिया, "मैं अब जाता हुं, तुम यहां रहो। यहां तुम्हें कोई ढूंढ न सकेगा। वृन्दावन के बेटे और जगन्नाथ के पोते गोकुलचन्द का नाम याद रखना।"

इसके पश्चात् उसने ऊपर जाकर सीढ़ी खींच ली। लड़के ने अवरुद्ध और दयनीय स्वर में कहा, "मैं अब अपने पिता के पास जाना चाहता हूं, यहां मुझे भय लगता है।"

जगन्नाथ ने उसकी परवाह न करते हुए गुफा के मुंह पर पत्थर की शिला रख दी। इसके पश्चात् दोनों जंघाओं को मोड़कर झुका और अपने कान पत्थर के समीप लगाकर सुनने लगा। अन्दर से आवाज आयी, "बाबा जी ! बाबा जी!" फिर किसी भारी वस्तु के फर्श पर गिरने की आवाज सुनाई दी और इसके बाद निस्तब्धता छा गयी।

इस प्रकार अपनी सम्पत्ति उसको सौंपकर वृद्ध जगन्नाथ ने जल्दी-जल्दी पत्थर के ऊपर मिट्टी डालना आरम्भ कर दिया। उस पर उसने टूटी-फूटी ईंटें और चूना रख दिया और फिर मिट्टी बिछाकर उसमें जंगली घास और बूटियों की जड़ें गाड़ दीं।

रात सम्भवतः समाप्त हो चुकी थी। परन्तु वह उस स्थान से हटकर घर न जा सका, रह-रहकर अपना कान पृथ्वी पर लगाता और आवाज सुनने का प्रयत्न करता। ऐसा मालूम होता था कि अब भी उस गुफा के अन्दर या पृथ्वी की अथाह गहराइयों में से एक वेदनायुक्त क्रन्दन सुनाई दे रहा है।

उसे ऐसा भान होता था कि रात में आकाश पर केवल वही एक आवाज छाई हुई है और संसार के सब व्यक्ति उस आवाज से जागकर बिस्तरों में बैठे उसे सुनने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पागल वृद्ध आवेश में आकर और अधिक मिट्टी डाले जाता था। वह चाहता था कि उस आवाज को दबा दे; किन्तु इस पर भी रह-रहकर वह आवाज उसके कानों में आ रही थी, "बाबा जी ! हाय बाबा जी !"

उसने पूरी शक्ति से धरती पर पांव मारकर चिल्लाते हुए कहा, "चुप रहो, लोग तुम्हारी आवाज सुन लेंगे।"

फिर भी उसे मालूम हुआ कि "हाय बाबा जी! हाय बापू!" की आवाजें रह-रहकर सुनाई दे रही हैं।

इतने में सूर्य उदय हुआ और जगन्नाथ कुण्डू मन्दिर को छोड़कर खेतों की ओर आ गया। वहां भी किसी ने उसके पीछे से आवाज दी, "बापू!"

घबराहट की दशा में जगन्नाथ ने पीछे फिर कर देखा तो उसका पुत्र वृन्दावन था।

वृन्दावन कहने लगा, "मुझे पता चला है कि मेरा बेटा आपके घर में छिपा हुआ है, उसे मुझे दे दो।"

यह सुनकर वृद्ध के नेत्र विस्तृत हो गए, मुंह चौड़ा हो गया और उसने मुड़कर पूछा, "क्या कहा? तुम्हारा बेटा?"

वृन्दावन ने कहा, "हां, मेरा बेटा गोकुल, अब उसका नाम नितईपाल है और मैंने अपना नाम दामोदर पाल प्रसिद्ध कर रखा है। तुम्हारी मनहूसी और कंजूसी की बात चारों ओर इतनी अधिक फैल चुकी थी कि विवश होकर मुझे अपना वास्तविक नाम बदलना पड़ा, वरना सम्भव था कि लोग हमारा नाम लेने से सकुचाते।"

वृद्ध ने धीरे-से दोनों हाथ सिर के ऊपर उठाए। उसकी उंगलियां इस प्रकार कांपने लगीं, मानो वह वायु में किसी अदृश्य वस्तु के पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों।

फिर वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तो वह अपने बेटे की बांह पकड़कर, उसे घसीटता हुआ पुराने मन्दिर के समीप ले गया और पूछने लगा, "तुम्हें इसके अन्दर से रोने की आवाज सुनाई देती है।"

वृन्दावन ने उत्तर दिया, "नहीं।"

वृद्ध ने कहा, "ध्यान से सुनो, कोई आवाज अन्दर से 'बाबा जी! बाबा जी!' कहती सुनाई नहीं देती।"

वृन्दावन ने फिर कान लगाकर उत्तर दिया, "नहीं।"

इससे वृद्ध जगन्नाथ की चिन्ता किसी सीमा तक दूर हो गयी, साथ ही उसके मस्तिष्क ने भी उसे जवाब दे दिया।

उस दिन के पश्चात् उसकी दशा यह थी कि वह गांव में आवारा फिरता और लोगों से पूछा करता, "तुम्हें किसी के रोने की आवाज तो नहीं सुनाई देती?"

लोग उसके पागलपन पर ठहाका लगाते।

इसके लगभग चार वर्ष पश्चात् जगन्नाथ मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। संसार का प्रकाश धीरे-धीरे उसके नेत्रों के सामने से दूर होता जा रहा था और सांस अधिक कष्ट से आने लगी थी। सहसा वह विक्षिप्त अवस्था में उठकर बैठ गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर को उठा लिए और वायु में इस प्रकार चलाने लगा जैसे वस्तु को टटोल रहा हो और कहने लगा, "मेरी सीढ़ी किसने उठा ली?"

उस भयानक बन्दी-गृह में से, जहां न देखने को प्रकाश और न सांस लेने के लिए वायु थी, बाहर निकलने के लिए सीढ़ी न पाकर वह फिर अपनी मृत्यु-शय्या पर गिर पड़ा और जहां संसार की स्थायी आंख-मिचौली के खेल में कोई छिपने वाला पाया नहीं गया, उस श्रेणी में उसका लोप हो गया।

वह लोभी अपने लोभ के कारण अपने ही वंशज को खा गया।

❑❑

42

एक रात

सुरबाला के साथ मैं पाठशाला जाता था। आंख-मिचौनी खेलने में भी मैं उसका साथी रहा था। मैं अक्सर उसके घर जाया करता था। सुरबाला की मां मुझे बहुत प्यार करती थीं। किसी-किसी दिन वह हम दोनों को एक साथ खड़ा देखतीं और आपस की बातचीत में कहतीं, 'दोनों की जोड़ी कैसी अच्छी लगती है!'

तब मैं छोटा जरूर था, पर उनकी इस बात के माने समझने में मैंने गलती की हो, ऐसा तो नहीं जान पड़ता। कारण, बचपन से ही मेरे मन में यह धारणा जमकर बैठ गई थी कि सुरबाला पर औरों की तुलना में मेरा कुछ विशेष अधिकार है। उस विशेषाधिकार के मद में आकर मैंने उस पर रोब तो जमाया ही है और अन्याय भी किया हो तो ताज्जुब नहीं। पर सुरबाला की तरफ से इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उसने काफी सहनशील बनकर मेरी सब तरह की आज्ञाओं का यथासंभव पालन किया है और न करने पर मैंने जो सजा दी है, उसे मंजूर भी किया है।

महल्ले में उसके रूप की सब तारीफ करते थे, पर मुझ जैसे आवारा और उद्दंड लड़के की निगाह में उस सुंदरता की कोई खास कीमत नहीं थी। मैं समझता था कि सुरबाला सिर्फ मेरा प्रभुत्व मानने के लिए ही अपने बाप के घर पैदा हुई है, लिहाजा मेरे लिए यह खासतौर से उपेक्षा की पात्र है।

मेरे पिता गांव के जमींदार चौधरियों के यहां नायब थे। उनकी इच्छा थी कि लिखाई में मेरा हाथ सध जाने पर मुझे जमींदारी सरिश्ते का काम सिखाकर कहीं गुमाश्ते के काम पर लगा देंगे, पर मैं उनकी इस बात से मन ही मन नाराज था। हमारे महल्ले का नीलरतन जैसे कलकत्ता भागकर वहां पढ़-लिखकर

कलेक्टर साहब के नीचे नाजिर बन गया है, मेरे जीवन का लक्ष्य भी लगभग वैसा ही बहुत ऊंचा था। अगर कलेक्टर का नाजिर न हो सका, तो कम-से-कम दूसरी किसी अदालत का हेड क्लर्क तो बनूंगा ही। यह मैंने मन-ही-मन तय कर रखा था।

मैं बचपन से ही देखता आया हूं कि मेरे बाप उक्त अदालतजीवियों का बहुत ज्यादा सम्मान करते थे। नाना उपलक्षों पर मछली, साग-तरकारी, रुपये-पैसे आदि से उनकी पूजा-अर्चना की जाती थी। ये बातें मुझसे छिपी नहीं थीं, इसीलिए अदालत के छोटे-से-छोटे कर्मचारी, यहां तक कि प्यादों तक को भी मैंने अपने मन में खूब सम्मान का आसन दे रखा था। असल में ये हमारे देश के पूज्य देवता हैं। तेंतीस कोटि के छोटे-छोटे नए-नए संस्करण! जमीन-जायदाद संबंधी सिद्धि लाभ के लिए तो स्वयं सिद्धिदाता गणेश से भी इन पर लोगों का आंतरिक भरोसा बहुता ज्यादा है। अतः पहले गणेश जी का जो कुछ हक था, आजकल वह हक इन्हीं को मिला करता है।

मैं भी नीलरतन के दृष्टांत से उत्साहित होकर एक दिन मौका पाकर कलकत्ता भाग गया। पहले गांव के एक जान-पहचान वाले के यहां ठहरा। उसके बाद धीरे-धीरे बाप से भी पढ़ाई के लिए कुछ-कुछ मदद मिलने लगी और पढ़ाई नियम से होने लगी।

इसके अलावा मैं सभा-समितियों में भी शामिल हुआ करता था। इस विषय में मैं निस्संदेह हो गया था कि देश के लिए जान न्योछावर कर देने की बड़ी सख्त जरुरत है, पर किस तरह यह दुःसाध्य कार्य हो सकता है—यह मुझे नहीं मालूम था और न कोई राह ही दिखाता था।

फिर भी उत्साह में कोई कमी नहीं थी। हम लोग गंवई गांव के लड़के थे। कलकत्ता के लड़कों की तरह सब बातों को हंसी में उड़ाना नहीं जानते थे, इसलिए हमारी देशभक्ति अत्यंत दृढ़ थी। हमारी सभा के संचालकगण व्याख्यान दिया करते थे और हम लोग चंदे का खाता लेकर बिना खाए-पिए यों ही धौरी-दुपहरी में घर-घर भीख मांगते फिरते थे।

सड़क के किनारे खड़े होकर विज्ञापन बांटा करते, सभा की जगह में जाकर बेंच चौकी वगैरह लगाते और संपति के नाम पर अगर कोई एक बात कह देता तो उससे कमर कसके लड़ने का आमादा हो जाते! शहर के लड़के हमारे इन लक्षणों को देखकर हम लोगों को 'गांव के गंवार' कहने लगते थे।

कलकत्ता आया था नाजिर या सरिश्तेदार बनने, पर मेजिनी गैरिबाल्डी बनने की तैयारियां करने लगा।

इतने में मेरे पिता और सुरबाला के पिता दोनों ही एकमत होकर सुरबाला के साथ मेरे ब्याह की तैयारियां करने लगे।

मैं पंद्रह वर्ष की उमर में कलकत्ता भाग आया था और तब सुरबाला की उमर थी कुल आठ साल की। अब मैं अठारह साल का हूं। पिता का मत है कि मेरी ब्याह की उमर क्रमशः बीतती जा रही है, पर इधर मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली कि आजीवन ब्याह न करूंगा और स्वदेश के लिए मर मिटूंगा। पिता से कह दिया कि पढ़ाई खत्म किए बगैर ब्याह न करूंगा।

दो-चार महीने में ही खबर मिली कि वकील रामलोचन बाबू के साथ सुरबाला का ब्याह हो गया। पतित भारत के लिए मैं तब चंदा वसूली के काम में मशगूल था, लिहाजा यह खबर मुझे बहुत ही मामूली-सी जान पड़ी।

एंट्रेंस पास कर चुका था। फर्स्ट आर्ट्स की परीक्षा देने वाला था, इतने में पिता की मृत्यु हो गई। घर में सिर्फ मैं ही अकेला न था, माता और दो बहनें भी थीं, इसलिए काम-काज की टोह में घूमना पड़ा। बहुत कोशिश करने के बाद मुझे नोआखाली के एक छोटे से कस्बे में एक स्कूल की सेकंड मास्टरी मिली।

सोचा कि अपने योग्य काम मिल गया, अच्छा ही हुआ। उपदेश और उत्साह दे-देकर हर एक विद्यार्थी को भावी भारत का सेनापति बना दूंगा।

काम शुरू कर दिया। देखा कि भावी भारत की अपेक्षा वहां कक्षा की आने वाली परीक्षा या इम्तिहान की हड़बड़ी ही बहुत ज्यादा है। छात्रों को 'ग्रामर' और 'एलजबरा' के अलावा बाहर की और कोई बात समझाने से हेडमास्टर साहब नाराज होते हैं। दो ही महीने के अंदर मेरा उत्साह ठंडा पड़ गया।

मुझ जैसे प्रतिभाहीन लोग घर बैठे अनेक तरह की कल्पनाएं किया करते हैं, लेकिन अंत में कार्यक्षेत्र में उतरने के बाद उनके कंधे पर जब हल रखा जाता है और पीछे से पूंछ मरोड़ी जाती है, तब वे सहिष्णुता के साथ सिर झुकाए हुए दिन भर खेत जोतने का काम करते हैं। उसके एवज में शाम को जो भरपेट भूसा मिल जाता है, उसी में संतुष्ट रहते हैं। उनमें फिर उछल-कूद और उत्साह कुछ भी नहीं रह जाता।

उन दिनों आग लगने की आशंका थी, इसलिए एक मास्टर को स्कूल में ही रहना पड़ता था। मैं छड़ीदा आदमी था, लिहाजा मेरे ही ऊपर यह भार आ पड़ा। स्कूल से सटी हुई एक छोटी-सी झोंपड़ी थी, उसी में मैं रहने लगा।

स्कूल कस्बे से बाहर कुछ दूरी पर था। स्कूल के साथ एक बड़े तालाब और उसके किनारे चारों तरफ सुपारी, नारियल और मदार के पेड़ थे। स्कूल से बिल्कुल सटे हुए दो बड़े-बड़े नीम के पेड़ थे, जिनकी छाया से स्कूल के मास्टर और छात्र काफी फायदा उठाया करते थे।

एक बात का उल्लेख करना भूल गया। अब तक उसे मैं उल्लेख योग्य समझता भी न था। यहां के सरकारी वकील रामलोचन राय का मकान हमारे स्कूल से नजदीक ही था। मुझे यह मालूम था कि उनके साथ उनकी पत्नी, मेरी बाल्य सखी सुरबाला भी रहती है।

रामलोचन बाबू के साथ मेरी जान-पहचान हो गई है। सुरबाला के साथ मेरी बचपन की जान-पहचान थी, यह बात रामलोचन बाबू को मालूम थी या नहीं, मैं नहीं कह सकता। मैंने भी उनसे इस नए परिचय के इस संबंध में कोई बात कहना ठीक नहीं समझा। साथ ही यह बात भी मेरे मन में अच्छी तरह नहीं आई कि सुरबाला का किसी दिन मेरे जीवन के साथ विशेष संबंध था।

एक दिन, छुट्टी के रोज मैं रामलोचन बाबू के घर पर उनसे मिलने गया। याद नहीं, किस विषय में बात चल रही थी—शायद वर्तमान भारत की दुरावस्था के संबंध में कुछ चर्चा कर रहे थे। वह इस बारे में विशेष चिंतित और व्याकुल हों, सो बात नहीं, पर यह विषय ऐसा है कि तंबाकू पीते-पीते इस बारे में दो-एक घंटा अनर्गल बातें करते रहो, तो वक्त मजे में कट जाता है।

इतने में बगल के कमरे में बहुत ही मीठी जरा चूड़ियों की झन-झन, जरा कपड़ों की खस-खस और किसी के कोमल पैरों की जरा कुछ आहट सी सुनाई दी। मैं अच्छी तरह समझ गया कि खिड़की की संध में से कुतूहल पूर्ण नेत्रों से मेरी ओर कोई देख रही है।

उसी क्षण दो आंखों की मुझे याद हो आई। विश्वास, सरलता और शैशव प्रीति से छलकती हुई दो बड़ी-बड़ी आंखें थीं वे। उनमें काले-काले तारे थे और स्थिर स्निग्ध दृष्टि थी उनकी। सहसा मेरे हृदय को मानो किसी ने कड़ी मुट्ठी में दाबकर मसोस दिया और वेदना से मेरा हृदय अधपके फोड़े की तरह टीस मारने लगा।

मैं अपनी झोंपड़ी में लौट आया, पर वह दर्द ज्यों का त्यों बना ही रहा। मैं पढ़ता-लिखता और भी काम करता, पर मन का वह भाव किसी भी तरह दूर न हुआ। मेरा मन सहसा भारी बोझ-सा बनकर छाती की नसें पकड़कर ऐसा झूलने लगा कि उसके मारे मैं बेचैन हो उठा।

शाम को कुछ स्थिर होकर सोचने लगा कि ऐसा क्यों हुआ? मन के भीतर से जवाब मिला, 'तुम्हारी वह सुरबाला कहां गई?'

मैंने उससे कहा, 'मैंने तो उसे अपनी इच्छा से छोड़ दिया है। वह क्या हमेशा मेरे ही लिए बैठी रहती?'

मन के भीतर से किसी ने कहा, 'तब जिसे चाहते ही पा सकते थे, अब अपना सिर दे-दे मारने पर भी उसे एक बार आंखों से देखने तक का अधिकार नहीं मिल सकता! वह बचपन की सुरबाला तुम्हारे कितने ही नजदीक क्यों न रही हो, पर अब तो उसकी चूड़ियों की झनकार सुनो, उसके जूड़े के तेल की सुगंध का अंदाजा लगाते रहो—मगर फिर भी बीच में एक दीवार हर हालत में खड़ी ही रहेगी।'

मैंने कहा, 'रहने दो, सुरबाला मेरी कौन है?'

जवाब मिला, 'माना कि वह आज तुम्हारी कोई भी नहीं है, पर सुरबाला तुम्हारी क्या नहीं हो सकती थी?'

बात तो सच है। सुरबाला मेरी क्या नहीं हो सकती थी? सबसे बढ़कर अंतरंग हो सकती थी, सबसे ज्यादा नजदीक और घनिष्ठ हो सकती थी, मेरे जीवन के संपूर्ण सुख-दुखों की साथिन हो सकती थी, पर आज वह इतनी दूर है, इतनी पराई है कि आज मुझे उसे देखने तक की मनाही है, उससे बात करने में भी दोष है, उसके विषय में चिंता करना भी पाप है। और, एक रामलोचन नमा का अनजान आदमी अचानक आ धमका और सिर्फ दो-चार रटे हुए मंत्र पढ़-पढ़ाकर सुरबाला को दुनिया के और सबके पास से क्षण भर में झपटा मारकर ले गया।

मानव समाज में मैं किसी नई नीति का प्रचार करने नहीं बैठा, समाज के नियमों को तोड़ने भी नहीं आया हूं और न बंधन तोड़ना ही पसंद करता हूं— मैं तो सिर्फ अपने मन के असली भावों को जाहिर करना चाहता हूं। अपने मन में जो भाव उठा करते हैं, वे क्या सभी विचार करने योग्य होते हैं?

पर क्या करुं, रामलोचन के घर में दीवार की ओट में जो सुरबाला खड़ी हुई थी, वह रामलोचन की अपेक्षा मेरी ही अधिक थी, यह बात मेरे मन से किसी भी तरह दूर ही नहीं होना चाहती। माना कि ऐसा विचार करना बिलकुल असंगत और अत्यंत अन्याययुक्त है, पर ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है।

मेरा मन अब किसी भी काम में नहीं लगता। दोपहर को जब क्लास के

लड़के गुनगुनाकर पढ़ा करते हैं, बाहर जब लू चलती रहती है, गरम हवा जब नीम की पुष्प मंजरियों की सुगंध बहा लाती है, तब मेरी इच्छा होती है। क्या इच्छा होती है, सो नहीं मालूम। हां, इतना मैं कह सकता हूं कि भारत की उन भावी आशाओं को, होनहार संतानों को, उनकी व्याकरण भूलें बताकर जिंदगी बसर करने की इच्छा तो कतई नहीं होती।

स्कूल की छुट्टी हो जाने पर उस सुनसान घर में अकेले मेरा मन नहीं लगता। अगर कोई भला मानस मिलने आता तो वह भी नागवार गुजरता। शाम के वक्त तालाब के किनारे सुपारी और नारियल के पेड़ों की अर्थहीन मर्म ध्वनि सुनते-सुनते मैं सोचने लगती कि मनुष्य समाज एक जटिल भ्रम का जाल है। ठीक वक्त पर काम करने की किसी को भी याद नहीं रहती। उसके बाद फिर वह बेवक्त पर अनुपयुक्त वासनाएं लेकर तड़पता रहता है।

तुम सरीखा आदमी सुरबाला का पति बनकर बुढ़ापे तक खूब सुख से रह सकता था, लेकिन तुम तो बनने चले गैरिबाल्डी, पर हुए आखिर एक गंवई गांव के स्कूल के सेकंड मास्टर!

रामलोचन राय वकील हैं, उसके लिए खासतौर से सुरबाला का ही पति बनना कोई खास जरूरी नहीं था। ब्याह के एक क्षण पहले तक उसके लिए जैसी सुरबाला थी, वैसी ही भवशंकरी। वही रामलोचन आज बगैर कुछ सोचे-समझे सुरबाला के साथ ब्याह करके सरकारी वकील बनकर मजे में रुपये पैदा कर रहा है। जिस दिन दूध में जरा धुएं की बू आती है, उस दिन सुरबाला को वह डांट देता है और जिस दिन मन प्रसन्न रहता है, उस दिन सुनार को बुलवाकर सुरबाला के लिए गहने बनवा देता है। खूब मोटा-ताजा है, अचकन पहनता है। उसे किसी तरह का असंतोष नहीं। वह तालाब के किनारे बैठकर, आकाश के तारे गिन-गिनकर हाय-तौबा करके रात नहीं बिताता।

रामलोचन किसी भारी मुकदमे के काम से कहीं बाहर गया था। स्कूल वाले घर में जैसा मैं अकेला था, उस दिन सुरबाला के घर सुरबाला भी शायद वैसी ही अकेली थी।

याद है, उस दिन सोमवार था। सवेरे से बादल हो रहे थे। करीब दस बजे से टप-टप मेह बरसने लगा। बादलों की हालत देखकर हेडमास्टर ने स्कूल की छुट्टी कर दी। काले बादलों के टुकड़े मानो किसी एक महा आयोजन के लिए तमाम आकाश में दिन भर इधर से उधर दौड़-धूप करते रहे। उसके दूसरे दिन

शाम को मूसलाधार वर्षा और साथ-साथ आंधी भी शुरू हुई। जितनी रात होने लगी, वर्षा और आंधी का वेग उतना ही बढ़ता गया। पहले पुरवैया हवा चलती रही, फिर क्रमशः उत्तर और उत्तर-पूर्व की हवा चलने लगी।

ऐसी रात को सोने की कोशिश करना व्यर्थ है। सहसा याद हो आई कि ऐसी रात में, ऐसे आंधी-मेह में सुरबाला घर में अकेली होगी। हमारा स्कूल वाला घर उसके घर से कहीं मजबूत है। मैंने कितनी बार सोचा कि उसे स्कूल वाले घर में बुला लूं और मैं तालाब के किनारे रात बिताऊं, पर किसी भी तरह मन को स्थिर न कर सका।

रात के करीब एक-डेढ़ बजे होंगे। सहसा बाढ़ आने का शब्द सुनाई दिया मानो समुद्र दौड़ा आ रहा हो। मैं घर से बाहर निकल पड़ा। सुरबाला के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में तालाब की मेड़ है, वहां तक पहुंचने में मुझे घुटनों तक पानी में चलना पड़ा। मैंने मेड़ के ऊपर चढ़कर देखा तो वहां एक और तरंग आ उपस्थित हुई है। हमारे तालाब की मेड़ का कुछ हिस्सा लगभग ग्यारह हाथ ऊंचा होगा।

मेड़ पर मैं जिस समय चढ़ने लगा, उसी समय दूसरी ओर से एक और आदमी चढ़ा। वह आदमी कौन था, यह मेरी संपूर्ण अंतरात्मा ने, मेरे सिर से लेकर पैर तक संपूर्ण अंगों ने जान लिया। उसने भी मुझे पहचान लिया, इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं। .

बाकी सब कुछ पानी में डूब चुका था, सिर्फ हम दोनों जने उस पांच-छः हाथ के द्वीप में आकर खड़े हो गए।

तब प्रलय का समय था, आकाश में तारों का भी प्रकाश न था और संसार के सारे द्वीप बुझ चुके थे। तब एक-आध बात कर लेने में भी कोई हानि नहीं थी, पर एक भी बात किसी के मुंह से नहीं निकली। किसी ने किसी से कुशल तक न पूछा।

दोनों जने सिर्फ अंधकार की तरफ देखते रहे और पांवों के नीचे घोर काले रंग का उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गरजता हुआ प्रवाहित होता रहा।

आज संपूर्ण संसार को छोड़कर सुरबाला मेरे पास आकर खड़ी हुई है। आज मेरे सिवा सुरबाला का संसार में और कोई भी नहीं है। एक दिन बचपन की वह सुरबाला न जाने किस जन्मांतर से, किस पुराने रहस्यांधकार से बहकर इस समय मेरे पास आ लगी थी। आज कितने दिनों बाद उसी आलोकमय पृथ्वी

को छोड़कर इस भयानक जनशून्य प्रलयांधकार में वह अकेली मेरे ही पास आ खड़ी हुई है।

जन्म-स्रोत ने जिस नव कलिका को मेरे पास ला पटका था, अब मृत्यु-स्रोत उसी विकसित पुष्प को मेरे ही पास ले आया है। अब सिर्फ एक और लहर के आते ही पृथ्वी के इस टुकड़े से विच्छेद के इस डंठल से टूटकर हम दोनों एक हो जाएंगे।

वह लहर न आए। पति, पुत्र, गृह, धन, परिवार को लेकर सुरबाला चिरकाल तक सुख से रहे। मैंने इसी एक रात में महाप्रलय के तट पर खड़े-खड़े अनंत आनंद का आस्वाद पा लिया है।

रात करीब खत्म हो आई। आंधी थम गई, पानी घट गया। सुरबाला बगैर कुछ बोले-चाले चुपचाप घर की ओर चल दी। मैं भी बिना कुछ कहे-सुने चुपके से अपने घर लौट आया।

सोचने लगा कि मैं नाजिर भी न हुआ, सरिश्तेदार भी न हुआ, गैरिबाल्डी भी न हो सका। मैं एक टूटे-फूटे स्कूल का सेकंड मास्टर हूं। मेरे इस सारे जीवन में सिर्फ क्षणभर के लिए एक अनंत का उदय हुआ था। मेरी परमायु के संपूर्ण दिनों में सिर्फ यही एक रात मेरे इस तुच्छ जीवन की एकमात्र चरम सार्थकता है।

❑❑

43

पत्नी का पत्र

श्री चरणकमलेषु,

आज हमारे विवाह को पंद्रह वर्ष हो गए, लेकिन अभी तक मैंने कभी तुमको चिट्ठी न लिखी। सदा तुम्हारे पास ही बनी रही—न जाने कितनी बातें कहती सुनती रही, पर चिट्ठी लिखने लायक दूरी कभी नहीं मिली।

आज मैं श्रीक्षेत्र में तीर्थ करने आई हूं, तुम अपने ऑफिस के काम में लगे हुए हो। कलकत्ता के साथ तुम्हारा वही संबंध है जो घोंघे के साथ शंख का होता है। वह तुम्हारे तन-मन से चिपक गया है। इसलिए तुमने ऑफिस में छुट्टी की दरख्वास्त नहीं दी। विधाता की यही इच्छा थी, उन्होंने मेरी छुट्टी की दरख्वास्त मंजूर कर ली।

मैं तुम्हारे घर की मझली बहू हूं। पर आज पंद्रह वर्ष बाद इस समुद्र के किनारे खड़े होकर मैं जान पाई हूं कि अपने जगत और जगदीश्वर के साथ मेरा एक संबंध और भी है। इसीलिए आज यह चिट्ठी लिख रही हूं, इसे तुम अपने घर की मझली बहू की ही चिट्ठी मत समझना!

तुम लोगों के साथ मेरे संबंध की बात जिन्होंने मेरे भाग्य में लिखी थी, उन्हें छोड़कर जब इस संभावना का और किसी को पता न था, उसी शैशव काल में मैं और मेरा भाई एक साथ ही सन्निपात के ज्वर से पीड़ित हुए थे। भाई तो मारा गया, पर मैं बची रही। महल्ले की औरतें कहने लगीं, "मृणाल लड़की है न, इसीलिए बच गई। लड़का होती तो क्या भला बच सकती थी।" चोरी की कला में यमराज निपुण हैं, उनकी नजर कीमती चीज पर ही पड़ती है।

मेरे भाग्य में मौत नहीं है। यही बात अच्छी तरह से समझाने के लिए मैं यह चिट्ठी लिखने बैठी हूं।

एक दिन जब दूर के रिश्ते में तुम्हारे मामा तुम्हारे मित्र नीरद को साथ लेकर कन्या देखने आए थे तब मेरी आयु 12 वर्ष की थी। दुर्गम गांव में मेरा घर था, जहां दिन में भी सियार बोलते रहते थे। स्टेशन से सात कोस तक छकड़ा गाड़ी में चलने के बाद बाकी तीन मील का कच्चा रास्ता पालकी में बैठकर पार करने के बाद हमारे गांव में पहुंचा जा सकता था। उस दिन तुम लोगों को कितनी हैरानी हुई। तिस पर हमारे पूर्वी बंगाल का भोजन–मामा उस भोजन की हंसी उड़ाना आज भी नहीं भूलते।

तुम्हारी मां की एक ही जिद थी कि बड़ी बहू के रूप की कमी को मझली बहू के द्वारा पूरी करें। नहीं तो भला इतना कष्ट करके तुम लोग हमारे गांव में आते। पीलिया, यकृत, अमरशूल और दुलहिन के लिए बंगाल प्रांत में खोज नहीं करनी पड़ती। वे स्वयं ही आकर घेर लेते हैं, छुड़ाए नहीं छुटते।

पिता की छाती धक-धक करने लगी। मां दुर्गा का नाम जपने लगी। शहर के देवता को गांव का पुजारी क्या देकर संतुष्ट करे। बेटी के रूप का भरोसा, लेकिन स्वयं बेटी में उस रूप का कोई मूल्य नहीं होता, देखने आया हुआ व्यक्ति उसका जो मूल्य दे, वही उसका मूल्य होता है। इसीलिए तो हजारों रूप गुण होने पर भी लड़कियों का संकोच किसी भी तरह दूर नहीं होता।

सारे घर का, यही नहीं, सारे महल्ले का यह आतंक मेरी छाती पर पत्थर की तरह जमकर बैठ गया। आकाश का सारा उजाला और संसार की समस्त शक्ति उस दिन मानो इस बारह वर्षीया ग्रामीण लड़की को दो परीक्षकों की दो जोड़ी आंखों के सामने कसकर पकड़ रखने के लिए चपरासगिरी कर रही थी— मुझे कहीं छिपने की जगह न मिली।

अपने करुण स्वर से संपूर्ण आकाश को कंपाती हुई शहनाई बज उठी। मैं तुम लोगों के यहां आ पहुंची। मेरे सारे ऐबों का ब्योरेवार हिसाब लगाकर गृहिणियों को यह स्वीकार करना पड़ा कि सबकुछ होते हुए भी मैं सुंदरी जरूर हूं। यह बात सुनते ही मेरी बड़ी जेठानी का चेहरा भारी हो गया। लेकिन सोचती हूं, मुझे रूप की जरुरत ही क्या थी। रूप नामक वस्तु को अगर किसी त्रिपुंड्री पंडित ने गंगा मिट्टी से गढ़ा हो तो उसका आदर हो, लेकिन उसे तो विधाता ने केवल अपने आनंद से निर्मित किया है। इसलिए तुम्हारे धर्म के संसार में उसका कोई मूल्य नहीं।

मैं रूपवती हूं, इस बात को भूलने में तुम्हें बहुत दिन नहीं लगे। लेकिन

मुझमें बुद्धि भी है, यह बात तुम लोगों को पगपग पर याद करनी पड़ी। मेरी यह बुद्धि इतनी प्रकृत है कि तुम लोगों की घर-गृहस्थी में इतना समय काट देने पर भी टिकी हुई है।

मेरी इस बुद्धि से मां बड़ी चिंतित रहती थीं। नारी के लिए यह तो एक बला ही है। बाधाओं को मानकर चलना जिसका काम है वह बुद्धि को मानकर चलना चाहे तो ठोकर खा-खाकर उसका सिर फूटेगा ही। लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं।

तुम लोगों के घर की बहू को जितनी बुद्धि की जरुरत है विधाता ने लापरवाही से मुझे उससे बहुत ज्यादा बुद्धि दे डाली है, अब मैं उसे लौटाऊं भी तो किसको। तुम लोग मुझे पुरखिन कहकर दिनरात गाली देते रहे। अक्षम्य को कड़ी बात कहने से ही सांत्वना मिलती है, इसीलिए मैंने उसको क्षमा कर दिया।

मेरी एक बात तुम्हारी घर-गृहस्थी से बाहर थी जिसे तुममें से कोई नहीं जानता। मैं तुम सबसे छिपाकर कविता लिखा करती थी। वह भले ही कूड़ा-करकट क्यों न हो, उस पर तुम्हारे अंत:पुर की दीवार न उठ सकी। वहीं मुझे मृत्यु मिलती थी, वहीं पर मैं-मैं हो पाती थी। मेरे भीतर तुम लोगों की मझली बहू के अतिरिक्त जो कुछ था, उसे तुम लोगों ने कभी पसंद नहीं किया, क्योंकि उसे तुम लोग पहचान भी न पाए। मैं कवि हूं, यह बात पंद्रह वर्ष में भी तुम लोगों की पकड़ में नहीं आई।.

तुम लोगों के घर की प्रथम स्मृतियों में मेरे मन में जो सबसे ज्यादा जगती रहती है, वह है तुम लोगों की गोशाला। अंत:पुर को जाने वाले जीने की बगल के कोठे में तुम लोगों की गौएं रहती हैं, सामने के आंगन को छोड़कर उनके हिलने-डुलने के लिए और कोई जगह न थी। आंगन के कोने में गायों को भूसा देने के लिए काठ की नांद थी। सवेरे नौकर को तरह-तरह के काम रहते इसलिए भूखी गाएं नांद के किनारों को चाट-चाटकर चबा-चबाकर खुरच देतीं। मेरा मन रोने लगता।

मैं गंवाई गांव की बेटी जिस दिन पहली बार तुम्हारे घर आई उस दिन उस बड़े शहर के बीच मुझे वे दो गाएं और तीन बछड़े चिर परिचित आत्मीय जैसे जान पड़े। जितने दिन मैं रही, बहू रही, खुद न खाकर छिपा-छिपाकर मैं उन्हें खिलाती रही, जब बड़ी हुई तब गौओं के प्रति मेरी प्रत्यक्ष ममता देखकर मेरे साथ हंसी-मजाक का संबंध रखने वाले लोग मेरे गोत्र के बारे में संदेह प्रकट करते रहे।

मेरी बेटी जनमते ही मर गई। जाते समय उसने साथ चलने के लिए मुझे भी पुकारा था। अगर वह बची रहती तो मेरे जीवन में जो कुछ महान है, जो कुछ सत्य है, वह सब मुझे ला देती, तब मैं मझली बहू से एकदम मां बन जाती। गृहस्थी में बंधी रहने पर भी मां विश्वभर की मां होती है। पर मुझे मां होने की वेदना ही मिली, मातृत्व की मुक्ति प्राप्त नहीं हुई।

मुझे याद है, अंग्रेज डॉक्टर को हमारे घर का भीतरी भाग देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था और जच्चाघर देखकर नाराज हो उसने डांट-फटकार भी लगाई थी। सदर में तो तुम लोगों का छोटा सा बाग है। कमरे में भी साज-श्रृंगार की कोई कमी नहीं, पर भीतर का भाग मानो पश्मीने के काम की उलटी परत हो। वहां न कोई लज्जा है, न सौंदर्य, न श्रृंगार। उजाला वहां टिमटिमाता रहता है। हवा चोर की भांति प्रवेश करती है, आंगन का कूड़ा-करकट हटने का नाम नहीं लेता। फर्श और दीवार पर कालिमा अक्षय बनकर विराजती है। लेकिन डॉक्टर ने एक भूल की थी। उसने सोचा था कि शायद इससे हमको रात-दिन दुख होता होगा। बात बिलकुल उलटी है।

अनादर नाम की चीज राख की तरह होती है। वह शायद भीतर ही भीतर आग को बनाए रहती है लेकिन ऊपर से उसके ताप को प्रकट नहीं होने देती। जब आत्मसम्मान घट जाता है तब अनादर में अन्याय भी नहीं दिखाई देता। इसीलिए उसकी पीड़ा नहीं होती। यही कारण है कि नारी दुख का अनुभव करने में ही लज्जा पाती है, इसीलिए मैं कहता हूं, अगर तुम लोगों की व्यवस्था यही है कि नारी को दुख पाना ही होगा तो फिर जहां तक संभव हो उसे अनादर में रखना ही ठीक है। आदर से दुख की व्यथा और बढ़ जाती है।

तुम मुझे चाहे जैसे रखते रहे, मुझे दुख है यह बात कभी मेरे ख्याल में भी न आई। जच्चाघर में जब सिर पर मौत मंडराने लगी थी, तब भी मुझे कोई डर नहीं लगा। हमारा जीवन ही क्या है कि मौत से डरना पड़े? जिनके प्राणों को आदर और यत्न से कसकर बांध लिया गया हो, मरने में उन्हीं को कष्ट होता है।

उस दिन अगर यमराज मुझे घसीटने लगते तो मैं उसी तरह उखड़ आती जिस तरह पोली जमीन से घास बड़ी आसानी से जड़ समेत खिंच आती है। बंगाल की बेटी तो बातचीत में चरना चाहती है। लेकिन इस तरह मरने में कौन सी बहादुरी है। हम लोगों के लिए मरना इतना आसान है कि मरते लज्जा आती है।

मेरी बेटी संध्या तारे की तरह क्षण भर के लिए उदित होकर अस्त हो गई। मैं फिर से अपने दैनिक कामों में और गाय-बछड़ों में लग गई। इसी तरह मेरा जीवन आखिर तक जैसे-तैसे कट जाता, आज तुम्हें यह चिट्ठी लिखने की जरुरत न पड़ती, लेकिन कभी-कभी हवा एक मामूली सा बीज उड़ाकर ले जाती है और पक्के दालान में पीपल का अंकुर फूट उठता है और होते-होते उसी से लकड़ी पत्थर की छाती विदीर्ण होने लग जाती है। मेरी गृहस्थी की पक्की व्यवस्था में भी जीवन का एक छोटा सा कण न जाने कहां से उड़कर आ पड़ा, तभी से दरार शुरू हो गई।

जब विधवा मां की मृत्यु के बाद मेरी बड़ी जेठानी की बहन बिंदु ने अपने चचेरे भाइयों के अत्याचार के मारे एक दिन हमारे घर में अपनी दीदी के पास आश्रय लिया था, तब तुम लोगों ने सोचा था, यह कहां की बला आ गई। आग लगे मेरे स्वभाव को, मरती भी क्या-देखा, तुम लोग सब मन ही मन खीझ उठे हो, इसीलिए उस निराश्रिता लड़की को घेरकर मेरा संपूर्ण मन एकाएक जैसे कमर बांधकर खड़ा हो गया हो। पराए घर में, पराए लोगों की अनिच्छा होते हुए भी आश्रय लेना—कितना बड़ा अपमान है यह। यह अपमान भी जिसे विवश होकर स्वीकार करना पड़ा हो उसे क्या धक्का देकर एक कोने में डाल दिया जाता है?

बाद में मैंने अपनी बड़ी जेठानी की दशा देखी। उन्होंने अपनी गहरी संवेदना के कारण ही बहन को अपने पास बुलाया था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि इसमें पति की इच्छा नहीं है, तो उन्होंने ऐसा भाव दिखाना शुरू किया मानो उन पर कोई बड़ी बला आ पड़ी हो, मानो अगर वह किसी तरह दूर हो सके तो जान बचे। उन्हें इतना साहस न हुआ कि वह अपनी अनाथ बहन के प्रति खुले मन से स्नेह प्रकट कर सकें। पतिव्रता थीं।

उनका यह संकट देखकर मेरा मन और भी दुखी हो उठा। मैंने देखा, बड़ी जेठानी ने खासतौर से सबको दिखा-दिखाकर बिंदु के खाने-पहनने की ऐसी रद्दी व्यवस्था की और उसे घर में इस तरह नौकरानियों जैसे काम सौंप दिए कि मुझे दुख ही नहीं, लज्जा भी हुई। मैं सबके सामने इस बात को प्रमाणित करने में लगी रहती थी कि हमारी गृहस्थी को बिंदु बहुत सस्ते दामों में मिल गई है। ढेरों काम करती है फिर भी खर्च की दृष्टि से बेहद सस्ती है।

मेरी बड़ी जेठानी के पितृ वंश में कुल के अलावा और कोई बड़ी चीज न

थी, न रूप था, न धन। किस तरह मेरे ससुर के पैरों पड़ने पर तुम लोगों के घर में उनका ब्याह हुआ था, यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो। वह सदा यही सोचती रहीं कि उनका विवाह तुम्हारे वंश के प्रति बड़ा भारी अपराध था। इसीलिए वह सब बातों में अपने आपको भरसक दूर रखकर, अपने को छोटा मानकर तुम्हारे घर में बहुत थोड़ी जगह में सिमटकर रहती थीं।

लेकिन उनके इस प्रशंसनीय उदाहरण से हम लोगों को बड़ी कठिनाई होती रही। मैं अपने आपको हर तरफ से इतना बेहद छोटा नहीं बना पाती, मैं जिस बात को अच्छा समझती हूं, उसे किसी और की खातिर बुरा समझने को मैं उचित नहीं मानती—इस बात के तुम्हें भी बहुत से प्रमाण मिल चुके हैं।

बिंदु को मैं अपने कमरे में घसीट लाई। जीजी कहने लगी, "मझली बहू गरीब घर की बेटी का दिमाग खराब कर डालेगी।"

वह सबसे मेरी इस ढंग से शिकायत करती फिरती थीं मानो मैंने कोई भारी आफत ढा दी हो। लेकिन मैं अच्छी तरह जानती हूं, वह मन ही मन सोचती थीं कि जान बची। अब अपराध का बोझ मेरे सिर पर पड़ने लगा।

वह अपनी बहन के प्रति खुद जो स्नेह नहीं दिखा पाती थीं वही मेरे द्वारा प्रकट करके उनका मन हल्का हो जाता। मेरी बड़ी जेठानी बिंदु की उम्र में से दो-एक अंक कम कर देने की चेष्टा करती थीं, लेकिन अगर अकेले में उनसे कहा जाता कि उसकी अवस्था चौदह से कम नहीं थी, तो ज्यादती न होती। तुम्हें मालूम है, देखने में वह इतनी कुरूप थी कि अगर वह फर्श पर गिरकर अपना सिर फोड़ लेती तो भी लोगों को घर के फर्श की ही चिंता होती।

यही कारण है कि माता-पिता के न होने पर ऐसा कोई न था जो उसके विवाह के बारे में सोचता और ऐसे लोग भी भला कितने थे जो उससे ब्याह कर सकें।

बिंदु बहुत डरती-डरती मेरे पास आई, मानो अगर मेरी देह उससे छू जाएगी तो मैं सह नहीं पाऊंगी। मानो संसार में उसको जन्म लेने का कोई अधिकार ही न था। इसीलिए वह हमेशा अलग हटकर आंख बचाकर चलती। उसके पिता के यहां उसके चचेरे भाई उसके लिए ऐसा एक भी कोना नहीं छोड़ना चाहते थे जिसमें वह फालतू चीज की तरह पड़ रह सके।

फालतू कूड़े को घर के आस-पास अनायास ही स्थान मिल जाता है, क्योंकि मनुष्य उसको भूल जाता है, लेकिन अनावश्यक लड़की एक तो अनावश्यक

होती है, दूसरे उसको भूलना भी कठिन होता है। उसके लिए घूरे पर भी जगह नहीं होती। फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि उसके चचेरे भाई ही संसार में परमावश्यक थे। जो हो, वे लोग थे खूब।

यही कारण है कि जब मैं बिंदु को अपने कमरे में बुला लाई तो उसकी छाती धक-धक करने लगी। उसका डर देखकर मुझे बड़ा दुख हुआ। मेरे कमरे में उसके लिए थोड़ी सी जगह है, यह बात मैंने बड़े प्यार से उसे समझाई।

लेकिन मेरा कमरा एक मेरा ही कमरा तो था नहीं। इसलिए मेरा काम आसान नहीं हुआ। मेरे पास दो-चार दिन रहने पर ही उसके शरीर में न जाने लाल-लाल क्या निकल आया। शायद अम्हौरी रही होंगी या ऐसा ही कुछ होगा, तुमने कहा शीतला। क्यों न हो, वह बिंदु थी न। तुम्हारे महल्ले के एक अनाड़ी डॉक्टर ने बताया, दो-एक दिन और देखे बिना ठीक से कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन दो-एक दिन तक धीरज किसको होता।

बिंदु तो अपनी बीमारी की लज्जा से ही मरी जा रही थी। मैंने कहा, शीतला है तो हो, मैं उसे अपने जच्चाघर में लिवा ले जाऊंगी और किसी को कुछ करने की जरुरत नहीं। इस बात पर जब तुम सब लोग मेरे ऊपर भड़ककर क्रोध की मूर्ति बन गए, यही नहीं, जब बिंदु की जीजी भी बड़ी परेशानी दिखाती हुई उस अभागी लड़की को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव करने लगीं, तभी उसके शरीर के वे सारे लाल-लाल दाग एकदम विलीन हो गए। मैंने देखा कि इस बात से तुम लोग और भी व्यग्र हो उठे। कहने लगे अब तो वाकई शीतला बैठ गई है। क्यों न हो, वह बिंदु थी न।

अनादर के पालन-पोषण में एक बड़ा गुण है। शरीर को वह एकदम अजर-अमर कर देता है। मौत आने का नाम नहीं लेती, मरने के सारे आम रास्ते बिलकुल बंद हो जाते हैं। इसीलिए रोग उसके साथ मजाक करके चला गया, हुआ कुछ नहीं। लेकिन यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गई कि संसार में ज्यादा साधनहीन व्यक्ति को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। आश्रय की आवश्यकता उसको जितनी अधिक होती है आश्रय की बाधाएं भी उसके लिए उतनी ही विषम होती हैं।

बिंदु के मन से जब मेरा डर जाता रहा तब उसको एक और कुग्रह ने पकड़ लिया। वह मुझे इतना प्यार करने लगी कि मुझे डर लगने लगा। स्नेह की ऐसी मूर्ति तो संसार में पहले कभी देखी ही न थी। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था,

पर वह भी स्त्री-पुरुष के बीच ही। बहुत दिनों से ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी कि मुझे अपनी रूप की बात याद आती।

अब इतने दिनों यह कुरूप लड़की मेरे उसी रूप के पीछे पड़ गई। रात-दिन मेरा मुंह देखते रहने पर भी उसकी आंखों की प्यास नहीं बुझती थी। कहती, जीजी तुम्हारा यह मुंह मेरे अलावा और कोई नहीं देख पाता। जिस दिन मैं स्वयं ही अपने केश बांध लेती उस दिन वह रूठ जाती।

अपने हाथों से मेरे केश भार को हिलाने-डुलाने में उसे बड़ा आनंद आता। कभी कहीं दावत में जाने के अतिरिक्त और कभी तो मुझे साज-श्रृंगार की आवश्यकता पड़ती ही न थी, लेकिन बिंदु मुझे थोड़ा बहुत सजाती रहती। वह लड़की मुझे लेकर बिलकुल पागल हो गई थी।

तुम्हारे घर के भीतरी हिस्से में कहीं रत्तीभर भी मिट्टी न थी। उत्तर की ओर की दीवार में नाली के किनारे न जाने कैसे एक गाब का पौधा निकला। जिस दिन देखती कि उस गाब के पौधे में नई लाल-लाल कोंपलें निकल आई हैं, उसी दिन जान पड़ता कि धरती पर वसंत आ गया है और जिस दिन मेरी घर-गृहस्थी में जुटी हुई इस अनादृत लड़की के मन का ओर-छोर किसी तरह रंग उठा उस दिन मैंने जाना कि हृदय के जगत में भी वसंत की हवा बहती है। वह किसी स्वर्ग से आती है, गली के मोड़ से नहीं।

बिंदु के स्नेह के दु:सह वेग ने मुझे अधीर कर डाला था। मैं मानती हूं कि मुझे कभी-कभी उस पर क्रोध आ जाता, लेकिन उस स्नेह में मैंने अपना एक ऐसा रूप देखा जो जीवन में पहले कभी नहीं देख पाई थी। वही मेरा मुख्य स्वरूप है।

इधर मैं बिंदु जैसी लड़की को जो इतना लाड़-प्यार करती थी यह बात तुम लोगों को बड़ी ज्यादती लगी। इसे लेकर बराबर खटपट होने लगी। जिस दिन मेरे कमरे में बाजूबंद चोरी हुआ उस दिन इस बात का आभास देते हुए तुम लोगों को तनिक भी लज्जा न आई कि इस चोरी में किसी न किसी रूप में बिंदु का हाथ है। जब स्वदेशी आंदोलनों में लोगों के घर की तलाशियां होने लगीं, तब तुम लोग अनायास ही यह संदेह कर बैठे कि बिंदु पुलिस द्वारा रखी गई स्त्री गुप्तचर है। इसका और तो कोई प्रमाण न था, प्रमाण बस इतना ही था कि वह बिंदु थी।

तुम लोगों के घर की दासियां उनका कोई काम करने से इनकार कर देती

थीं—उनमें से किसी से अपने काम के लिए कहने में वह लड़की भी संकोच के मारे जड़वत हो जाती थी।

इन्हीं सब कारणों से उसके लिए मेरा खर्च बढ़ गया। मैंने खासतौर से अलग से एक दासी रख ली। यह बात तुम लोगों को अच्छी नहीं लगी। बिंदु को पहनने के लिए मैं जो कपड़े देती थी, उन्हें देखकर तुम इतने क्रुद्ध हुए कि तुमने मेरे हाथ खर्च के रुपये ही बंद कर दिए।

दूसरे ही दिन से मैंने सवा रुपये जोड़े की मोटी कोरी मिल की धोती पहननी शुरू कर दी और जब जूठी थाली उठाने के लिए आई तो मैंने उसको मना कर दिया। मैंने खुद जूठा भात बछड़े को खिलाने के बाद आंगन के नल पर जाकर बरतन मल लिए।

एक दिन एकाएक इस दृश्य को देखकर तुम प्रसन्न न हो सके। मेरी खुशी के बिना तो काम चल सकता है, पर तुम लोगों की खुशी के बिना नहीं चल सकता—यह बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई। उधर ज्यों-ज्यों तुम लोगों का क्रोध बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों बिंदु की आयु भी बढ़ती जा रही थी। इस स्वाभाविक बात पर तुम लोग अस्वाभाविक ढंग से परेशान हो उठे थे।

एक बात याद करके मुझे आश्चर्य होता रहा है कि तुम लोगों ने बिंदु को जबरदस्ती अपने घर से विदा क्यों नहीं कर दिया? मैं अच्छी तरह समझती हूं कि तुम लोग मन ही मन मुझसे डरते थे। विधाता ने मुझे बुद्धि दी है, भीतर ही भीतर इस बात की खातिर किए बिना तुम लोगों को चैन नहीं पड़ता था।

अंत में अपनी शक्ति से बिंदु को विदा करने में असमर्थ होकर तुम लोगों ने प्रजापति देवता की शरण ली। बिंदु का वर ठीक हुआ। वर कैसा था, मैं नहीं जानती। तुम लोगों से सुना था कि सब बातों में अच्छा है।

बिंदु मेरे पैरों से लिपटकर रोने लगी। बोली, "जीजी, मेरा ब्याह क्यों कर रही हो भला।" मैंने उसकी समझाते बुझाते कहा, "बिंदु, डर मत, मैंने सुना है तेरा वर अच्छा है।"

बिंदु बोली, "अगर वर अच्छा है तो मुझमें भला ऐसा क्या है जो उसे पसंद आ सके।"

लेकिन वर पक्ष वालों ने तो बिंदु को देखने के लिए आने का नाम भी न लिया। बड़ी जीजी इससे निश्चिंत हो गईं।

बिंदु रात-दिन रोती रहती। चुप होने का नाम ही न लेती। उसको क्या कष्ट

है यह मैं जानती थी। बिंदु के लिए मैंने घर में बहुत बार झगड़ा किया था लेकिन उसका ब्याह रुक जाए यह बात कहने का साहस नहीं होता था। कहती भी किस बल पर। मैं अगर मर जाती तो उसकी क्या दशा होती।

एक तो लड़की तिस पर काली, किस के यहां जा रही है, वहां उसकी क्या दशा होगा, इन बातों की चिंता न करना ही अच्छा था। सोचती तो प्राण कांप उठते।

बिंदु ने कहा, ''जीजी, ब्याह के अभी पांच दिन और हैं। इस बीच क्या मुझे मौत नहीं आएगी।''

मैंने उसको खूब धमकाया। लेकिन अंतर्यामी जानते हैं कि अगर किसी स्वाभाविक ढंग से बिंदु की मृत्यु हो जाती तो मुझे चैन मिलता।

ब्याह के एक दिन पहले बिंदु ने अपनी जीजी के पास जाकर कहा, ''जीजी, मैं तुम लोगों की गोशाला में पड़ी रहूंगी, जो कहोगी वही करूंगी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे इस तरह मत धकेलो।''

कुछ दिनों से जीजी की आंखों से चोरी-चोरी आंसू झर रहे थे। उस दिन भी झरने लगे। लेकिन सिर्फ हृदय ही तो नहीं होता। शास्त्र भी तो है। उन्होंने कहा, ''बिंदु जानती नहीं, स्त्री की गति-मुक्ति सबकुछ पति ही है। भाग्य में अगर दुख लिखा है तो उसे कोई नहीं मिटा सकता।''

असली बात तो यह थी कि कहीं कोई रास्ता ही न था—बिंदु को ब्याह तो करना ही पड़ेगा। फिर जो हो सो हो। मैं चाहती थी कि विवाह हमारे ही घर से हो। लेकिन तुम लोग कह बैठे वर के ही घर में हो, अनेक कुल की यही रीति है। मैं समझ गई, बिंदु के ब्याह में अगर तुम लोगों को खर्च करना पड़ा तो तुम्हारे गृह देवता उसे किसी भी भांति नहीं सह सकेंगे। इसीलिए चुप रह जाना पड़ा। लेकिन एक बात तुममें से कोई नहीं जानता। जीजी को बताना चाहती थी, पर फिर बताई नहीं, नहीं तो वह डर से मर जातीं—मैंने अपने थोड़े-बहुत गहने लेकर चुपचाप बिंदु का श्रृंगार कर दिया था। सोचा था, जीजी की नजर में तो जरूर पड़ जाएगा। लेकिन उन्होंने जैसे देखकर भी नहीं कहा। दुहाई है धर्म की, इसके लिए तुम उन्हें क्षमा कर देना।

जाते समय बिंदु मुझसे लिपटकर बोली, ''जीजी, तो क्या तुम लोगों ने मुझे एकदम त्याग दिया।''

मैंने कहा, ''बिंदु तुम चाहे जैसी हालत में रहो, प्राण रहते मैं तुम्हें नहीं त्याग सकती।''

तीन दिन बीते। तुम्हारे ताल्लुके के असामियों ने तुम्हें खाने के लिए जो भेड़ा दिया था उसे मैंने तुम्हारी जठराग्नि से बचाकर नीचे वाली कोयले की कोठरी के एक कोने में बांध दिया था। सवेरे उठते ही मैं खुद जाकर उसको दाना खिला आती। दो-एक दिन तुम्हारे नौकरों पर भरोसा करके देखा उसे खिलाने के बजाय उनका झुकाव उसी को खा जाने की ओर अधिक था।

उस दिन सवेरे कोठरी में गई तो देखा, बिंदु एक कोने में गुड़-मुड़ होकर बैठी हुई है। मुझे देखते ही वह मेरे पैर पकड़कर चुपचाप रोने लगी। बिंदु का पति पागल था।

"सच कह रही है, बिंदु?"

"तुम्हारे सामने क्या मैं इतना बड़ा झूठ बोल सकती हूं, दीदी? वह पागल हैं। इस विवाह से ससुर सहमत नहीं थे, लेकिन वह मेरी सास से यमराज की तरह डरते थे। ब्याह के लिए पहले ही काशी चल दिए थे। सास ने जिद करके अपने लड़के का ब्याह कर लिया।"

मैं वहीं कोयले के ढेर पर बैठ गई। स्त्री पर स्त्री को दया नहीं आती। कहती है, कोई लड़की थोड़े ही है। लड़का पागल है तो हो, है तो पुरुष।

देखने में बिंदु का पति पागल नहीं लगता। लेकिन कभी-कभी उसे ऐसा उन्माद चढ़ता कि उसे कमरे में ताला बंद करके रखना पड़ता। ब्याह की रात वह ठीक था। लेकिन रात में जागते रहने के कारण, इसी तरह के और झंझटों के कारण दूसरे दिन से उसका दिमाग बिल्कुल खराब हो गया।

बिंदु दोपहर को पीतल की थाली में भात खाने बैठी थी, अचानक उसके पति ने भात समेत थाली उठाकर आंगन में फेंक दी। न जाने क्यों अचानक उसको लगा, मानो बिंदु रानी रासमणि हो। नौकर ने, हो न हो, चोरी से उसी के सोने के थाल में रानी के लिए भात दिया हो। इसलिए उसे क्रोध आ गया था। बिंदु तो डर के मारे ही जा रही थी।

तीसरी रात को जब उसकी सास ने उससे अपने पति के कमरे में सोने के लिए कहा तो बिंदु के प्राण सूख गए। उसकी सास को जब क्रोध आता था तो होश में नहीं रहती थी। वह भी पागल ही थी, लेकिन पूरी तरह से नहीं। इसलिए वह ज्यादा खतरनाक थी। बिंदु को कमरे में जाना ही पड़ा। उस रात उसके पति का मिजाज ठंडा था। लेकिन डर के मारे बिंदु का शरीर पत्थर हो गया था। पति जब सो गए तब काफी रात बीतने पर वह किसी तरह चतुराई से भागकर चली आई।

घृणा और क्रोध से मेरा शरीर जलने लगा। मैंने कहा, ''इस तरह धोखे के ब्याह को ब्याह नहीं कहा जा सकता। बिंदु, तू जैसे रहती थी वैसे ही मेरे पास रह। देखूं, तुझे कौन ले जाता है।''

तुम लोगों ने कहा, 'बिदु झूठ बोलती है।'

मैंने कहा, 'वह कभी झूठ नहीं बोलती।'

तुम लोगों ने कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम।'

मैंने कहा, 'मैं अच्छी तरह जानती हूं।'

तुम लोगों ने डर दिखाया, 'अगर बिंदु के ससुराल वालों ने पुलिस केस कर दिया तो आफत में पड़ जाएंगे।'

मैंने कहा, ''क्या अदालत यह बात न सुनेगी कि उसका ब्याह धोखे से पागल वर के साथ कर दिया गया है।'

तुमने कहा, 'तो क्या इसके लिए अदालत जाएंगे। हमें ऐसी क्या गर्ज है?'

मैंने कहा, 'जो कुछ मुझसे बन पड़ेगा, अपने गहने बेचकर करूंगी।'

तुम लोगों ने कहा, 'क्या वकील के घर तक दौड़ोगी।'

इस बात का क्या जवाब होता? सिर ठोकने के अलावा और कर भी क्या सकती थी।

उधर बिंदु की ससुराल से उसके जेठ ने आकर बाहर बड़ा हंगामा खड़ा कर दिया। कहने लगा, 'थाने में रिपोर्ट कर दूंगा।'

मैं नहीं जानती मुझमें क्या शक्ति थी—लेकिन जिस गाय ने अपने प्राणों के डर से कसाई के हाथों से छूटकर मेरा आश्रय लिया हो उसे पुलिस के डर से फिर उस कसाई को लौटाना पड़े यह बात मैं किसी भी प्रकार नहीं मान सकती थी। मैंने हिम्मत करके कहा, ''करने दो थाने में रिपोर्ट।''

इतना कहकर मैंने सोचा कि अब बिंदु को अपने सोने के कमरे में ले जाकर कमरे में ताला लगाकर बैठ जाऊं। लेकिन खोजा तो बिंदु का कहीं पता नहीं। जिस समय तुम लोगों से मेरी बहस चल रही थी उस समय बिंदु ने स्वयं बाहर निकलकर जेठ को आत्म समर्पण कर दिया था। वह समझ गई थी कि अगर वह इस घर में रही तो मैं बड़ी आफत में पड़ जाऊंगी।

बीच में भाग आने से बिंदु ने अपना दुख और भी बढ़ा लिया। उसकी सास का तर्क था कि उनका लड़का उसको खाए तो नहीं जा रहा था न। संसार में बुरे पति के उदाहरण दुर्लभ नहीं हैं। उनकी तुलना में तो उनका लड़का सोने का चांद था।

मेरी बड़ी जेठानी ने कहा, 'जिसका भाग्य ही खराब हो उसके लिए रोने से क्या फायदा? पागल-वागल जो भी हो, है तो स्वामी ही न।'

तुम लोगों के मन में लगातार उस सती-साध्वी का दृष्टांत याद आ रहा था जो अपने कोढ़ी पति को अपने कंधों पर बैठाकर वेश्या के यहां ले गई थी।

संसारभर में कायरता के इस सबसे अधम आख्यान का प्रचार करते हुए तुम लोगों के पुरुष मन को कभी तनिक भी संकोच न हुआ। इसलिए मानव जन्म पाकर भी तुम लोग बिंदु के व्यवहार पर क्रोध कर सके, उससे तुम्हारा सिर नहीं झुका। बिदु के लिए मेरी छाती फटी जा रही थी, लेकिन तुम लोगों का व्यवहार देखकर मेरी लज्जा का अंत न था। मैं तो गांव की लड़की थी, जिस पर तुम लोगों के घर आ पड़ी, फिर भगवान ने न जाने किस तरह मुझे ऐसी बुद्धि दे दी। धर्म संबंधी तुम लोगों की यह चर्चा मुझे किसी भी प्रकार सहन नहीं थी।

मैं निश्चयपूर्वक जानती थी कि बिंदु मर भले ही जाए, वह अब हमारे घर लौटकर नहीं आएगी। लेकिन मैं तो उसे ब्याह के एक दिन पहले यह आशा दिला चुकी थी कि प्राण रहते उसे नहीं छोडूंगी।

मेरा छोटा भाई शरद कलकत्ता में कॉलेज में पढ़ता था। तुम तो जानते ही हो, तरह-तरह की वालंटियरी करना, प्लेग वाले महल्लों में चूहे मारना, दामोदर में बाढ़ आने की खबर सुनकर दौड़ पड़ना—इन सब बातों में उसका इतना उत्साह था कि एफ.ए. की परीक्षा में दो बार लगातार फेल होने पर भी उसके उत्साह में कोई कमी नहीं आई। मैंने उसे बुलाकर कहा, "शरद जैसे भी हो बिंदु की खबर पाने का इंतजार मुझे करना ही पड़ेगा। बिंदु को मुझे चिट्ठी भेजने का साहस नहीं होगा, वह भेजे भी तो मुझे मिल नही सकेगी।"

इस काम के बजाय यदि मैं उससे डाका डालकर बिंदु को लाने की बात कहती या उसके पागल स्वामी का सिर फोड़ देने के लिए कहती तो उसे ज्यादा खुशी होती।

शरद के साथ बातचीत कर रही थी तभी तुमने कमरे में आकर कहा, 'तुम फिर यह क्या बखेड़ा खड़ा कर रही हो।'

मैंने कहा, वह जो शुरु से करती आई हूं। जब से तुम्हारे घर आई हूं लेकिन नहीं, वह तो तुम्हीं लोगों की कीर्ति है।'

तुमने पूछा, 'बिंदु को लाकर फिर कहीं छिपा रखा है क्या?'

मैंने कहा, 'बिंदु अगर आती तो मैं जरूर ही छिपाकर रख लेती, लेकिन वह अब नहीं आएगी। तुम्हें डरने की कोई जरुरत नहीं है।'

शरद को मेरे पास देखकर तुम्हारा संदेह और भी बढ़ गया। मैं जानती थी कि शरद का हमारे यहां आना-जाना तुम लोगों को पसंद नहीं है। तुम्हें डर था कि उस पर पुलिस की नजर है। अगर कभी किसी राजनीतिक मामले में फंस गया तो तुम्हें भी फंसा डालेगा। इसीलिए मैं भैयादूज का तिलक भी आदमी के हाथों उसी के पास भिजवा देती थी, अपने घर नहीं बुलाती थी।

एक दिन तुमसे सुना कि बिंदु फिर भाग गई है, इसलिए उसका जेठ हमारे घर उसे खोजने आया है। सुनते ही मेरी छाती में शूल चुभ गए। अभागिनी का असह कष्ट तो मैं समझ गई, पर फिर भी कुछ करने का कोई रास्ता न था।

शरद पता करने दौड़ा। शाम को लौटकर मुझसे बोला, 'बिंदु अपने चचेरे भाइयों के यहां गई थी, लेकिन उन्होंने नाराज होकर उसी वक्त उसे फिर ससुराल पहुंचा दिया। इसके लिए उन्हें हरजाने का और गाड़ी के किराए का जो दंड भोगना पड़ा उसकी खार अब भी उनके मन से नहीं गई है।'

श्रीक्षेत्र की तीर्थ यात्रा करने के लिए तुम लोगों की काकी तुम्हारे यहां आकर ठहरीं। मैंने तुमसे कहा, 'मैं भी जाऊंगी।'

अचानक मेरे मन में धर्म के प्रति यह श्रद्धा देखकर तुम इतने खुश हुए कि तुमने तनिक भी आपत्ति नहीं की। तुम्हें इस बात का भी ध्यान था कि अगर मैं कलकत्ता में रही तो फिर किसी न किसी दिन बिंदु को लेकर झगड़ा कर बैठूंगी। मेरे मारे तुम्हें बड़ी परेशानी थी। मुझे बुधवार को चलना था, रविवार को ही सब ठीक-ठाक हो गया।

मैंने शरद को बुलाकर कहा, 'जैसे भी हो बुधवार को पुरी जाने वाली गाड़ी में तुझे बिंदु को चढ़ा ही देना पड़ेगा।'

शरद का चेहरा खिल उठा। वह बोला, 'डर की कोई बात नहीं, जीजी, मैं उसे गाड़ी में बैठाकर पुरी तक चला चलूंगा। इसी बहाने जगन्नाथजी के दर्शन भी हो जाएंगे।'

उसी दिन शाम को शरद फिर आया। उसका मुंह देखते ही मेरा दिल बैठ गया। मैंने पूछा, 'क्या बात है शरद! शायद कोई रास्ता नहीं निकला।'

वह बोला, 'नहीं।'

मैंने पूछा, 'उसे राजी नहीं कर पाए।'

उसने कहा, "अब जरुरत नहीं है। कल रात को अपने कपड़ों में आग लगाकर वह आत्महत्या करके मर गई। उस घर के भतीजे से मैंने मेल बढ़ा

लिया था, उसी से खबर मिली कि तुम्हारे नाम वह एक चिट्टी रख गई थी, लेकिन वह चिट्ठी उन लोगों ने नष्ट कर दी।''

''चलो, छुट्टी हुई।''

गांव भर के लोग चीख उठे। कहने लगे, ''लड़कियों का कपड़ों में आग लगाकर मर जाना तो अब एक फैशन हो गया है।''

तुम लोगों ने कहा, 'अच्छा नाटक है।' हुआ करे, लेकिन नाटक का तमाशा सिर्फ बंगाली लड़कियों की साड़ी पर ही क्यों होता है, बंगाल वीर पुरुषों की धोती की चुन्नटों पर क्यों नहीं होता, यह भी तो सोचकर देखना चाहिए।

ऐसा ही था बिंदु का दुर्भाग्य। जितने दिन जीवित रही, तनिक भी यश नहीं मिल सका। न रूप, न गुण का—मरते वक्त भी यह नहीं हुआ कि सोच-समझकर कुछ ऐसे ढंग से मरती कि दुनियाभर के लोग खुशी से ताली बजा उठते। मरकर भी उसने लोगों को नाराज ही किया।

जीजी कमरे में जाकर चुपचाप रोने लगीं, लेकिन उस रोने में जैसे एक सांत्वना थी। कुछ भी सही, जान तो बची, मर गई, यही क्या कम था। अगर बची रहती तो न जाने क्या हो जाता।

मैं तीर्थ में आ पहुंची हूं। बिंदु के आने की जरुरत ही नहीं रही। लेकिन मुझे जरुरत थी।

लोग जिसे दुख मानते हैं वह तुम्हारी गृहस्थी में मुझे कभी नहीं मिला। तुम्हारे यहां खाने-पीने की कोई कमी नहीं। तुम्हारे बड़े भाई का चरित्र चाहे जैसा हो, तुम्हारे चरित्र में ऐसा कोई दोष नहीं जिसके लिए विधाता को बुरा कह सकूं। वैसे अगर तुम्हारा स्वभाव तुम्हारे बड़ा भाई की तरह भी होता तो भी शायद मेरे दिन करीब-करीब ऐसे ही कट जाते और मैं अपनी सती-साध्वी बड़ी जेठानी की तरह पति देवता को दोष देने के बजाय विश्व देवता को ही दोष देने की चेष्टा करती। अतएव, मैं तुमसे कोई शिकायत नहीं करना चाहती—मेरी चिट्ठी का कारण यह नहीं है।

लेकिन मैं अब माखन बडाल की गली के तुम्हारे सत्ताईस नंबर वाले घर लौटकर नहीं आऊंगी। मैं बिंदु को देख चुकी हूं। इस संसार में नारी का सच्चा परिचय क्या है, यह मैं पा चुकी हूं। अब तुम्हारी कोई जरुरत नहीं।

और फिर मैंने यह देखा है कि वह लड़की ही क्यों न हो, भगवान ने उसका त्याग नहीं किया। उस पर तुम लोगों को चाहे कितना ही जोर क्यों न रहा

हो, वह उसका अंत नहीं था। वह अपने अभागे मानव जीवन से बड़ी थी। तुम लोगों के पैर इतने लंबे नहीं थे कि तुम मनमाने ढंग से अपने हिसाब से उसके जीवन को सदा के लिए उनसे दबाकर रख सकते, मृत्यु तुम लोगों से भी बड़ी है। अपनी मृत्यु में वह महान है—वहां बिंदु केवल बंगाली परिवार की लड़की नहीं है, केवल चचेरे भाइयों की बहन नहीं है, केवल किसी अपरिचित पागल पति की प्रवंचिता पत्नी नहीं है। वहां एक अनंत है।

मृत्यु की उस वंशी का स्वर उस बालिका के भग्न हृदय से निकलकर जब मेरे जीवन की यमुना के पास बजने लगा तो पहले-पहल मानो मेरी छाती में कोई बाण बिंध गया हो। मैंने विधाता से प्रश्न किया, 'इस संसार में जो सबसे अधिक तुच्छ है वही सबसे अधिक कठिन क्यों है? इस गली में इतनी चारदीवारी से घिरे इस निरानंद स्थान में यह जो तुच्छतम बुदबुद है, वह इतनी भयंकर बाधा कैसे बन गया?''

तुम्हारा संसार अपनी शठ नीतियों से क्षुधा पात्र को संभाले कितना ही क्यों न पुकारे, मैं उस अंत:पुर की जरा सी चौखट को क्षण भर के लिए भी पार क्यों न कर सकी? ऐसे संसार में ऐसा जीवन लेकर मुझे अत्यंत तुच्छ काठ पत्थर की आड़ में ही तिल-तिलकर क्यों मारना होगा? कितनी तुच्छ है यह मेरी प्रतिदिन की जीवन यात्रा। इसके बंधे नियम, बंधे अभ्यास, बंधी हुई बोली, बंधी हुई मार सब कितनी तुच्छ है—फिर भी क्या अंत में दीनता के साथ उस नागपाश की ही जीत होगी और तुम्हारे अपने इस आनंद लोक की, इस सृष्टि की हार?

लेकिन, मृत्यु की वंशी बजने लगी। कहां गई राज मिस्त्रियों की बनाई हुई वह दीवार, कहां गया तुम्हारे घोर नियमों से बंधा वह कांटों का घेरा। कौन सा है वह दुख, कौन सा है वह अपमान जो मनुष्य को बंदी बनाकर रख सकता है। यह लो, मृत्यु के हाथ जीवन की जय पताका उड़ रही है। अरी मझली बहू, तुझे डरने की अब कोई जरुरत नहीं। मझली, बहू के इस तेरे खोल को छिन्न होते एक क्षण भी न लगा।

तुम्हारी गली का मुझे कोई डर नहीं। आज मेरे सामने नील समुद्र है, मेरे सिर पर आषाढ़ के बादल।

तुम लोगों की रीति-नीति के अंधेरे ने मुझे अब तक ढक रखा है। बिंदु ने आकर क्षणभर के लिए उस आवरण के छेद में से मुझे देख लिया। वही लड़की अपनी मृत्यु द्वारा सिर से पैर तक मेरा वह आवरण उघाड़ गई है। आज बाहर

आकर देखती हूं, अपना गौरव रखने के लिए कहीं जगह ही नहीं है। मेरा यह अनादृत रूप जिनकी आंखों को भाया है वे सुंदर आज संपूर्ण आकाश से मुझे निहार रहे हैं। अब मझली बहू की खैर नहीं।

तुम सोच रहे होओगे, मैं मरने जा रही हूं—डरने की कोई बात नहीं। तुम लोगों के साथ मैं ऐसा पुराना मजाक नहीं करूंगी। मीराबाई भी तो मेरी ही तरह नारी थीं। उनकी जंजीरें भी तो कम भारी नहीं थीं, बचने के लिए उनको तो मरना नहीं पड़ा। मीराबाई ने अपने गीत में कहा था, 'बाप छोड़े, मां छोड़े, जहां कहीं भी जा, सब छोड़ दें। लेकिन मीरा की लगन वहीं रहेगी प्रभु, अब जो होना है सो हो।

यह लगन ही तो जीवन है।

मैं अभी जीवित रहूंगी। मैं बच गई।

तुम लोगों के चरणों के आश्रय से छूटी हुई।

आपकी

मृणाल

❑❑

44

अपरिचिता

आज मेरी आयु केवल सत्ताईस साल की है। यह जीवन न दीर्घता के हिसाब से बड़ा है, न गुण के हिसाब से। फिर भी इसका एक विशेष मूल्य है। यह उस फूल के समान है जिसके वक्ष पर भ्रमर आ बैठा हो और उसी पदक्षेप के इतिहास ने उसके जीवन के फल में गुठली जैसा रूप धारण कर लिया हो।

वह इतिहास आकार में छोटा है, उसे छोटा करके ही लिखूंगा। जो छोटे को साधारण समझने की भूल नहीं करेंगे वे इसका रस समझेंगे।

कॉलेज पास करने के लिए जितनी परीक्षाएं थीं सब मैंने खत्म कर ली हैं। बचपन में मेरे सुंदर चेहरे को लेकर पंडितजी को सेमर के फूल तथा माकाल फल के साथ मेरी तुलना करके मेरी हंसी उड़ाने का मौका मिला था। तब मुझे इससे बड़ी लज्जा लगती थी, किंतु बड़े होने पर सोचता रहा हूं कि यदि पुनर्जन्म हो तो मेरे मुख पर सुरूप और पंडितजी के मुख पर विद्रूप इसी प्रकार प्रकट हो।

एक दिन था जब मेरे पिता गरीब थे। वकालत करके उन्होंने बहुत सा रुपया कमाया, भोग करने का उन्हें पलभर भी समय नहीं मिला। मृत्यु के समय उन्होंने जो लंबी सांस ली थी वही उनका पहला अवकाश था।

उस समय मेरी अवस्था कम थी, मां के ही हाथों मेरा लालन-पालन हुआ। मां गरीब घर की बेटी थीं, अतः हम धनी थे यह बात न तो वे भूलतीं और न मुझे भूलने देतीं। बचपन में मैं सदा गोद में ही रहा, शायद इसीलिए मैं अंत तक पूरी तौर पर वयस्क ही नहीं हुआ। आज भी मुझे देखने पर लगेगा, जैसे मैं अन्नपूर्णा की गोद में गजानन का छोटाभाई होऊं।

मेरे असली अभिभावक थे मेरे मामा। वह मुझसे मुश्किल से छः वर्ष बड़े होंगे। किंतु, फल्गू की तरेती की तरह उन्होंने हमारे सारे परिवार को अपने हृदय

में सोख लिया था। उन्हें खोदे बिना इस परिवार का एक भी बूंद रस पाने का कोई उपाय नहीं। इसी कारण मुझे किसी भी वस्तु के लिए कोई चिंता नहीं करनी पड़ती।

हर कन्या के पिता स्वीकार करेंगे कि मैं सत्यपात्र हूं। हुक्का तक नहीं पीता। भला आदमी होने में कोई झंझट नहीं है, अतः मैं नितांत भलामानस हूं। माता का आदेश मानकर चलने की क्षमता मुझमें है—वस्तुतः न मानने की क्षमता मुझमें नहीं है। मैं अपने को अंतःपुर के शासनानुसार चलने के योग्य ही बना सका हूं, यदि कोई कन्या स्वयंवरा हो तो इन सुलक्षणों को याद रखे।

बड़े-बड़े घरों से मेरे विवाह के प्रस्ताव आए थे। किंतु मेरे मामा का, जो धरती पर मेरे भाग्य देवता के प्रधान एजेंट थे, विवाह के संबंध में एक विशेष मत था। अमीर की कन्या उन्हें पसंद न थी। हमारे घर जो लड़की आए वह सिर झुकाए हुए आए, वह यही चाहते थे।

फिर भी रुपये के प्रति उनकी नस-नस में आसक्ति समाई हुई थी। वह ऐसा समधी चाहते थे जिसके पास धन तो न हो, पर जो धन देने में त्रुटि न करे। जिसका शोषण तो कर लिया जाए, पर जिसे घर आने पर गुड़गुड़ी के बदले बंधे हुक्के में तंबाकू देने पर शिकायत न सुननी पड़े।

मेरा मित्र हरीश कानपुर में काम करता था। छुट्टियों में उसने कलकत्ता आकर मेरा मन चंचल कर दिया। बोला, "सुनो जी, अगर लड़की की बात हो तो एक अच्छी-खासी लड़की है।"

कुछ दिन पहले ही एम.ए. पास किया था। सामने जितनी दूर तक दृष्टि जाती, छुट्टी धू-धूकर रही थी, परीक्षा नहीं है, उम्मीदवारी नहीं, नौकरी नहीं, अपनी जायदाद देखने की चिंता भी नहीं, शिक्षा भी नहीं, इच्छा भी नहीं—होने में भीतर मां थीं और बाहर मामा।

इस अवकाश की मरुभूमि में मेरा हृदय उस समय विश्व व्यापी नारी रूप की मरीचिका देख रहा था—आकाश में उसकी दृष्टि थी, वायु में उसका निःश्वास, तरु मर्मर में उसकी रहस्यमयी बातें।

ऐसे में हरीश आकर बोला, "अगर लड़की की बात हो तो..."

मेरा तन-मन वसंत वायु से दोलायित बकुल वन की नवपल्लव राशि की भांति धूप-छांह का पट बुनने लगा। हरीश आदमी था रसिक, रस उड़ेलकर वर्णन करने की उसमें शक्ति थी और मेरा मन था तृषार्त्त।

बैठक जमाने में हरीश अद्वितीय था। इसलिए हर जगह उसकी खातिर होती थी। मामा भी उसे पाकर छोड़ना नहीं चाहते थे। बात उनकी बैठक में चली। लड़की की अपेक्षा लड़की के पिता की जानकारी ही उनके लिए महत्वपूर्ण थी। पिता की अवस्था वह जैसी चाहते थे वैसी ही थी। किसी जमाने में उनके वंश में लक्ष्मी का मंगल घट भरा रहता था।

इस समय उसे शून्य ही समझो, फिर भी तले में थोड़ा-बहुत बाकी था। अपने प्रांत में वंश मर्यादा की रक्षा करके चलना सहज न समझकर वह पश्चिम में जाकर वास कर रहे थे। वहां गरीब गृहस्थ की ही भांति रहते थे। एक लड़की को छोड़कर उनके और कोई नहीं था। अतएव उसी के पीछे लक्ष्मी के घट को एकदम औंधा कर देने में हिचकिचाहट नहीं होगी।

यह सब तो सुंदर था, किंतु लड़की की आयु पंद्रह की है यह सुनकर मामा का मन भारी हो गया। वंश में तो कोई दोष नहीं है ? नहीं, कोई दोष नहीं—पिता अपनी कन्या के योग्य वर कहीं भी न खोज पाए। एक तो वर की हाट में महंगाई थी, तिस पर धनुष भंग की शर्त, अतः बाप सब्र किए बैठे हैं, किंतु कन्या की आयु सब्र नहीं करती।

जो हो, हरीश की सरस रसना में गुण था। मामा का मन नरम पड़ गया। विवाह की भूमिका का भाग निर्विघ्न पूरा हो गया। कलकत्ता के बाहर बाकी जितनी दुनिया है, सबको मामा अंडमान द्वीप के अंतर्गत ही समझते थे। जीवन में एक बार विशेष काम से वह कोन्नगर तक गए थे। मामा यदि मनु होते तो वह अपनी संहिता में हावड़ा के पुल को पार करने का एकदम निषेध कर देते। मन में इच्छा थी, खुद जाकर लड़की देख आऊं, पर प्रस्ताव करने का साहस न कर सका।

कन्या को आशीर्वाद देने के लिए जिन्हें भेजा गया वह हमारे विनु दादा थे, मेरे फुफेरे भाई। उनके मत, रुचि एवं दक्षता पर मैं सोलह आने निर्भर कर सकता था। लौटकर विनु दादा ने कहा, "बुरी नहीं है जी! असली सोना है!"

विनु दादा की भाषा अत्यंत संयत थी। जहां हम कहते थे 'अपूर्व', वहां वह कहते 'कामचलाऊ।' अतएव मैं समझा, मेरे भाग्य में पंचशर का प्रजापति से कोई विरोध नहीं है।

2

कहना व्यर्थ है, विवाह के उपलक्षय में कन्यापक्ष को ही कलकत्ता आना पड़ा। कन्या के पति शंभूनाथ बाबू हरीश पर कितना विश्वास करते थे, इनका प्रमाण यह था कि विवाह के तीन दिन पहले उन्होंने मुझे पहली बार देखा और आशीर्वाद की रसम पूरी कर गए। उनकी अवस्था चालीस के ही आस-पास होगी। बाल काले थे, मूंछों का पकना अभी प्रारंभ ही हुआ था। रूपवान थे भीड़ में देखने पर सबसे पहले उन्हीं पर नजर पड़ने लायक उनका चेहरा था।

आशा करता हूं कि मुझे देखकर वह खुश हुए। समझना कठिन था, क्योंकि वह अल्पभाषी थे। जो एकाध बात कहते भी थे उसे मानो पूरा जोर देकर नहीं कहते थे। इस बीच मामा का मुंह अबाध गति से चल रहा था—धन में, मान में हमारा स्थान शहर में किसी से कम नहीं था, वह नाना प्रकार से इसी का प्रचार कर रहे थे। शंभूनाथ बाबू ने इस बात में बिलकुल योग्य नहीं दिया—किसी भी प्रसंग में कोई 'हां' या 'हूं' तक नहीं सुनाई पड़ी।

मैं होता तो निरुत्साहित हो जाता, किंतु मामा को हतोत्साहित करना कठिन था। उन्होंने शंभूनाथ बाबू का शांत स्वभाव देखकर सोचा कि आदमी बिलकुल निर्जीव है, तनिक भी तेज नहीं। समधियों में और जो हो, तेज भाव होना पाप है, अतएव मन ही मन मामा खुश हुए। शंभूनाथ बाबू जब उठे तो मामा ने संक्षेप में ऊपर से ही उनको विदा कर दिया, गाड़ी में बैठाने नहीं गए।

दहेज के संबंध में दोनों पक्षों में बात पक्की हो गई थी। मामा अपने को असाधारण चतुर समझकर गर्व करते थे। बातचीत में वह कहीं भी कोई छिद्र न छोड़ते। रुपये की संख्या तो निश्चित थी ही, ऊपर से गहना कितने भर एवं सोना किस दर का होगा, यह भी एकदम तय हो गया था।

मैं स्वयं इन बातो में नहीं था, न जानता ही था कि क्या लेन-देन निश्चित हुआ है। मैं जानता था कि यह स्थूल भाग भी विवाह का एक प्रधान अंग है। वस्तुत: अत्यंत चतुर व्यक्ति के रूप में मामा हमारे सारे परिवार में गर्व की प्रधान वस्तु थे। जहां कहीं भी हमारा कोई संबंध हो पर्वत ही बुद्धि की लड़ाई में जीतेंगे, यह बिलकुल पक्की बात थी। इसलिए हमारे यहां कम न रहने पर भी एवं दूसरे पक्ष में कठिन अभाव होते हुए भी हम जीतेंगे, हमारे परिवार की जिद थी—इसमें चाहे कोई बचे या मरे।

हल्दी चढ़ाने की रस्म धूमधाम से हुई। ढोने वाले इतने थे कि संख्या का

हिसाब रखने के लिए क्लर्क रखना पड़ता। उनको विदा करने में दूसरे पक्ष का जो नाकों दम होगा उसका स्मरण करके मामा के साथ स्वर मिलाकर मां खूब हंसीं।

बैंड, शहनाई, फैंसी कंसर्ट आदि जहां कितने प्रकार की जोरदार आवाजें थीं, सबको एक साथ मिलकर बर्बर कोलाहल रूपी मस्त हाथी संगीत सरस्वती के पद्मवन को दलित विदलित करता हुआ मैं विवाह के घर में जा पहुंचा। अंगूठी, हार, जरी, जवाहरात से मेरा शरीर ऐसा लग रहा था जैसे गहने की दुकान नीलाम पर चढ़ी हो। उनके भावी जामाता का मूल्य कितना था यह जैसे कुछ मात्रा में सर्वांग में स्पष्ट रूप में लिखकर भावी ससुर के साथ मुकाबला करने चला था।

मामा विवाह के घर पहुंचकर प्रसन्न नहीं हुए। एक तो आंगन में बरातियों के बैठने के लायक जगह नहीं थी, तिस पर संपूर्ण आयोजन एकदम साधारण ढंग का था। ऊपर से शंभूनाथ बाबू का व्यवहार भी निहायत ठंडा था। उनकी विनय अजस्र नहीं थी। मुंह में शब्द ही न थे।

बैठे गले, गंजी खोपड़ी, कृष्णवर्ण एवं स्थूल शरीर वाले उनके एक वकील मित्र यदि कमर में चादर बांधे, बराबर हाथ जोड़े, सिर हिलाते हुए नम्रतापूर्ण स्मितहास्य और गदगद वचनों में कंसर्ट पार्टी के करताल बजाने वाले से लेकर वरकर्ता तक सबको बार-बार प्रसन्न न कर देते तो शुरू में ही मामला इस पार या उस पार हो जाता।

मेरे सभा में बैठने के कुछ देर बाद ही मामा शंभूनाथ बाबू को बगल के कमरे में बुला ले गए। पता नहीं, क्या बातें हुईं। कुछ देर बाद ही शंभूनाथ बाबू ने आकर मुझसे कहा, "लालाजी, इधर तो आइए!"

मामला यह था—सभी का न हो, किंतु किसी-किसी मनुष्य का जीवन में कोई एक लक्ष्य रहता है। मामा का एकमात्र लक्ष्य था—वह किसी भी प्रकार किसी से ठगे नहीं जाएंगे। उन्हें डर था कि उनके समधी उन्हें गहनों में धोखा दे सकते हैं—विवाह कार्य समाप्त हो जाने पर उस धोखे का कोई प्रतिकार न हो सकेगा। घर किराया, सौगात, लोगों की विदाई आदि के विषय में जिस प्रकार की खींचातानी का परिचय मिला उससे मामा ने निश्चय किया था—लेन-देन के संबंध में इस आदमी की केवल जबानी बात पर निर्भर रहने से काम न चलेगा। इसी कारण घर के सुनार तक को साथ लाए थे। बगल के कमरे में जाकर देखा—मामा एक कुरसी पर बैठे थे। एक सुनार अपनी तराजू, बाट और कसौटी

देखा—मामा एक कुरसी पर बैठे थे। एक सुनार अपनी तराजू, बाट और कसौटी आदि लिए जमीन पर बैठा था।

शंभूनाथ बाबू ने मुझसे कहा, "तुम्हारे मामा कहते हैं कि विवाह कार्य शुरू होने के पहले ही वह कन्या के सारे गहने जंचवाकर देखेंगे, तुम्हारी क्या राय है?"

मामा बोले, "वह क्या कहेगा। जो मैं कहूंगा, वही होगा।"

शंभूनाथ बाबू ने मेरी ओर देखकर कहा, "तो फिर यही तय रहा? ये जो कहेंगे वही होगा? इस संबंध में तुम्हें कुछ नहीं कहना है?"

मैंने जरा गरदन हिलाकर इशारे से बताया, "इन सब बातों में मेरा बिलकुल भी अधिकार नहीं है।"

"अच्छा तो बैठो, लड़की के शरीर से सारा गहना उतारकर लाता हूं।" यह कहते हुए वह उठे।

मामा बोले, "अनुपम यहां क्या करेगा? वह सभा में जाकर बैठे।"

शंभूनाथ बोले, "नहीं, सभा में नहीं, यहीं बैठना होगा।"

कुछ देर बाद उन्होंने एक अंगोछे में बंधे गहने लाकर चौकी के ऊपर बिछा दिए। सारे गहने उनकी पितामही के जमाने के थे, नए फैशन का बारीक काम न था—जैसा मोटा था वैसा ही भारी था।

सुनार ने हाथ में गहने उठाकर कहा, "इन्हें क्या देखूं। इसमें कोई मिलावट नहीं है—ऐसे सोने का आजकल व्यवहार ही नहीं होता।"

यह कहते हुए उसने मकर के मुंह वाला मोटा एक बाला कुछ दबाकर दिखाया, वह टेढ़ा हो जाता था।

मामा ने उसी समय नोट बुक में गहनों की सूची बना ली—कहीं जो दिखाया गया था उसमें से कुछ कम न हो जाए। हिसाब करके देखा, गहने जिस मात्रा में देने की बात थी इनकी संख्या, दर एवं तोल से अधिक थी।

गहनों में एक जोड़ा इयरिंग था। शंभूनाथ ने उसको सुनार के हाथ में देकर कहा, "जरा इसकी परीक्षा करके देखो!"

सुनार ने कहा, "यह विलायती माल है, इसमें सोने का हिस्सा मामूली ही है।"

शंभू बाबू ने इयरिंग जोड़ी मामा के हाथ में देते हुए कहा, "इसे आप ही रखें!"

मामा ने उसे हाथ में लेकर देखा, यही इयरिंग कन्या को देकर उन्होंने आशीर्वाद की रस्म पूरी की थी।

मामा का चेहरा लाल हो उठा, दरिद्र उनको ठगना चाहेगा, किंतु वह ठगे नहीं जाएंगे इस आनंद प्राप्ति से वंचित रह गए एवं इसके अतिरिक्त कुछ ऊपरी प्राप्ति भी हुई। मुंह अत्यंत भारी करके बोले, "अनुपम जाओ, जाओ तुम सभा में जाकर बैठो!"

शंभूनाथ बाबू बोले, "नहीं, अब सभा में बैठना नहीं होगा। चलिए, पहले आप लोगों को खिला दूं।"

मामा बोले, "यह क्या कह रहे हैं? लग्न..."

शंभूनाथ बाबू ने कहा, "उसके लिए चिंता न करें, अभी उठिए!"

आदमी निहायत भला था, किंतु अंदर से कुछ ज्यादा हठी प्रतीत हुआ। मामा को उठना पड़ा। बरातियों का भी भोजन हो गया। आयोजन में आडंबर नहीं था। किंतु रसोई अच्छी बनी थी और सबकुछ साफ-सुथरा। इससे सभी तृप्त हो गए।

बरातियों का भोजन समाप्त होने पर शंभूनाथ बाबू ने मुझसे खाने के लिए कहा।

मामा ने कहा, "यह क्या कह रहे हैं? विवाह के पहले वर कैसे भोजन करेगा!"

इस संबंध में वह मामा के व्यक्त किए मत की पूर्ण उपेक्षा करके मेरी ओर देखकर बोले, "तुम क्या कहते हो? भोजन के लिए बैठने में कोई दोष है?"

मूर्तिमती मातृ आज्ञा स्वरूप मामा उपस्थित थे, उनके विरुद्ध चलना मेरे लिए असंभव था। मैं भोजन के लिए न बैठ सका।

तब शंभूनाथ बाबू ने मामा से कहा, "आप लोगों को बहुत कष्ट दिया है। हम लोग धनी नहीं हैं। आप लोगों के योग्य व्यवस्था नहीं कर सके, क्षमा करेंगे। रात हो गई है, आप लोगों का कष्ट और नहीं बढ़ाना चाहता। तो फिर इस समय..."

मामा बोले, "तो, सभा में चलिए, हम तो तैयार हैं।"

शंभूनाथ बोले, "तब आपकी गाड़ी बुलवा दूं?"

मामा ने आश्चर्य से कहा, "मजाक कर रहे हैं क्या?"

शंभूनाथ ने कहा, "मजाक तो आप ही कर चुके हैं। मजाक के संपर्क को स्थायी करने की मेरी इच्छा नहीं है।"

मामा दोनों आंखें विस्फारित किए अवाक रह गए।

शंभूनाथ ने कहा, "अपनी कन्या का गहना मैं चुरा लूंगा, जो यह बात सोचता है उसके हाथों में कन्या नहीं दे सकता।"

मुझसे एक शब्द कहना भी उन्होंने आवश्यक नहीं समझा। कारण, प्रमाणित हो गया था, मैं कुछ भी नहीं था।

उसके बाद जो हुआ उसे कहने की इच्छा नहीं होती। झाड़-फानूस तोड़-फोड़ कर चीज वस्तु को नष्ट-भ्रष्ट करके बरातियों का दल दक्ष यज्ञ का नाटक पूरा करके बाहर चला आया।

घर लौटने पर बैंड, शहनाई और कंसर्ट सब साथ नहीं बजे एवं अभ्रक के झाड़ों ने आकाश के तारों के ऊपर अपने कर्तव्य का निर्वाह करके कहां महानिर्वाण प्राप्त किया, पता नहीं चला।

3

घर के सब लोग क्रोध से आगबबूला हो गए। कन्या के पिता को इतना घमंड! कलयुग पूर्ण रूप से आ गया है!

सब बोले, "देखें, लड़की का विवाह कैसे करते हैं।" किंतु, लड़की का विवाह नहीं होगा, यह भय जिसके मन में न हो उसको दंड देने का क्या उपाय है?

बंगाल भर में मैं ही एकमात्र पुरुष था जिसको स्वयं कन्या के पिता ने जनवासे से लौटा दिया था। इतने बड़े सत्यपात्र के माथे पर कलंक का इतना बड़ा दाग किस दुष्ट ग्रह ने इतना प्रचार करके गाजे-बाजे से समारोह करके आंक दिया? बराती यह कहते हुए माथा पीटने लगे कि विवाह नहीं हुआ, लेकिन हमको धोखा देकर खिला दिया-संपूर्ण अन्न सहित पक्वाशय निकालकर वहां फेंक आते तो अफसोस मिटता।

'विवाह के वचन भंग का और मानहानि का दावा करूंगा।' कहकर मामा घूम-घूमकर खूब शोर मचाने लगे। हितैषियों ने समझा दिया कि ऐसा करने से जो तमाशा बाकी रह गया है वह भी पूरा हो जाएगा।

कहना व्यर्थ है, मैं भी खूब क्रोधित हुआ था। 'किसी प्रकार शंभूनाथ बुरी तरह हारकर मेरे पैरों पर आ गिरे।' मूंछों की रेखा पर ताव देते-देते केवल यही कामना करने लगा।

किंतु इस आक्रोश की काली धारा के समीप एक और स्रोत बह रहा था, जिसका रंग बिलकुल भी काला नहीं था। संपूर्ण मन उस अपरिचित की ओर दौड़ गया। अभी तक उसे किसी भी प्रकार वापस नहीं मोड़ सका। दीवार की आड़ में रह गया। उसके माथे पर चंदन चर्चित था, देह पर लाल साड़ी, चेहरे पर लज्जा की ललाई, हृदय में क्या था यह कैसे कह सकता हूं! मेरे कल्पलोक की कल्पनालता वसंत के समस्त फूलों का भार मुझे निवेदित कर देने के लिए झुक पड़ी थी।

हवा आ रही थी, सुगंध मिल रही थी, पत्तों का शब्द सुन रहा था—केवल एक पग बढ़ाने की देर थी—इसी बीच वह पग भर की दूरी क्षणभर में असीम हो गई।

इतने दिन तक रोज शाम को मैंने विनु दादा के घर जाकर उनको परेशान कर डाला था। विनु दादा की वर्णन शैली की अत्यंत सघन संक्षिप्तता के कारण उनकी प्रत्येक बात ने अंगारे के समान मेरे मन में आग लगा दी थी। मैंने समझा था कि लड़की का रूप बड़ा अपूर्व था, किंतु न तो उसे आंखों से देखा और न उसका चित्र, सबकुछ अस्पष्ट रह गया। बाहर तो उसने पकड़ दी ही नहीं, उसे मन में भी न ला सका—इसी कारण भूत के समान दीर्घ निश्वास लेकर मन उस दिन की उस विवाह सभा की दीवार के बाहर चक्कर काटने लगा।

हरीश ने सुना, लड़की को मेरा फोटोग्राफ दिखाया गया था। पसंद अवश्य किया होगा। न करने का तो कोई कारण ही न था। मेरा मन कहता है, वह चित्र उसने किसी बक्स में छिपा रखा है। कमरे का दरवाजा बंद करके अकेली किसी-किसी निर्जन दोपहरी में क्या वह उसे खोलकर न देखती होगी? जब झुककर देखती होगी तब चित्र के ऊपर क्या उसके मुख के दोनों ओर से खुले बाल आकर नहीं पड़ते होंगे? अकस्मात बाहर किसी के पैर की आहट पाते ही क्या वह झटपट अपने सुगंधित अंचल में चित्र को छिपा न लेती होगी?

एक वर्ष बीत गया। मामा तो लज्जा के मारे विवाह संबंध की बात ही न छेड़ पाते। मां की इच्छा थी, मेरे अपमान की बात जब समाज के लोग भूल जाएंगे तब विवाह का प्रयत्न करेंगी।

दूसरी ओर मैंने सुना कि शायद उस लड़की को अच्छा वर मिल गया है, किंतु उसने प्रण किया है कि विवाह नहीं करेगी। सुनकर मन आनंद के आवेश से भर गया।

मैं कल्पना में देखने लगा, वह अच्छी तरह खाती नहीं, संध्या हो जाती है, वह बाल बांधना भूल जाती है। उसके पिता उसके मुंह की ओर देखते हैं और सोचते हैं, 'मेरी लड़की दिनों-दिन ऐसी क्यों होती जा रही है?' अकस्मात किसी दिन उसके कमरे में आकर देखते हैं, लड़की के नेत्र आंसुओं से भरे हैं। पूछते हैं बेटी, तुझे क्या हो गया है, मुझे बता? लड़की झटपट आंसू पोंछकर कहती है—कहां, कुछ भी तो नहीं हुआ, पिताजी! बाप की इकलौती लड़की है न—बड़ी लाड़ली लड़की है।

अकाल के दिनों में फूल की कली के समान जब लड़की एकदम मुरझा गई तो पिता के प्राण और अधिक सहन न कर सके। मन त्यागकर वह हमारे दरवाजे पर आए। उसके बाद?

उसके मन में जो काले रंग की धारा बह रही थी वह मानो सांप के समान रूप धरकर फुफकार उठी। उसने कहा, "अच्छा है, फिर एक बार विवाह का साज सजाया जाए, रोशनी जले, देश-विदेश के लोगों को निमंत्रण दिया जाए, उसके बाद तुम वर के मौर को पैरों से कुचलकर दलबल लेकर सभा से उठकर चले आओ!" किंतु जो धारा अश्रुजल के समान शुभ्र थी, वह राजहंस का रूप धारण करके बोली, "जिस प्रकार मैं एक दिन दमयंती के पुष्पवन में गई थी मुझे उसी प्रकार एक बार उड़ जाने दो—मैं विरहिणी के कानों में एक बारसुख संदेश दे आऊं।" उसके बाद? उसके दुख की रात बीत गई, नव वर्षा का जल बरसा, म्लान फल ने मुंह उठाया—इस बार उस दीवार के बाहर सारी दुनिया के और सब लोग रह गए, केवल एक व्यक्ति ने भीतर प्रवेश किया। फिर मेरी कहानी खत्म हो गई।

पर कहानी ऐसे खत्म नहीं हुई। जहां पहुंचकर वह अनंत हो गई है, वहां का थोड़ा-सा विवरण अवश्य बताना चाहूंगा।

मां को लेकर तीर्थ करने जा रहा था। भार मेरे ही ऊपर था, क्योंकि मामा इस बार भी हावड़ा पुल के पार नहीं हुए। रेलगाड़ी में सो रहा था। झोंके खाते-खाते दिमाग में नाना प्रकार के बिखरे स्वप्नों का झुनझुना बज रहा था। अकस्मात किसी एक स्टेशन पर जाग पड़ा, वह भी प्रकाश अंधकार मिश्रित एक स्वप्न था।

केवल आकाश के तारागण चिर-परिचित थे और सब अपरिचित अस्पष्ट था। स्टेशन की कई सीधी खड़ी बत्तियां प्रकाश द्वारा यह धरती कितनी अपरिचित है एवं जो चारों ओर है, वह कितना अधिक दूर है—यही दिखा रही थीं। गाड़ी

में मां सो रही थीं। बत्ती के नीचे हरा परदा टंगा था। ट्रंक, बक्स, सामान सब एक-दूसरे के ऊपर तितर-बितर पड़े थे। वह मानो स्वप्नलोक का उलटा-पुलटा सामान हो, जो संध्या की हरी बत्ती के टिमटिमाते प्रकाश में होने और न होने के बीच न जाने किस ढंग से पड़ा था।

इस बीच उस विचित्र जगत की अद्‌भुत रात में कोई बोल उठा, ''जल्दी आ जाओ, इस डब्बे में जगह है।''

लगता है, जैसे गीत सुना हो। बंगाली लड़की के मुख से बंगला बोली कितनी मधुर लगती है, इसका पूरा-पूरा अनुमान ऐसे अनपयुक्त स्थान पर अचानक सुनकर ही किया जा सकता है—किंतु इस स्वर को निरी एक लड़की का स्वर कह देने से काम नहीं चलेगा। यह किसी अन्य व्यक्ति का स्वर था, सुनते ही मन कह उठता है, 'ऐसा तो पहले कभी नहीं सुना।'

गले का स्वर मेरे लिए सदा ही बड़ा सत्य रहा है। रूप भी कम बड़ी वस्तु नहीं है, किंतु मनुष्य में जो अंतर्तम और निर्वचनीय है—मुझे लगता है, जैसे कंठ स्वर उसी की आकृति हो। चटपट जंगला खोलकर मैंने मुंह बाहर निकाला, कुछ भी न दिखाई दिया।

प्लेटफॉर्म पर अंधेरे में खड़े गार्ड ने अपनी एक आंख वाली लालटेन हिलाई। गाड़ी चल दी। मैं जंगले के पास बैठा रहा। मेरी आंखों के सामने कोई मूर्ति न थी, किंतु हृदय में मैं एक हृदय का रूप देखने लगा। वह जैसे इस तारामयी रात्रि के समान हो, जो आवृत कर लेती है, किंतु उसे पकड़ा नहीं जा सकता।

ओ स्वर! अपरिचित कंठ स्वर! क्षणभर में ही तुम मेरे चिर-परिचित के आसन पर आकर बैठ गए हो। तुम कैसे अद्‌भुत हो—चंचल काल के क्षुब्ध हृदय के ऊपर फूल के समान खिले हो, किंतु उसकी लहरों के आंदोलन से कोई पंखुड़ी तक नहीं हिलती, अपरिमेय कोमलता में जरा भी दाग नहीं पड़ता।

गाड़ी लोहे के मृदंग पर ताल देती हुई चली। मैं मन-ही-मन गाना सुनता जा रहा था। उसकी एक ही टेक थी—डब्बे में जगह है। है क्या, जगह है क्या? जगह मिले कैसे, कोई किसी को नहीं पहचानता। साथ ही यह न पहचानना मात्र कोहरा है, माया है, उसके छिन्न होते ही फिर परिचय का अंत नहीं होता। ओ सुधामय स्वर! जिस हृदय के तुम अद्‌भुत रूप हो, वह क्या मेरा चिर परिचित नहीं है? जगह है ही, जल्दी बुलाया था, जल्दी ही आया हूं—क्षणभर की देर नहीं की है।

रात में ठीक से नींद नहीं आई। प्राय: हर स्टेशन पर एक बार मुंह निकालकर देखता, भय होने लगा कि जिसको देख नहीं पाया वह कहीं रात में ही न उतर जाए।

दूसरे दिन सुबह एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी बदलनी थी। हमारे टिकट फर्स्ट के थे। आशा थी, भीड़ नहीं होगी। उतरकर देखा, प्लेटफॉर्म पर साहबों के अर्दलियों का दल सामान लिए गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। फौज के कोई एक बड़े जनरल साहब भ्रमण के लिए निकले थे। दो-तीन मिनट के बाद ही गाड़ी आ गई। समझा, फर्स्ट क्लास की आशा छोड़नी पड़ेगी। मां को लेकर किस डब्बे में चढ़ूं, इस बारे में बड़ी चिंता में पड़ गया। पूरी गाड़ी में भीड़ थी। दरवाजे-दरवाजे झांकता हुआ घूमने लगा। इसी बीच सेकंड क्लास के डब्बे से एक लड़की ने मेरी मां को लक्ष्य करके कहा, "आप हमारे डब्बे में आइए न, यहां जगह है।'

मैं तो चौंक पड़ा। वही अद्‌भुत मधुर स्वर और वही गीत की टेक है 'जगह है' क्षणभर की भी देर न करके मां को लेकर डब्बे में चढ़ गया। सामान चढ़ाने का समय प्राय: नहीं था। मेरे जैसा असमर्थ दुनिया में कोई न होगा। उस लड़की ने ही कुलियों के हाथ झपटपट चलती गाड़ी में हमारे बिस्तरादि खींच लिए। फोटो खींचने का मेरा एक कैमरा स्टेशन पर ही छूट गया—ध्यान ही न रहा।

उसके बाद क्या लिखूं, नहीं जानता। मेरे मन में एक अखंड आनंद की तस्वीर है—उसे कहां से शुरू करूं, कहां समाप्त करूं? बैठे-बैठे एक वाक्य के बाद दूसरे वाक्य की योजना की इच्छा नहीं होती।

इस बार उसी स्वर को आंखों से देखा। इस समय भी वह स्वर ही जान पड़ा। मां के मुंह की ओर ताका—देखा कि उनकी आंखों की पलक नहीं गिर रही थीं। लड़की की अवस्था सोलह या सत्रह की होगी, किंतु नवयौवन ने उसके देह तथा मन कहीं भी जैसे जरा भी भार न डाला हो। उसकी गति सहज, दीप्ति निर्मल, सौंदर्य की शुचिता अपूर्व थी, उसमें कहीं जड़ता न थी।

मैं देख रहा हूं, विस्तार से कुछ कहना भी मेरे लिए असंभव है। यही नहीं, वह किस रंग की साड़ी किस प्रकार पहने हुए थी, यह भी ठीक से नहीं कह सकता। यह बिलकुल सत्य है कि उसकी वेशभूषा में ऐसा कुछ न था, जो उसे छोड़कर विशेष रूप से आंखों को आकर्षित करे। वह अपने चारों ओर की

चीजों से बढ़कर थी। रजनीगंधा की शुभ्र मंजरी के समान सरल वृंत के ऊपर स्थित जिस वृक्ष पर खिली थी, उसका एकदम अतिक्रमण कर गई थी। साथ में दो-तीन छोटी-छोटी लड़कियां थीं। उनके साथ उसकी हंसी और बातचीत का अंत न था।

मैं हाथ में एक पुस्तक लिए उसी ओर कान लगाए था। जो कुछ कान में पड़ रहा था, वह सब तो बच्चों के साथ बचपने की बातें थीं। उसका विशेषत्व यह था कि उसमें अवस्था का अंतर बिलकुल भी नहीं था। छोटों के साथ वह अनायास और आनंदपूर्वक छोटी हो गई थी। साथ में बच्चों की कहानियों की सचित्र पुस्तकें थीं। उसी की कोई कहानी सुनाने के लिए लड़कियों ने उसे घेर लिया था। यह कहानी अवश्य ही उन्होंने बीस-पच्चीस बार सुनी होगी। लड़कियों का इतना आग्रह क्यों था, यह मैं समझ गया।

उस सुधा कंठ की सोने की छड़ी से सारी कहानी सोना हो जाती थी। लड़की का संपूर्ण तन-मन पूरी तरह प्राणों से भरा था, उसकी सारी चाल-ढाल स्पर्श में प्राण उमड़ रहा था। अत: लड़कियां जब उसके मुंह से कहानी सुनतीं, तब कहानी नहीं, उसी को सुनतीं—उनके हृदय पर प्राणों का झरना झर पड़ता।

उसके उस उद्भासित प्राण ने मेरी उस दिन की सारी सूर्य किरणों को सजीव कर दिया। मुझे लगा, मुझे जिस प्रकृति ने अपने आकाश से वेष्टित कर रखा है, वह उस तरुणी के ही अक्लांत, अम्लान प्राणों का विश्वव्यापी विस्तार है। दूसरे स्टेशन पर पहुंचते ही उसने खोमचे वाले को बुलाकर काफी सारी दालमोठ खरीदी और लड़कियों के साथ मिल-जुलकर बिलकुल बच्चों के समान कलहास्य करते हुए निस्संकोच भाव से खाने लगी।

मेरी प्रकृति तो जाल से घिरी हुई थी। क्यों मैं अत्यंत सहज भाव से, उस हंसमुख लड़की से एक मुट्ठी दालमोठ न मांग सका? हाथा बढ़ाकर अपना लोभ क्यों नहीं स्वीकार किया!

मां अच्छा और बुरा लगने के बीच दुचित्ती हो रही थीं। डब्बे में मैं हूं मर्द, फिर भी इसे कोई संकोच नहीं, खासकर वह लोभी की भांति खा रही है। यह बात उनको पसंद नहीं आ रही थी और उसे बेहया कहने का भी उन्हें भ्रम न हुआ। उन्हें लगा, इस लड़की की अवस्था हो गई है, किंतु शिक्षा नहीं मिली। मां एकाएक किसी से बातचीत नहीं कर पातीं। लोगों के साथ दूर-दूर रहने का ही उनको अभ्यास था। इस लड़की का परिचय प्राप्त करने की उनको बड़ी इच्छा थी, किंतु स्वाभाविक बाधा नहीं मिटा पा रही थी।

इसी समय गाड़ी एक बड़े स्टेशन पर आकर रुक गई। उस जनरल साहब के साथियों का एक दल इस स्टेशन से चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। गाड़ी में कहीं जगह न थी। कई बार वे हमारे डब्बे के सामने से निकले। मां तो भय के मारे जड़ हो गई, मैं भी मन में शांति का अनुभव नहीं कर सका।

गाड़ी छूटने के थोड़ी देर पहले एक देशी रेल कर्मचारी ने डब्बों की दो बेंचों के सिरों पर नाम लिखे हुए दो टिकिट लाकर मुझसे कहा, "इस डब्बे की ये दो बेंचें पहले से ही दो साहबों ने रिजर्व करा रखी हैं, आप लोगों को दूसरे डब्बे में जाना होगा।"

मैं तो घबराकर खड़ा हो गया। लड़की हिंदी में बोली, "नहीं, हम डब्बा नहीं छोड़ेंगे।"

उस आदमी ने जिद करते हुए कहा, "बिना छोड़े कोई चारा नहीं।"

किंतु लड़की के उतरने की इच्छा का कोई लक्षण न देखकर वह उतरकर अंग्रेज स्टेशन मास्टर को बुला लाया। उसने आकर मुझसे कहा, "मुझे खेद है, किंतु!"

स्टेशन मास्टर को बीच में ही टोकते हुए लड़की ने दरवाजे के पास खड़े होकर अंग्रेजी में कहा, "यह डब्बा पहले से रिजर्व है, यह बात झूठ है।"

फिर उसने नाम लिखे टिकटों को खोलकर प्लेटफॉर्म पर फेंक दिया।

इस बीच में वर्दी पहंने साहब अर्दली के साथ दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। डब्बे में अपना सामान चढ़ाने के लिए पहले उसने अर्दली को इशारा किया था। इसके पश्चात लड़की के मुंह की ओर देखकर उसकी बात सुनकर, मुख मुद्रा देखकर स्टेशन मास्टर को थोड़ा छुपा और उसकी ओट में ले जाकर पता नहीं क्या कहा।

देखा गया, गाड़ी छूटने का समय बीत चुकने पर भी और एक डब्बा जोड़ा गया, तब कहीं ट्रेन छूटी। लड़की ने अपना दलबल लेकर फिर दुबारा दालमोठ खाना शुरू कर दिया और मैं शर्म के मारे जंगले के बाहर मुंह निकालकर प्रकृति की शोभा देखने लगा।

❑❑

45

रामकन्हाई की मूर्खता

जो कहते हैं—गुरुचरण की मृत्यु के समय उसकी दूसरी घरवाली अंत:पुर में बैठकर ताश खेल रही थी, वह विश्वनिंदक है, वह तिल को ताड़ बनाते हैं। असल में गृहिणी उस समय एक पैर के ऊपर बैठी दूसरे पैर के घुटने को ठुही तक उठा कच्ची इमली, हरि मिर्च और झींगा मछली की चटपटी चच्वड़ी के साथ पांता बड़े मनोयोग से खा रही थी।

बाहर से जब बुलाहट हुई तब चूसे हुए डंठलों और खाली थाली को छोड़ गंभीर भाव से बोली, "जरा-सा पांता भात मुंह में दूं, इसके लिए भी समय नहीं मिलता।"

इधर डॉक्टर जब जवाब दे गए, तब गुरुचरण के भाई रामकन्हाई ने रोगी की बगल में बैठे हुए धीरे-धीरे कहा, "भैया यदि तुम्हें वसीयतनामा करने की इच्छा हो तो बताओ।"

गुरुचरण क्षीण स्वर में बोले, "मैं बोलता हूं, तुम लिख लो।"

रामकन्हाई कागज-कलम लेकर तैयार हुए।

गुरुचरण कहते गए, "अपनी चल-अचल संपत्ति, सारी जमीन-जायदाद मैंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती वरदा सुंदरी को दान में दी।"

रामकन्हाई ने लिखा, पर लिखते हुए उनकी कलम चल नहीं रही थी। उन्हें आशा थी कि उनका इकलौता पुत्र नवद्वीप नि:संतान ताऊ की सारी संपत्ति का अधिकारी होगा। हालांकि दोनों भाई अलग हो गए थे, लेकिन इसी आशा में नवद्वीप की मां ने नवद्वीप को किसी भी तरह नौकरी नहीं करने दी और बचपन में ही उसका विवाह करा दिया। दुश्मनों का मुंह काला करते हुए विवाह निष्फल नहीं हुआ, लेकिन न चाहते हुए भी रामकन्हाई ने लिखा और हस्ताक्षर करने के लिए भैया के हाथ में कलम थमा दी।

गुरुचरण ने निर्जीव हाथों से जो हस्ताक्षर किए वे मात्र कुछ कांपती टेढ़ी लकीरें थीं या उनका नाम, यह समझना बड़ा मुश्किल था।

पत्नी पांता भात खाकर जब आई, तब वह गुरुचरण की घिग्घी बंधी देखकर रोने लगी। जिन्होंने बड़ी आशा लगाई थी और संपति से वंचित हुए, उन्होंने कहा, "ये दिखावटी आंसू हैं।" पर यह विश्वास योग्य नहीं है।

वसीयतनामे का वृतांत सुनकर नवद्वीप की मां दौड़ती हुई आईं और बड़ा बखेड़ा खड़ा किया। बोलीं, " मृत्युकाल में बुद्धि नाश होती है। ऐसे सोने के चांद से भतीजे के रहते...!"

यद्यपि रामकन्हाई पत्नी को अत्यंत प्रेम करते थे। इतना अधिक कि दूसरे शब्दों में कहें तो उसे 'भय' कहा जा सकता है—लेकिन उनसे रहा नहीं गया, दौड़े हुए आकर बोले, "मंझली, अभी तो तुम्हारी बुद्धि नाश का समय नहीं हुआ। फिर तुम्हारा ऐसा व्यवहार क्यों? भैया चले गए—मैं तो हूं, तुम्हें जो कुछ कहना हो, मौका आने पर मुझसे कहना—अभी ठीक समय नहीं है।"

समाचार पाकर जब नवद्वीप पहुंचा, तब उसके ताऊजी का अंतकाल हो चुका था। नवद्वीप ने मृत व्यक्ति को धमकी दी थी, देखता हूं, तुम्हारी मुखाग्नि कौन करता है और श्राद्धादि शांति अनुष्ठान यदि मैं करूं तो मेरा नाम नवद्वीप नहीं।'

गुरुचरण नामधारी व्यक्ति·कुछ भी नहीं मानते थे। वह डफ साहब के छात्र थे। शास्त्रानुसार जो सर्वापेक्षा अखाद्य वस्तु थी, उसी से उनकी विशेष परितृप्ति होती। लोग यदि ईसाई कहते, तो वह जीभ काटकर कहते, 'राम-राम! यदि मैं ईसाई होऊं तो तेरे गोमांस खाऊं!'

जीवित अवस्था में जिनकी यह हालत थी, सद्यःमृत अवस्था में वह पिंडनाश की आशंका से जरा भी विचलित नहीं होंगे, ऐसी संभावना भी नहीं। फिलहाल इसके अतिरिक्त प्रतिशोध का कोई दूसरा मार्ग नहीं था। नवद्वीप को यह एक सांत्वना मिली कि यह व्यक्ति परलोक में जाकर मरा रहेगा। जितने दिन इहलोक में रहा जाए, ताऊजी की संपत्ति न पाकर भी किसी प्रकार पेट चल जाएगा, पर ताऊजी जिस लोक में गए—वहां भीख मांगकर पिंड नहीं मिलता। जीवित रहते अनेक सुविधाएं हैं।

रामकन्हाई वरदा सुंदरी के पास जाकर बोले, "भाभी साहिबा, भैया तुम्हें ही सारी संपत्ति दे गए हैं। यह रहा उनका वसीयतनामा। इसे लोहे की संदूकची में संभालकर रख देना।"

उस समय विधवा मुंह ही मुंह में दीर्घ पद रचना कर ऊंचे स्वर में विलाप कर रही थीं। दो-चार दासियां भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर बीच-बीच में दो-चार नए शब्द जोड़ शोक संगीत से सारे महल्ले की निद्रा दूर भगा रही थीं। बीच ही में इस कागज के टुकड़े के आने से एक प्रकार का लयभंग सा हो गया और भावों में भी पूर्वापर योग न रहा। प्रसंग ने नीचे लिखे अनुसार असंबद्ध आकार धारण कर लिया।

"हाय राम, मेरा सर्वनाश हुआ जी! सर्वनाश! अच्छा देवरजी, यह लिखावट किसकी है? क्या तुम्हारी। ओ जी, अब तुम्हारे जैसे जतन से मेरी कौन देखभाल करेगा। मेरी ओर मुंह उठाकर देखेगा जी। तुम सब जरा रुको तो—इतना मत चिल्ला, बात सुनने दे। ओ जी, मैं क्यों नहीं पहले चली गई जी— मैं क्यों जीती रही?"

रामकन्हाई मन ही मन गहरी सांस भरते हुए बोले, "यह हमारे भाग्य का दोष है।"

घर लौटकर नवद्वीप की मां रामकन्हाई के पीछे पड़ गई। भारी बोझ से लदी गाड़ी समेत गड्ढे में गिरने पर अभागे बैल गाड़ीवान द्वारा हजारों बार धक्के मारे जाने पर भी बहुत देर तक जैसे निरुपाय निश्चल भाव से खड़े ही रह जाते हैं, रामकन्हाई भी वैसे ही बहुत देर तक चुप रहकर सहते रहे। अंत में बड़े दीन स्वर में बोले, "मेरा क्या अपराध? मैं तो भैया नहीं हूं।"

नवद्वीप की मां जोर से कड़ककर बोली, "नहीं, तुम बड़े भले आदमी हो। कुछ नहीं समझते, भैया ने कहा, 'लिखो!' भाई वैसा ही लिखते गए। तुम सभी एक से हो। तुम भी समय आने पर वैसा ही करम करने के लिए बैठे हो। मेरे मरते ही किसी मुंह झौंसी डाइन को घर में ला बैठाओगे और मेरे हीरे के टुकड़े नवद्वीप को अथाह सागर में झोंक दोगे। ऐसी बात सोचना भी नहीं, मैं जल्दी मरने वाली नहीं।"

इस प्रकार रामकन्हाई के भावी अत्याचारों की आलोचना करते हुए गृहिणी क्रमशः और भी असहिष्णु होती चली गई। रामकन्हाई निश्चित रूप से जानते थे, यदि इन सब बेसिर-पैर की काल्पनिक आशंकाओं के निवारण हेतु तनिक भी प्रतिवाद करें तो हित का विपरीत होगा। इस भय से वह अपराधी से चुप बने रहे—जैसे अपकर्म कर ही डाला हो, जैसे उनके लाल नवद्वीप को संपत्ति से वंचित कर उनकी भावी दूसरी घरवाली को सब लिखकर मरे बैठे हों, अब अपराध स्वीकारे बिना दूसरी कोई गति नहीं।

इस बीच नवद्वीप अपने बुद्धिमान मित्रों के साथ अनेक सलाह-मशविरा के बाद मां से आकर बोला, "कोई चिंता नहीं। यह संपत्ति मैं ही पाऊंगा। कुछ दिनों के लिए बाबूजी को यहां से स्थानांतरित करना होगा। उनके रहने पर भंडा-फोड़ हो जाएगा।"

नवद्वीप के पिता की अक्ल के प्रति नवद्वीप की मां को रत्ती भर श्रद्धा नहीं थी। अतः उन्हें बात तर्कसंगत जान पड़ी। अंत में मां की ताड़ना से पिता ने जैसे-तैसे एक बहाना बनाकर कुछ दिनों के लिए काशी जाकर आश्रय लिया।

थोड़े ही दिनों बाद वरदा सुंदरी और नवद्वीप दोनों ही एक-दूसरे के विरुद्ध जाली वकालतनामा तैयार करने के आरोप के साथ कचहरी जा पहुंचे। नवद्वीप ने अपने नाम का जो वकालतनामा निकाला, उसके नाम के हस्ताक्षर को देखकर गुरुचरण का हस्ताक्षर स्पष्ट प्रमाणित होता है। इसके लिए दो निस्वार्थ गवाह भी मिल गए। वरदा सुंदरी की ओर से अकेले नवद्वीप के पिता ही गवाह रहे और हस्ताक्षर का पहचानना अन्य किसी के लिए संभव नहीं था।

उनके अपने घर में पलता हुआ एक ममेरा भाई था, वह बोला, "दीदी, चिंता की कोई बात नहीं है। मैं गवाही दूंगा और दूसरे गवाह भी जुटाऊंगा।"

मामला जब पूरी तरह तैयार हो गया, तब नवद्वीप की मां ने नवद्वीप के पिता को काशी से बुलवा भेजा। अनुगत सज्जन थैला और छाता हाथ में लेकर यथा समय आ उपस्थित हुए। यहां तक कि किंचित रसालाप तक करने की चेष्टा की। हाथ जोड़कर मुसकराते हुए बोले, "गुलाम हाजिर है, अब महारानी की आज्ञा होती है।"

गृहिणी ने सिर हिलाकर कहा, "बहुत हुआ, अधिक हंसी-ठट्ठा न करो। इतने दिन बहाना बनाकर काशी में बिता आए, एक दिन के लिए भी मेरी याद नहीं आई!" आदि।

इस प्रकार दोनों पक्ष बहुत देर तक एक-दूसरे के नाम पर प्रेम का अभियोग लगाते रहे। अंत में नालिश व्यक्ति को छोड़कर जाति पर आ पहुंची। नवद्वीप की मां पुरुष के प्रेम के साथ मुसलमान के मुर्गी वात्सल्य की तुलना करने लगी।

नवद्वीप के पिता ने कहा, "रमणी के मुख में मधु, हृदय में छुरी है।"

यद्यपि इस मौखिक मधुरता का परिचय नवद्वीप के पिता को कब मिला, कहना कठिन है।

इसी बीच रामकन्हाई को सहसा कचहरी से एक गवाह का समन मिला।

जब वह उसकी असलियत समझने की कोशिश कर रहे थे, तभी नवदीप की मां ने आकर रोना-पीटना शुरू कर दिया। बोली, "खून पीने वाली चुड़ैल ने नवद्वीप को उसके स्नेहशील ताऊ के उत्तराधिकार के औचित्य से वंचित भर करना चाहा हो इतना ही नहीं है, ऊपर से मेरे लाल को जेल भिजवाने का बंदोबस्त कर रही है।"

धीरे-धीरे मामले का अनुमान लगाकर रामकन्हाई की आंखें खुली की खुली रह गईं। वह ऊंचे स्वर में बोल उठे, "तुम सबने यह क्या सर्वनाश कर डाला!"

गृहिणी धीरे-धीरे रौद्ररूप धारण कर बोली, "क्यों, क्या इसमें नवद्वीप की ओर से कोई गलती हुई है? क्या वह अपने ताऊ की संपत्ति लेगा नहीं? ऐसे ही बिना प्रतिवाद के छोड़ देगा।"

कहां से एक कानी खसमखानी, कोढ़िन आकर जम बैठी। इसे कौन संतान सह सकती है? मान लिया कि मृत्यु समय में तथा डाइन के मंत्र बल से किसी मूढ़ मति ताऊ को बुद्धि भ्रम हो गया हो और उसके हीरे से भतीजे ने यदि उस भ्रम को अपने हाथों सुधार लिया हो तो ऐसा क्या अपराध हो गया? हतबुद्धि रामकन्हाई ने जब देखा कि उनकी स्त्री और उनका पुत्र दोनों मिलाकर कभी तर्जन-गर्जन तो कभी अश्रु विसर्जन करने लगे, तब सिर पीटकर वह चुप बैठे रह गए। अन्न त्याग दिया, छुआ तक नहीं।

इस प्रकार दो दिन मौन अनशन में बीत गए। मुकदमे का दिन आ गया। इस बीच नवद्वीप ने वरदा सुंदरी के ममेरे भाई को डरा-धमकाकर, प्रलोभन देकर ऐसे वश में कर लिया कि उसने अनायास ही नवद्वीप के पक्ष में गवाही दी। जब जयश्री वरदा सुंदरी को त्याग दूसरी ओर जाने लगी थी, तभी रामकन्हाई की पुकार हुई।

अनशन से मृतप्राय: सूखे होंठ मुंह वृद्ध ने कांपती दुर्बल उंगलियों से गवाह के कठघरे को जकड़कर पकड़ लिया। चतुर बैरिस्टर ने अत्यंत चतुराई से पेट की बात को निकालने के लिए जिरह शुरू की। बहुत दूर से आरंभ कर सावधानी से धीरे-धीरे प्रसंग पर आने का प्रयास करने लगे। तब रामकन्हाई जज की ओर घूमकर हाथ जोड़े बोले, "हुजूर, मैं वृद्ध, अत्यंत दुर्बल हूं। मुझमें अधिक बोलने की सामर्थ्य नहीं। मुझे जो कुछ कहना है संक्षेप में कहे देता हूं। मेरे बड़े भइया स्वर्गीय गुरुचरण चक्रवर्ती मरने के समय अपनी सारी संपत्ति का

वसीयनामा अपनी पत्नी श्रीमती वरदा सुंदरी के नाम कर गए। वह वसीयतनामा मैंने अपने हाथ से लिखा और भैया ने अपने हाथ से हस्ताक्षर किए। मेरे पुत्र नवद्वीप चंद्र ने जो वसीयतनामा पेश किया, वह जाली है।'' कहते-कहते कांपते हुए रामकन्हाई मूर्च्छित हो गए।

चतुर बैरिस्टर विनोदपूर्वक बगल के एटर्नी से बोले, ''वाई जोब! इस आदमी को कैसे कसकर पकड़ा।''

ममेरा भाई दौड़ा हुआ दीदी से जाकर बोला, ''बूढ़े ने सारी मिट्टी पलीद कर दी थी—मेरी गवाही से मुकदमे की रक्षा हुई।''

दीदी बोली, ''ऐसी बात है। आदमी को कौन पहचान सकता है? मैं तो बूढ़े को भला आदमी समझती थी।''

जेल में बंद नवद्वीप के बुद्धिमान मित्रों ने बहुत सोचकर तय किया कि अवश्य ही वृद्ध ने डर से यह काम कर डाला है। गवाह के कठघरे में खड़े होकर बूढ़े की बुद्धि ठिकाने नहीं रही, नितांत निर्बोध सारे शहर में ढूंढ़े नहीं मिलेगा।

घर लौटकर रामकन्हाई को कठिन वकार ज्वर ने घेर लिया। प्रलाप में पुत्र का नाम उच्चारण करते-करते वह दुनिया से कूच कर गए। नाते-रिश्तेदारों में से किसी-किसी ने कहा, ''और कुछ दिन पहले ही चला गया होता, तो अच्छा होता।''

❑ ❑ ❑

रवीन्द्रनाथ टैगोर की
45 अनमोल कहानियाँ

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर मूलतः कवि हैं। उनकी कविताएं जहां मानवीय संवेदना के विभिन्न रंग उभारती हैं, वहीं वे वेदमंत्रों की तरह अलौकिक का स्पर्श करने का भी प्रयास करती हैं। इनकी कहानियां भी लगभग इसी प्रकृति की हैं। गुरुदेव की पहली कहानी 1877 में, जब ये मात्र 16 वर्ष के थे, प्रकाशित हुई थी।

गुरुदेव से पहले बांग्ला साहित्य में गिनी-चुनी कहानियां ही देखने को मिलती थीं। इन्होंने ही वहां इस विधा को एक सुव्यवस्थित रूप दिया। इनकी कहानियां बांग्ला साहित्य में जहां बहुचर्चित हुईं, वहीं पाठकों द्वारा काफी सराही भी गईं। क्योंकि इनमें केवल आदर्शों की ही चर्चा नहीं थी, इनमें वह सब कुछ भी था, जो वहां के समाज में उस समय घटित हो रहा था और उसके बारे में एक सामान्य व्यक्ति की जो प्रतिक्रिया थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की कुछ कहानियों को गैर बंगाली आलोचकों ने पहले स्वीकारा ही नहीं, क्योंकि वे कहानी की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थीं। लेकिन ऐसा अनुवादकों की नासमझी की वजह से हुआ था।

'काबुलीवाला' इनकी ऐसी कहानी है, जिस पर फिल्म भी बनी, जो काफी चर्चित हुई तथा जिसे दर्शकों ने बहुत पसंद किया।

हमें विश्वास है कि इस संकलन की कहानियां आपको गुरुदेव के व्यक्तित्व के ऐसे पक्ष का परिचय कराएंगी, जिसके बारे में हम बहुत कम जानते हैं।